# रामचर्चा

राजा राम मोहनराय पुस्तकालय फाउंडेशन
कलकत्ता मैचिंग स्कीम

लेखक
प्रेमचंद

# अनुक्रमणिका

## बाल-कांड



## अयोध्या-कांड



## वन-कांड



## किष्किन्धा-कांड



## सुन्दर-कांड

बाल-कांड

# जन्म

प्यारे बच्चो ! तुमने विजय-दशमी का मेला तो देखा ही होगा। कहीं-कहीं इसे रामलीला का मेला भी कहते हैं। इस मेले में तुमने मिट्टी या पीतल के बन्दरो और भालुओं के-से चेहरे लगाये आदमी देखे होंगे। राम, लक्ष्मण और सीता को सिंहासन पर बैठे देखा होगा और इनके सिंहासन के सामने कुछ फासले पर कागज और बांसों का बड़ा पुतला देखा होगा। इस पुतले के दस सिर और बीस हाथ देखे होंगे। वह रावण का पुतला है। हजारो बरस हुए, राजा रामचन्द्र ने लंका में जाकर रावण को मारा था। उसी कौमी फतह की यादगार में विजय-दशमी का मेला होता है और हर साल रावण का पुतला जलाया जाता है। आज हम तुम्हें उन्हीं राजा रामचन्द्र की जिन्दगी के दिलचस्प हालात सुनाते हैं।

गंगा की उन सहायक नदियों में, जो उत्तर से आकर मिलती हैं, एक सरजू नदी भी है। इसी नदी पर अयोध्या का मशहूर कस्बा आबाद है। हिन्दू लोग आज भी वहा तीर्थ करने जाते हैं। आजकल तो अयोध्या एक छोटा-सा कस्बा है; मगर कई हजार साल हुए, वह हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा शहर था। वह सूर्यवंशी खानदान के नामी-गिरामी राजाओं की राजधानी थी। हरिश्चन्द्र जैसे दानी, रघु जैसे गरीबपरवर, भगीरथ जैसे वीर राजा इसी सूर्यवंश में हुए। राजा दशरथ इसी प्रसिद्ध वंश के राजा थे। रामचन्द्र राजा दशरथ के बेटे थे।

उस जमाने में अयोध्या नगरी विद्या और कला की केन्द्र थी। दूर-दूर के व्यापारी रोजगार करने आते थे। और वहां की बनी हुई चीज खरीदकर ले जाते थे। शहर मे विशाल सड़कें थीं। सड़कों पर हमेशा छिड़काव होता था। दोनों ओर आलीशान महल खड़े थे। हर किस्म की सवारियां सड़कों पर दौड़ा करती थीं। अदालतें, मदरसे, औषधा-लय सब मौजूद थे। यहां तक कि नाटक-घर भी बने हुए थे, जहां शहर के लोग तमाशा देखने जाते थे। इससे मालूम होता है कि पुराने जमाने में भी इस देश में नाटकों का रिवाज था। शहर के आस-पास बड़े-बड़े बाग थे। इन बागों में किसी को फल तोड़ने की मुमानियत न थी। शहर की हिफाजत के लिए मजबूत चहारदीवारी बनी हुई थी। अन्दर एक किला भी था। किले के चारों ओर गहरी खाई खोदी गई थी, जिसमें हमेशा पानी लबालब भरा रहता था। किले के बुर्जों पर तोपें लगी रहती थीं। शिक्षा इतनी [प्र]चलित थी कि कोई जाहिल आदमी ढूंढने से भी न मिलता था। लोग बड़े अतिथि का [स]त्कार करने वाले, ईमानदार, शांतिप्रेमी, विद्याभ्यासी, धर्म के पाबन्द और दिल के साफ [थे]। अदालतों में आजकल की तरह झूठे मुकदमे दायर नहीं किये जाते थे। हर घर में

गायें पाली जाती थीं। घी-दूध की इफरात थी। खेतों में अनाज इतना पैदा होता था कि कोई भूखा न रहने पाता था। किसान खुशहाल थे। उनसे लगान बहुत कम लिया जाता था। डाके और चोरी की वारदातें सुनाई भी न देती थीं। और ताऊन, हैजा वगैरह बीमारियों का नाम तक न था। वह सब राजा दशरथ की बरकत थी।

एक रोज राजा दशरथ शिकार खेलने गये और घोड़ा दौड़ाते हुए एक नदी के किनारे जा पहुंचे। नदी दरख्तों की आड़ में थी। वहीं जंगल में अन्धक मुनि नामक एक अन्धा रहता था। उसकी स्त्री भी अंधी थी। उस वक्त उनका नौजवान बेटा श्रवण नदी मे पानी भरने गया हुआ था। उसके कलशे के पानी में डूबने की आवाज सुनकर राजा ने समझा कि कोई जंगली हाथी नहा रहा है। तुरन्त शब्द-वेधी बाण चला दिया। तीर नौजवान के सीने में लगा। तीर का लगना था कि वह जोर से चिल्लाकर गिर पड़ा। राजा घबराकर वहां गये तो देखा कि एक नौजवान पड़ा तड़प रहा है। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। बेहद अफसोस हुआ। नौजवान ने उनको लज्जित और दुःखित देखकर समझाया—अब रंज करने से क्या फायदा! मेरी मौत शायद इसी तरह लिखी थी। मेरे मा-बाप दोनों अन्धे हैं। उनकी कुटी वह सामने नजर आ रही है। मेरी लाश उनके पास पहुचा देना। यह कहकर वह मर गया।

राजा ने नौजवान की लाश को कन्धे पर रखा और अन्धे के पास जाकर यह दुःखद समाचार सुनाया। बेचारे दोनों बुड्ढे, तिस पर दोनों आंखों के अन्धे, और यही इकलौता बेटा उनकी जिन्दगी का सहारा था—इसके मरने का समाचार सुनकर फूट-फूटकर रोने लगे। जब आंसू जरा थमे तो उन्हें राजा पर गुस्सा आया। उनको खूब जी भरकर कोस और यह शाप देकर कि जिस तरह बेटे के शोक में हमारी जान निकल रही है उसी तरह तुम भी बेटे ही के शोक में मरोगे, दोनों मर गये। राजा दशरथ भी रो-धोकर यहा से विदा हुए।

राजा दशरथ के अब तक कोई सन्तान न थी। सन्तान ही के लिए उन्होंने तीन शादियां की थीं। बड़ी रानी का नाम कौशल्या था, मंझली रानी का सुमित्रा और छोटी रानी का कैकेयी। तीनों रानिया भी सन्तान के लिए तरसती रहती थीं। अन्धे का शाप राजा के लिए वरदान हो गया। चाहे बेटे के शोक में मरना ही पड़े, बेटे का मुंह तो देखेंगे। ताज और तख्त का वारिस तो पैदा होगा। इस खयाल से राजा को बड़ी तसकीन हुई। इसके कुछ ही दिन बाद अपने गुरु वशिष्ठ के मशविरे से राजा ने एक यज्ञ किया। इसमें बहुत से ऋषि-मुनि जमा हुए और सबने राजा को आशीर्वाद दिया। यज्ञ के पूरे होते ही तीनों ही रानियां गर्भवती हुईं और नियत समय के बाद तीनों रानियों के चार राजकुमार पैदा हुए। कौशल्या से रामचन्द्र हुए, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न और कैकेयी से भरत। सारे राज में मंगल-गीत गाये जाने लगे। प्रजा ने खूब उत्सव मनाया। राजा ने इतना सोना-चांदी दान किया कि राज में कोई निर्धन न रह गया। उनकी दिली कामना पूर्ण हुई। कहां एक बेटे का मुह देखने को तरसते थे, कहां चार-चार बेटे हो गये घर गुलजार हो गया। ज्योतिहीन आंखें रोशन हो गयीं

चारों लड़कों का लालन होने लगा अब वह जरा सयाने हुए तो गुरु

वशिष्ठ न उन्हें शिक्षा देना शुरू किया। चारों लड़के बहुत ही जहीन थे, थोड़े ही दिनों में वेद-शास्त्र सब खत्म कर लिये और रणविद्या में भी खूब होशियार हो गये। धनु-विद्या में, भाला चलाने में, कुश्ती में, किसी फन में इनका समान न था। मगर उनमें घमण्ड नाम को भी न था। चारों बुजुर्गों का अदब करते थे। छोटों को भी वह सख्त-सुस्त न कहते। उनमें आपस में बड़ी गहरी मुहब्बत थी। एक-दूसरे के लिए जान देते थे। चारों ही सुन्दर, स्वस्थ और सुशील थे। उन्हें देखकर सबके मुंह से आशीर्वाद निकलता था। सब कहते थे, यह लड़के खानदान का नाम रोशन करेंगे। यों तो चारों में एक-सी मुहब्बत थी, मगर लक्ष्मण को रामचन्द्र से, शत्रुघ्न को भरत से खास प्रेम था। राजा दशरथ मारे खुशी के फूले न समाते थे।

## ताड़का और मारीच का वध

एक दिन राजा दशरथ दरबार में बैठे हुए मन्त्रियों से कुछ बातचीत कर रहे थे कि ऋषि विश्वामित्र पधारे। विश्वामित्र उस समय के बहुत बड़े तपस्वी थे। वह क्षत्रिय होकर भी केवल अपनी आराधना के बल से ब्रह्मर्षि के पद पर पहुंच गये थे। सभी ऋषि उनके सामने आदर से सिर झुकाते थे। मगर ज्ञानी होने पर भी वह किसी हद तक क्रोधी थे। किसी ने उनकी मर्जी के खिलाफ काम किया और उन्होंने शाप दिया। इससे सभी राजे-महाराजे उनसे डरते थे; क्योंकि उनके शाप को कोई रद्द न कर सकता था। लड़ाई की विद्या में भी वह अद्वितीय थे। राजा दशरथ ने सिंहासन से उतरकर उनका स्वागत किया और उन्हें अपने सिंहासन पर बिठाकर बोले—आज इस गरीब के घर को अपने चरणों से पवित्र करके आपने मुझ पर बड़ा एहसान किया। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये; वह सर-आंखों पर बजा लाऊं।

विश्वामित्र ने आशीर्वाद देकर कहा—महाराज! हम तपस्वियों को राज-दरबार की याद उसी समय आती है, जब हमें कोई तकलीफ होती है, या जब हमारे ऊपर कोई अत्याचार करता है। मैं आजकल एक यज्ञ कर रहा हूं; किन्तु राक्षस लोग उसे अपवित्र करने की कोशिश करते हैं। वह यज्ञ की वेदी पर रक्त और हड्डियां फेंकते हैं। मारीच और सुबाहु दो बड़े ही विद्रोही राक्षस हैं। यह सारा फिसाद उन्हीं लोगों का है। मुझमें अपनी तपस्या का इतना बल है कि चाहूं तो एक शाप देकर उनकी सारी सेना को जला-कर राख कर दूं; पर यज्ञ करते समय क्रोध को रोकना पड़ता है। इसलिए मैं आपके पास फरियाद लेकर आया हूं। आप राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मण को मेरे साथ भेज दीजिये, जिससे वह मेरे यज्ञ की रक्षा करें और उन राक्षसों को शिथिल कर दें। दस दिन में हमारा यज्ञ पूरा हो जायेगा। राम के सिवा और किसी से यह काम न होगा।

राजा दशरथ बड़ी मुश्किल में पड़ गये राम का वियोग उन्हें एक क्षण के लिए

भी सह्य न था। यह भय भी हुआ कि लड़के अभी अनुभवी नहीं हैं, डरावने राक्षसों से भला क्या मुकाबला कर सकेंगे। डरते हुए बोले—हे पवित्र ऋषि ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; किन्तु इन अल्प-वयस्क लड़कों को राक्षसों के मुकाबले में भेजते मुझे भय होता है। उन्हें अभी तक युद्ध-क्षेत्र का अनुभव नहीं है। मैं स्वयं अपनी सारी सेना लेकर आपके यज्ञ की रक्षा करने चलूंगा। लड़कों को साथ भेजने के लिए मुझे विवश न कीजिये।

विश्वामित्र हंसकर बोले—महाराज ! आप इन लड़कों को अभी नहीं जानते। इनमें शेरों की-सी हिम्मत और ताकत है। मुझे पूरा विश्वास है कि ये राक्षसों को मार डालेंगे। इनकी तरफ से आप निडर रहिये। इनका बाल भी बांका न होगा।

राजा दशरथ फिर कुछ आपत्ति करना चाहते थे; मगर गुरु वशिष्ठ के समझाने पर राजी हो गये। और दोनों राजकुमारों को बुलाकर ऋषि विश्वामित्र के साथ जाने का आदेश दिया। रामचन्द्र और लक्ष्मण यह आज्ञा पाकर दिल में बहुत खुश हुए। अपनी वीरता को दिखाने का ऐसा अच्छा अवसर इन्हें पहले न मिला था। दोनों ने युद्ध मे जाने के कपड़े पहने, हथियार सजाये और अपनी माताओं से आशीर्वाद लेने के बाद राजा दशरथ के चरणों पर गिरकर खुशी-खुशी विदा हुए। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को एक ऐसा मन्त्र बताया कि जिसको पढ़ने से थकावट पास नहीं आती थी। नये-नये बहुत से अद्भुत हथियारों का उपयोग करना सिखाया, जिनके मुकाबले में कोई ठहर न सकता था।

कई दिन के बाद तीनों आदमी गंगा को पार करके घने जंगल में जा पहुंचे। विश्वामित्र ने कहा—बेटा ! इस जंगल में ताड़का नाम की दानवी रहती है। वह इस रास्ते से गुजरनेवाले आदमी को पकड़कर खा डालती है। पहले यहां एक अच्छा नगर बसा हुआ था; पर इस दानवी ने सारे आदमियों को खा डाला। अब वही बसा हुआ नगर घना जंगल है। कोई आदमी भूलकर भी इधर नहीं आता। हम लोगों की आहट पाकर वह दानवी आती होगी। तुम तुरन्त उसे तीर से मार डालना।

विश्वामित्र अभी यह वाकया बयान कर ही रहे थे कि हवा में जोर की सनसनाहट हुई और ताड़का मुंह खोले दौड़ती हुई आती दिखायी दी। उसकी सूरत इतनी डरावनी और डील इतना बड़ा था कि कोई कम साहसी आदमी होता तो मारे डर के गिर पड़ता। उसने इन तीनों आदमियों के सामने आकर गरजना और पत्थर फेंकना शुरू किया। विश्वामित्र ने रामचन्द्र को तीर चलाने का इशारा किया। रामचन्द्र एक औरत पर हथियार चलाना नियम के विरुद्ध समझते थे। ताड़का दानवी थी तो क्या, थी तो औरत। मगर ऋषि का संकेत पाकर उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। ऐसा तीर चलाया कि वह ताडका की छाती में चुभ गया। ताड़का जोर से चीखकर गिर पड़ी और एक क्षण में तडप-तड़पकर मर गयी।

तीनों आदमी फिर आगे चले और कई दिनों बाद विश्वामित्र के आश्रम में पहुच गये। था तो यह जंगल; पर इसमें अधिकतर ऋषि लोग रहा करते थे। शेर, नीलगाय, हिरन निडर घूमा करते थे। इस तपोभूमि के प्रभाव से शिकार खेलनेवाले भी शिकार की तरफ प्रवृत्त न होते थे।

दूसरे दिन से विश्वामित्र ने यज्ञ करना शुरू किया राम और लक्ष्मण कमर में तलवार लटकाये धनुष और बाण हाथ में लिये जगल के चारो ओर गश्त लगाने लगे न खाने-पीने की फिक्र थी, न सोने-लेटने की। रात-दिन बिना सोये और बिना खाये पहरा देते थे। इस प्रकार पांच दिन कुशल से बीत गये। मगर छठे दिन क्या देखते है कि मारीच और सुबाहु राक्षसों की सेना लिये यज्ञ को अपवित्र करने चले आ रहे हैं। दोनों भाई तुरन्त संभल गये। ज्योंही मारीच सामने आया, रामचन्द्र ने ऐसा तीर मारा कि वह बड़ी दूर जाकर गिर पड़ा। सुबाहु बाकी था। उसे भी एक अग्नि-बाण में ठण्डा कर दिया। फिर तो राक्षसी सेना के पैर उखड़ गये। दोनों भाइयों ने दूर तक उनका पीछा किया और कितनों ही को मार डाला। इस प्रकार यज्ञ सुन्दर रीति से पूरा हो गया। किसी प्रकार की रुकावट न हुई। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों की खूब प्रशंसा की।

# विवाह

राम और लक्ष्मण अभी विश्वामित्र के आश्रम में ही थे कि मिथिला के राजा जनक ने विश्वामित्र को अपनी लड़की सीता के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए नवेद भेजा। उस समय में प्राय: विवाह स्वयंवर की रीति से होते थे, लड़की का पिता एक उत्सव करता था, जिसमें दूर-दूर से आकर लोग सम्मिलित होते थे। उत्सव में साहस या युद्ध के कौशल की परीक्षा होती थी। जो युवक इस परीक्षा मे सफल होता था, उसी के गले मे कन्या जयमाल डाल देती थी। उसी से उसका विवाह हो जाता था। विश्वामित्र की हार्दिक इच्छा थी कि सीता का विवाह राम से हो जाये। वह यह भी जानते थे कि राम परीक्षा में अवश्य सफल होगे। इसलिए जब वह मिथिला जाने लगे, तो राम और लक्ष्मण को भी साथ लेते गये। राजा दशरथ से आज्ञा लेने के लिए अयोध्या जाने और वहा से मिथिला आने के लिए काफी वक्त न था। मिथिला वहां से करीब ही थी। इसलिए विश्वामित्र ने सीधे वहां जाने का निश्चय किया।

आजकल जिस प्रांत को हम बिहार कहते हैं, वही उस जमाने में मिथिला कहलाता था। मिथिला के राजा जनक बड़े विद्वान् और ज्ञानी पुरुष थे, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनसे ज्ञान की शिक्षा लेने आते थे। कई साल पहले मिथिला में बड़ा भारी अकाल पड़ा था। उस वक्त ऋषियों ने मिलकर फैसला किया कि यह अकाल यज्ञ ही से दूर हो सकता है। इस यज्ञ को पूरा करने की एक शर्त यह भी थी कि राजा जनक खुद हल चलायें। राजा जनक को अपनी प्रजा अपने प्राण से भी अधिक प्रिय थी। इसके सिर स इस संकट को दूर करने के लिए उन्होंने इस यज्ञ को शुरू कर दिया। जब वह हल-बैल लेकर खेत में पहुंचे और हल चलाने लगे तो क्या देखते हैं कि फल की नोक से जो जमीन खुद गयी है उसमें एक चांद सी लड़की पड़ी हुई है। राजा के कोई सन्तान न थी तुरन्त

इस लड़की को गोद में उठा लिया और घर लाये। उसका नाम सीता रखा, क्योंकि वह फल की नोक से निकली थी। फल को संस्कृत में सित् कहते हैं। इस ईश्वरीय देन को राजा जनक ने बड़े लाड़ और प्यार से पाला। और अच्छे-अच्छे विद्वानों से शिक्षा दिलवायी। इसी सीता के विवाह पर यह स्वयंवर रचा गया था।

राम-लक्ष्मण और विश्वामित्र सोन, गंगा इत्यादि नदियों को पार करते हुए चौथे दिन मिथिला पहुंचे। सारे शहर के लोग इन राजकुमारों की सुन्दरता और डील-डौल देखकर उन पर मोहित हो गये। सबके मुंह से यही आवाज निकलती थी कि सीता के योग्य कोई है तो यही राजकुमार है; जैसी सुन्दर वह है वैसे ही खूबसूरत रामचन्द्र हैं। मगर देखना चाहिए, इनसे शिव का धनुष उठता है या नहीं।

राजा जनक को विश्वामित्र के आने की खबर हुई तो उन्होंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। जब उन्हें मालूम हुआ कि वह दोनों नौजवान राजा दशरथ के बेटे हैं, तब उनके दिल में भी यही ख्वाहिश हुई कि काश सीता का विवाह राम से हो जाता; मगर स्वयंवर की शर्त से लाचार थे।

विश्वामित्र ने राजा से पूछा—महाराज, आपने स्वयंवर के लिए कौन-सी परीक्षा चुनी है?

जनक ने उत्तर दिया—भगवन्, क्या कहूं, कुछ कहा नहीं जाता। सैकड़ों बरस गुजर गये, एक बार शिवजी ने मेरे किसी पूर्वज को अपना धनुष दिया था। वह धनुष तब से मेरे घर में रखा हुआ था। एक दिन मैंने सीता से अपनी पूजा की कोठरी को लीप डालने के लिए कहा—उसी कोठरी में वह पुराना धनुष रखा हुआ था। सैकड़ों बरस से कोई उसे उठा न सका था। सीता ने जाकर देखा तो उसके आस-पास बहुत कूड़ा जमा हो गया था। उसने धनुष को उठाकर एक ओर रख दिया। मैं पूजा करने गया तो धनुष को हटा हुआ देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब मालूम हुआ कि सीता ने उसे उठाकर जमीन साफ की है, तब मैंने शर्त की कि ऐसी वीर कन्या का विवाह उसी वर से करूंगा, जो धनुष को चढ़ाकर तोड देगा। अब देखूं, लड़की के भाग्य में क्या है।

दूसरे दिन स्वयंवर की तैयारियां शुरू हुईं। मैदान में एक बड़ा शामियाना ताना गया। सैकड़ों सूरमा जो अपने बल के घमण्ड में दूर-दूर से आये हुए थे, आ-आकर बैठे। शहर के लाखों स्त्री-पुरुष एकत्रित हुए। शिवजी के धनुष को बहुत से आदमी उठाकर सभा में लाये। जब सब लोग आ गये तो राजा जनक ने खड़े होकर कहा—ऐ भारतवर्ष के वीरो! यह शिवजी का धनुष आप लोगों के सामने रखा है। जो इसे तोड़ देगा, उसी के गले मे सीता जयमाल डालेगी।

यह सुनते ही सूरमाओं और वीरों ने धनुष के पास जा-जाकर जोर लगाना शुरू किया। सभी राजकुमार सीता से विवाह करने का स्वप्न देख रहे थे। कमर कस-कसकर घमण्ड से ऐंठते-अकड़ते धनुष के पास जाते, और जब वह तिल भर भी न हिलता तो अपमान से गर्दन झुकाये अपना-सा मुंह लिये लौट आते थे। सारी सभा में एक भी ऐसा योद्धा न निकला जो धनुष को उठा सकता तोड़ने का तो जिक्र ही क्या।

राजा जनक ने यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा भय हुआ सभा में खड़े होकर

निराशा-सूचक स्वर में बोले—शायद यह वीर-भूमि अब वीरों से खाली हो गयी। जभी तो इतने आदमियों में एक भी ऐसा न निकला जो इस धनुष को तोड़ सकता। यदि मैं ऐसा जानता तो स्वयंवर के लिए यह शर्त न रखता। ऐसा प्रतीत होता है कि सीता अविवाहित रहेगी। यही इसके भाग्य में है तो मैं क्या कर सकता हूं। आप लोग अब शौक से जा सकते हैं। इस हौसले और ताकत पर आप लोगों को यहां आने की जरूरत ही क्या थी?

लक्ष्मण बड़े जोशीले युवक थे। जनक की यह बातें सुनकर उनसे सहन न हो सका। जोश से बोला—महाराज! ऐसा अपनी जबान से न कहिये। जब तक राजा रघु का वंश कायम है, यह देश वीरों से खाली नहीं हो सकता। मैं डींग नहीं मारता। सच कहता हूं कि अगर खाली भाई साहब की आज्ञा पाऊं तो एकदम मैं इस धनुष के पुरजे-पुरजे कर दूं। मेरे भाई साहब चाहें तो इसे एक हाथ से तोड़ सकते हैं। इसकी हकीकत ही क्या है। लक्ष्मण की यह जोशपूर्ण बातें सुनकर सारे सूरमा दंग रह गये। रामचन्द्र छोटे भाई की तबीयत से परिचित थे। उनका हाथ पकड़कर खींच लिया और बोले—भाई, यह समय इस तरह की बातें करने का नहीं है। जब तक तुम्हारे बड़े मौजूद हैं, तुम्हें जबान खोलना, उचित नहीं।

लक्ष्मण बैठ गये तो विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा—बेटा, अब तुम जाकर इस धनुष को तोड़ो, जिसमें राजा जनक को तसकीन हो। रामचन्द्र सीता को पहले ही दिन एक बाग में देख चुके थे। दोनों भाई बाग में सैर करने गये थे और सीता देवी की पूजा करने आयी थीं। वहीं दोनों की आंखें मिली थीं। उसकी वक्त से रामचन्द्र को सीता से प्रेम हो गया था। वह इसी समय की प्रतीक्षा में थे। विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही उन्होंने प्रणाम किया और धनुष की ओर चले। सूरमाओं ने अपना अपमान कम करने के विचार से उन पर आवाजें कसना शुरू किया। एक ने कहा—जरा संभले हुए जाइयेगा, ऐसा न हो, अपने ही जोर में गिर पड़िये। दूसरा बोला—इस पुराने धनुष पर दया कीजिये, कहीं पुरजे-पुरजे न कर दीजियेगा। तीसरा बोला—जरा धीरे-धीरे कदम रखिये, जमीन हिल रही है। किन्तु रामचन्द्र ने इन तीनों की तरफ तनिक भी ध्यान न दिया। धनुष को इस तरह उठा लिया जैसे कोई फूल हो और इतनी जोर से चढ़ाया कि बीच से उसके दो टुकड़े हो गये। इसके टूटने से ऐसी आवाज हुई कि लोग चौंक पड़े। धनुष ज्यों ही टूटकर गिरा, वह सफलता की प्रसन्नता से उछलकर दौड़े। राजा जनक सभा के बाहर चिन्तापूर्ण दृष्टि से यह दृश्य देख रहे थे। रामचन्द्र को गले लगा लिया और सीताजी ने आकर उनके गले में जयमाल डाल दी। नगरवालों ने प्रसन्न होकर जय-जयकार करना शुरू किया। मंगल-गान होने लगा, बन्दूकें छूटने लगीं। और सूरमा लोग एक-एक करके चुपके-चुपके सरकने लगे। शहर के छोटे-बड़े धनी-निर्धन, सब खुशी से फूले न समाते थे। सभी ने मुंहमांगी मुराद पायी। सलाह हुई कि राजा दशरथ को शुभ समाचार की सूचना देनी चाहिए। कई ऊंट के सवार तुरन्त कोशल की ओर रवाना किये गये। विश्वामित्र राजकुमारों के साथ राजभवन में जाना ही चाहते थे कि मंडप के बाहर शोरगुल सुनायी देने लगा। ऐसा मालूम होता था कि बादल गरज रहा है लोग घबड़ा

इधर-उधर देखने लगे कि यह क्या आफत आनेवाली है। एक क्षण के बाद भेद खुला कि परशुराम ऋषि क्रोध से गरजते चले आ रहे हैं। देवों का-सा कद, अंगारे-सी लाल-लाल आखें, क्रोध से चेहरा लाल, हाथ में तीर-कमान, कंधे पर फरसा—यह आपका रूप था। मालूम होता था, सबको कच्चा ही खा जायंगे। आते ही गरजकर बोले—किसने मेरे गुरु शिवजी का धनुष तोड़ा है निकल आये मेरे सामने, जरा मैं भी देखूं वह कितना वीर है?

रामचन्द्र ने बहुत नम्रता से कहा—महाराज! आपके किसी भक्त ने ही तोड़ा होगा और क्या। परशुराम ने फरसे को घुमाकर कहा—कदापि नहीं, यह मेरे भक्त का काम नहीं, यह किसी शत्रु का काम है। अवश्य मेरे किसी वैरी ने यह काम किया है। मैं भी उसका सिर तन से अलग कर दूंगा। किसी तरह क्षमा नहीं कर सकता। मेरे गुरु का धनुष और उसे कोई क्षत्रिय तोड़ डाले? मैं क्षत्रियों का शत्रु हूं। जानी-दुश्मन! मैंने एक-दो बार नहीं, इक्कीस बार क्षत्रियों के रक्त की नदी बहायी है। अपने बाप के खून का बदला लेने के लिए मैंने जहां क्षत्रियों को पाया है, चुन-चुनकर मारा है। अब फिर मेरे हाथों क्षत्रियों पर वही आफत आनेवाली है जिसने यह धनुष तोड़ा हो, मेरे सामने निकल आवे।

दिलेर और मनचले लक्ष्मण यह ललकार सुनकर भला कब सहन कर सकते थे! सामने आकर बोले—आप एक सड़े-से धनुष के टूटने पर इतना आपे से क्यों बाहर हो रहे है? लड़कपन में ऐसे कितने धनुष खेल-खेलकर तोड डाले, तब तो आपको तनिक भी क्रोध न आया। आज इस पुराने, बेदम धनुष के टूट जाने से आप क्यों इतना कुपित हो रहे हैं? क्या आप समझते हैं कि इस गीदड़-भभकियों से कोई डर जायगा?

जैसे घी पड़ जाने से आग और भी तेज हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मण के ये शब्द सुनकर परशुराम और भी भयावने हो गये, फरसे को हाथ में लेकर बोले—तू कौन है जो मेरे साथ इस धृष्टता से व्यवहार करता है? तुझे क्या अपनी जान जरा भी प्यारी नहीं है, जो इस तरह मेरे सामने जबान चलाता है? क्या यह धनुष भी वैसा ही था, जैसे तुमने लड़कपन में तोड़े थे? यह शिवजी का धनुष था।

लक्ष्मण बोले—किसी का धनुष हो, मगर था बिलकुल सड़ा हुआ। छूते ही टूट गया। जोर लगाने की जरूरत ही न पड़ी। इस जरा-सी बात के लिए व्यर्थ आप इतना बिगड़ रहे हैं। परशुराम और भी झल्लाकर बोले—अरे मूर्ख, क्या तू मुझे नहीं पहचानता? मैं तुझे लड़का समझकर अभी तरह दिये जाता हूं, और तू अपनी धृष्टता नहीं छोड़ता। मेरा क्रोध बुरा है। ऐसा न हो, मैं एक बार में तेरा काम तमाम कर दूं।

लक्ष्मण—मेरा काम तो तमाम हो चुका! हां, मुझे डर है कि कहीं आपका क्रोध आपको हानि न पहुंचाये। आप-जैसे ऋषियों को कभी क्रोध न करना चाहिए।

परशुराम ने फरसा संभालते हुए दांत पीसते हुए कहा—क्या कहूं, तेरी उम्र तुझे बचा रही है, वरना अब तक तेरा सिर तन से जुदा कर देता।

लक्ष्मण—कहीं इस भरोसे मत रहियेगा। आप फूंककर पहाड़ नहीं उड़ा सकते। आप ब्राह्मण हैं इसलिए आपके ऊपर दया आती है सामने अभी तक आपका किसी

क्षत्रिय से पाला नहीं पड़ा। तभी आप इतना बिफर रहे हैं।

रामचन्द्र ने देखा कि बात बढ़ती जा रही है, तो लक्ष्मण का हाथ पकड़कर बिठा दिया और परशुराम से हाथ जोड़कर बोले—महाराज ! लक्ष्मण की बातों का आप बुरा न मानें। यह ऐसा ही धृष्ट है। यह अभी तक आपको नहीं जानता, वरना यों आपके मुह न लगता। इसे क्षमा कीजिए, छोटों का कुसूर बड़े माफ किया करते हैं। आपका अपराधी मैं हूं, मुझे जो दण्ड चाहें, दें। आपके सामने सिर झुका हुआ है।

रामचन्द्र की यह आदरपूर्ण बातचीत सुनकर परशुराम कुछ नर्म पड़े कि एका-एक लक्ष्मण को हंसते देखकर फिर उनके बदन में आग लग गयी। बोले—राम ! तुम्हारा यह भाई अति धृष्ट है। विनय और शील तो इसे छू तक नहीं गया। जो कुछ मुंह में आता है, बक डालता है। रंग इसका गोरा है। पर दिल इसका काला है। ऐसा अशिष्ट लड़का मैंने नहीं देखा।

अभी तक तो लक्ष्मण परशुराम को केवल छेड़ रहे थे, किन्तु ये बातें सुनकर उन्हे क्रोध आ गया। बोले—सुनिये महाराज ! छोटों का काम बड़ों का आदर करने का है, किन्तु इसकी भी सीमा होती है। आप अब इस सीमा से बढ़े जा रहे हैं। आखिर आप क्यो इतना अप्रसन्न हो रहे हैं ? आपके बिगड़ने से तो धनुष जुड़ न जायगा। हां, जग-हसाई अवश्य होगी। अगर यह धनुष आपको ऐसा ही प्रिय है, तो किसी कारीगर से जुड़वा दिया जायगा। इसके अतिरिक्त और हम क्या कर सकते हैं। आपका क्रोध बिलकुल व्यर्थ है।

मारे क्रोध के परशुराम की आंखें बीर-बहूटी की तरह लाल हो गयीं। वह थर-थर कापने लगे। उनके नथुने फड़कने लगे। रामचन्द्र ने उनकी यह दशा देखकर लक्ष्मण को वहा से चले जाने का इशारा किया और अत्यन्त विनीत भाव से बोले—महाराज ! बडो को छोटे, कम-समझ आदमियो की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इसके बकने से क्या होता है। हम सब आपके सेवक हैं। धनुष मैंने तोड़ा है। इसका दोषी मैं हूं। इसका जो दण्ड आप उचित समझें मुझे दें। आप इसका जो दण्ड मांगें, मैं देने को तैयार हूं।

परशुराम ने नर्म होकर कहा—तावान, मैं तुमसे क्या लूंगा। मुझे यही भय है कि इस धनुष के टूट जाने से क्षत्रियों को फिर घमण्ड होगा और मुझे फिर उनका अभिमान तोड़ना पड़ेगा। यह शिव का धनुष नहीं टूटा है, ब्राह्मणों के तेज और बल को धक्का लगा है।

रामचन्द्र ने हंसकर कहा—ऋषिराज ! क्षत्रिय ऐसे नीच नहीं हैं कि इस जरा-से धनुष के टूट जाने से उन्हें घमण्ड हो जाय। अगर आप मेरी वीरता की विशेषता देखना चाहते हैं तो इससे भी बड़ी परीक्षा लेकर देखिए।

परशुराम—तैयार है ?

राम—जी हां, तैयार हूं।

परशुराम ने अपना तीर और कमान रामचन्द्र के समीप फेंककर कहा—अच्छा, इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा। देखूं तो कितना वीर है।

रामचन्द्र ने धनुष उठा लिया और बड़ी आसानी से प्रत्यंचा चढाकर बोले—

कहिए, अब क्या करूं ? तोड़ दूं इस धनुष को ?

परशुराम का सारा क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने बढ़कर रामचन्द्र को हृदय से लगा लिया और उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपना धनुष-बाण लेकर विदा हो गये। राजा जनक की जान सूख रही थी कि न जाने क्या विपदा आनेवाली है। परशुराम के चले जाने से जान में जान आयी। फिर मंगल-गान होने लगे।

राजा दशरथ रामचन्द्र और लक्ष्मण का समाचार न पाने से बहुत चिन्तित हो रहे थे। यह शुभ-समाचार मिला तो बड़े प्रसन्न हुए। अयोध्या में भी उत्सव होने लगा। दूसरे दिन धूमधाम से बारात सजा कर वह मिथिला चले।

राजा जनक ने बारात का खूब सेवा-सत्कार किया और शास्त्रविधि से सीता जी का विवाह रामचन्द्र से कर दिया। उनकी एक दूसरी लड़की थी जिसका नाम उर्मिला था। उसकी शादी लक्ष्मण से हो गयी। राजा जनक के भाई के भी दो लड़कियां थीं। वे दोनों भरत और शत्रुघ्न से ब्याही गयीं। कई दिन के बाद बारात विदा हुई। राजा जनक ने अनगिनती सोने-चांदी के बर्तन, हीरे-जवाहर, जड़ाऊ झूलों से सजे हुए हाथी, नागौरी बैलों से जुते हुए रथ, अरब जाति के घोड़े दहेज में दिये।

# अयोध्या-कांड

# वनवास

राजा दशरथ कई साल तक बड़ी तनदेही से राज करते रहे, किन्तु बुढ़ापे के कारण उनमे ले-सा जोश न था, इसलिए उन्होंने रामचन्द्रजी से राज्य के कामों में मदद लेना या। इसमें एक गुप्त युक्ति यह भी थी कि रामचन्द्र को शासन का अनुभव हो जाय। यों केवल नाम के लिए, वह स्वयं राजा थे, किन्तु अधिकतर काम रामजी के हाथों से ही होते थे। राम के सुन्दर प्रबन्ध की सारे राज्य में प्रशंसा होने लगी। जब राजा दशरथ को विश्वास हो गया कि राम अब शासक के धर्मों से भली प्रकार अवगत हो गये हैं और उन पर योग्यता से आचरण भी कर सकते हैं तो एक दिन उन्होंने अपने दरबार के प्रमुख व्यक्तियों को तथा नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों को बुलाकर कहा—मुझे आप लोगों की सेवा करते एक समय बीत गया। मैंने सदा न्याय के साथ राज करने की कोशिश की। अब मैं चाहता हूं कि राज्य रामचन्द्र के सिपुर्द कर दूं और अपने जीवन के अन्तिम दिन किसी एकान्त स्थान में बैठकर परमात्मा की याद में बिताऊं।

यह प्रस्ताव सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए और बोले—महाराज! आपकी शरण मे हम जिस सुख और चैन से रहे उनकी याद हमारे दिलों से कभी न मिटेगी। जी तो यही चाहता है कि आपका हाथ हमारे सिर पर हमेशा रहे। लेकिन जब आपकी यही इच्छा है कि आप परमात्मा की याद में जिन्दगी बसर करें तो हम लोग इस शुभ काम मे बाधक न होंगे। आप खुशी से ईश्वर की उपासना करें। हम जिस तरह आपको अपना मालिक और संरक्षक समझते थे, उसी तरह रामचन्द्र को समझेंगे।

इसी बीच में गुरु वशिष्ठजी भी आ गये। उन्हें भी यह प्रस्ताव पसन्द आया। राजा ने कहा—जब आप लोग राम को चाहते हैं तो फिर अच्छी साइत देखकर उनका राजतिलक कर देना चाहिए। जितनी ही जल्दी मुझे अवकाश मिल जाय उतना ही अच्छा। सब लोगों ने इसे बड़ी खुशी से स्वीकार किया। तिलक की साइत निश्चित हो गयी। नगर में ज्यों ही लोगों को ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र का तिलक होने वाला है, उत्सव मनाने की तैयारियां होने लगीं। जिस दिन तिलक होने वाला था, उसके एक दिन पहले से शहर की सजावट होने लगी। घरों के दरवाजों पर बन्दनवारें लटकाई जाने लगी, बाजारों में झण्डियां लहराने लगीं, सड़कों पर छिड़काव होने लगा, बाजे बजने लगे।

रानी कैकेयी की एक दासी मन्थरा थी। वह अति कुरूप, कुबड़ी औरत थी। कैकेयी के साथ मायके से आयी थी इसलिए कैकेयी उसे बहुत चाहती थी। वह किसी काम से रनिवास के बाहर निकली तो यह धूमधाम एक आदमी से इसका कारण

पूछा। उसने कहा—तुझे इतनी भी खबर नहीं ! अयोध्या ही मे रहती है या कहीं बाहर से पकड़कर आयी है ? कल श्रीरामचन्द्र का तिलक होने वाला है। यह सब उसकी तैयारियां हैं।

यह समाचार सुनते ही मन्थरा को जैसे कम्प आ गया। मारे डाह के जल उठी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि कैकेयी के राजकुमार भरत गद्दी पर बैठें और कैकेयी राजमाता हों, तब मैं जो चाहूंगी, करूंगी फिर तो मेरा ही राज होगा और रानियों की दासियों पर धाक जमाऊंगी। सिर से पैर तक गहनों से लदी हुई निकलूंगी तो लोग मुझे देखकर कहेंगे, वह मन्थरा देवी जाती हैं। फिर मुझे किसी ने कुबड़ी कहा तो मजा चखा दूंगी। इसी तरह के मनसूबे उसने दिल में बांध रखे थे। इस खबर ने उसके सारे मनसूबे धूल में मिला दिये। जिस काम के लिए जाती थी उसे बिलकुल भूल गयी। बदहवास दौड़ी हुई महल में गयी और कैकेयी से बोली—महारानी जी ! आपने कुछ और सुना ? कल राम का तिलक होने वाला है।

तीनों रानियों में बड़ा प्रेम था। उनमें नाम को भी सौतिया-डाह न था। जिस तरह कौशल्या भरत को राम की ही तरह प्यार करती थीं, उसी तरह कैकेयी भी राम को प्यार करती थीं। रामचन्द्र सबसे बड़े थे इसलिए यह मानी हुई बात थी कि वही राजा होंगे। मन्थरा से यह खबर सुनकर कैकेयी बोली—मैं यह खबर पहले ही सुन चुकी हूं, लेकिन तूने सबसे पहले मुझसे कहा, इसलिए यह सोने का हार तुझे इनाम देती हूं। यह ले।

मन्थरा ने सिर पर हाथ मारकर कहा—महारानी ! यह इनाम मैं शौक से लेती अगर राम की जगह राजकुमार भरत के तिलक की खबर सुनती। यह इनाम देने की बात नहीं है, रोने की बात है। आप अपना भला-बुरा कुछ नहीं समझतीं।

कैकेयी—चुप रह डाइन ! तुझे ऐसी बातें मुंह से निकालते लाज भी नहीं आती ? रामचन्द्र मुझे भरत से भी प्यारे हैं। तू देखती नहीं कि वह मेरा कितना आदर करते हैं ? बिना मुझसे सलाह लिये कोई काम नहीं करते ! फिर यह सबसे बड़े हैं। गद्दी पर अधिकार भी तो उन्हीं का है ! फिर जो ऐसी बात मुंह से निकाली, तो जबान खिंचवा लूंगी।

मन्थरा—हां, जबान क्यों न खिंचवा लोगी ! जब बुरे दिन आते हैं, तो आदमी की बुद्धि पर इसी प्रकार पर्दा पड़ जाता है। तुम जैसी भोली-भाली, नेक हो, वैसा ही सबको समझती हो। राम को बेटा-बेटा कहते यहां तुम्हारी जबान सूखती है, वहां रानी कौशल्या चुपके-चुपके तुम्हारी जड़ खोद रही हैं। चार दिन में वही रानी होंगी। तुम्हारी कोई बात भी न पूछेगा। बस, महाराज के पूजा के बर्तन धोया करना। मेरा काम तुम्हें समझाना था, समझा दिया। तुम्हारा नमक खाती हूं, उसका हक अदा कर दिया। मेरे लिए जैसे राम, वैसे भरत। मैं दासी से रानी तो होने की नहीं। हां, तुम्हारे विरुद्ध कोई बात होते देखती हूं तो रहा नहीं जाता। मेरे मुंह में आग लगे कहां-से-कहां मैंने यह जिक्र छेड़ दिया कि सबेरे-सबेरे डाइन चुड़ैल बनना पड़ा। तुम जानो तुम्हारा काम जाने

इन बातों ने आखिर कैकेयी पर असर किया। समझी, ठीक ही तो है, रामचन्द्र राजा होकर भरत को निकाल दें या मरवा ही डालें तो कौन उनका हाथ पकड़ेगा। मै भी दूध की मक्खी की तरह निकाल दी जाऊंगी। बहुत होगा रोटी, कपड़ा मिल जायगा। राज्य पाकर सभी की मति बदल जाती है। राम को भी अभिमान हो जाय तो क्या आश्चर्य है। जभी कौशल्या मेरी इतनी खातिर करती हैं। यह सब मुझे तबाह करने की चालें है। यह सोचकर उसने मन्थरा से कहा—मन्थरा, देख, मेरी बातों को बुरा न मान। मैं क्या जानती थी कि मुझे और भरत को तबाह करने के लिए कौशल रचा जा रहा है। मैं तो सीधी-सादी स्त्री हूं, छक्का-पंजा क्या जानूं। अब तूने यह बात सुझायी तो मुझे सचाई मालूम हो रही है; मगर अब तो तिलक की साइत निश्चित हो चुकी। कल सवेरे तिलक हो जायगा। अब हो ही क्या सकता है।

मन्थरा—होने को तो बहुत कुछ हो सकता है। बस जरा स्त्री-हठ से काम लेना पडेगा। मै सारी तरकीबें बतला दूंगी। जरा इन लोगों की चालाकी देखो कि तिलक की साइत उस समय ठीक की, जब राजकुमार भरत ननिहाल में हैं। सोचो, अगर दिल साफ होता तो दस-पांच दिन और न ठहर जाते! भरत के आ जाने पर तिलक होता तो क्या बिगड़ जाता। मगर वहां तो दिलों मे मैल भरा हुआ है। उनकी अनुपस्थिति में चुपके से तिलक कर देना चाहते है।

कैकेयी—हां, यह बात भी तुझे खूब सूझी। शायद इसीलिए भरत को पहले यहा से खिसका दिया है; पहले से ही यह बात सधी-बदी थी। खेद है, मुझे मिट्टी में मिलाने के लिए ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचे जाते रहे और मैं बेखबर बैठी रही। बतला, अब मैं क्या करू? मेरी तो बुद्धि कुछ काम नही करती।

मन्थरा ने अपना कूबड़ हिलाकर कहा—वारी जाऊं महारानी! आप भी क्या बातें करती हैं। आपको ईश्वर ने ऐसा रूप दिया है और महाराज को आपसे ऐसा प्रेम है कि रात-भर में आप न जाने क्या-क्या कर सकती है। आप तो सारी बातें भूल जाती है। ऐसी भुलक्कड़ न होतीं तो बैरियों को ऐसे षड्यंत्र करने का मौका ही क्यों मिलता। अब तक तो भरत का कभी का तिलक हो गया होता। तुम्हीं ने एक बार मुझसे कहा था कि महाराज ने तुम्हें दो वरदान देने का वचन दिया है। क्या वह बात भूल गयीं?

कैकेयी—हां, भूल तो गयी थी, पर अब याद आ गया। एक बार महाराज लडाई के मैदान से घायल होकर आये थे और मैंने मरहम-पट्टी करके रात भर में उन्हें अच्छा कर दिया था। उसी समय उन्होंने मुझे दो वरदान दिये थे। मैंने कहा था, मुझे आपकी दया से किस बात की कमी है। जब आवश्यकता होगी मांग लूंगी।

मन्थरा—बस, फिर तो सारी बात बनी-बनायी है। आज तुम कोपभवन मे जाकर बैठ जाओ। आभूषण इत्यादि सब उतार फेंको। केवल एक मैली-कुचैली साड़ी पहन लेना, और सिर के बाल खोलकर जमीन पर पड़ रहना। महाराज तुम्हारी यह दशा देखते ही घबरा जायेंगे। बस उसी समय दोनों वचनों की याद दिलाकर कहना कि अब उन्हें पूरा कीजिए—एक यह कि राम के बदले भरत का तिलक हो, दूसरे यह कि राम को चौदह वर्ष के लिए दिया जाये। महाराज वचन के पक्के हैं अवश्य ही मान

जायेंगे। फिर आनन्द से राज्य करना।

दिन तो उत्सव की तैयारियों में गुजरा। रात को जब राजा दशरथ कैकेयी के महल में पहुंचे तो चारों तरफ अंधेरा छाया हुआ था, न कहीं गाना, न बजाना, न राग, न रंग। घबराकर एक दासी से पूछा—यह अंधेरा क्यों छाया हुआ है, चारों तरफ उदासी क्यों फैली हुई है? तू जानती है, महारानी कैकेयी कहां हैं? उनकी तबीयत तो अच्छी है?

दासी ने कहा—महारानी जी ने गाने-बजाने का निषेध कर दिया है। वह इस समय कोप-भवन में हैं।

महाराजा का माथा ठनका। यह रंग में क्या भंग हुआ। अवश्य कोई-न-कोई विपत्ति आने वाली है। उनका दिल धड़कने लगा। घबराये हुए कोप-भवन में गये तो देखा, कैकेयी भूमि पर पड़ी सिसकियां भर रही हैं।

राजा दशरथ कैकेयी को बहुत प्यार करते थे। उनकी यह दशा देखते ही उनके हाथों के तोते उड गये। भूमि पर बैठकर बोले—महारानी! कुशल तो है? तुम्हारी तबीयत कैसी है? शीघ्र बतलाओ, वरना मैं पागल हो जाऊंगा। क्या बात हुई है? तुम्हें किसी ने कुछ ताना दिया है? कोई बात तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हुई है? जिसने तुमसे यह धृष्टता की हो, उसको इसी समय दण्ड दूंगा।

कैकेयी ने आंसू पोंछते हुए कहा—मुझे कुछ नहीं हुआ है। बहुत भली प्रकार हूं। खाने को रोटियां, पहनने को कपड़े, रहने को मकान मिल ही गया है, अब और किस बात की कमी हो सकती है? आप भी प्रेम करते ही हैं। जाइये, उत्सव मनाइये। मुझे रहने दीजिए। जिसका भाग्य ही बुरा है, उसे आप क्या करेंगे।

राजा ने कैकेयी को भूमि से उठाने की चेष्टा करते हुए कहा—महारानी! ऐसी बातें न करो। मुझे दुःख होता है। तुम्हें ज्ञात है, मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूं। मैंने कभी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। तुम्हें जो शिकायत हो, साफ-साफ कह दो। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इसी समय उसे पूरा करूंगा।

कैकेयी ने त्योरियां बदलकर कहा—आप जितना मुझसे कहते हैं, उसका एक हिस्सा भी करते, तो मेरी हालत आज ऐसी खराब न होती। अब मुझे मालूम हुआ है कि आपका यह प्रेम केवल बातों का है। आप बातों से पेट भरना खूब जानते हैं। दुनिया आपको वचन का पक्का कहती है। आपके वंश में लोग वचन के पीछे जान देते चले आये हैं; मगर मुझसे तो आपने जितने वादे किये उनमें एक भी पूरा न किया। अब और किस मुंह से मांगूंगी।

राजा—मुझे यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। जहां तक मुझे याद है, मैंने तुम्हारे साथ जितने वादे किये, वे सब पूरे किये। वह कौन सा वादा है, जिसे मैंने नहीं पूरा किया? इसी समय पूरा करूंगा। बस तनिक-सी बात के लिए तुम्हें कोप-भवन में बैठने की क्या जरूरत थी?

कैकेयी भूमि से उठकर बैठी और बोली—याद कीजिये, एक बार आपने दो वरदान दिये थे—जिस दिन आप लड़ाई में घायल होकर लौटे थे।

राजा—हां याद आ गया ठीक है मैंने दो वरदान दिये थे मगर तुमने ही तो

कहा था कि जब मुझे जरूरत होगा, मैं मांग लूंगी।

कैकेयी—हां मैंने ही कहा था। अब वह समय आ गया है। आप उन्हें पूरा करने को तैयार है?

राजा—मन और प्राण से। यदि तुम जान भी मांगो तो निकाल कर दे दूंगा।

कैकेयी ने जमीन की तरफ ताकते हुए कहा—तो सुनिये। मेरा पहला वरदान यह है कि राम के बदले भरत का तिलक हो, दूसरा यह कि राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास दिया जाये।

ओह निष्ठुर कैकेयी! तूने यह क्या किया? तुझे अपने वृद्ध पति पर तनिक दया न आयी? क्या तुझे ज्ञात नही कि रामचन्द्र ही उसके जीवनाधार है! राजा के चेहरे का रंग पीला पड़ गया। मालूम हुआ, सांप ने काट लिया। ठंडी सांस भरकर बोले—कैकेयी, क्या तुम्हारे मुंह से विष की बूंदें टपक रही हैं? क्या तुम्हारे हृदय में राम की ओर से इतना मालिन्य है? राम का आज संसार में कोई बुरा चाहने वाला नही। वह सबकी आंखों का तारा है। तुम्हारा वह जितना आदर करता है, उतना शायद अपनी मां का नही करता। तुमने आज तक उसकी शिकायत न की, बल्कि हमेशा उसके शील-विनय की तारीफ किया करती थी! आज यह कायापलट क्यों हो गया? अवश्य किसी शत्रु ने तुम्हारे कान भरे हैं और राम की बुराइयां की हैं।

कैकेयी ने तिनककर कहा—कान तुम्हारे भरे हैं, मेरे कान नहीं भरे गये है। अपना लाभ और हानि जानवर तक समझते है। क्या मैं जानवरों से भी गयी-बीती हू? निश्चय देख रही हूं कि मेरा बाग उजाड किया जा रहा है। क्या उसकी रक्षा न करू? अपनी गर्दन पर तलवार चल जाने दूं? आपको अब तक मैं निर्मल-हृदय समझती थी। मगर अब मालूम हुआ कि आप भी केवल बातों में प्रेम के हरे-भरे बाग दिखाकर मुझे नष्ट करना चाहते हैं। कौशल्या रानी ने आपको खूब मन्त्र पढाया है। उस नागिन के काटे की दवा नही। अब मैं दिखा दूंगी कि कैकेयी भी राजा की लड़की है, किसी शूद्र, चमार की नहीं कि इन चालों को न समझे।

राजा—कैकेयी, मैं कभी झूठ नहीं बोला, मैं तुमसे सच कहता हूं कि मैंने राम के तिलक का निश्चय स्वयं किया। कौशल्या ने इस विषय में मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा। तुम्हारा उन पर सन्देह करना अन्याय है। राम ने भी भरत के विरुद्ध एक शब्द नही कहा मेरे लिए राम और भरत दोनों बराबर हैं। किन्तु अधिकार तो बड़े लड़के का है। है। यदि मैं भरत का तिलक करना भी चाहूं, तो तुम समझती हो, भरत उसे स्वीकार करेंगे? कदापि नहीं। भरत के लिए यह असम्भव है कि वह राम का अधिकार छीनकर प्रसन्न हों। राम और भरत एक प्राण दो शरीर हैं। तुमने इतने दिनों के बाद वरदान भी मांगे तो ऐसे, जो इस घर को नष्ट कर देंगे—शायद इस राज्य का अन्त ही कर दें! खेद!

कैकेयी ने उंगली नचाकर कहा—अच्छा! तो क्या आपने समझा था कि मैं आपसे खेलने के लिए गुड़िया मांगूंगी? क्या किसी मजदूर की लड़की हूं? अब इन चिकनी-चुपड़ी बातों में आप मुझे न फंसा सकेंगे आपको और इस घर के आदमियों को

खूब देख चुकी। आंखें खुल गयीं। यदि आपको वचन के सच्चे बनने का दावा है तो मेरे दोनों वरदान पूरे कीजिये। अन्यथा फिर रघुवंशी होने का घमण्ड न कीजियेगा। यह कलंक सदैव के लिए अपने माथे पर लगा लीजिए कि रघुकुल के राजा दशरथ ने वादे किये थे, पर जब उन्हें पूरा करने का समय आया तो साफ निकल गये।

राजा ने तिलमिलाकर कहा—कैकेयी, क्यों जले पर नमक छिड़कती हो! मैं अपने वचन से कभी न फिरूंगा, चाहे इसमें मेरे जीवन, मेरे वंश और मेरे राज्य का अन्त ही क्यों न हो जाये। शायद ब्रह्मा ने राम के भाग्य में वनवास ही लिखा हो। शायद इसी बहाने से इस वंश का नाश लिखा हो किन्तु इसका अपयश सदा के लिए तुम्हारे नाम के साथ लगा रहेगा। मैं तो शायद यह चोट खाकर जीवित न रहूंगा। मगर मेरी यह बात गिरह बांध लो कि राम को वनवास देकर तुम भरत के राज्य का सुख न देख सकोगी।

कैकेयी ने झल्लाकर कहा—यह आप भरत को शाप क्यों देते हैं? भरत राजा होंगे। आपको उन्हें राज्य देना पड़ेगा। वह राजा हो जायें यही मेरी अभिलाषा है। मैं सुख देखने के लिए जीवित रहूंगी यह नहीं, इसका हाल ईश्वर जाने।

राजा—यह तो मैं बड़ी प्रसन्नता से करने को तैयार हूं मेरे लिए राम और भरत में कोई अन्तर नहीं। मैं इसी समय भरत को बुलाने के लिए आदमी भेज सकता हूं। ज्योंहीं वह आ जायेंगे, उनका तिलक हो जायेगा। किन्तु राम को वनवास देते हुए मेरे हृदय के टुकड़े हुए जाते हैं। हाय! मेरा प्यारा राजकुमार चौदह वर्ष तक जंगलों में कैसे रहेगा? जो सदा फूलों के सेज पर सोया, वह पत्थर की चट्टानों पर घास-पात का बिछौना बिछाकर कैसे सोयेगा? कैकेयी, ईश्वर के लिए मुझ पर दया करो, इस वंश पर दया करो। अपना दूसरा वरदान पूरा करने के लिए मुझे विवश न करो।

कैकेयी ने राजा की ओर देखकर आंखें नचायी और बोली—तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैं अपने वचन पूरे न करूंगा। क्या मैं इतना भी नहीं समझती कि राम के रहते बेचारा भरत कभी आराम से न बैठने पायेगा। राम अपनी मीठी-मीठी बातों से प्रजा का हृदय वश में करके राज्य में क्रान्ति करा देंगे। भरत का जीवित रहना कठिन हो जायेगा। मेरे दोनों वरदान आपको पूरे करने पड़ेंगे। अब आपके धोखे में न आऊंगी।

राजा समझ गये कि कैकेयी को समझाना अब बेकार है। मैं जितना ही समझाऊंगा, उतना ही यह झल्लायेगी। सिर थामकर सोचने लगे कि क्या जवाब दूं। मालूम होता है, आंखों में अंधेरा छा गया है। कोई हृदय को चीरे डालता है। हाय! जीवन की सारी अभिलाषाएं धूल में मिली जा रही हैं। ईश्वर! यदि तुम्हें यही करना था तो बेटे दिये ही क्यों। बला से निःसंतान रहता। युवा बेटे का दुःख तो न देखना पड़ता। यह तीन-तीन विवाह करने का फल है! बुढ़ापे में विवाह करने का यह फल! उससे अधिक मूर्ख दुनिया में कोई नहीं जो बुढ़ापे में विवाह करता है। वह जान-बूझकर विष का प्याला पीता है। हाय! सुबह होते ही राम मुझसे अलग हो जायेंगे। मेरा प्यारा [हृ]दय का टुकड़ा जंगल की राह लेगा। भगवान! इससे पहले कि इसके वनवास की आज्ञा मेरे मुंह से निकले तुम मुझे इस दुनिया से उठा लेना इसके पहले मैं उसे साधुओं के भेष

मे वन की ओर जाते देखूं, तुम मेरी आंखों का निमंत्रण कर देना। हाय! ईश्वर करता राम इतना आज्ञाकारी न होता। क्या ही अच्छा होता कि वह मेरी आज्ञा मानना अस्वीकार कर देता। कैकेयी राजा को चिन्ता में डूबे हुए देखकर बोली— आप सोच क्या रहे हैं? बोलिये, मेरी बातें स्वीकार करते हैं या नहीं?

राजा ने आंसुओं से भरी हुई आंखों से कैकेयी को देखकर कहा—रानी! यह पूछने की बात नहीं। अपने वचन से न फिरूंगा। तुम्हारी दोनों बातें स्वीकार हैं। तुम इतनी सुन्दर होकर हृदय से इतनी कलुषपूर्ण हो, इसका मुझे अनुमान, विचार तक न था। मैं न जानता था कि तुम मेरे दोनों वरदानों का यह प्रयोग करोगी। और तुम्हारा राज्य तुमको सुखी करे। प्यारे राम! मुझे क्षमा करना। तुम्हारा पिता जिसने तुम्हें गोद मे खिलाया, आज एक स्त्री के छल में पड़कर तुम्हारी गर्दन पर तलवार चला रहा है। किन्तु बेटा! देखना, रघुकुल के नाम पर कलंक न लगने पावे...

यह कहते-कहते राजा मूर्छित हो गये। कैकेयी दिल में प्रसन्न हो रही थी, कल से अयोध्या मे मेरे नाम का डंका बजेगा। वह सवेरे किसी दूत को कश्मीर भेजकर भरत को बुलाने का निश्चय कर रही थी। अहा! वह घड़ी कितनी शुभ होगी, जब भरत अयोध्या के राजा होंगे! राजा थोड़ी-थोड़ी देर के बाद करवट बदलते और कराहते थे। हाय राम! हाय राम! इसके अतिरिक्त उनके मुंह से कोई शब्द न निकलता था।

इस प्रकार सारी रात बीत गयी। सुबह को शहर के धनी-मानी, विद्वान, ऋषि-मुनि और दरबार के सभासद तिलक का अनुष्ठान करने के लिए उपस्थित हुए। हवन कुण्ड में आग जलाई गयी। आचार्य लोग वेद-मन्त्रों का पाठ करने लगे। भिक्षुओं का एक दल दान के रुपये लेने के लिए फाटक पर एकत्रित हो गया। लोगों की आंखें राजमहल के द्वार की ओर लगी हुई हैं। राजा साहब आज क्यों इतना विलम्ब कर रहे हैं। हर आदमी अपने पास बैठे आदमी से यही प्रश्न कर रहा है। शायद राजसी पोशाक पहन रहे हों। किन्तु नहीं, वह तो बहुत तड़के उठा करते हैं। अन्दर से कोई समाचार भी नहीं आता। रामचन्द्र स्नान-पूजा से निवृत्त होकर बैठे हैं। कौशल्या की प्रसन्नता का अनुमान कौन कर सकता है? प्रासाद में मंगल-गीत गाये जा रहे हैं। द्वार पर नौबत बज रही है, पर दशरथ का पता नहीं।

अन्त में गुरु वशिष्ठ ने साइत टलते देखकर मन्त्री सुमन्त्र को महल में भेजा कि जाकर महाराज को बुला लाओ।

सुमन्त्र अन्दर गये तो क्या देखते हैं कि महाराज भूमि पर पड़े कराह रहे हैं। और कैकेयी द्वार पर खड़ी है। सुमन्त्र ने रानी कैकेयी को प्रणाम किया और बोले— महाराज की नींद अभी नहीं टूटी? बाहर गुरु वशिष्ठ जी बैठे हुए हैं। तिलक का मुहूर्त टला जाता है। आप तनिक उन्हें जगा दें।

कैकेयी बोली—महाराज को प्रसन्नता के मारे आज रात भर नींद नहीं आयी। इस समय तनिक आंख लग गयी है। अभी जगा दूंगी तो उनका सिर भारी हो जायेगा। तुम तनिक जाकर रामचन्द्र को अन्दर भेज दो। महाराज उनसे कुछ कहना चाहते हैं।

सुमन्त्र ने यह दृश्य देखकर ताड़ लिया कि अवश्य कोई षड्यंत्र उठ खड़ा हुआ

है। जाकर रामचन्द्र जी से यह सन्देश कहा। रामचन्द्र जी तुरन्त अन्दर आकर राजा दशरथ के सामने खड़े हो गये और प्रणाम करके बोले—पिताजी, मैं उपस्थित हूं, मुझे क्यों स्मरण किया है?

दशरथ ने एक बार विवश निगाहों से रामचन्द्र को देखा और ठंडी सांस भर कर सिर झुका लिया। उनकी आंखों से आंसू जारी हो गये। रामचन्द्र को सन्देह हुआ कि सम्भवतः आज महाराज मुझसे अप्रसन्न हैं। बोले—माताजी! पिताजी ने मेरी बातों का कुछ भी उत्तर न दिया, शायद वह मुझसे नाराज हैं।

कैकेयी बोली—नहीं बेटा, वह तुमसे नाराज नहीं हैं। तुमसे वह इतना प्रेम करते हैं, तुमसे क्यों नाराज होने लगे। वह तुमसे कुछ कहना चाहते है। किन्तु इस भय से कि शायद तुम्हें बुरा मालूम हो, या तुम उनकी आज्ञा न मानो, कहते हुए झिझकते हैं। इसलिए अब मुझी को कहना पड़ेगा। बात यह है, महाराज ने मुझे दो वचन दिये थे। आज वह उन वचनों को पूरा करना चाहते हैं। यदि तुम उन्हें पूरा करने को तैयार हो, तो मैं कहूं।

राम ने निडर भाव से कहा—माताजी, मेरे लिए पिता की आज्ञा मानना कर्तव्य है। ससार में ऐसा कोई बल नहीं जो मुझे यह कर्तव्य-पालन करने से रोक सके। आप तनिक भी विलम्ब न करें। मैं सर-आंखों पर उनकी आज्ञा का पालन करूंगा। मेरे लिए इससे अधिक और क्या सौभाग्य की बात होगी।

कैकेयी—हां, सुपुत्र बेटों का धर्म तो यही है। महाराज ने अब तुम्हारी जगह भरत का तिलक करने का निर्णय किया है और तुम्हें चौदह बरस के लिए वनवास दिया है। महाराज ये बातें अपने मुंह से न कह सकेंगे, मगर वह जो कुछ चाहते हैं, वह मैने तुमसे कह दिया। अब मानना तुम्हारे अधिकार में है। यह तुमने न माना, तो दुनिया मे राजा पर यह अभियोग लगेगा कि उन्होंने अपने वचन को पूरा न किया और तुम्हारे सिर यह कि पिता की आज्ञा न मानी।

रामचन्द्र यह आज्ञा सुनकर थोड़ी देर के लिए सहम उठे। क्या समझते थे क्या हुआ। सारी परिस्थिति उनकी समझ मे आ गयी। यदि वह चाहते तो इस आज्ञा की चिन्ता न करते। सारी अयोध्या उनके नाम पर मरती थी। किन्तु सुशील बेटे पिता की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझते हैं।

राम ने उसी समय निश्चय कर लिया कि मुझ पर चाहे जो कुछ बीते, पिता की आज्ञा मानना निश्चित है। बोले—माताजी, मेरी ओर से आप तनिक भी चिन्ता न करें। मैं आज ही अयोध्या से चला जाऊंगा। आप किसी दूत को भेजकर भरत को बुला भेजिये। मुझे उनके राजतिलक होने का लेशमात्र भी खेद नहीं है। मैं अभी माता कौशल्या से पूछकर और सीताजी को आश्वासन देकर जंगल की राह लूंगा।

यह कहकर रामचन्द्र जी ने राजा के चरणों पर सिर झुकाया, माता कैकेयी को प्रणाम किया और कमरे से बाहर निकले। राजा दशरथ के मुंह से दुःख या खेद का एक शब्द भी न निकला। वाणी उनके अधिकार में न थी। ऐसा मालूम हो रहा था, कि नसो की राह जान निकली जा रही है जी में आता था कि राम के पैर पकड़ कर रोक लू।

अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। कैकेयी के ऊपर क्रोध आ रहा था। ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि मुझे मृत्यु आ जाये, इसी समय इस जीवन का अन्त हो जाये। छाती फटी जाती थी। आह मेरा प्यारा बेटा इस तरह चला जा रहा है और मैं जबान से ढाढ़स का एक वाक्य भी नहीं निकाल सकता। कौन पिता इतना निर्दयी होगा? यह सोचते-सोचते राजा को मूर्च्छा आ गयी।

रामचन्द्र यहां से कौशल्या के पास पहुंचे। वे उस समय निर्धनों को अन्न और वस्त्र देने का प्रबन्ध कर रही थीं। राम को देखते ही बोलीं—क्या हुआ बेटा, राजा बाहर गये कि नहीं? अब तो देर हो रही है।

रामचन्द्र ने आवाज को संभालकर कहा—माताजी, मामला कुछ और हो गया। महाराज ने अब भरत को राज्य देने का निर्णय किया है और मुझे चौदह बरस के वनवास की आज्ञा दी है। मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूं, आज ही अयोध्या से चला जाऊंगा।

रानी कौशल्या को मूर्च्छा-सी आ गई। रामचन्द्र की ओर निस्तेज आंखों से देखती रह गयीं, जैसे कोई मिट्टी की मूर्ति हों।

लक्ष्मण भी वहीं खड़े थे। यह बात सुनते ही उनकी त्योरियों पर बल पड़ गये। आखों से चिनगारियां निकलने लगीं। बोले—यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं हो सकता। भरत कभी लक्ष्मण के जीते-जी अयोध्या के राजा नहीं हो सकते। आप क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय का धर्म है, अपने अधिकार के लिए युद्ध करना। सारी अयोध्या, सारा कोशल आपकी ओर है। सेना आपका संकेत पाते ही आपकी ओर हो जायेगी। भरत अकेले कर ही क्या सकते हैं। यह सब रानी कैकेयी का षड्यन्त्र है।

रामचन्द्र ने लक्ष्मण की ओर प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—भैया, कैसी बातें करते हो! रघुकुल में जन्म लेकर पिता की आज्ञा न मानूं, तो संसार को क्या मुंह दिखाऊंगा। भाग्य में जो लिखा है, वह पूरा होकर रहेगा। उसे कौन टाल सकता है?

लक्ष्मण—भाई साहब! भाग्य की आड़ वे लोग लेते हैं जिनमें पराक्रम करने का साहस नहीं होता। आप क्यों भाग्य की आड़ लें? आपकी भौहों के एक संकेत पर सारी अयोध्या में तूफान आ जायेगा। भाग्य साहस का दास है, उसका राजा नहीं! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इस धनुष और बाण के बल से भाग्य को आपके चरणों में गिरा दूं। फिर आपसे महाराज ने अपनी जिह्वा से तो कुछ कहा नहीं। क्या यह सम्भव नहीं कि रानी कैकेयी ने अपनी ओर से यह षड्यन्त्र किया हो?

रानी कौशल्या ने आंसू पोंछते हुए कहा—बेटा! मुझे इस बात की तो सच्ची खुशी है कि तुम अपने योग्यतम पिता की आज्ञा मानने के लिए अपने जीवन की बलि देने को तैयार हो, किन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मण का विचार ठीक है। कैकेयी ने अपनी ओर से यह छल रचा है।

रामचन्द्र ने आदर के साथ कहा—माता जी, पिताजी वहीं मौजूद थे। यदि रानी कैकेयी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात कही होती, तो क्या वह कुछ आपत्ति न करते? नहीं माताजी, धर्म से मुंह मोड़ने के लिए हीले ढूंढ़ना मैं धर्म के विरुद्ध हू कैकेयी ने जो कुछ कहा है पिताजी की स्वीकृति से कहा है। मैं उनकी

आज्ञा को किसी प्रकार नहीं टाल सकता। आप मुझे अब जाने की अनुमति दें। यदि जीवित रहा तो फिर आपके चरणों की धूलि लूंगा।

कौशल्या ने रामचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बोली—बेटा! आखिर मेरा भी तो तुम्हारे ऊपर कुछ अधिकार है! यदि राजा ने तुम्हें वन जाने की आज्ञा दी है, तो मैं तुम्हें इस आज्ञा को मानने से रोकती हूं। यदि तुम मेरा कहना न मानोगे, तो मैं अन्न-जल त्याग दूंगी और तुम्हारे ऊपर माता की हत्या का पाप लगेगा।

रामचन्द्र ने एक ठण्डी सांस खींचकर कहा—माताजी, मुझे कर्तव्य के सीधे रास्ते से न हटाइए, अन्यथा जहां मुझ पर धर्म को तोड़ने का पाप लगेगा, वहां आप भी इस पाप से न बच सकेंगी। मैं वन और पर्वत चाहे जहां रहूं, मेरी आत्मा सदा आपके चरणों के पास उपस्थित रहेगी। आपका प्रेम बहुत रुलाएगा, आपकी प्रेममयी मूर्ति देखने के लिए आंखें बहुत रोयेंगी, पर वनवास में यह कष्ट न होते तो भाग्य मुझे वहां ले ही क्यों जाता। कोई लाख कहे; पर मैं इस विचार को दूर नहीं कर सकता कि भाग्य ही मुझे यह खेल खिला रहा है। अन्यथा क्या कैकेयी-सी देवी मुझे वनवास देतीं!

लक्ष्मण बोले—कैकेयी को आप देवी कहें; मैं नहीं कह सकता!

रामचन्द्र ने लक्ष्मण की ओर प्रसन्नता के भाव से देखकर कहा—लक्ष्मण, मैं जानता हूं कि तुम्हें मेरे वनवास से बहुत दुःख हो रहा है; किन्तु मैं तुम्हारे मुंह से माता कैकेयी के विषय में कोई अनादर की बात नहीं सुन सकता। कैकेयी हमारी माता हैं। तुम्हें उनका सम्मान करना चाहिए। मैं इसलिए वनवास नहीं ले रहा हूं कि यह कैकेयी की इच्छा है, किन्तु इसलिए कि यदि मैं न जाऊं, तो महाराज का वचन झूठा होता है। दो-चार दिन में भरत आ जाएंगे, जैसा मुझसे प्रेम करते हो, वैसे ही उनसे प्रेम करना। अपने वचन या कर्म से यह कदापि न दिखाना कि तुम उनके अहित की इच्छा रखते हो, बार-बार मेरी चर्चा भी न करना, अन्यथा शायद भरत को बुरा लगे।

लक्ष्मण ने क्रोध से लाल होकर कहा—भैया, बार-बार भरत का नाम न लीजिए। उनके नाम ही से मेरे शरीर में आग लग जाती है। किसी प्रकार क्रोध को रोकना चाहता हूं, किन्तु अधिकार को यों मिटते देखकर हृदय वश से बाहर हो जाता है। भरत का राज्य पर कोई अधिकार नहीं। राज्य आपका है और मेरे जीते-जी कोई आपसे उसे नहीं छीन सकता। क्षत्रिय अपने अधिकार के लिए लड़कर मर जाता है। मैं रक्त की नदी बहा दूंगा।

लक्ष्मण का क्रोध बढ़ते देखकर राम ने कहा—लक्ष्मण, होश में आओ। यह क्रोध और युद्ध का समय नहीं है। यह महाराज दशरथ के वचन निभाने की बात है। मैं इस कर्तव्य को किसी भी दिशा में नहीं तोड़ सकता। मेरा वन जाना निश्चित है। कर्तव्य के मुकाबले में शारीरिक सुख का कोई मूल्य नहीं।

लक्ष्मण को जब ज्ञात हो गया कि रामचन्द्र ने जो निश्चित किया है उससे टल नहीं सकते तो बोले—अगर आपका यही निर्णय है तो मुझे भी साथ लेते चलिए। आपके बिना मैं यहां एक दिन भी नहीं रह सकता। जब आप वन में घूमेंगे तो मैं इस महल में क्योंकर रह सकूंगा आपके बिना यह राज्य मुझे श्मशान-सा लगेगा जब से मैंने होश

(13920) (पुस्तकालय)



सभाला, कभी आपके चरणों से विलग नहीं हुआ। अब भी उनसे लिपटा रहूंगा।

रामचन्द्र ने लक्ष्मण को प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखा। छोटे भाई को मुझसे कितना प्रेम है! मेरे लिए जीवन के सारे सुख और आनन्द पर लात मारने के लिए तैयार है। बोले—नहीं लक्ष्मण, इस विचार को त्याग दो। भला सोचो तो, जब तुम भी मेरे साथ चले जाओगे, तो माता सुमित्रा और कौशल्या किसका मुंह देखकर रहेंगी? कौन उनके दु:ख के बोझ को हल्का करेगा? भरत के राजा होने पर रानी कैकेयी सफेद और काले की मालिक होंगी। सम्भव है वह हमारी माताओं को किसी प्रकार का कष्ट दें। उस समय कौन उनकी सहायता करेगा? नहीं, तुम्हारा मेरे साथ चलना उचित नहीं।

लक्ष्मण—नहीं भाईसाहब! मैं आपके बिना किसी प्रकार नहीं रह सकता। भरत की ओर से इस प्रकार का भय नहीं हो सकता। वह इतना डरपोक और नीच नहीं हो सकता। रघु के वंश में ऐसा मनुष्य पैदा ही नहीं हो सकता। आपका साथ मैं किसी तरह नहीं छोड़ सकता।

रामचन्द्र ने बहुत समझाया, किन्तु जब लक्ष्मण किसी तरह न माने तो उन्होंने कहा—अच्छा, यदि तुम नहीं मानते तो मैं तुम्हारे साथ अत्याचार नहीं कर सकता। किन्तु पहले जाकर सुमित्रा माता से पूछ आओ।

लक्ष्मण ने सुमित्रा से वन जाने की अनुमति मागी तो उन्होंने उसे हृदय से लगाकर कहा—शौक से वन जाओ बेटा! मैं तुम्हें खुशी से आज्ञा देती हूं। दु:ख में भाई ही भाई के काम आता है। राम से तुम्हे जितना प्रेम है, उसकी मांग यही है कि तुम इस कठिन समय में उनका साथ दो। मैं सदा तुम्हें आशीर्वाद देती रहूंगी।

इसी समय में सीताजी को भी रामचन्द्र के वनवास का समाचार मिला। वह अच्छे-अच्छे आभूषणों से सज्जित होकर राजतिलक के लिए तैयार थीं। एकाएक यह दु:खद समाचार मिला और मालूम हुआ कि राम अकेले जाना चाहते है, तो दौड़ी हुई आकर उनके चरणों पर गिर पड़ीं और बोलीं—स्वामी, आप वन जाते हैं तो मैं यहां अकेले कैसे रहूंगी। मुझे भी साथ चलने की अनुमति दीजिए। आपके बिना मुझे यह महल फाड़ खायेगा, फूलों की सेज कांटों की तरह गड़ेगी। आपके साथ जंगल भी मेरे लिए बाग है, आपके बिना बाग भी जंगल है।

कौशल्या ने सीता को गले से लगाकर कहा—बेटी! तुम भी चली जाओगी, तो मैं किसका मुंह देखकर जिऊंगी। फिर तो घर ही सूना हो जायेगा। सोचती थी कि तुम्हीं को देखकर मन में संतोष करूंगी। किंतु अब तुम भी वन जाने को प्रस्तुत हो। ईश्वर! अब कौन-सा दु:ख दिखाना चाहते हो? क्यों इस अभागिन को नहीं उठा लेते?

रामचन्द्र को यह विचार भी न हुआ कि सीताजी उनके साथ चलने को तैयार होंगी। समझाते हुए बोले—सीता, इस विचार का त्याग कर दो। जंगल में बड़ी-बड़ी कठिनाइयां हैं, पग-पग पर जन्तुओं का भय, जंगल के डरावने आदमियों से वास्ता, रास्ता कांटों और कंकड़ों से भरा हुआ—भला तुम्हारा कोमल शरीर यह कठिनाइयां कैसे झेल सकेगा? पत्थर की चट्टानों पर तुम कैसे सोओगी? पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि तरह-तरह की बीमारियां पैदा हो जाती हैं तुम इन तकलीफों को कैसे बर्दाश्त कर

सकोगी ?

सीता आंखों में आंसू भरकर बोलीं—स्वामी ! जब आप मेरे साथ होंगे तो मुझे किसी बात का भय न होगा। वह खुशी सारी तकलीफों को मिटा देगी। यह कैसे हो सकता है कि आप जंगलों में तरह-तरह की कठिनाइयां झेलें और मैं राजमहल में आराम से सोऊं। स्त्री का धर्म अपने पति का साथ देना है, वह दुःख और सुख हर दशा में उसकी संगिनी रहती है। यही उसका सबसे बड़ा कर्तव्य है। यदि आप सैर और मनबहलाव के लिए जाते होते, तो मैं आपके साथ जाने के लिए अधिक आग्रह न करती। किन्तु यह जानकर कि आपको हर तरह का कष्ट होगा, मैं किसी तरह नहीं रुक सकती। मैं आपके रास्ते से कांटे चुनूंगी, आपके लिए घास और पत्तों की सेज बनाऊंगी, आप सोयेंगे, तो आपको पंखा झलूंगी। इससे बढ़कर किसी स्त्री को और क्या सुख हो सकता है ?

रामचन्द्र निरुत्तर हो गए। उसी समय तीनों आदमियों ने राजसी पोशाकें उतार दीं और भिक्षुकों का-सा सादा कपड़ा पहनकर कौशल्या से आकर बोले—माताजी ! अब हमको चलने की अनुमति दीजिए।

कौशल्या फूट-फूटकर रोने लगीं—बेटा, किस मुंह से जाने को कहूं ! मन को किसी प्रकार संतोष नहीं होता। धर्म का प्रश्न है, रोक भी नहीं सकती। जाओ ! मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। जिस तरह पीठ दिखाते हो, उसी तरह मुंह भी दिखाना। यह कहते-कहते कौशल्या रानी दुःख से मूर्च्छा खाकर गिर पड़ीं। यहां से तीनों आदमी सुमित्रा के पास गए और उनके चरणों पर सिर झुकाकर रानी कैकेयी के कोप-भवन में महाराज दशरथ से विदा होने गए। राजा मृतक शरीर के समान निष्प्राण और निःस्पंद पड़े थे। तीनों आदमियों ने बारी-बारी से उनके चरणों पर सिर झुकाया। तब राम बोले—महाराज ! मैं तो अकेला ही जाना चाहता था, किन्तु लक्ष्मण और जानकी किसी प्रकार मेरा साथ नहीं छोड़ते, इसलिए इन्हें भी लिये जाता हूं। हमें आशीर्वाद दीजिए।

यह कहकर जब तीनों आदमी वहां से चले तो राजा दशरथ ने जोर से रोकर कहा—हाय राम ! तुम कहां चले ? उन पर एक पागलपन की-सी दशा आ गयी। भले और बुरे का विचार न रहा। दौड़े कि राम को पकड़कर रोक लें, किन्तु मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। रात ही भर में उनकी दशा ऐसी खराब हो गयी थी कि मानों बरसों के रोगी हैं।

अयोध्या में यह खबर मशहूर हो गयी थी। लाखों आदमी राजभवन के दरवाजों पर एकत्रित हो गए थे। जब ये तीनों आदमी भिक्षुकों के वेश में रनिवास से निकले तो सारी प्रजा फूट-फूटकर रोने लगी। सब हाथ जोड़-जोड़कर कहते थे—महाराज ! आप न जायें। हम चलकर महारानी कैकेयी के चरणों पर सिर झुकायेंगे, महाराज से प्रार्थना करेंगे। आप न जायें। हाय ! अब कौन हमारे साथ हमदर्दी करेगा, हम किससे अपना दुःख कहेंगे, कौन हमारी सुनेगा, हम तो कहीं के न रहे।

रामचन्द्र ने सबको समझाकर कहा—दुःख मे धैर्य के सिवा और कोई चारा नहीं। यही आपसे मेरी विनती है। मैं सदा आप लोगों को याद करता रहूंगा।

राजा ने सुमन्त्र को पहले ही से बुलाकर कह दिया था कि जिस प्रकार हो सके, राम, सीता और लक्ष्मण को वापस लाना।

सुमन्त्र रथ तैयार किये खड़ा था। रामचन्द्र ने पहले सीताजी को रथ पर बैठाया, फिर दोनों भाई बैठे और सुमन्त्र को रथ चलाने का आदेश दिया। हजारों आदमी रथ के पीछे दौड़े और बहुत समझाने पर भी रथ का पीछा न छोड़ा। आखिर शाम को जब लोग तमसा नदी के किनारे पहुंचे, तो राम ने उन्हें दिलासा देकर विदा किया।

इधर अयोध्या में कुहराम मचा हुआ था। मालूम होता था, सारा शहर उजाड़ हो गया है। जहां कल सारा शहर दीपकों से जगमगा रहा था, वहां आज अंधेरा छाया हुआ था। सुबह जहां मंगलगीत हो रहे थे, वहा इस समय हर घर मे रोने की आवाजें आ ती थी। दुकानें बन्द थी। जहां दो आदमी मिल जाते, यही चर्चा होने लगती। बेटा हो तो ऐसा हो! पिता की आज्ञा पाते ही राज-पाट पर लात मार दी। संसार में ऐसा कौन होगा। बड़े-बड़े राजा एक बालिश्त जमीन के लिए लड़ते-मरते हैं। भाई भी हो तो ऐसा हो। सबसे अधिक प्रशंसा सीताजी की हो रही थी। पुरुषों के लिए जंगल की कठिनाइयां सहना कोई असाधारण बात नहीं, स्त्री के लिए असाधारण बात थी। सती स्त्रियां ऐसी होती हैं। जिसने कभी पृथ्वी पर पाव नहीं रखा, वह जंगल में चलने के लिए तैयार हो गयी। सच है, कुसमय मे ही स्त्री और मित्र की परख होती है।

उधर रनिवास शोकगृह बना हुआ था। किसी को तन-बदन की सुध न थी।

# राजा दशरथ की मृत्यु

तमसा नदी को पार करके पहर रात जाते-जाते रामचन्द्र गंगा के किनारे जा पहुंचे। वहां भील सरदार गुह का राज्य था। रामचन्द्र के आने का समाचार पाते ही उसने आकर प्रणाम किया। रामचन्द्र ने उसकी नीच जाति की तनिक भी चिन्ता न करके उसे हृदय से लगा लिया और कुशल-क्षेम पूछा। गुह सरदार बाग-बाग हो गया—कोशल के राजकुमार ने उसे हृदय से लगा लिया! इतना बड़ा सम्मान उसके वंश मे और किसी को न मिला था। हाथ जोड़कर बोला—आप इस निर्धन की कुटिया को अपने चरणों मे पवित्र कीजिये। इस घर के भी भाग्य जागें। अब मैं आपका सेवक यहां उपस्थित हू तो आप यहा क्यों कष्ट उठायेंगे।

रामचन्द्र ने गुह का निमन्त्रण स्वीकार न किया। जिसे वनवास की आज्ञा मिली हो, वह नगर में किस प्रकार रहता। वहीं एक पेड़ के नीचे रात बितायी। दूसरे दिन प्रातःकाल रामचन्द्र ने सुमन्त्र से कहा—अब तुम लौट जाओ, हम लोग यहां से पैदल जायेंगे। माताजी से कह देना कि हम लोग कुशल से हैं घबराने की कोई बात नहीं

सुमन्त्र ने रोकर कहा—महाराज दशरथ ने तो मुझे आप लोगों को वापस लाने

का आदेश दिया था। खाली रथ देखकर उनकी क्या दशा होगी ! राम ने सुमन्त्र को समझा-बुझाकर विदा किया। सुमन्त्र रोते हुए अयोध्या लौटे। किन्तु जब वह नगर के निकट पहुंचे तो दिन बहुत शेष था। उन्हें भय हुआ कि यदि इसी समय अयोध्या चला जाऊंगा तो नगर के लोग हजारों प्रश्न पूछ-पूछकर परेशान कर देंगे। इसलिए वह नगर के बाहर रुके रहे। जब संध्या हुई तो अयोध्या में प्रविष्ट हुए।

इधर राजा दशरथ इस प्रतीक्षा में बैठे थे कि शायद सुमन्त्र राम को लौटा लाये। आशा का इतना सहारा शेष था। कैकेयी से रुष्ट होकर वह कौशल्या के महल में चले गए थे और बार-बार पूछ रहे थे कि सुमन्त्र अभी लौटा या नहीं। दीपक जल गए, अभी सुमन्त्र नहीं आया। महाराज की विकलता बढ़ने लगी। आखिर सुमन्त्र राजमहल में प्रविष्ट हुए। दशरथ उन्हें देखकर दौड़े और द्वार पर आकर पूछा—राम कहां है? क्या उन्हें वापस नहीं लाये? सुमन्त्र कुछ बोल न सके, पर उनका चेहरा देखकर महाराज की अन्तिम आशा का तार टूट गया। वह वहीं मूर्च्छा खाकर गिर पड़े और हाय राम! हाय राम! कहते हुए संसार से विदा हो गये। मरने से पहले उन्हें उस अंधे तपस्वी की याद आयी जिसके बेटे को आज से बहुत दिन पहले उन्होंने मार डाला था। वह जिस प्रकार बेटे के लिए तड़प-तड़पकर मर गया, उसी प्रकार महाराज दशरथ भी लड़कों के वियोग में तड़पकर परलोक सिधारे। उनके शाप ने आज प्रभाव दिखाया।

रनिवास में शोक छा गया। कौशल्या महाराज के मृत शरीर को गोद में लेकर विलाप करने लगीं। उसी समय कैकेयी भी आ गयी। कौशल्या उसे देखते ही क्रोध से बोलीं—अब तो तुम्हारा कलेजा ठंडा हुआ! अब खुशियां मनाओ। अयोध्या के राज्य का सुख लूटो। यही चाहती थीं न? लो, कामनाएं फलीभूत हुईं। अब कोई तुम्हारे राज्य में हस्तक्षेप करने वाला नहीं रहा। मैं भी कुछ घड़ियों की मेहमान हूं; लड़का और बहू पहले ही चले गये। अब स्वामी ने भी साथ छोड़ दिया। जीवन में मेरे लिए क्या रखा है। पति के साथ सती हो जाऊंगी।

कैकेयी चित्रलिखित-सी खड़ी रही। दासियों ने कौशल्या की गोद से महाराज का मृत शरीर अलग किया और कौशल्या को दूसरी जगह ले जाकर आश्वासन देने लगीं। दरबार के धनी-मानियों को ज्योंही खबर लगी, सब-के-सब घबराये हुए आये और रानियों को धैर्य बंधाने लगे। इसके उपरान्त महाराज के मृत शरीर को तेल में डुबाया गया जिसमें सड़ न जाय और भरत को बुलाने के लिए एक विश्वासी दूत प्रेषित किया गया। उनके अतिरिक्त अब क्रियाकर्म और कौन करता?

## भरत की वापसी

जिस दिन महाराज दशरथ की मृत्यु हुई उसी दिन रात को भरत ने कई डरावने स्वप्न देखे। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसे बुरे स्वप्न क्यों दिखायी दे रहे हैं। न जाने लोग

अयोध्या में कुशल से हैं या नहीं। नाना की अनुमति मांगी, पर उन्होंने दो-चार दिन और रहने के लिए आग्रह किया—आखिर जल्दी क्या है। काश्मीर की खूब सैर कर लो, तब जाना। अयोध्या में यह हृदय को हरने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य कहां मिलेंगे। विवश होकर भरत को रुकना पड़ा। इसके तीसरे दिन दूत पहुंचा। उसे भली प्रकार चेता दिया गया था कि भरत से अयोध्या की दशा का वर्णन न करना, इसलिए जब भरत ने दूत से पूछा—क्यों भाई, अयोध्या में सब कुशल है न ? तो उसने कोई खास जवाब न देकर व्यंग से कहा—आप जिनकी कुशल पूछते हैं, वे कुशल से हैं। दूत भी हृदय से भरत से असन्तुष्ट था।

भरत जी को क्या खबर कि दूत इस एक वाक्य में क्या कह गया। उन्होंने नाना और मामा से आज्ञा ली और उसी दिन शत्रुघ्न के साथ अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। रथ के घोड़े हवा से बातें करने वाले थे। तीसरे ही दिन वह अयोध्या में प्रविष्ट हुए। किन्तु यह नगर पर उदासी क्यों छायी हुई है ? नगर श्रीहीन-सा क्यों हो रहा है ? गलियों में धूल क्यों उड़ रही है ? बाजार क्यों बन्द है ? रास्ते में जो भरत को देखता था, बिना इनसे कुछ बातचीत किये, बिना कुशल-क्षेम पूछे या प्रणाम किये कतरा कर निकल जाता था। उनके आगे बढ़ आने पर लोग काना-फूसी करने लगते थे। भरत की समझ में कुछ न आता था कि भेद क्या है। कोई उनकी ओर आकृष्ट भी न होता था कि उससे कुछ पूछें। राजमहल तक पहुंचना उनके लिए कठिन हो गया। राजमहल पहुंचे तो उसकी दशा और भी हीन थी। मालूम होता था कि उसकी जान निकल गयी है, केवल मृत शरीर शेष है। खिन्नता विराज रही थी। कई दिन से दरवाजे पर झाड़ू तक न दी गयी थी। दो-चार सन्तरी के चपरासी खड़े जम्हाइयां ले रहे थे। वह भी भरत को देखकर एक कोने में दुबक गये, जैसे उनकी सूरत भी नहीं देखना चाहते।

द्वार पर पहुंचते ही भरत और शत्रुघ्न ने रथ से कूदकर अन्दर प्रवेश किया। महाराज अपने कमरे में न थे। भरत ने समझा, अवश्य कैकेयी माता के प्रासाद में होंगे। वह प्रायः कैकेयी ही के प्रासाद में रहते थे। लपके हुए माता के पास गये। महाराज का वहां भी पता न था। कैकेयी विधवाओं के-से वस्त्र पहने खड़ी थीं। भरत को देखते ही वह फूली न समायीं। आकर भरत को गले से लगा लिया और बोलीं—जीते रहो बेटा। रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

भरत ने माता की ओर आश्चर्य से देखकर कहा—जी नहीं, बड़े आराम से आया। महाराज कहां हैं ? तनिक उन्हें प्रणाम तो कर लूं ?

कैकेयी ने ठण्डी आह खींचकर कहा—बेटा, उनकी बात क्या पूछते हो। उन्हें परलोक सिधारे तो आज एक सप्ताह हो गया। क्या तुमसे अभी तक किसी ने नहीं कहा ?

भरत के सिर पर जैसे शोक का पहाड़ टूट पड़ा। सिर में चक्कर-सा आने लगा। वह खड़े न रह सके। भूमि पर बैठकर रोने लगे। जब तनिक जी संभला तो बोले—उन्हें क्या हुआ था माताजी ? क्या बीमारी थी ? हाय ! मुझ अभागे को उनके अन्तिम दर्शन भी प्राप्त न हुए

कैकेयी ने सिर झुकाकर कहा—बीमारी तो कुछ नहीं थी बेटा। राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास के शोक से उनकी मृत्यु हुई। राम पर तो वह जान देते थे।

भरत की रही-सही जान भी नहों में समा गई। सिर पीटकर बोले—भाई रामचन्द्र ने ऐसा कौन-सा पाप किया था माताजी कि उनको वनवास का दण्ड दिया गया? क्या उन्होंने किसी ब्राह्मण की हत्या की थी या किसी पर-स्त्री पर बुरी दृष्टि डाली थी? धर्म के अवतार रामचन्द्र को देश-निकाला क्यों हुआ?

कैकेयी ने सारी कथा खूब विस्तार से वर्णन की और मन्थरा को खूब सराहा। जो कुछ हुआ, उसी की सहायता से हुआ। यदि उसकी सहायता न होती तो मेरे किए कुछ न हो सकता और रामचन्द्र का राजतिलक हो जाता। फिर तुम और मैं कहीं के न रहते। दासों की भांति जीवन व्यतीत करना पड़ता। इसी ने मुझे राजा के दिए हुए दो वरदानों की याद दिलाई और मैंने दोनों वरदान पूरे कराए। पहला था रामचन्द्र का वनवास—वह पूरा हो गया। अकेले राम ही नहीं गए, लक्ष्मण और सीता भी उनके साथ गए। दूसरा वरदान शेष है। वह कल पूरा हो जाएगा। तुम्हें सिंहासन मिलेगा।

कैकेयी ने दिल में समझा था कि उसकी कार्यपटुता का वर्णन सुनकर भरत उसके बहुत कृतज्ञ होंगे, पर बात कुछ और ही हुई। भरत की त्योरियों पर बल पड़ गए और आंखें क्रोध से लाल हो गईं। कैकेयी की ओर घृणापूर्ण नेत्रों से देखकर बोले—माता! तुमने मुझे संसार में कहीं मुंह दिखाने के योग्य न रखा। तुमने जो काम मेरी भलाई के लिए किया वह मेरे नाम पर सदा के लिए काला धब्बा लगा देगा। दुनिया यही कहेगी कि इस मामले में भरत का अवश्य षड्यंत्र होगा। अब मेरी समझ में आया कि क्या अयोध्या के लोग मुझे देखकर मुंह फेर लेते थे, यहां तक कि द्वारपालों ने भी मेरी ओर ध्यान देना उचित न समझा। क्या तुमने मुझे इतना नीच समझ लिया कि मैं रामचन्द्र का अधिकार छीनकर प्रसन्नता से राज करूंगा? रघुकुल में ऐसा कभी नहीं हुआ। इस वंश का सदा से यही सिद्धान्त रहा है कि बड़ा लड़का गद्दी पर बैठे। क्या यह बात तुम्हें ज्ञात न थी? हाय! तुमने रामचन्द्र जैसे देवता तुल्य पुरुष को वनवास दिया, जिसके जूतों का बन्धन खोलने योग्य भी मैं नहीं। माता, मुझे तुम्हारा आदर करना चाहिए, किन्तु जब तुम्हारे कार्यों को देखता हूं तो अपने-आप कड़े शब्द मुंह से निकल आते हैं। तुमने इस वंश का मटियामेट कर दिया। हरिश्चन्द्र और मांधाता के वंश की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। तुम्हीं ने मेरे सत्यवादी पिता की जान ली। तुम हत्यारिनी हो। यह राजपाट तुम्हें शुभ हो। भरत इसकी ओर आंख उठाकर भी न देखेगा।

यह कहते हुए भरत रानी कौशल्या के पास गये और उनके चरणों पर सिर रख दिया। कौशल्या को क्या मालूम था कि उसी समय भरत कैकेयी को कितना भला-बुरा कह आए हैं। बोलीं—तुम आ गए, बेटा! लो, तुम्हारी माता की आशाएं पूर्ण हुईं। तुम उन्हें लेकर आनन्द से राज करो, मुझे राम के पास पहुंचा दो। मैं अब यहां रहकर क्या करूंगी?

ये शब्द भरत के सीने में तीर के समान लगे। आह! माता कौशल्या भी मेरी ओर से असंतुष्ट हैं! रोते हुए बोले माताजी मैं आपसे सच कहता हूं कि यहां जो कुछ

हुआ है उसका मुझे लेशमात्र भी ज्ञान न था। माता कैकेयी ने जो कुछ किया, उसका फल उनके आगे आएगा। मैं उन्हें क्या कहूं। किन्तु मैं इसका विश्वास दिलाता हूं कि मैं राज्य न करूंगा। राज्य रामचन्द्र का है और वही इसके स्वामी हैं। मैं उनका सेवक हूं। क्रिया-क्रम से निवृत होते ही जाकर रामचन्द्र को मना लाऊंगा। मुझे आशा है कि वे मेरी विनती मान जाएंगे। मैंने पूर्वजन्म में न जाने ऐसे कौन-से पाप किए थे कि यह कलंक मेरे माथे पर लगा। मुझसे अधिक भाग्यहीन संसार में और कौन होगा जिसके कारण पिताजी की मृत्यु हुई, रामचन्द्र वन गए और सारे देश मे जग-हंसाई हुई।

देवी कौशल्या के हृदय से सारा मालिन्य दूर हो गया। उन्होंने भरत को हृदय से लगा लिया और रोने लगीं।

मन्थरा उस समय किसी काम से बाहर गई हुई थी उसे ज्योंही ज्ञात हुआ कि भरत आए हैं, उसने सिर से पांव तक गहने पहने, एक रेशमी साड़ी धारण की और छम-छम करती, कूबड़ हिलाती अपनी आदर्श सेवाओं का पुरस्कार लेने के लिए आकर भरत के सामने खड़ी हो गई। भरत ने तो उसे देखकर मुंह फेर लिया, किन्तु शत्रुघ्न अपने क्रोध को रोक न सके। उन्होंने लपककर मन्थरा के बाल पकड़ लिये और कई लात और घूसे जमाए। मन्थरा हाय-हाय करने लगी और महारानी कैकेयी की दुहाई देने लगी। अन्त मे भरत ने उसे शत्रुघ्न के हाथ से छुड़ाया और वहां से भगा दिया।

जब भरत महाराजा दशरथ के क्रिया-कर्म से निवृत्त हुए तो गुरु वशिष्ठ, नगर के धनी-मानी, दरबार के सभासदों ने उन्हें गद्दी पर बिठाना चाहा, भरत किसी तरह तैयार न हुए। बोले—आप लोग ऐसा काम करने के लिए मुझे विवश न करें जो मेरा लोक और परलोक दोनों मिट्टी में मिला देगा। भाई रामचन्द्र के रहते यह असम्भव है कि मैं राज्य का विचार भी मन में लाऊं। मैं उन्हें जाकर मना लाऊंगा और यदि वह न आयेंगे तो मैं भी घर से निकल जाऊंगा। यही मेरा अन्तिम निर्णय है।

लोगो के दिल भरत की ओर से साफ हो गए। सब उनकी नेक-नीयती की प्रशसा करने लगे। यह बड़े बाप का सपूत बेटा है। भाई हो तो ऐसा हो। क्यों न हो, ऐसे नेक और धर्मात्मा लोग न होते तो संसार कैसे स्थिर रहता!

दूसरे दिन भरत अपनी तीनों माताओं को लेकर राम को मनाने चले। गुरु वशिष्ठ और नगर के विशिष्ट जन उनके साथ-साथ चले।

## चित्रकूट

आश्रम में विश्राम किया और रात को उनके उपदेश सुनकर प्रात: उनके परामर्श से चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। कुछ दूर चलने के बाद यमुना नदी मिली। उस समय वह भाग बहुत आबाद न था। यमुना को पार करने के लिए कोई नाव न मिल सकी। अब क्या हो ? अन्त में लक्ष्मण को एक उपाय सूझा। उन्होंने इधर-उधर से लकड़ी की टहनियां जमा कीं और उन्हें छाल के रेशों से बांधकर एक तख्ता-सा बना लिया। इस तख्ते पर हरी-हरी पत्तियां बिछा दीं और उसे पानी में डाल दिया। इस पर तीनों आदमी बैठ गए। लक्ष्मण ने इस तख्ते को खेकर दम-के-दम में यमुना नदी पार कर ली।

नदी के उस पार पहाड़ी जमीन थी। पहाड़ियां हरी-हरी झाड़ियों से लहरा रही थीं। पेड़ों पर मोर, तोते इत्यादि पक्षी चहक रहे थे। हिरनों के झुण्ड घाटियों में चरते दिखाई थे। हवा इतनी स्वच्छ और स्वास्थ्य-कारक थी कि आत्मा को ताजगी मिल रही थी। इस हृदयग्राही दृश्य का आनन्द उठाते तीनों आदमी चित्रकूट जा पहुंचे। वाल्मीकि ऋषि का आश्रम वहीं एक पहाड़ी पर था। तीनों आदमियों ने पहले उनका दर्शन उचित समझकर उनके आश्रम की ओर प्रस्थान किया। वाल्मीकि ने उन्हें देखा तो बड़े तपाक से गले लगा लिया और रास्ते का कुशल-समाचार पूछा। उन्होंने योग के बल से उनके चित्रकूट आने का कारण जान लिया। बतलाने की आवश्यकता न पड़ी। बोले—आप लोग खूब आए। आपको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप लोगों पर जो कुछ बीता है, वह मुझे मालूम है। जीवन सुख और दुःख के मेल का ही नाम है। मनुष्य को चाहिए कि धैर्य से काम ले।

राम ने कहा—आशीर्वाद दीजिए कि हमारे वनवास के दिन कुशल से बीतें।

वाल्मीकि ने उत्तर दिया—राजकुमार, मेरे एक-एक रोम से तुम्हारे लिए आशीर्वाद निकल रहा है। तुमने जिस त्याग से काम लिया है, उसका उदाहरण इतिहास मे कहीं नहीं मिलता। धन्य है वह माता, जिसने तुम जैसा सपूत पैदा किया। चित्रकूट तुम्हारे लिए बहुत उत्तम स्थान है। हमारी कुटी में पर्याप्त स्थान है। हम सब आराम से रहेंगे।

रामचन्द्र को भी चित्रकूट बहुत पसन्द आया। वहीं रहने का निश्चय किया किन्तु यह उचित न समझा कि ऋषि वाल्मीकि के छोटे-से आश्रम में रहें। इनके रहने से ऋषि को अवश्य कष्ट होगा, चाहे वह सकोच के कारण मुंह से कुछ न कहें। अलग एक कुटी बनाने का विचार हुआ। लक्ष्मण को आज्ञा मिलने की देर थी। जंगल से लकड़ी काट लाए और शाम तक एक सुन्दर आरामदेह कुटी तैयार कर दी। इसमें खिड़किया भी थी, ताक भी थे, सोने के अलग-अलग कमरे भी थे। राम ने यह कुटी देखी तो बहुत प्रसन्न हुए। गृह-प्रवेश की रीति के अनुसार देवताओं की पूजा की और कुटी में रहने लगे।

# भरत और रामचन्द्र

इधर भरत अयोध्यावासियों के साथ राम को मनाने के लिए जा रहे थे। जब वह गंगा नदी के किनारे पहुंचे, तो भील सरदार गुह को उनकी सेना देखकर सन्देह हुआ कि शायद यह रामचन्द्र पर आक्रमण करने जा रहे हैं। तुरन्त अपने आदमियों को एकत्रित करने लगा। किन्तु बाद में जब भरत का विचार ज्ञात हुआ तो उनके सामने आया और अपने घर चलने का निमन्त्रण दिया। भरत ने कहा—जब रामचन्द्र ने बस्ती के बाहर पेड के नीचे रात बितायी, तो मैं बस्ती में कैसे जाऊं? बताओ, सीता और रामचन्द्र कहां सोये थे? जब गुह ने उन्हें वह जगह दिखाई, तो भरत अपने आप रो पड़े—हाय, वह जिन्हे महलों में नीद नहीं आती थी, आज भूमि पर पेड़ के नीचे सो रहे है! यह दिनों का फेर है। मुझ अभागे के कारण इन्हें यह सारे कष्ट हो रहे हैं। इन घास के कड़े टुकड़ो से कोमलांगी सीता का शरीर छिल गया होगा। रामचन्द्र को मच्छरों ने रात भर कष्ट दिया होगा। नींद न आई होगी। लक्ष्मण ने जंगली जानवरों के भय से सारी रात पहरा देकर काटी होगी। और मैं अभी तक राजसी पोशाक पहने हूं। मुझे हजार बार धिक्कार है!

यह कहकर भरत ने उसी समय राजसी पोशाक उतार फेंकी और साधुओं का-सा वेश धारण किया। फिर उसी पेड़ के नीचे, उसी घास-फूस के बिछावन पर रात-भर पडे रहे। उस दिन से चौदह साल तक भरत ने साधु-जीवन व्यतीत किया।

दूसरे दिन भरत भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। वहां पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र चित्रकूट की ओर गए हैं। रात-भर वहां ठहरकर भरत सबेरे चित्रकूट रवाना हो गए।

सन्ध्या का समय था। रामचन्द्र और सीता एक चट्टान पर बैठे हुए सूर्यास्त का दृश्य देख रहे थे और लक्ष्मण तनिक दूर धनुष और बाण लिये खड़े थे।

सीता ने पेड़ों की ओर देखकर कहा—ऐसा प्रतीत होता है, इन पेड़ों ने सुनहरी चादर ओढ़ ली है।

राम—पहाड़ियों की ऊदी रंग की ओस से लदी हुई चादर कितना सुन्दर मालूम होती है। प्रकृति सोने का सामान कर रही है।

सीता—नीचे की घाटियों ने काली चादर से मुंह ढांक लिया।

राम—और पवन को देखो, जैसे कोई नागिन लहराती हुई चली आती हो।

सीता—केतकी के फूलों से कैसी सुगन्ध आ रही है।

लक्ष्मण खड़े-खड़े एकाएक चौंककर बोले—भैया, वह सामने धूल कैसी उड़ रही है? सारा आसमान धूल से भर गया।

राम—कोई चरवाहा भेड़ों का गल्ला लिये चला जाता होगा।

लक्ष्मण—नहीं भाई साहब, कोई सेना है। घोड़े साफ दिखायी दे रहे हैं। वह लो रथ भी दिखाई देने लगे।

रामचन्द्र—शायद कोई राजकुमार आखेट के लिए निकला हो।

लक्ष्मण—सब-के-सब इधर ही चले आते हैं।

यह कहकर लक्ष्मण एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ गये, और भरत की सेना को ध्यान से देखने लगे। रामचन्द्र ने पूछा—कुछ साफ दिखाई देता है?

लक्ष्मण—जी हां, सब साफ दिखाई दे रहा है। आप धनुप और बाण लेकर तैयार हो जाएं। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि भरत सेना लेकर हमारे ऊपर आक्रमण करने चले आ रहे हैं। इन डालों के बीच से भरत के रथ की झण्डी साफ दिखाई दे रही है। भली प्रकार पहचानता हूं, भरत ही का रथ है। वही सुरंग घोड़े हैं। उन्हें अयोध्या का राज्य पाकर अभी सन्तोप नहीं हुआ। आज सारे झगड़े का अन्त ही कर दूंगा।

रामचन्द्र—नहीं लक्ष्मण, भरत पर सन्देह न करो। भरत इतना स्वार्थी, इतना संकोचहीन नहीं है। मुझे विश्वास है कि वह हमें वापस ले चलने को आ रहा है। भरत ने हमारे साथ कभी बुराई नहीं की।

लक्ष्मण—उन्हें बुराई करने का अवसर ही कब मिला, जो उन्होंने छोड़ दिया? आप अपने हृदय की तरह औरों का हृदय भी निर्मल समझते हैं। किन्तु मैं आपसे कहे देता हूं कि भरत विश्वासघात करेंगे। वह यहां इसी उद्देश्य से आ रहे हैं कि हम लोगों को मारकर अपना रास्ता सदैव के लिए साफ कर लें।

रामचन्द्र—मुझे जीते-जी भरत की ओर से ऐसा विश्वास नहीं हो सकता। यदि तुम्हें भरत का राजगद्दी पर बैठना बुरा लगता हो, तो मैं उनसे कहकर तुम्हें राज्य दिला सकता हूं। मुझे विश्वास है कि भरत मेरा कहना न टालेंगे।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। रामचन्द्र का व्यंग उन्हें बुरा मालूम हुआ। पर मुंह से कुछ बोले नहीं। उधर भरत को ज्योंही ऋषियों की कुटियां दिखाई देने लगीं, वह रथ से उतर पड़े और नंगे पांव रामचन्द्र से मिलने चले। शत्रुघ्न और सुमन्त्र भी उनके साथ थे। कई कुटियों के बाद रामचन्द्र की कुटी दिखाई दी। रामचन्द्र कुटी के सामने एक पत्थर की चट्टान पर बैठे थे। उन्हें देखते ही भरत भैया! भैया! कहते हुए बच्चों की तरह रोते दौड़े और रामचन्द्र के पैरों पर गिर पड़े। रामचन्द्र ने भरत को उठाकर छाती से लगा लिया। शत्रुघ्न ने भी आगे बढ़कर रामचन्द्र के चरणों पर सिर झुकाया। चारों भाई गले मिले। इतने में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी भी पहुंच गयीं। रामचन्द्र ने सबको प्रणाम किया। सीताजी ने भी सासों के पैरों को आंचल से छुआ। सासों ने उन्हें गले से लगाया। किन्तु किसी के मुंह से कोई शब्द न निकलता था। सबके गले भरे हुए थे और आंखों में आंसू भरे हुए थे। वनवासियों का यह साधुओं का-सा वेश देखकर सबका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। कैसी विवशता है! कौशल्या सीता को देखकर अपने आप रो पड़ीं। वह बहू, जिसे वह पान की तरह फेरा करती थीं, भिखारिनी बनी हुई खड़ी है। समझाने लगीं—बेटी, अब भी मेरा कहना मानो। यहां तुम्हें बड़े-बड़े कष्ट होंगे। इतने ही दिनों में सूरत बदल गयी है। बिलकुल पहचानी नहीं जाती। मेरे साथ लौट चलो।

सीता ने कहा—अम्मा जी अब मेरे स्वामी वन-वन फिरते रहें तो मुझे अयोध्या

ही नहीं, स्वर्ग में भी सुख नही मिलेगा। स्त्री का धर्म पुरुष के साथ रहकर उसके दुःख-सुख में भाग लेना है। पुरुष को दुःख में छोड़कर जो स्त्री सुख की इच्छा करती है, वह अपने कर्तव्य से मुह मोड़ती है। पानी के बिना नदी की जो दशा होती है, वही दशा पति के बिना स्त्री की होती है।

कौशल्या को सीता की बातों से प्रसन्नता भी हुई और दुःख भी हुआ। दुःख तो यह हुआ कि वह सुख और ऐश्वर्य में पली हुई लड़की यों विपत्ति में जीवन के दिन काट रही है। प्रसन्नता हुई कि उसके विचार इतने ऊंचे और पवित्र हैं। बोलीं—धन्य हो बेटी, इसी को स्त्री का पातिव्रत कहते हैं। यही स्त्री का धर्म है। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, और दूसरी स्त्रियों को भी तुम्हारे मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। ऐसी देवियां मनुष्य के लिए गौरव का विषय होती हैं। उन्हीं के नाम पर लोग आदर से सिर झुकाते हैं। उन्ही के यश घर-घर गाये जाते है।

चारों भाई जब गले मिल चुके, तो रामचन्द्र ने भरत से पूछा—कहो भैया, तुम काश्मीर से कब आये ? पिताजी तो कुशल से हैं ? तुम उनको छोड़कर व्यर्थ चले आये वह अकेले बहुत घबरा रहे होंगे ?

भरत की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। भराई हुई आवाज में बोले—भाई साहब, पिताजी तो अब इस संसार में नहीं हैं। जिस दिन सुमन्त्र रथ लेकर वापस हुए, उसी रात को वह परलोक सिधारे। मरते समय आप ही का नाम उनकी जिह्वा पर था।

यह दुःखपूर्ण समाचार सुनते ही रामचन्द्र पछाड़ खाकर गिर पड़े। जब तनिक चेतना आयी तो रोने लगे। रोते-रोते हिचकियां बंध गयीं। हाय ! पिताजी का अन्तिम दर्शन भी प्राप्त न हुआ ! अब रामचन्द्र को ज्ञात हुआ कि महाराज दशरथ को उनसे कितना प्रेम था। उनके वियोग में प्राण त्याग दिये। बोले—यह मेरा दुर्भाग्य है कि अन्तिम समय उनके दर्शन न कर सका। जीवन-भर इसका खेद रहेगा। अब हम उनकी सबसे बड़ी यही सेवा कर सकते हैं कि अपने कामों से उनकी आत्मा को प्रसन्न करें। महाराज अपनी प्रजा को कितना प्यार करते थे ! तुम भी प्रजा का पालन करते रहना। सेना के प्रसन्न रहने ही से राज्य का अस्तित्व बना रहता है। तुम भी सैनिकों को प्रसन्न रखना। उनका वेतन ठीक समय पर देते रहना। न्याय के विषय में किसी के साथ लेशमात्र भी पक्षपात न करना। हर एक काम में मन्त्रियों से अवश्य परामर्श लेना और उनके परामर्श पर आचरण करना। निर्धनों को धनिकों के अत्याचार से बचाना। किसानों के साथ कभी सख्ती न करना। खेती सिंचाई के लिए कुएं, नहरें, ताल बनवाना। लड़कों की शिक्षा की ओर से असावधान न होना। और राज्य के कर्मचारियों की सख्ती से निगरानी करते रहना अन्यथा ये लोग प्रजा को नष्ट कर देंगे।

भरत ने कहा—भाई साहब, मैं यह बातें क्या जानूं। मैं तो आपकी सेवा में इसीलिए उपस्थित हुआ हूं कि आपको अयोध्या ले चलूं। अब तो हमारे पिता भी आप ही है। आप हमें जो आज्ञा देंगे, हम उसे बजा लायेंगे। हमारी आपसे यही विनती है इसे स्वीकार कीजिये। जब से आप आये हैं अयोध्या में वह श्री ही न रही। चारों ओर

मृत्यु की-सी नीरवता है। लोग आपको याद करके रोया करते हैं। अब तक मैं सबको यह आश्वासन देता रहा हूं कि रामचन्द्र शीघ्र वापस आयेंगे। यदि आप न लौटेंगे, तो राज्य मे कुहराम मच जायेगा और सारा दोष और कलंक मेरे सिर पर रखा जायेगा।

रामचन्द्र ने उत्तर दिया—भैया, जिन वचनों को पूरा करने के लिए पिताजी ने अपना प्राण तक दे दिया, उसे पूरा करना मेरा धर्म है। उन्हें अपना वचन अपने प्राणो से भी अधिक प्रिय था। इस आज्ञा का पालन मै न करूं, तो संसार में कौन-सा मुंह दिखाऊंगा। तुम्हें भी उनकी आज्ञा मानकर राज करना चाहिए। मैं चौदह वर्ष व्यतीत होने के बाद ही अयोध्या में पैर रखूंगा।

भरत ने बहुत प्रार्थना-बिनती की। गुरु वशिष्ठ और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने रामचन्द्र को खूब समझाया, किन्तु वह अयोध्या चलने पर किसी प्रकार सहमत न हुए। तब भरत ने रोकर कहा—भैया, यदि आपका यही निर्णय है, तो विवश होकर हमको भी मानना ही पड़ेगा। किन्तु आप मुझे अपनी खड़ाऊं दे दीजिये। आज से यह खड़ाऊ ही राज-सिंहासन पर विराजेगी। हम सब आपके चाकर होंगे। जब तक आप लौटकर न आयेंगे। अभागा भरत भी आप ही के समान साधुओं का-सा जीवन व्यतीत करेगा। किन्तु चौदह वर्ष बीत जाने पर भी आप न आये, तो मै आग मे जल मरूंगा।

यह कहकर भरत ने रामचन्द्र की खड़ाऊं को सिर पर रखा और विदा हुए। रामचन्द्र ने कौशल्या और सुमित्रा के पैरों पर सिर रखा और उन्हे बहुत ढाढ़स देकर विदा किया। कैकेयी लज्जा से सिर झुकाये खड़ी थी। रामचन्द्र जब उसके चरणों पर झुके, तो वह फूट-फूटकर रोने लगी। रामचन्द्र की सज्जनता और निर्मल-हृदयता ने सिद्ध कर दिया कि राम पर उसका सन्देह अनुचित था।

जब सब लोग नन्दिग्राम मे पहुंचे, तो भरत ने मन्त्रियों से कहा—आप लोग अयोध्या जाएं, मैं चौदह वर्ष तक इसी प्रकार इस गांव में रहूंगा। राजा रामचन्द्र के सिंहासन पर बैठकर अपना परलोक न बिगाड़ूंगा। जब आपको मुझसे किसी सम्बन्ध मे परामर्श करने की आवश्यकता हो तो मेरे पास चले आइयेगा।

भरत की यह सज्जनता और उदारता देखकर लोग आश्चर्य में आ गये। ऐसा कौन होगा, जो मिलते हुए राज्य को यों ठुकराकर अलग हो जाए! लोगों ने बहुत चाहा कि भरत अयोध्या चलकर राज करें, किन्तु भरत ने वहां जाने से निश्चित असहमति प्रकट कर दी। एक कवि ने ठीक कहा है कि भरत-जैसा सज्जन पुत्र उत्पन्न करके कैकेयी ने अपने सारे दोषों पर धूल डाल दी।

आखिर सब रानियां शत्रुघ्न और अयोध्या के निवासी, भरत को वहीं छोड़कर अयोध्या चले आये। शत्रुघ्न मन्त्रियों की सहायता से राज-कार्य संभालते थे और भरत नन्दिग्राम मे बैठे हुए उनकी निगरानी करते रहते थे। इस प्रकार चौदह वर्ष बीत गए।

# वन-कांड

# दंडक-वन

भरत के चले आने के बाद रामचन्द्र ने भी चित्रकूट से चले जाने का निश्चय कर लिया। उन्हें विचार हुआ कि अयोध्या के निवासी वहां बराबर आते-जाते रहेंगे और उनके आने-जाने से यहां के ऋषियों को कष्ट होगा। तीनों आदमी घूमते हुए अत्रि मुनि के पास पहुंचे। अत्रि ईश्वर-प्राप्त एक वृद्ध थे। उनकी पत्नी अनुसूया भी बड़ी बुद्धिमती स्त्री थी। उन्होंने सीताजी को स्त्रियों के कर्तव्य समझाये और बड़ा सत्कार किया। तीनों आदमी यहां कई महीने रहकर दंडक-वन की ओर चले। उस वन में अच्छे-अच्छे ऋषि रहते थे। रामचन्द्र उनके दर्शन करना चाहते थे।

दंडक-वन में विराध नामक एक बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से सारा नगर उजाड़ हो गया था। उसकी सूरत बहुत डरावनी थी और डील पहाड़ का-सा था। वह रात-दिन मदिरा पीकर बेहोश पड़ा रहता था। युद्ध की कला में वह इतना दक्ष था कि साधारण अस्त्रों से उसे मारना असम्भव था। राम, लक्ष्मण और सीता इस वन में थोड़ी ही दूर गये थे कि विराध की दृष्टि उन पर पड़ी। उसे सन्देह हुआ कि यह लोग अवश्य किसी स्त्री को भगाकर लाये हैं अन्यथा दो पुरुषों के बीच में एक स्त्री क्यों होती। फिर यह दोनों आदमी साधुओं के वेश में होकर भी हाथ में धनुष और बाण लिये हुए हैं। निकट आकर बोला—तुम दोनों आदमी मुझे दुराचारी प्रतीत होते हो। तुमने यात्रियों को लूटने के लिए ही साधुओं का वेश धारण किया है। अब कुशल इसी में है कि तुम दोनों इस स्त्री को मुझे दे दो और यहां से भाग जाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूंगा।

रामचन्द्र ने कहा—हम दोनों कोशल के महाराज दशरथ के पुत्र हैं और यह हमारी पत्नी है। तुमने यदि फिर इस प्रकार धृष्टता से बात की, तो मैं तुम्हें जीवित न छोड़ूंगा।

विराध ने हंसकर कहा—तुम जैसे दो क्या सौ-पचास भी मेरे सामने आ जायं, तो मार डालूं। संभल जाओ, अब मैं वार करता हूं।

रामचन्द्र ने कई बाण चलाये; पर विराध के शरीर पर उसका कोई प्रभाव न हुआ। तब तो रामचन्द्र बहुत घबराये। शेर भी उनका बाण खाकर गिर पड़ते थे। किन्तु इस राक्षस पर उनका तनिक भी प्रभाव न हुआ। यह घटना उनकी समझ में न आयी तब दोनों भाइयों ने तलवार निकाली और विराध पर टूट पड़े। किन्तु तलवार के घावों का भी उस पर कुछ प्रभाव न हुआ उसने ऐसी [illegible] की थी कि उसका शरीर लोहे के समान कड़ा और ठोस हो गया था कुछ देर तक वह [illegible] खड़ा [illegible] के घाव

खाता रहा। तब एकाएक जोर से गरजा और दोनों भाइयों को कंधे पर लेकर भागा। सीताजी रोने लगीं। किन्तु राम और लक्ष्मण उसके कन्धों पर बैठकर भी तलवार चलाते रहे। यहां तक कि विराध की दोनों बाहें कटकर भूमि पर गिर पड़ीं। तब दोनों भाई भूमि पर कूद पड़े। और विराध भी थोड़ी देर में तड़प-तड़प कर मर गया।

विराध का वध करके तीनों आदमी आगे बढ़े। उस समय में ऋषि-गण संसार से मुंह मोड़कर वनों में तपस्या करते थे। वन के फल और कन्द-मूल उनका भोजन और पेड़ों की छाल पोशाक थी। किसी झोपड़ी में, या किसी पेड़ के नीचे वह एक मृगछाला बिछाकर पड़े रहते थे। धन और वैभव को वह लोग तिनके के समान तुच्छ समझते थे। संतोष और सरलता ही उनका सबसे बड़ा धन था। वह बड़े-बड़े राजाओं की भी चिन्ता न करते थे। किसी के सामने हाथ न फैलाते थे। शारीरिक आकांक्षाओं के चक्कर में न पडकर वे लोग अपना मन और मस्तिष्क बौद्धिक और धार्मिक बातों के सोचने में लगाते थे। उन वन में बसनेवाले और जंगली फल खानेवाले पुरुषों ने जो ग्रन्थ लिखे, उन्हें पढ़कर आज भी बड़े-बड़े विद्वानों की आंखें खुल जाती हैं। दण्डक-वन में कितने ही ऋषि रहते थे। तीनों आदमी एक-एक दो-दो महीने हर एक ऋषि की शरण मे रहते और उनसे ज्ञान की बातें सीखते थे। इस प्रकार दण्डक-वन में घूमते हुए उन्हें कई वर्ष बीत गये। आखिर वे लोग अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुंचे। यह महात्मा और सब ऋषियों से बड़े समझे जाते थे। वह केवल ऋषि ही न थे युद्ध की कला में भी दक्ष थे। कई बड़े-बड़े राक्षसो का वध कर चुके थे। रामचन्द्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कई महीने तक अपने यहां अतिथि रखा। जब रामचन्द्र यहां से चलने लगे तो अगस्त्य ऋषि ने उन्हें एक ऐसा अलौकिक तरकश दिया, जिसके तीर कभी समाप्त ही न होते थे।

रामचन्द्र ने पूछा—महाराज, आप तो इस वन से भली प्रकार परिचित होंगे। हमें कोई ऐसा स्थान बताइये, जहां हम लोग आराम से रहकर वनवास के शेष दिन पूरे कर लें।

अगस्त्य ने पंचवटी की बड़ी प्रशंसा की। यह स्थान नर्मदा नदी के किनारे स्थित था। यहां का जलवायु ऐसा अच्छा था कि न जाड़े में कड़ा जाड़ा पड़ता था, न गरमी में कड़ी गरमी। पहाड़ियां बारहों मास हरियाली से लहराती रहती थीं। तीनों आदमियों ने इस स्थान पर जाकर रहने का निश्चय किया।

## पंचवटी

कई दिन के बाद तीनों आदमी पंचवटी जा पहुंचे। उसकी जो प्रशंसा सुनी थी, उससे कहीं बढ़कर पाया। नर्मदा के दोनों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां फूलों से लदी हुई खड़ी थीं नदी के निर्मल जल मे हंस और बगुले तैरा करते थे किनारे हिरनो का समूह पानी पीने आता

था और खूब कुलेलें करता था। जंगल में मोर नाचा करते थे। वायु इतनी स्वच्छ और स्फूर्ति-दायक थी कि रोगी भी स्वस्थ हो जाता था। यह स्थान तीनों आदमियों को इतना पसन्द आया कि उन्होंने एक झोपड़ा बनाया और सुख से रहने लगे। दिन को पहाड़ियो की सैर करते, प्रकृति के हृदय-ग्राहक दृश्यों का आनन्द उठाते, चिड़ियों के गाने सुनते, और जगली फल खाकर कुटी में सो रहते इस प्रकार कई महीने बीत गये।

पंचवटी से थोड़ी ही दूर पर राक्षसों की एक बस्ती थी। उनके दो सरदार थे। एक का नाम था खर और दूसरे का दूषण। लंका के राजा रावण की एक बहन शूर्पणखा भी वहीं रहती थी। यह लोग लूट-मारकर जीवन व्यतीत करते थे।

एक दिन रामचन्द्र और सीता पेड के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे थे कि उधर से शूर्पणखा निकली। इन दोनों आदमियों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि यह कौन लोग यहा आ गये! ऐसे सुन्दर मनुष्य उसने कभी न देखे थे। वह थी तो काली-कलूटी, अत्यन्त कुरूप, किन्तु अपने को परी समझती थी। इसलिए अब तक विवाह नही किया था, क्योंकि राक्षसों से विवाह करना उसे रुचिकर न था। रामचन्द्र को देखकर फूली न समायी। बहुत दिनों के बाद उसे अपने जोड़ का एक युवक दिखायी दिया। निकट आकर बोली—तुम लोग किस देश के आदमी हो? तुम जैसे आदमी तो मैंने कभी नही देखे।

रामचन्द्र ने कहा—हम लोग अयोध्या के रहने वाले हैं। हमारे पिताजी अयोध्या के राजा थे। आजकल हमारे भाई राज्य करते हैं।

शूर्पणखा—बस, तब तो सारी बात बन गयी। मैं भी राजा की लड़की हूं। मेरा भाई रावण लका में राज्य करता है। बस हमारा-तुम्हारा अच्छा जोड़ है। मैं तुम्हारे ही जैसे पति ढूंढ़ रही थी, तुम अच्छे मिले, अब मुझसे विवाह कर लो। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझ-जैसी सुन्दरी तुमसे विवाह करना चाहती है।

रामचन्द्र ने व्यंग से जवाब दिया—अवश्य मेरा सौभाग्य है। तुम्हारी जैसी परी तो इन्द्रलोक में भी न होगी। मेरा जी तो तुमसे विवाह करने के लिए बहुत व्याकुल है। किन्तु कठिनाई यह है कि मेरा विवाह हो चुका है और यह स्त्री मेरी पत्नी है। यह तुमसे झगड़ा करेगी। हां, मेरा छोटा भाई जो वह सामने बैठा हुआ है, यहां अकेला है। उसकी पत्नी उसके साथ नही है। वह चाहे तो तुमसे विवाह कर सकता है। तुम उसके पास जाओ तुम्हारा सौन्दर्य देखते ही वह मोहित हो जायेगा। वही तुम्हारे योग्य भी है।

शूर्पणखा—इस स्त्री की तुम अधिक चिन्ता न करो। मैं इसे अभी मार डालूंगी। यह तुम्हारे योग्य नहीं है मुझ-जैसी स्त्री फिर न पाओगे। मेरी और तुम्हारी जोड़ी ईश्वर ने अपने हाथ से बनायी है।

रामचन्द्र—नहीं, तुम भूल करती हो। मैं तो तुम्हारे योग्य हूं ही नहीं। भला कहा मैं और कहां तुम। तुम्हारे योग्य तो मेरा भाई है, जो वय में मुझसे छोटा है और मुझसे अधिक वीर है।

शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गयी और बोली—मैं एक आवश्यकतावश इधर आयी थी तुम्हार भाई की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी तो वह मुझ पर हो गये और मुझसे विवाह करने की इच्छा की पर मैंने एसे पुरुष से विवाह करना पसन्द न

किया, जिसकी पत्नी मौजूद है। मेरे योग्य तो तुम हो, तनिक मेरी ओर देखो, ऐसा कोयले का-सा चमकता हुआ रंग तुमने और कहीं देखा है ? मेरी नाक बिलकुल चिलम की-सी है और होंठ कितनी सुन्दरता से नीचे लटके हुए है। तुम्हारा सौभाग्य है कि मेरा दिल तुम्हारे ऊपर आ गया। तुम मुझसे विवाह कर लो।

लक्ष्मण ने मुस्कराकर कहा—हां, इसमें तो सन्देह नहीं कि तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है और मैं हूं भी भाग्यवान कि मुझसे तुम विवाह करने को प्रस्तुत हो। पर मैं रामचन्द्र का छोटा भाई और चाकर हूं। तुम मेरी पत्नी हो जाओगी, तो तुम्हे सीता जी की सेवा करनी पड़ेगी। तुम रानी बनने योग्य हो, जाकर भाई साहब ही से कहो। वही तुमसे विवाह करेंगे।

शूर्पणखा फिर राम के पास गयी, किन्तु वहां फिर वही उत्तर मिला कि तुम्हारे योग्य लक्ष्मण हैं, उन्ही के पास जाओ। इस प्रकार उसे दोनों बातों में टालते रहे। जब उसे विश्वास हो गया कि यहां मेरी कामना पूरी न होगी तो यह मुंह बना-बनाकर गालिया बकने लगी और सीताजी से लड़ाई करने पर सन्नद्ध हो गयी। उसकी यह दुष्टता देखकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया, उन्होंने शूर्पणखा की नाक काट ली और कानों का भी सफाया कर दिया।

अब क्या था शूर्पणखा ने वह हाय-वाय मचायी कि दुनिया सिर पर उठा ली। तीनों आदमियों को गालियां देती, रोती-पीटती वह खर और दूषण के पास पहुंची और अपने अपमान और अप्रतिष्ठा की सारी कथा कह गयी। 'भैया, दोनों भाई बड़े दुष्ट हैं। मुझे देखते ही दोनों मुझ पर बुरी दृष्टि डालने लगे और मुझसे विवाह करने के लिए जोर देने लगे। कभी बड़ा भाई अपनी ओर खींचता था, कभी छोटा भाई। जब मैं इस पर सहमत न हुई तो दोनों ने मेरे नाक-कान काट लिये। तुम्हारे रहते मेरी यह दुर्गति हुई। अब मैं किसके पास शिकायत लेकर जाऊं ? जब तक उन दोनों के सिर मेरे सामने न आ जायेंगे, मेरे लिए अन्न-जल निषिद्ध है।'

खर और दूषण यह हाल सुनकर क्रोध मे पागल हो गये। उसी समय अपनी सेना को तैयार हो जाने का आदेश दिया। दम-के-दम में चौदह हजार आदमी राम और लक्ष्मण को इस खलता का दण्ड देने चले। आगे-आगे नकटी शूर्पणखा रोती चली जा रही थी।

रामचन्द्र ने जब राक्षसों की यह सेना आते देखी, तो लक्ष्मण को सीताजी रक्षा के लिए छोड़कर आप उनका सामना करने के लिए तैयार हो गये। राक्षसों ने आते ही तीरों की बौछार करनी प्रारम्भ कर दी। किन्तु रामचन्द्र के बाणों के सम्मुख उनकी क्या चलती। सब के सब एक साथ तो तीर छोड़ ही न सकते थे। पहले पंक्ति के लोग तीर छोड़ते, रामचन्द्र एक ही तीर से उनके सब तीरों को काट देते थे। जिस प्रकार राइफल के सामने तोड़ेदार बन्दूक बेकाम है, उसी प्रकार रामचन्द्र के अग्नि-बाणों के सम्मुख राक्षसो के बाण बेकाम हो गये।

एक-एक वार में सैकड़ों का सफाया होने लगा। यह देखकर राक्षसों का साहस टूट गया। सारी सेना तितर-बितर हो गयी। संध्या होते-होते वहां एक राक्षस भी न रहा केवल मत शरीर रण-क्षत्र म पड ये

खर और दूषण ने जब देखा कि चौदह हजार राक्षसो की सेना बात की बात म नष्ट हो गया तो उन्हे विश्वास हो गया कि राम और लक्ष्मण बड वीर है। उन पर विजय पाना सरल नही। अपने पूरे बल से उन पर आक्रमण करना पड़गा। यह विचार भी था कि यदि हम लोग इन दोनों आदमियों को न जीत सके तो हमारी कितनी बदनामी होगी। बड़े जोर-शोर से तैयारियां करने लगे। रात-भर में कई हजार सैनिकों की एक चुनी हुई सेना तैयार हो गयी। उनके पास मूसल, भाले, धनुप-बाण, गदा, फरसे, तलवार, इन्ह सभी प्रकार के अस्त्र थे। किन्तु सब पुराने ढग के। युद्ध की कला से भी वह अवगत न थे। बस, एक साथ दौड़ पड़ना जानते थे। सैनिको का क्रम किस प्रकार होना चाहिए इसका उन्हें लेशमात्र भी ज्ञान था। सबसे बड़ी खराबी थी कि वे सब शराबी थे। शराब पी-पीकर बहकते थे। किन्तु सच्ची वीरता उनमें नाम को भी न थी।

सवेरे रामचन्द्रजी उठे तो राक्षसों की सेना आते देखी। आज का युद्ध कल से अधिक भीषण होगा, यह उन्हें ज्ञात था। सीताजी को उन्होंने एक गुफा में छिपा दिया और दोनों आदमी पहाड़ के ऊपर चढ़कर राक्षसों पर तीर चलाने लगे। उनके तीर ऊपर से बिजली की तरह गिरते थे और एक साथ सैकड़ों को धराशायी कर देते थे। खर और दूषण अपनी सेना को ललकारते थे, बढ़ावा देते थे, किन्तु उन अचूक तीरों के सामने सेना के कलेजे दहल उठते थे। राम और लक्ष्मण पर उनके बाणों का लेशमात्र भी प्रभाव न होता था, क्योंकि दोनों भाई पहाड़ के ऊपर थे। वह इतने वेग से तीर चलाते थे कि ज्ञात होता था कि उनके हाथों में बिजली का वेग आ गया है। तीर कब तरकश से निकलता था, कब धनुष पर चढ़ता था, कब छूटता था यह किसी को दिखायी नही देता था। फिर अगस्त्य ऋषि का दिया हुआ तरकश भी तो था, जिसके तीर कभी समाप्त न होते थे। फल यह हुआ कि राक्षसों के पांव उखड़ गये। सेना में भगदड़ पड़ गयी। खर और दूषण ने बहुत चाहा कि आदमियों को रोकें पर उन्होंने एक भी न सुनी। सिर पर पांव रखकर भागे। अब केवल खर और दूषण मैदान म रह गये। यह दोनो साहसी और वीर थे। उन्होंने बड़ी देर तक राम और लक्ष्मण का सामना किया, किन्तु आखिर उनकी मौत भी आ ही गयी। दोनों मारे गये। अकेली शूर्पणखा अपने भाइयों की मृत्यु पर विलाप करने को बच रही।

# हिरण का शिकार

शूर्पणखा के दो भाई तो मारे गये, किन्तु अभी दो और शेष थे, उनमें से एक लंका देश का राजा था। उस समय में दक्षिण में लका से अधिक बलवान् और बसा हुआ कोई राज्य न था। रावण भी राक्षस था, किन्तु बड़ा विद्वान्, शास्त्रों का पण्डित; उसके धन की कोई सीमा न थी। यहां तक कि कहा जाता है लंका शहर का नगरकोट सोने का बना

हुआ था। व्यापार का बाजार गर्म था। विद्या, कला और कौशल की खूब चर्चा थी और वहां की कारीगरी अनुपम थी। किन्तु जैसा प्राय: होता है, धन और साम्राज्य ने रावण को दंभी, अत्याचारी और दुष्ट बना दिया था। विद्वान् और गुणी होने पर भी वह बुरे से बुरा काम करने से भी न हिचकता था। शूर्पणखा रोती-पीटती उसके पास पहुंची और छाती पीटने लगी।

रावण ने उसकी यह बुरी दशा देखी तो आश्चर्य से बोला—क्या है शूर्पणखा, क्या बात है? तेरी यह दशा कैसी हुई? यह तेरी नाक क्या हुई? इस प्रकार रो क्यों रही है?

शूर्पणखा ने आंसू पोंछकर कहा—भैया, मेरी हालत क्या पूछते हो! मेरी जो दुर्गति हुई है, वह सातवें शत्रु की भी न हो। पंचवटी में दो तपस्वी अयोध्या से आकर ठहरे हुई हैं। दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं। एक का नाम राम है, दूसरे का लक्ष्मण। राम की पत्नी सीता भी उनके साथ है। उन लोगों ने मेरी नाक और कान काट लिये। जब खर और दूषण इसका दण्ड देने के लिए सेना लेकर गये तो सारी सेना का वध कर दिया। एक आदमी भी जीवित न बचा। भैया! तुम्हारे जीते-जी मेरी यह दशा!

राम और लक्ष्मण का नाम सुनकर रावण के होश उड़ गये। वह भी सीता-स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था, और जिस धनुष को वह हिला भी न सका था, उसी को राम के हाथों टूटते देख चुका था। सीता का रूप भी वह देख चुका था। उसकी याद अभी तक उसको भूली न थी। मन में सोचने लगा, यदि उन भाइयों को किसी प्रकार मार सकूं, तो सीता हाथ आ जाय। किन्तु इस विचार को छिपाकर बोला—हाय! तूने यह कैसा समाचार सुनाया! मेरे दोनो वीर भाई मारे गये? एक राक्षस भी जीवित न बचा? वह दोनों लड़के आफत के परकाले मालूम होते हैं। किन्तु तू संतोष कर, दोनों को इस प्रकार मारूंगा कि वह भी समझेंगे किसी से पाला पड़ा था। वह कितने ही वीर हों, रावण का एक संकेत उनका अंत कर देने के लिए पर्याप्त है। मेरे लिए यह डूब मरने की बात है कि मेरी बहन का इतना निरादर हो, मेरे भाई मारे जायं, और मैं बैठा रहूं। आज ही उन्हें दण्ड देने की चिन्ता करता हूं।

शूर्पणखा बोली—भैया! दोनों बड़े दुष्ट है। मुझसे बलात् विवाह करना चाहते थे। किन्तु भला मैं उन्हें कब विचार में लाती थी। जब मैं उन्हें दुत्कार कर चली, तो छोटे भाई ने यह शरारत की। भैया, इसका बदला केवल यही है कि दोनों भाई मारे जाय पूरा बदला जभी होगा, जब सीताजी का भी वैसा ही अनादर और दुर्गति हो, जैसी उन्होंने मेरी की है। क्या कहूं भैया, सीता कितनी सुन्दर है! बस, यही समझ लो कि चांद का-सा मुखड़ा है। ईश्वर ने उसे तुम्हारे लिए बनाया है। राम उसके योग्य नहीं है। उससे अवश्य विवाह करना।

रावण ने बहन को सान्त्वना दी, और उसी समय मारीच नामक राक्षस को बुलाकर कहा—अब अपना कुछ कौशल दिखाओ। बहुत दिनों से बैठे-बैठे व्यर्थ का वेतन ले रहे हो। रामचन्द्र और लक्ष्मण पंचवटी में आये हुए हैं। दोनों ने शूर्पणखा की नाक काट ली है, खर और दूषण को मार डाला है और सारे राक्षसों को नष्ट कर दिया है

इन दोनों से इन कुकर्मों का बदला लेना है। बतलाओ, मेरी कुछ सहायता करोगे?

मारीच वही राक्षस था, जो विश्वामित्र का यज्ञ अपवित्र करने गया था और रामचन्द्र का एक बाण खाकर भागा था। तब से वह यहीं पड़ा था। रामचन्द्र से उसका पुराना वैमनस्य था। यह खबर सुनकर बाग-बाग हो गया। बोला—आपकी सहायता करने को तन और प्राण से प्रस्तुत हूं। अबकी उनसे विश्वासघात की लड़ाई लड़ूंगा और पुराना वैर चुकाऊंगा। ऐसा चकमा दूं कि एक बूंद रक्त भी न गिरे और दोनों भाई मारे जायें।

रावण—बस, ऐसी कोई युक्ति सोचो कि सीता मेरे हाथ लग जाये। फिर दोनो भाइयों को मारना कौन कठिन काम रह जायेगा।

मारीच—ऐसा तो न कहिये महाराज! वीरता में दोनों जोड़ नही रखते। मैं उनकी लड़कपन की वीरता देख चुका हूं। दोनों एक सेना के लिए पर्याप्त हैं। अभी उनसे युद्ध करना उचित नहीं। मामला बढ़ जायेगा और सीता को कहीं छिपा देंगे। मैं ऐसी युक्ति बता दूंगा कि सीता आपके घर आ जाये और दोनों भाइयों को खबर भी न हो। कुछ पता ही न चले कि कहां गयी। आखिर तलाश करते-करते निराश होकर बैठे रहेंगे।

रावण का मुख खिल उठा। बोला—मित्र, परामर्श तो तुम बहुत उचित देते हो। यही मैं भी चाहता हूं। यदि काम बिना लड़ाई-झगड़े के हो जाये, तो क्या कहना। आयु-पर्यन्त तुम्हारा कृतज्ञ रहूंगा। आज ही से तुम्हारी वृद्धि कर दूं और पद भी बढ़ा दूं। भला बतलाओ, तो क्या युक्ति सोची है?

मारीच—बतलाता तो हूं; किन्तु राजन् से बड़ा भारी पुरस्कार लूंगा। आप जानते ही हैं, सूरत बदलने में मैं कितना कुशल हूं। ऐसे सुन्दर हिरन का भेष बना लूं, जैसा किसी ने न देखा हो, गुलाबी रंग होगा, उस पर सुनहरे धब्बे, सारा शरीर हीरे के समान चमकता हुआ। बस, जाकर रामचन्द्र की कुटी के सामने कुलाचें भरने लगूंगा। दोनों भाई देखते ही मुझे पकड़ने दौड़ेंगे। मैं भागूंगा, दोनों मेरा पीछा करेंगे। मैं दौड़ता हुआ उन्हें दूर भगा ले जाऊंगा। आप एक साधु का भेष बना लीजियेगा। जिस समय सीता अकेली रह जायें, आप जाकर उन्हें उठा लाइयेगा। थोड़ी दूर पर आपका रथ खड़ा रहेगा। सीता को रथ पर बिठाकर घोड़ों को हवा कर दीजियेगा। राम जब आयेंगे तो सीता को न पाकर इधर-उधर तलाश करेंगे, फिर निराश होकर किसी ओर चल देंगे। बोलिये, कैसी युक्ति है कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।

रावण ने मारीच की बहुत प्रशंसा की और दोनों सीता को हर लाने की तैयारियां करने लगे।

# छल

तीसरे पहर का समय था। राम और सीता कुटी के सामने बैठे बातें कर रहे थे कि एकाएक अत्यन्त सुन्दर हिरन सामने कुलेलें करता हुआ दिखायी दिया। वह इतना सुन्दर, इतने मोहक रंग का था कि सीता उसे देखकर रीझ गयीं। ऐसा प्रतीत होता था कि इस हिरन के शरीर में हीरे जड़े हुए हैं। रामचन्द्र से बोली—देखिये, कैसा सुन्दर हिरन है!

लक्ष्मण को उस समय विचार आया कि हिरन इस रूप-रंग का नहीं होता; अवश्य कोई-न-कोई छल है। किन्तु इस भय से कि रामचन्द्र शायद उन्हें शक्की समझें, मुह से कुछ नहीं कहा। हां, दिल में मना रहे थे कि रामचन्द्र के दिल में भी यही विचार पैदा हो। रामचन्द्र ने हिरन को बड़ी उत्सुकता से देखकर कहा—हां, है तो बड़ा सुंदर। मैंने ऐसा हिरन नहीं देखा।

सीता—इसको जीवित पकड़कर मुझे दे दीजिये। मैं इसे पालूंगी और इसे अयोध्या ले जाऊंगी। लोग इसे देखकर आश्चर्य में आ जायेंगे। देखिये, कैसी कुलाचें भर रहा है।

राम—जीवित पकड़ना तो तनिक कठिन काम है।

सीता—चाहती तो यही हूं कि जीवित पकड़ा जाये, किन्तु मर भी गया, तो उसकी मृगछाला कितनी उत्तम श्रेणी की होगी!

रामचन्द्र धनुष और बाण लेकर चले, तो लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये और कुछ दूर जाकर बोले—भैया, आप व्यर्थ परेशान हो रहे हैं, यह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। हां, कहिये तो मैं शिकार कर लाऊं।

राम—इसीलिए तो मैंने तुमसे नहीं कहा। मैं जानता था कि तुम्हें क्रोध आ जायेगा, तीर चला दोगे। तुम सीता के पास बैठो; वह अकेली है। मैं अभी इसे जीवित पकड़े लाता हूं।

यह कहते हुए रामचन्द्र हिरन के पीछे दौड़े, लक्ष्मण को और कुछ कहने का अवसर न मिला। विवश होकर सीताजी के पास लौट आये। इधर हिरन कभी रामचन्द्र के सामने आ जाता, कभी पत्तों की आड़ में हो जाता, कभी इतने समीप आ जाता कि मानो अब थक गया है; फिर एकाएक छलांग मारकर दूर निकल जाता। इस प्रकार भुलावे देता हुआ वह रामचन्द्र को बहुत दूर ले गया, यहां तक कि वह थक गये, और उन्हें विश्वास हो गया कि वह हिरन जीवित हाथ न आयेगा। मारीच भागा तो जाता था, किन्तु लक्ष्मण के न आने से उसको युक्ति सफल होती न दीखती थी। जब तक सीताजी अकेली न होंगी, रावण उन्हें हर कैसे सकेगा? यह सोचकर उसने कई बार ज़ोर से चिल्लाकर कहा—हाय लक्ष्मण! हाय सीता!

रामचन्द्र का कलेजा धड़क उठा। समझ गये कि मुझे धोखा हुआ। यह बनावटी हिरन है। अवश्य किसी राक्षस ने यह भेष बनाया है। वह इसीलिए लक्ष्मण का नाम लेकर पुकार रहा है कि लक्ष्मण भी दौड़ आयें और सीता अकेली रह जायें यह विचार

आते ही उन्होंने हिरन को जीवित पकड़ने का विचार छोड़ दिया। ऐसा निशाना मारा कि पहले ही वार में हिरन गिर पड़ा। किन्तु वह निर्दयी मरने के पहले अपना काम पूरा कर चुका था। रामचन्द्र तो दौड़े हुए कुटी की ओर आ रहे थे कि कहीं लक्ष्मण सीता को छोडकर चले न आ रहे हों, उधर सीताजी ने जो 'हाय लक्ष्मण ! हाय सीता !' की पुकार सुनी, तो उनका रक्त ठण्डा हो गया। आंखों में अंधेरा छा गया। यह तो प्यारे राम की आवाज है। अवश्य शत्रु ने उन्हें घायल कर दिया है। रोकर लक्ष्मण से बोलीं—मुझे तो ऐसा भय होता है कि यह स्वामी की ही आवाज है। अवश्य उन पर कोई बड़ी विपत्ति आयी है, अन्यथा तुम्हें क्यों पुकारते ? लपककर देखो तो, क्या माजरा है ? मेरा तो कलेजा धक-धक कर रहा है। दौड़ते ही जाओ। लक्ष्मण ने भी यह आवाज सुनी और समझ गय कि किसी राक्षस ने छल किया। ऐसी दशा में सीता को अकेली छोड़कर जाना वह कब सहन कर सकते। बोले—भाई साहब की ओर से आप निश्चिन्त रहें, जिसने चौदह हजार राक्षसों का अन्त कर दिया, उसे किसका भय हो सकता है ? भैया हिरन को लिये आते ही होंगे। आपको अकेली छोड़कर मैं न जाऊंगा। भाई साहब ने इस विषय में खूब चेता दिया था। सीता ने क्रोध से कहा—मेरी तुम्हें क्यों इतनी चिन्ता सवार है ! क्या मुझे कोई शेर या भेड़िया खाये जाता है ? अवश्य स्वामी पर कोई विपत्ति आयी है। और तुम हाथ पर हाथ रखे बैठे हो। क्या यही भाई का प्रेम है, जिस पर तुम्हें इतना घमण्ड है ?

लक्ष्मण कुछ खिन्न होकर बोले—मैंने तो कभी भाई के प्रेम का घमण्ड नहीं किया। मैं हूं किस योग्य। मैं तो केवल उनकी सेवा करना चाहता हूं। उन्होंने चलते-चलते मुझे चेतावनी दी थी कि यहां से कहीं न जाना। इसलिए मुझे जाने में सोच-विचार हो रहा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि भाई साहब का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। उनके धनुष और बाण के सम्मुख किसका साहस है, जो ठहर सके ! आप व्यर्थ इतना डर रही हैं।

सीताजी ने मुंह फेरकर कहा—मैं तुम्हारा-सा हृदय कहां से लाऊं, जो उनकी आवाज सुनकर भी निश्चिन्तता से बैठी रहूं ? सच कहा है—न भाई-सा दोस्त न भाई-सा दुश्मन। मैं तुम्हें अपना सहायक और सच्चा रक्षक समझती थी। किन्तु अब ज्ञात हुआ कि तुम भी कैकेयी से सधे-बधे हो, या फिर तुम्हें यहां से जाते हुए भय हो रहा है कि कहीं किसी शत्रु से सामना न हो जाये। मैं तुम्हें न इतना कृतघ्न समझती थी और न इतना डरपोक।

यह ताना बाण के समान लक्ष्मण के हृदय में चुभ गया। उन्हें राम से सच्चा भ्रातृ-प्रेम था और सीताजी को भी वह माता के समान समझते थे। वह रामचन्द्र के एक संकेत पर जान देने को तैयार रहते थे। जहां राम का पसीना गिरे, वहां अपना रक्त बहाने में भी उन्हें खेद न था। उन्हें भय था कि कहीं मेरी अनुपस्थिति में सीताजी पर कोई विपत्ति आ गयी, कोई राक्षस आकर उन्हें छेड़ने लगा तो मैं रामचन्द्र को क्या मुंह दिखाऊंगा। उस समय जब रामचन्द्र पूछेंगे कि तुम मेरी आज्ञा के विरुद्ध सीता को अकेली छोडकर क्यों चल गये तो मैं क्या जवाब दूंगा किन्तु जब सीताजी ने उन्हें कृतघ्न

डरपोक और धोखेबाज बना दिया, तब उन्हें अब इसके सिवा कोई चारा न रहा कि राम की खोज में जाये। उन्होंने धनुष और बाण उठा लिया और दुःखित होकर बोले—भाभी जी! आपने इस समय जो-जो बातें कहीं, उनकी मुझे आपसे आशा न थी। ईश्वर न करे, वह दिन आये, किन्तु अवसर आयेगा, तो मैं दिखा दूंगा कि भाई के लिए भाई कैसे जान देते हैं। मैं अब भी कहता हूं कि भैया किसी खतरे में नहीं, किन्तु चूंकि आपकी आज्ञा है, उसका पालन करता हूं। इसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर है।

# सीता का हरा जाना

यह कहकर लक्ष्मण तो चल दिये। रावण ने जब देखा कि मैदान खाली है, तो उसने एक हाथ में चिमटा उठाया। दूसरे हाथ में कमण्डल लिया और 'नारायण, नारायण!' करता हुआ सीताजी की कुटी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सीताजी ने देखा कि एक जटाधारी महात्मा द्वार पर आये है, बाहर निकल आयीं और महात्मा को प्रणाम करके बोलीं—कहिये महाराज, कहां से आना हुआ!

रावण ने आशीर्वाद देकर कहा—माता, साधु-सन्तों को तीर्थयात्रा के अतिरिक्त क्या काम है। बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रहा हूं, यहां तुम्हारा आश्रम देखकर चला आया। किन्तु यह तो बतलाओ, तुम कौन हो और यहां कैसे आ पड़ी हो? तुम्हारी जैसी सुन्दरी किसी महाराजा के रनिवास में रहने योग्य है। तुम इस जंगल में कैसे आ गयी? मैंने तुम्हारा जैसा सौंदर्य कहीं नहीं देखा।

सीता ने लज्जा से सिर झुकाकर कहा—महाराज, हम लोग विपत्ति के मारे हुए हैं। मैं मिथिलापुरी के राजा जनक की पुत्री, और कोशल के महाराजा दशरथ की पुत्र-वधू हूं। किन्तु भाग्य ने ऐसा पलटा खाया है कि आज जंगलों की खाक छान रही हू। धन्य भाग्य हैं कि आपके दर्शन हुए। आज यहीं विश्राम कीजिये। आज्ञा हो तो कुछ जल-पान के लिए लाऊं।

रावण—तू बड़ी दयावान है माता! ला, जो कुछ हो, खिला दे। ईश्वर तेरा कल्याण करे।

सीताजी ने एक पत्तल में कन्दमूल और कुछ फल रखे और रावण के सामने लायी। रावण ने पत्तल ले लेने के लिए हाथ बढ़ाया, तो पत्तल के बदले सीता ही को गोद में उठाकर वह अपने रथ की ओर दौड़ा और एक क्षण में उन्हें रथ पर बिठाकर घोड़ो को हवा कर दिया। सीताजी मारे भय के मूर्छित हो गयीं। जब चेतना जागी तो देखा कि मैं रथ पर बैठी हूं और वह महात्माजी रथ को उड़ाये चले जा रहे हैं। चिल्लाकर बोली—बाबाजी तुम मुझे कहां लिये जा रहे हो? ईश्वर के लिए बतलाओ तुम साधु के भेष में कौन हो?

रावण ने हंसकर कहा—बतला ही दूं ? लंका का ऐश्वर्यशाली राजा रावण हूं। तुम्हारी यह मोहिनी सूरत देखकर पागल हो रहा हूं। अब तुम राम को भूल जाओ और उनकी जगह मुझी को पति समझो। तुम लंका के राजा के योग्य हो, भिखारी राम के योग्य नही।

सीताजी को मानो गोली लग गयी। आह ! मुझसे बड़ी भूल हुई कि लक्ष्मण को बलात् राम के पास भेज दिया। वह शब्द भी इसी राक्षस का था। हाय ! लक्ष्मण अन्त तक मुझे छोड़कर जाना अस्वीकार करता रहा। किन्तु मैंने न माना। हाय ! क्या ज्ञात था कि भाग्य यों मेरे पीछे पड़ा हुआ है। दोनो भाई कुटी में जाकर मुझे न पायेंगे, तो उनकी क्या दशा होगी ?

यह सोचते हुए सीताजी ने चाहा कि रथ पर से कूद पड़ें। किन्तु रावण भी असावधान न था। तुरन्त उनका विचार ताड़ गया। तुरन्त उनका हाथ पकड़ लिया और बोला—रथ से कूदने का विचार न करो सीता ! तनिक देर बाद हम लंका पहुंचे जाते है, वहा तुम्हें सुख और ऐश्वर्य के सामान मिलेंगे कि तुम उस वन के जीवन को भूल जाओगी। इस कुटी के बदले तुम्हें आसमान से बातें करता हुआ राजमहल मिलेगा, जिसका फर्श चादी का है और दीवारें सोने की, जहां गुलाब और कस्तूरी की सुगन्ध आठो पहर उड़ा करती है; और एक भिखारी पति के बदले वह पति मिलेगा, जिसकी उपमा आज इस पृथ्वी पर नही, जिसके धन और प्रसिद्धि का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता, जिसके द्वार पर देवता भी सिर झुकाते हैं।

सीता ने भयानक होकर कहा—बस, जबान संभाल ! कपटी राक्षस ! एक सती के साथ छल करते हुए लज्जा नहीं आती ? इस पर ऐसी डींगें मार रहा है ! अपना भला चाहता है तो रथ पर से उतार दे। अन्यथा याद रख—रामचन्द्र तेरा और तेरे सारे वश का नामोनिशान मिटा देंगे। कोई तेरे नाम को रोनेवाला भी न रह जायेगा। लंका जन-हीन हो जायेगी। तेरे ऐश्वर्यशाली प्रासादों में गीदड़ अपने मान बनायेंगे और उल्लू बसेरा लेंगे। तू अभी राम और लक्ष्मण के क्रोध को नहीं जानता। खर और दूषण तेरे ही भाई थे, जिनकी चौदह हजार सेना दोनों भाइयों ने बात-की-बात में नष्ट कर दी। शूर्पणखा भी तेरी ही बहन थी जो अपना सम्मान हथेली पर लिये फिरती है। तुझे लाज भी नही आती ! अपनी जान का दुश्मन न बन। अपने और अपने वंश पर दया कर। मुझे जाने दे।

रावण ने हंसकर कहा—उसी शूर्पणखा के निरादर और खर-दूषण के रक्त का बदला ही लेने के लिए मैं तुम्हें लिये जा रहा हूं। तुम्हें याद न होगा, मैं भी तुम्हारे स्वयंवर में सम्मिलित हुआ था; किन्तु एक छोटे-से धनुष को तोड़ना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझ लौट आया था। मैंने तुम्हें उसी समय देखा था। उसी समय से तुम्हारी प्यारी-प्यारी सूरत मेरे हृदय पर अंकित हो गयी है। मेरा सौभाग्य तुम्हें यहां लाया है। अब तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुम्हारे हित में भी यही अच्छा है कि राम को भूल जाओ और मेरे साथ सुख से जीवन का आनन्द उठाओ। मुझे तुमसे जितना प्रेम है, उसका तुम अनुमान नहीं कर सकतीं। मेरी प्यारी पत्नी बनकर तुम सारी लंका की रानी बन

जाओगी। तुम्हें किसी बात की कमी न रहेगी। सारी लंका तुम्हारी सेवा करेगी और लंका का राजा तुम्हारे चरण धो-धोकर पियेगा। इस वन में एक भिखारी के साथ रहकर क्यों अपना रूप और यौवन नष्ट कर रही हो? मेरे ऊपर न सही, अपने ऊपर दया करो।

सीताजी ने जब देखा कि इस अत्याचारी पर क्रोध का कोई प्रभाव नहीं हुआ और यह रथ को भगाये ही लिये जाता है, तो अनुनय-विनय करने लगी—तुम इतने बड़े राजा होकर भी धर्म का लेशमात्र भी विचार नहीं करते! मैंने सुना है कि तुम बड़े विद्वान् और शिवजी के भक्त हो और तुम्हारे पिता पुलस्त्य ऋषि थे। क्या तुमको मुझ पर तनिक भी दया नहीं आती? यदि यह तुम्हारा विचार है कि मैं तुम्हारा राजपाट देखकर फूल उठूंगी, तो तुम्हारा विचार सर्वथा मिथ्या है। रामचन्द्र के साथ मेरा विवाह हुआ है। चाहे सूर्य पूर्व के बदले पश्चिम से निकले, चाहे नदी अपना बहाव बदल दे, चाहे पर्वत अपने स्थान से हिल जायें, पर मैं धर्म के मार्ग से नहीं हट सकती। तुम व्यर्थ क्यों इतना बड़ा पाप अपने सिर लेते हो।

जब इस अनुनय का भी रावण पर कुछ प्रभाव न हुआ, तो सीता हाय राम! हाय राम! कहकर जोर-जोर से रोने लगीं। संयोग से उसी आस-पास के प्रदेश में जटायु नाम का एक साधु रहता था। वह रामचन्द्र के साथ प्रायः बैठता था और उन पर सच्चा विश्वास रखता था। उसने जब सीता को रथ पर राम का नाम लेते सुना, तो उसे तुरन्त सन्देह हुआ कि कोई राक्षस सीता को लिये जाता है, अस्त्र लेकर रथ के सामने आकर खड़ा हो गया और ललकारकर बोला—तू कौन है और सीताजी को कहां लिये जाता है? तुरन्त रथ रोक ले, अन्यथा वह लट्ठ मारूंगा कि भेजा निकल पड़ेगा!

रावण इस समय लड़ना तो न चाहता था, क्योंकि उसे राम और लक्ष्मण के आ जाने का भय था, किन्तु जब जटायु मार्ग में खड़ा हो गया, तो उसे विवश होकर रथ रोकना पड़ा। घोड़ों की बाग खींच ली और बोला—क्या शामत आयी है, जो मुझसे छेड़छाड़ करता है! मैं लंका का राजा रावण हूं। मेरी वीरता के समाचार तूने सुने होंगे! अपना भला चाहता है तो रास्ते से हट जा।

जटायु—तू सीता को कहां लिये जाता है?

रावण—राम ने मेरी बहन की प्रतिष्ठा नष्ट की है, उसी का यह बदला है।

जटायु—यदि अपमान का बदला लेना था, तो मर्दों की तरह सामने क्यों न आया? मालूम हुआ कि तू नीच और कपटी है। अभी सीता को रथ पर से उतार दे!

रावण बड़ा बली था। वह भला बेचारे जटायु की धमकियों को कब ध्यान में लाता था। लड़ने को प्रस्तुत हुआ। जटायु कमजोर था। किन्तु जान पर खेल गया। बड़ी देर तक रावण से लड़ता रहा। यहां तक कि उसका समस्त शरीर घावों से छलनी हो गया। तब वह बेहोश होकर गिर पड़ा और रावण ने फिर घोड़े बढ़ा दिये।

उधर लक्ष्मण कुटिया से चले तो; किन्तु दिल में पछता रहे थे कि कहीं सीता पर कोई आफत आयी तो मैं राम का मुंह दिखाने योग्य न रहूंगा ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे उनकी हिम्मत जवाब देती जाती थी एकाएक आते दिखायी दिये लक्ष्मण ने

आगे बढ़कर डरते-डरते पूछा—क्या आपने मुझे बुलाया था ?

राम ने इस बात का कोई उत्तर न देकर कहा—क्या तुम सीता को अकेली छोड़कर चले आये ? गजब किया। यह हिरन न था, मारीच राक्षस था। हमें धोखा देने के लिए उसने यह भेष बनाया, और तुम्हें धोखा देने के लिए मेरा नाम लेकर चिल्लाया था। क्या तुमने मेरी आवाज भी न पहचानी ? मैंने तो तुम्हें आज्ञा दी थी कि सीता को अकेली न छोड़ना। मारीच की युक्ति काम कर गयी। अवश्य सीता पर कोई विपत्ति आयी। तुमने बुरा किया।

लक्ष्मण ने सिर झुकाकर कहा—भाभीजी ने मुझे बलात् भेज दिया। मैं तो आता ही न था, पर जब वह ताने देने लगीं, तो क्या करता !

राम ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुमने उनके तानों पर ध्यान दिया, किन्तु मेरे आदेश का विचार न किया। मैं तो तुम्हें इतना बुद्धिहीन न समझता था। अच्छा चलो, देखें भाग्य में क्या लिखा है।

दोनों भाई लपके हुए अपनी कुटी पर आए। देखा तो सीता का कहीं पता नहीं। होश उड़ गए। विकल होकर इधर-उधर चारों तरफ दौड़-दौड़कर सीता को ढूंढ़ने लगे। उन पेड़ों से नीचे जहां प्रायः मोर नाचते थे, नदी के किनारे जहां हिरन कुलेलें करते थे, सब कहीं छान डाला, किन्तु कहीं चिह्न न मिला। लक्ष्मण तो कुटी के द्वार पर बैठकर जोर-जोर से चीखें मार-मारकर रोने लगे, किन्तु रामचन्द्र की दशा पागलों की-सी हो गयी।

सभी वृक्षों से पूछते, तुमने सीता को तो नहीं देखा ? चिड़ियों के पीछे दौड़ते और पूछते, तुमने मेरी प्यारी सीता को देखा हो, तो बता दो, गुफाओं में जाकर चिल्लाते—कहां गयी ? सीता कहां गयी, मुझ अभागे को छोड़कर कहां गयी ? हवा के झोंकों से पूछते, तुमको भी मेरी सीता की कुछ खबर नहीं ! सीता जी मुझे तीनों लोक से अधिक प्रिय थीं, जिसके साथ यह वन भी मेरे लिए उपवन बना हुआ था, यह कुटी राज-प्रासाद को भी लज्जित करती थी, वह मेरी प्यारी सीता कहां चली गयी।

इस प्रकार व्याकुलता की दशा में वह बढ़ते चले जाते थे। लक्ष्मण उनकी दशा देखकर और भी घबराए हुए थे। रामचन्द्र की दशा ऐसी थी मानो सीता के वियोग मे जीवित न रह सकेंगे। लक्ष्मण रोते थे कि कैकेयी के सिर यदि वनवास का अभियोग लगा तो मेरे सिर सत्यानाश का अभियोग आयेगा। यदि रामचन्द्र को सम्भालने की चिन्ता न होती, तो सम्भवतः वे उसी समय अपने जीवन का अन्त कर देते। एकाएक एक वृक्ष के नीचे जटायु को पड़े कराहते देखकर रामचन्द्र रुक गये, बोले—जटायु ! तुम्हारी यह क्या दशा है ? किस अन्याचारी ने तुम्हारी यह गति बना डाली ?

जटायु रामचन्द्र को देखकर बोला—आप आ गए ? बस, इतनी ही कामना थी, अन्यथा अब तक प्राण निकल गया होता। सीताजी को लंका का राक्षस राजा रावण हर ले गया है। मैंने चाहा कि उनको उसके हाथ से छीन लूं। उसी के साथ लड़ने में मेरी यह दशा हो गयी। आह वड़ी पीड़ा हो रही है अब चला

राम ने जटायु का सिर अपनी गोद म रख लिया लक्ष्मण दौड़ कि पानी लाकर

उसका मुंह तर करें, किन्तु इतने में जटायु के प्राण निकल गए। इस वन में एक सहायक था, वह भी मर गया। राम को इसके मरने का बहुत खेद हुआ। बहुत देर तक उसके निष्प्राण शरीर को गोद मे लिये रोते रहे। ईश्वर से बार-बार यही प्रार्थना करते थे कि इसे स्वर्ग में सबसे अच्छी जगह दीजिएगा, क्योंकि इस वीर ने एक दुखियारी की सहायता में प्राण दिए है, और औचित्य की सहायता के लिए रावण जैसे बली पुरुष के सम्मुख जाने से भी न हिचका। यही मित्रता का धर्म है। यही मनुष्यता का धर्म है। वीर जटायु का नाम उस समय तक जीवित रहेगा, जब तक राम का नाम जीवित रहेगा।

लक्ष्मण ने इधर-उधर से लकड़ी बटोरकर चिता तैयार की, रामचन्द्र ने मृत-शरीर उस पर रखा, और वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए उसकी दाह-क्रिया की। फिर वहां से आगे बढ़े। अब उन्हें सीता का पता मिल गया था, इस बात की व्याकुलता न थी कि सीता कहां गई। यह चिन्ता थी कि रावण से सीता को कैसे छीन लेना चाहिए। इस काम के लिए सहायको की आवश्यकता थी। बहुत बड़ी सेना तैयार करनी पड़ेगी, लका पर आक्रमण करना पड़ेगा। यह चिन्ताएं पैदा हो गयी थीं। चलते-चलते सूरज डूब गया। राम को अब किसी बात की सुधि न थी, किन्तु लक्ष्मण को यह विचार हो रहा था कि रात कहां काटी जाय। न कोई गाव दिखायी देता था, न किसी ऋषि का आश्रम। इसी चिन्ता में थे कि सामने वृक्षों के एक कुंज में एक झोपड़ी दिखायी दी। दोनों आदमी उस झोपड़ी की ओर चले। यह झोपड़ी एक भीलनी की थी जिसका नाम शबरी था। उसे जो ज्ञात हुआ कि यह दोनों भाई अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, तो मारे खुशी के फूली न समायी, बोली—धन्य मेरे भाग्य कि आप मेरी झोपड़ी तक आए। आपके चरणों से मेरी झोपड़ी पवित्र हो गयी। रात भर यही विश्राम कीजिए। यह कहकर वह जंगल में गयी और ताजे फल तोड़ लायी। कुछ जंगली बेर थे, कुछ करौंदे, कुछ शरीफे। शबरी खूब रसीले, पके हुए फल ही चुन रही थी। इस भय से कि कोई खट्टा न निकल जाय, वह प्रायः फलों को कुतरकर उनका स्वाद ले लेती। भीलनी क्या जानती थी कि जूठी चीज खाने के योग्य नहीं रहती। इस प्रकार वह एक टोकरी फलों से भर लायी और खाने के लिए अनुरोध करने लगी। इस समय दुःख के मारे उनका जी कुछ खाने को तो न चाहता था, किन्तु शबरी का सत्कार स्वीकार था। यह कितने प्रेम से जंगल से फल लायी है, इसका विचार तो करना ही पड़ेगा। जब फल खाने आरम्भ किए तो कोई-कोई कुतरे हुए दिखायी दिए, किन्तु दोनों भाइयों ने फलों को और भी प्रेम के साथ खाया, मानों वह जूठे न थे, किन्तु उनमें प्रेम का रस भरा हुआ था। दोनों भाई बैठे फल खा रहे थे और शबरी खड़ी पखा झल रही थी। उसे यह डर लगा हुआ था कि कहीं मेरे फल खट्टे या कच्चे न निकल जायं, तो ये लोग भूखे रह जायंगे। शायद मुझे घुड़कियां भी दें। राजा हैं ही, क्या ठिकाना। किन्तु जब उन लोगों ने खूब बखान-बखान कर फल खाये, तो उसे मानों स्वर्ग का ठेका मिल गया।

दोनों भाइयों ने रात वहीं व्यतीत की प्रात शबरी से विदा होकर आगे बढ़े

उधर रावण रथ को हुआ पपासर पहाड़ के निकट पहुचा तो सीताजी न

देखा कि पहाड़ पर कई बन्दरों की-सी सूरतवाले आदमी बैठे हुए हैं। सीताजी ने विचार किया कि रामचन्द्र मुझे ढूंढ़ते हुए अवश्य इधर आवेंगे। इसलिए उन्होंने अपने कई आभूषण और चादर रथ के नीचे डाल दिये कि संभवतः इन लोगों की दृष्टि इन चीजों पर पड़ जाय और वह रामचन्द्र को मेरा पता बता सके। आगे चलकर तुमको मालूम होगा कि सीताजी की इस कुशलता से रामचन्द्र को उनका पता लगाने में बड़ी सहायता मिली।

लंका पहुंचकर रावण ने सीताजी को अपने महल, बाग, खजाने, सेनायें सब दिखायीं। वह समझता था कि मेरे ऐश्वर्य और धन को देखकर सीताजी लालच मे पड जायेंगी। उसका महल कितना सुन्दर था, उपवन कितने नयनाभिराम थे, सेनायें कितनी असख्य और नये-नये अस्त्र-शस्त्रों से कितनी सजी हुई थीं, कोष कितना असीम था, उसमे कितने हीरे-जवाहर भरे हुए थे! किन्तु सीताजी पर इस सेना का भी कुछ प्रभाव न हुआ। उन्हें विश्वास था कि रामचन्द्र के बाणों के सामने यह सेनायें कदापि न ठहर सकेंगी। जब रावण ने देखा कि सीताजी ने मेरे इस ठाट-बाट की तिनके बराबर भी परवाह न की तो बोला---तुम्हें अब भी मेरे बल का अनुमान नहीं हुआ? क्या तुम अब भी समझती हो कि रामचन्द्र तुम्हें मेरे हाथों मे छुड़ा ले जायेंगे? इस विचार को मन से निकाल डालो।

सीताजी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—इस विचार को मैं हृदय से किसी प्रकार नहीं निकाल सकती। रामचन्द्र अवश्य मुझे ले जायेंगे और तुझे इस दुष्टता और नीचता का मजा भी चखायेंगे। तेरी सारी सेना, सारा धन, सारे अस्त्र-शस्त्र धरे रह जायेंगे। उनके बाण मृत्यु के बाण हैं। तू उनसे न बच सकेगा। वह आन की आन मे तेरी यह सोने की लंका राख और काली कर देंगे। तेरे वंश मे कोई दीपक जलानेवाला भी न रह जायेगा। यदि तुझे अपने जीवन से कुछ प्रेम हो, तो मुझे उनके पास पहुंचा दे और उनके चरणों पर नम्रता से गिरकर अपनी धृष्टता की क्षमा मांग ले। वह बड़े दयालु है। तुझे क्षमा कर देंगे। किन्तु यदि तू अपनी दुष्टता से बाज न आया तो तेरा सत्यानाश हो जायेगा।

रावण क्रोध से जल उठा। महल के समीप ही अशोक-वाटिका नाम का एक उपवन था, रावण ने सीताजी को उसी में ठहरा दिया और कई राक्षसी स्त्रियों को इसलिए नियुक्त किया कि वह सीता को सतायें और हर प्रकार का कष्ट पहुंचाकर इन्हें उसकी ओर आकृष्ट करने के लिए विवश करें; अवसर पाकर उसकी प्रशंसा से भी सीताजी को आकर्षित करें। यह प्रबन्ध करके वह तो चला गया, किन्तु राक्षसी स्त्रियां थोड़े ही दिनो मे सीताजी की नेकी और सज्जनता और पति का सच्चा प्रेम देखकर उनसे प्रेम करने लग गयी और उन्हें कष्ट पहुंचाने के बदले हर तरह का आराम देने लगीं। वह सीताजी को आश्वासन भी देती रहती थीं। हां, जब रावण आ जाता तो उसे दिखाने के लिए सीता पर दो-चार घुड़कियां जमा देती थीं।

# सीताजी की खोज

राम और लक्ष्मण सीता की खोज में पर्वत और वनों की खाक छानते चले जाते थे कि सामने ऋष्यमूक पहाड़ दिखायी दिया। उसकी चोटी पर सुग्रीव अपने कुछ निष्ठावान साथियों के साथ रहा करता था। यह मनुष्य किष्किन्धा नगर के राजा बालि का छोटा भाई था। बालि ने एक बात पर असन्तुष्ट होकर उसे राज्य से निकाल दिया था और उसकी पत्नी तारा को छीन लिया था। सुग्रीव भागकर इस पहाड़ पर चला आया था और यद्यपि वह छिपकर रहता था, फिर भी उसे यह शंका बनी रहती थी कि कहीं बालि उसका पता न लगा ले और उसे मारने के लिए किसी को भेज न दे। उसने राम और लक्ष्मण को धनुष और बाण लिये जाते देखा, तो प्राण सूख गए। विचार आया कि हो न हो बालि ने इन दोनों वीर युवकों को मुझे मारने के लिए भेजा है। अपने आज्ञाकारी मित्र हनुमान से बोला—भाई, मुझे तो इन दोनों आदमियों से भय लगता है। बालि ने इन्हें मुझे मारने के लिए भेजा है। अब बताओ, कहां जाकर छिपूं?

हनुमान सुग्रीव के सच्चे हितैषी थे। इस निर्धनता में और सब साथियों ने सुग्रीव से मुंह मोड़ लिया था। उसकी बात भी न पूछते थे, किन्तु हनुमान बड़े बुद्धिमान थे और जानते थे कि सच्चा मित्र वही है, जो संकट में साथ दे। अच्छे दिनों में तो शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। उन्होंने सुग्रीव को समझाया—आप इतना डरते क्यों हैं। मुझे उन दोनों आदमियों के चेहरे से मालूम होता है कि यह बहुत सज्जन और दयालु हैं। मैं अभी उनके पास जाकर उनका हाल-चाल पूछता हूं। यह कहकर हनुमान ने एक ब्राह्मण का भेष बनाया, माथे पर तिलक लगाया, जनेऊ पहना, पोथी बगल में दबायी और लाठी टेकते हुए रामचन्द्र के पास जाकर बोले—आप लोग यहां कहां से आ रहे हैं? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोग परदेशी हैं और सम्भवतः आपका कोई साथी खो गया है।

रामचन्द्र ने कहा—हां, देवताजी! आपका विचार ठीक है। हम लोग परदेशी हैं। दुर्भाग्य के मारे अयोध्या का राज्य छोड़कर यहां वनों में भटक रहे हैं। उस पर नयी विपत्ति यह आ पड़ी कि कोई मेरी पत्नी सीता को उठा ले गया। उसकी खोज में इधर आ निकले। देखें, अभी कहां-कहां ठोकरें खानी पड़ती हैं।

हनुमान ने सहानुभूतिपूर्ण भाव से कहा—महाराज, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। आप अयोध्या के राजकुमार हैं, तो हम लोग आपके सेवक हैं। मेरे साथ पहाड़ पर चलिये यहां राजा सुग्रीव रहते हैं उन्हें बालि ने से निकाल दिया है।

बड़े ही नेक और सज्जन पुरुष हैं, यदि उनसे आपसे मित्रता हो गयी, तो फिर बड़ी ही सरलता से आपका काम निकल जायेगा। वह चारों तरफ अपने आदमी भेजकर पता लगायेंगे; और ज्यों ही पता मिला, अपनी विशाल सेना लेकर महारानीजी को छुड़ा लायेंगे। उन्हें आप अपना सेवक समझिये।

राम ने लक्ष्मण से कहा—मुझे तो यह आदमी हृदय से निष्कपट और सज्जन मालूम होता है। इसके साथ जाने मे कोई हर्ज नही मालूम होता। कौन जाने, सुग्रीव ही से हमारा काम निकले। चलो, तनिक सुग्रीव से भी मिल लें।

दोनों भाई हनुमान के साथ पहाड़ पर पहुंचे। सुग्रीव ने दौड़कर उनकी अभ्यर्थना की और लाकर अपने बराबर सिंहासन पर बैठाया।

हनुमान ने कहा—आज बड़ा शुभ दिन है कि अयोध्या के धर्मात्मा राजा राम किष्किन्धापुरी के राजा सुग्रीव के अतिथि हुए हैं। आज दोनों मिलकर इतने बलवान् हो जायेंगे कि कोई सामना न कर सकेगा। आपकी दशा एक-सी है और आप दोनों को एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। राजा सुग्रीव महारानी सीता की खोज करेंगे और महाराज रामचन्द्र बालि को मारकर सुग्रीव को राजा बनायेंगे और रानी तारा को वापस दिला देंगे। इसलिए आप दोनों अग्नि को साक्षी बनाकर प्रण कीजिए कि सदा एक-दूसरे की सहायता करते रहेंगे, चाहे उसमें कितना ही संकट हो।

आग जलायी गयी। राम और सुग्रीव उसके सामने बैठे और दोनों ने एक-दूसरे की सहायता करने का निश्चय और प्रण किया। फिर बात होने लगी। सुग्रीव ने पूछा—आपको ज्ञात है कि सीताजी को कौन उठा ले गया? यदि उसका नाम ज्ञात हो जाय, तो सम्भवतः मै सीताजी का सरलता से पता लगा सकूं।

राम ने कहा—यह तो जटायु से ज्ञात हो गया है, भाई! वह लंका के राजा रावण की दुष्टता है। उसी ने हम लोगों को छलकर सीता को हर लिया और अपने रथ पर बिठाकर ले गया।

अब सुग्रीव को उन आभूषणों की याद आयी, जो सीताजी ने रथ पर से नीचे फेंके थे। उसने उन आभूषणों को मंगवाकर रामचन्द्र के सामने रख दिया और बोला—आप इन आभूषणों को देखकर पहचानिये कि यह महारानी सीता के तो नहीं हैं? कुछ समय हुआ, एक दिन एक रथ इधर से जा रहा था। किसी स्त्री ने उस पर से यह गहने फेंक दिये थे। मुझे तो प्रतीत होता है, वह सीताजी ही थीं। रावण उन्हें लिये चला जाता था। जब कुछ वश न चला, तो उन्होंने यह आभूषण गिरा दिये कि शायद आप इधर आयें और हम लोग आपको उनका पता बता सकें।

आभूषणों को देखकर रामचन्द्र की आंखों से आंसू गिरने लगे। एक दिन वह था, कि यह गहने सीताजी के तन पर शोभा देते थे। आज यह इस प्रकार मारे-मारे फिर रहे हैं। मारे दुःख के वह इन गहनों को देख न सके, मुंह फेरकर लक्ष्मण से कहा—भैया तनिक देखो तो, यह तुम्हारी भाभी के आभूषण हैं।

लक्ष्मण ने कहा—भाई साहब, इस गले के हार और हाथों के कंगन के विषय मे तो मैं कुछ निवेदन नहीं कर सकता क्योंकि मैंने कभी भाभी के चेहरे की ओर देखने का

साहस नहीं किया। हां, पांव के बिछुए और पायजेब भाभी ही के हैं। मैं उनके चरणो को छूते समय प्रतिदिन इन चीजों को देखता रहा हूं। निस्संदेह यह चीजे देवीजी ही की है।

सुग्रीव बोला—तब तो इसमें संदेह नहीं कि दक्षिण की ओर ही सीता का पता लगेगा। आप जितने शीघ्र मुझे राज्य दिला दें, उतने ही शीघ्र मैं आदमियों को ऊपर भेजने का प्रबन्ध करूं। किन्तु यह समझ लीजिये कि बालि अत्यन्त बलवान् पुरुष है और युद्ध के कौशल भी खूब जानता है। मुझे यह संतोष कैसे होगा कि आप उस पर विजय पा सकेंगे ? वह एक बाण से तीन वृक्षों को एक ही साथ छेद डालता है।

पर्वत के नीचे सात वृक्ष एक ही पंक्ति में लगे हुए थे। रामचन्द्र ने बाण को धनुष पर लगाकर छोड़ा, तो वह सातों वृक्षों को पार करता हुआ फिर तरकश में आ गया। रामचन्द्र का यह कौशल देखकर सुग्रीव को विश्वास हो गया कि यह बालि को मार सकेंगे। दूसरे दिन उसने हथियार साजे और बड़ी वीरता से बालि के सामने जाकर बोला—ओ अत्याचारी! निकल आ! आज मेरी और तेरी अन्तिम बार मुठभेड हो जाय। तूने मुझे अकारण ही राज्य से निकाल दिया है। आज तुझे उसका मजा चखाऊंगा।

बालि ने कई बार सुग्रीव को पछाड़ दिया था। पर हर बार तारा के सिफारिश करने पर उसे छोड़ दिया था। वह ललकार सुनकर क्रोध से लाल हो गया और बोला—मालूम होता है, तेरा काल आ गया है। क्यों व्यर्थ अपनी जान का दुश्मन हुआ है ? जा, चोरों की तरह पहाड़ों पर छिपकर बैठ। तेरे रक्त से क्या हाथ रंगूं।

तारा ने बालि को अकेले में बुलाकर कहा—मैंने सुना है कि सुग्रीव ने अयोध्या के राजा रामचन्द्र से मित्रता कर ली है। वह बड़े वीर हैं तुम उसका थोड़ा-बहुत भाग देकर राजी कर लो। इस समय लड़ना उचित नहीं।

किन्तु बालि अपने बल के अभिमान में अन्धा हो रहा था। बोला—सुग्रीव एक नहीं, सौ राजाओं को अपनी सहायता के लिए बुला लाये, मैं लेशमात्र परवाह नही करता। जब मैंने रावण की कुछ हकीकत नहीं समझी, तो रामचन्द्र की क्या हस्ती है। मैंने समझा दिया है, किन्तु वह मुझे लड़ने पर विवश करेगा तो उसका दुर्भाग्य। अब की मार ही डालूंगा। सदैव के लिए झगड़े का अन्त कर दूंगा।

बालि जब बाहर आया तो देखा, सुग्रीव अभी तक खड़ा ललकार रहा है। तब उससे सहन न हो सका। अपनी गदा उठा ली और सुग्रीव पर झपटा। सुग्रीव पीछे हटता हुआ बालि को उस स्थान तक लाया, जहां रामचन्द्र धनुष और बाण लिये घात में बैठे थे। उसे आशा थी अब रामचन्द्र बाण छोड़कर बालि का अन्त कर देंगे। किन्तु जब कोई बाण न आया, और बालि उस पर वार करता ही गया, तब तो सुग्रीव जान लेकर भागा और पर्वत की एक गुफा में छिप गया। बालि ने भागे हुए शत्रु का पीछा करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझकर मूछों पर ताव देते हुए घर का रास्ता लिया।

थोडी देर के पश्चात् जब रामचन्द्र सुग्रीव के पास आये, तो वह बिगड़कर बोला—वाह साहब वाह! आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। मुझसे तो कहा कि मैं पेड़ की आड़ से बालि को मार गिराऊंगा और तीर के नाम एक तिनका भी न छोड़ा!

जब आप बालि से इतना डरते थे, तो मुझे लड़ने के लिए भेजा ही क्यों था ? मैं तो बड़े आनन्द से यहां छिपा बैठा था। मैं न जानता था कि आप वचन से इतना मुंह मोड़ने वाले हैं। भाग न आता, तो उसने आज मुझे मार ही डाला था।

राम ने लज्जित होकर कहा—सुग्रीव, मैं अपने वचन को भूला न था और न बालि से डर ही रहा था। बात यह थी कि तुम दोनों भाई सूरत-सकल में इतना मिलते-जुलते हो कि मैं दूर से पहचान ही न सका कि तुम कौन हो और कौन बालि। डरता था कि मारूं तो बालि को और तीर लग जाय तुम्हें। बस, इतनी-सी बात थी। कल तुम एक माला गले में पहनकर फिर उससे लड़ो। इस प्रकार मैं तुम्हें पहचान जाऊंगा और एक बाण में बालि का अन्त कर दूंगा।

दूसरे दिन सुग्रीव ने फिर जाकर बालि को ललकारा—कल मैंने तुम्हें बड़ा भाई समझकर छोड़ दिया था, अन्यथा चाहता तो चटनी कर डालता। मुझे आशा थी कि तू मेरे इस व्यवहार से कुछ नरम होगा और मेरे आधे राज्य के साथ मेरी पत्नी को मुझे वापस कर देगा, किन्तु तूने मेरे व्यवहार का कुछ आदर न किया। इसलिए आज मैं फिर लड़ने आया हूं। आज फैसला ही करके छोड़ूंगा।

बालि तुरन्त निकल आया। सुग्रीव के डींग मारने पर आज उसे बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय कर लिया था कि आज इसे जीवित न छोड़ूंगा। दोनों फिर उसी मैदान में आकर लड़ने लगे। बालि ने तनिक देर में सुग्रीव को दे पटका और उसकी छाती पर सवार होकर चाहता था कि उसका सिर काट ले कि एकाएक किसी ओर से एक ऐसा तीर आकर उसके सीने में लगा कि तुरन्त नीचे गिर पड़ा। सीने से रुधिर की धारा बहने लगी। उसके समझ में न आया कि यह तीर किसने मारा ! उसके राज्य में तो कोई ऐसा पुरुष न था, जिसके तीर में इतना बल होता।

वह इसी असमंजस में पड़ा चिल्ला रहा था कि राम और लक्ष्मण धनुष और बाण लिये सामने आ खड़े हुए। बालि समझ गया कि रामचन्द्र ने ही उसे तीर मारा है। बोला—क्यों महाराज ! मैंने तो सुना था कि तुम बड़े धर्मात्मा और वीर हो। क्या तुम्हारे देश में इसी को वीरता कहते हैं कि किसी आदमी पर छिपकर वार किया जाय ! मैंने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था !

रामचन्द्र ने उत्तर दिया—मैंने तुम्हें इसलिए नहीं मारा कि तुम मेरे शत्रु हो, किन्तु इसलिए कि तुमने अपने वंश पर अत्याचार किया है और सुग्रीव की पत्नी को अपने घर में रख लिया। ऐसे आदमी का बध करना पाप नहीं है। तुम्हें अपने सगे भाई के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए था। तुम समझते हो कि राजा स्वतन्त्र है, वह जो चाहे, कर सकता है। यह तुम्हारी भूल है। राजा उसी समय तक स्वतंत्र है, जब तक वह सज्जनता और न्याय के मार्ग पर चलता है। जब वह नेकी के रास्ते से हट जाय, तो प्रत्येक मनुष्य को, जो पर्याप्त बल रखता हो, उसे दण्ड देने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त सुग्रीव मेरा मित्र है, और मित्र का शत्रु मेरा शत्रु है। मेरा कर्तव्य था कि मैं अपने मित्र की सहायता करता।

बालि को घातक घाव लगा था। जब उसे विश्वास हो गया कि अब मैं [illegible] नहीं

का और मेहमान हूं तो उसने अपने पुत्र अंगद को बुलाकर सिपुर्द किया और बोला—सुग्रीव ! अब मैं इस संसार से विदा हो रहा हूं । इस अनाथ लड़के को अपना पुत्र समझना । यही तुमसे मेरी अन्तिम विनती है । मैंने जो कुछ किया, उसका फल पाया । तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं । जब दो भाई लड़ते हैं, तो विनाश के सिवाय और फल क्या हो सकता है ! बुराइयों को भूल जाओ । मेरे दुर्व्यवहारों का बदला इस अनाथ लड़के से न लेना । इसे ताने न देना । मेरी दशा से पाठ लो और सत्य के रास्ते से चलो । यह कहते-कहते बालि के प्राण निकल गये । सुग्रीव किष्किंधापुरी का राजा हुआ और अंगद राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया । तारा फिर सुग्रीव की रानी हो गयी ।

# हनुमान

बरसात का मौसम आया । नदी-नाले, झील तालाब पानी से भर गये । मैदानों में हरियाली लहलहाने लगी । पहाड़ियों पर मोरों ने शोर मचाना प्रारम्भ किया । आकाश पर काले-काले बादल मंडराने लगे । राम और लक्ष्मण ने सारी बरसात पहाड़ की गुफा में व्यतीत की । यहां तक कि बरसात गुजर गयी और जाड़ा आया । पहाड़ी नदियों की धारा धीमी पड़ गयी, कास के वृक्ष सफेद फूलों से लद गये । आकाश स्वच्छ और नीला हो गया । चांद का प्रकाश निखर गया । किन्तु सुग्रीव ने अब तक सीता को ढूंढ़ने का कोई प्रबन्ध न किया । न राम-लक्ष्मण ही की कुछ सुध ली । एक समय तक विपत्तियां झेलने के पश्चात् राज्य का सुख पाकर विलास में डूब गया । अपना वचन याद न रहा । अन्त में, रामचन्द्र ने प्रतीक्षा से तंग आकर एक दिन लक्ष्मण से कहा—देखते हो सुग्रीव की कृतघ्नता ! जब तक बालि न मरा था, तब तक तो रात-दिन खुशामद किया करता था और जब राज्य मिल गया और किसी शत्रु का भय न रहा, तो हमारी ओर से बिलकुल निश्चिन्त हो गया । तुम तनिक जाकर उसे एक बार याद तो दिला दो । यदि मान जाय तो शुभ, अन्यथा, जिस बाण से बालि को मारा, उसी बाण से सुग्रीव का अन्त कर दूंगा ।

लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा नगरी में प्रविष्ट हुए और सुग्रीव के पास जाकर कहा—क्यों साहब ! सज्जनता और भलमंसी के यही अर्थ है कि जब तक अपना स्वार्थ था, तब तक तो रात-दिन घेरे रहते थे और जब राज्य मिला तो सारे वायदे भूल बैठे ? कुशल चाहते हो तो तुरन्त अपनी सेना को सीता की खोज में रवाना करो, अन्यथा फल अच्छा न होगा । जिन हाथों ने बालि का एक क्षण में अन्त कर दिया, उन्हें तुमको मारने में क्या देर लगती है । रास्ता देखते-देखते हमारी आंखें थक गयीं, किन्तु तुम्हारी नींद न टूटी । तुम इतने शील-रहित और स्वार्थी हो ? मैं तुम्हें एक मास का समय देता हूं । यदि इस अवधि के अन्दर सीताजी का कुछ पता न चल सका तो तुम्हारी कुशल नहीं ।

सुग्रीव को मारे लज्जा के सिर उठाना कठिन हो गया। लक्ष्मण से अपनी भूलों की क्षमा मांगी और बोला—वीर लक्ष्मण ! मैं अत्यन्त लज्जित हूं कि अब तक अपना वचन न पूरा कर सका। श्री रामचन्द्र ने मुझ पर जो एहसान किया, उसे मरते दम तक न भूलूंगा। अब तक मैं राज्य की परेशानियों में फंसा हुआ था। अब दिल और जान से सीताजी की खोज करूंगा। मुझे विश्वास है कि एक महीने में मैं उनका पता लगा दूंगा।

यह कहकर वह लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर चला आया जहां राम और लक्ष्मण रहते थे। और यहीं से सीताजी की तलाश करने का प्रबन्ध करने लगा। विश्वासी और परीक्षा-युक्त आदमियों को चुन-चुनकर देश के हरेक हिस्से में भेजना शुरू किया। कोई पंजाब और कंधार की तरफ गया, कोई बंगाल की ओर, कोई हिमालय की ओर। हनुमान उन आदमियों में सबसे वीर और अनुभवी थे। उन्हे उसने दक्षिण की ओर भेजा। क्योंकि अनुमान यह था कि रावण सीता को लेकर लंका की ओर गया होगा। हनुमान की मदद के लिए अंगद, जामवंत, नील, नल इत्यादि वीरों को तैनात किया। रामचन्द्र हनुमान से बोले—मुझे आशा है कि सफलता का सेहरा तुम्हारे ही सिर रहेगा।

हनुमान ने कहा—यदि आपका यह आशीर्वाद है तो अवश्य सफल होऊंगा। आप मुझे कोई ऐसी निशानी दे दीजिए, जिसे दिखाकर मैं सीताजी को विश्वास दिला सकूं।

रामचन्द्र ने अपनी अंगूठी निकालकर हनुमान को दे दी और बोले—यदि सीता से तुम्हारी मुलाकात हो, तो उन्हें समझाकर कहना कि राम और लक्ष्मण तुम्हें बहुत शीघ्र छुड़ाने आयेंगे। जिस प्रकार इतने दिन काटे हैं, उसी प्रकार थोड़े दिन और सब्र करें। उनको खूब ढाढ़स देना कि शोक न करें। यह समय का उलट-फेर है। न इस तरह रहा, न उस तरह रहेगा। यदि ये विपत्तियां न झेलनी होतीं, तो हमारा वनवास ही क्यों होता। राज्य छोड़कर जंगलों में मारे-मारे फिरते। हर हालत में ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए, हम सब उसी की इच्छा के पुतले हैं।

हनुमान अंगूठी लेकर अपने सहायकों के साथ चले। किन्तु कई दिन के बाद जब लंका का कुछ ठीक पता न चला और रसद का सामान सब-का-सब खर्च हो गया, तो अंगद और उनके कई साथी वापस चलने को तैयार हो गये। अंगद उनका नेता बन बैठा। यद्यपि वह सुग्रीव की आज्ञा का पालन कर रहा था, पर अभी तक अपने पिता का शोक उसके दिल में ताजा था। एक दिन उसने कहा—भाइयो, मैं तो अब आगे नहीं जा सकता। न हमारे पास रसद है, न यही खबर है कि अभी लंका कितनी दूर है। इस प्रकार घास-पात खाकर हम लोग कितने दिन रहेंगे ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि चाचा सुग्रीव ने हमें इधर इसलिए भेजा है कि हम लोग भूख-प्यास से मर जायें और उन्हें मेरी ओर से कोई खटका न रहे। इसके सिवाय उसका और अभिप्राय नहीं। आप तो मजा आनन्द से बैठे राज कर रहे हैं और हमें मरने के लिए इधर भेज दिया है। यही रामचन्द्र तो है, जिन्होंने मेरे पिता को छल से कत्ल किया। मैं क्यों उनकी पत्नी की खोज में जान दूं ? मैं तो अब किष्किन्धा नगर जाता हूं और आप लोगों को भी यही सलाह देता हूं।

और लोग तो अंगद के साथ लौटने पर लगभग प्रस्तुत-से हो गये; किन्तु हनुमान ने कहा जिन लोगों का अपने वचन का ध्यान न हो वह लौट जाय मैंने तो प्रण कर

है कि सीता जी का पता लगाये बिना न लौटूंगा, चाहे इस कोशिश म जान ही क्यो न देनी पड़े। पुरुषों की बात प्राण के साथ है। वह जो वायदा करते हैं, उससे कभी पीछे नहीं हटते। हम रामचन्द्र के साथ अपने कर्तव्य का पालन न करके अपनी समस्त जाति को कलंकित नहीं कर सकते। आप लोग लक्ष्मण के क्रोध से अभिज्ञ नहीं, मैं उनका क्रोध देख चुका हूं। यदि आप लोग वायदा न पूरा कर सके तो समझ लीजिए कि किष्किन्धा का राज्य नष्ट हो जायेगा।

हनुमान के समझाने का सबके ऊपर प्रभाव हुआ। अंगद ने देखा कि मैं अकेला ही रह जाता हूं; तो उसने भी विप्लव का विचार छोड़ दिया। एक बार फिर सबने मजबूत कमर बांधी और आगे बढ़े। बेचारे दिनभर इधर-उधर भटकते और रात को किसी गुफा मे पड़े रहते थे। सीताजी का कुछ पता न चलता था। यहां तक कि भटकते हुए एक महीने के करीब गुजर गया। राजा सुग्रीव ने चलते समय कह दिया था कि यदि तुम लोग एक महीने के अन्दर सीताजी का पता लगाकर न लौटोगे तो मैं किसी को जीवित न छोड़ूंगा। और यहां यह हाल था कि सीताजी की कुछ खबर ही नहीं। सब-के-सब जीवन से निराश हो गये। समझ गये कि इसी बहाने से मरना था। इस तरह लौटकर मारे जाने से तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं कहीं डूब मरें।

एक दिन विपत्ति के मारे यह बैठे सोच रहे थे कि किधर जाय कि उन्हें एक बूढा साधु आता हुआ दिखायी दिया। बहुत दिनों के बाद इन लोगों को आदमी की सूरत दिखायी दी। सबने दौड़कर उसे घेर लिया और पूछने लगे—क्यों बाबा, तुमने कहीं रानी सीता को देखा है, कुछ बतला सकते हो, वह कहां हैं?

इस साधु का नाम सम्पाति था। वह उस जटायु का भाई था, जिसने सीताजी को रावण से छीन लेने की कोशिश मे अपनी जान दे दी थी। दोनों भाई बहुत दिनों से अलग-अलग रहते थे। बोला—हां भाई, सीता को लंका का राजा रावण अपने रथ प्रर ले गया है। कई सप्ताह हुए, मैंने सीताजी को रोते हुए रथ पर जाते देखा था। क्या करूं, बुढापे से लाचार हूं, वरना रावण से अवश्य लड़ता। तब से इसी फिक्र में घूम रहा हूं, कि कोई मिल जाय तो उससे यह समाचार कह दूं। कौन जाने कब मृत्यु आ जाय। तुम लोग खूब मिले। अब मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

हनुमान ने पूछा—लंका किधर है और यहां से कितनी दूर है, बाबा?

सम्पाति बोला—दक्षिण की ओर चले जाओ। वहां तुम्हें एक समुद्र मिलेगा। समुद्र के उस पार लंका है। यहां से कोई सौ कोस होगा।

यह समाचार सुनकर उस दल के लोग बहुत प्रसन्न हुए। जीवन की कुछ आशा हुई। उसी समय चाल तेज कर दी और दो दिनों में रात-दिन चलकर सौ कोस की मंजिल पूरी कर दी। अब समुद्र उनके सामने लहरें मार रहा था। चारो ओर पानी ही पानी। जहां तक निगाह जाती, पानी ही पानी नजर आता था। इन बेचारों ने इतना चौड़ा नद कहां देखा था। कई आदमी तो मारे भय के कांप उठे। न कोई नाव थी, न कोई डोंगी, समुद्र में जायें तो कैसे जाय किसी की हिम्मत न पड़ती थी नल और नील अच्छे इंजीनियर थे मगर समुद्र मे तरने योग्य नाव बनाने के लिए न कोई था न समय

इसके अलावा कोई युक्ति न थी कि उनमें से कोई समुद्र में तैरकर लंका में जाये और सीताजी की खबर लाये। अन्त में बूढ़े जामवन्त ने कहा—क्यों भाइयो, कब तक इस तरह समुद्र को सहमी हुई आंखों से देखते रहोगे ? तुममें कोई इतनी हिम्मत नहीं रखता कि समुद्र को तैरकर लंका तक जाये ?

अंगद ने कहा—मैं तैरकर जा तो सकता हूं, पर शायद लौटकर न आ सकूं।

नल ने कहा—मैं तैरकर जा सकता हूं, पर शायद लौटते वक्त आधी दूर आते-आते बेदम हो जाऊं।

नील बोला—जा तो मै भी सकता हूं और शायद यहां तक लौट भी आऊं। मगर लंका में सीताजी का पता लगा सकूं, इसका मुझे विश्वास नहीं।

इस तरह सबों ने अपने-अपने साहस और बल का अनुमान लगाया। किन्तु हनुमानजी अभी तक चुप बैठे थे। जामवन्त ने उनसे पूछा—तुम क्यों चुप हो, भगतजी ? बोलते क्यों नहीं ? कुछ तुमसे भी हो सकेगा ?

हनुमान ने कहा—मैं लंका तक तैरकर जा सकता हूं। तुम लोग यहीं बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा करते रहना।

जामवंत ने हंसकर कहा—इतना साहस होने पर भी तुम अब तक चुप बैठे थे।

हनुमान ने उत्तर दिया—केवल इसलिए कि मैं औरों को अपना गौरव और यश बढ़ाने का मौका देना चाहता था। मैं बोल उठता तो शायद औरों को यह खेद होता कि हनुमान न होते तो मैं इस काम को पूरा करके राजा सुग्रीव और राजा रामचन्द्र दोनों का प्यारा बन जाता। जब कोई तैयार न हुआ तो विवश होकर मुझे इस काम का बीड़ा उठाना पड़ा। आप लोग निश्चिन्त हो जायें। मुझे विश्वास है कि मैं बहुत शीघ्र सफल होकर वापस आऊंगा।

यह कहकर हनुमानजी समुद्र की ओर पुरुषोचित दृढ़ पग उठाते हुए चले।

# सुन्दर-कांड

# लंका में हनुमान

रासकुमारी से लंका तक तैरकर जाना सरल काम न था। इस पर दरियाई जानवरों से भी सामना करना पड़ा। किन्तु वीर हनुमान ने हिम्मत न हारी। संध्या होते-होते वह उस पार जा पहुंचे। देखा कि लंका का नगर एक पहाड़ की चोटी पर बसा हुआ है। उसके महल आसमान से बातें कर रहे हैं। सड़कें चौड़ी और साफ हैं। उन पर तरह-तरह की सवारियां दौड़ रही हैं। पग-पग पर सज्जित सिपाही खड़े पहरा दे रहे हैं। जिधर देखिये, हीरे-जवाहर के ढेर लगे हैं। शहर में एक भी गरीब आदमी नहीं दिखाई देता। किसी-किसी महल के कलश सोने के है, दीवारों पर ऐसी सुन्दर चित्रकारी की हुई है कि मालूम होता है सोने की हैं। ऐसा जनपूर्ण और श्रीपूर्ण नगर देखकर हनुमान चकरा गये। यहां सीताजी का पता लगाना लोहे के चने चबाना था। यह तो अब मालूम ही था कि सीता रावण के महल में होंगी। किन्तु महल मे प्रवेश कैसे हो? मुख्य द्वार पर संतरियो का पहरा था। किसी से पूछते तो तुरन्त लोगों को उन पर सन्देह हो जाता। पकड़ लिये जाते। सोचने लगे, राज-प्रासाद के अन्दर कैसे घुसूं? एकाएक उन्हें एक बड़ा छतनार वृक्ष दिखलायी दिया, जिसकी शाखाएं महल के अन्दर झुकी हुई थीं। हनुमान प्रसन्नता से उछल पड़े। पहाड़ों में तो वे पैदा हुए थे। बचपन ही से पेड़ों पर चढ़ना, उचकना, कूदना सीखा था। इतनी फुर्ती से पेड़ों पर चढ़ते थे कि बन्दर भी देखकर शरमा जाये। पहरे-दारों की आंख बचाकर तुरन्त उस पेड़ पर चढ़ गये और पत्तियों में छिपे बैठे रहे। जब आधी रात हो गयी और चारों ओर सन्नाटा छा गया, रावण भी अपने महल में आराम करने चला गया तो वह धीरे-से एक डाल पकड़कर महल के अन्दर कूद पड़े।

महल के अन्दर चमक-दमक देखकर हनुमान की आंखों में चकाचौंध आ गयी। स्फटिक की पारदर्शी भूमि थी। उस पर फानूस की किरण पड़ती थी, तो वह दम्-दम् करने लगती थी। हनुमान ने दबे-पांव महलों में घूमना शुरू किया। रावण को देखा, एक सोने के पलंग पर पड़ा सो रहा है। उसके कमरे से मिले हुए मन्दोदरी और दूसरी रानियो के कमरे हैं। मन्दोदरी का सौन्दर्य देखकर हनुमान को सन्देह हुआ कि कहीं यही सीताजी न हों। किन्तु विचार आया, सीताजी इस प्रकार इत्र और जवाहर से लदी हुई भला मीठी नींद के मजे ले सकती हैं? ऐसा सम्भव नहीं। यह सीताजी नहीं हो सकती। प्रत्येक महल में उन्होंने सुन्दर रानियों को मजे से सोते पाया। कोई कोना ऐसा न बचा, जिसे उन्होंने न देखा हो। पर सीताजी का कहीं निशान नहीं। वह रंजो-गम से घुली हुई सीता कहीं दिखायी न दीं। हनुमान को सन्देह हुआ कि कहीं रावण ने सीताजी को मार

तो नहीं डाला ! जीवित होतीं, तो कहां जाती ?

हनुमान सारी रात असमंजस में पड़े रहे, जब सवेरा होने लगा और कौए बोलने लगे, तो वह उस पेड़ की डाल से बाहर निकल आये। मगर अब उन्हें किसी ऐसी जगह की जरूरत थी, जहां वह दिन भर छिप सकें। कल जब वह वहां आये तो शाम हो गयी थी। अंधेरे में किसी ने उन्हें देखा नहीं। मगर सुबह को उनका लिबास और रूप-रंग देखकर निश्चय ही लोग भड़कते और उन्हें पकड़ लेते। इसलिए हनुमान किसी ऐसी जगह की तलाश करने लगे जहां वह छिपकर बैठ सकें। कल से कुछ खाया न था। भूख भी लगी हुई थी। बाग के सिवा और मुफ्त के फल कहां मिलते। यही सोचते चले जाते थे कि कुछ दूर पर एक घना बाग दिखायी दिया। अशोक के बड़े-बड़े पेड़ हरी-हरी सुन्दर पत्तियों से लदे खड़े थे। हनुमान ने इसी बाग में भूख मिटाने और दिन काटने का निश्चय किया। बाग में पहुंचते ही एक पेड़ पर चढ़कर फल खाने लगे।

एकाएक कई स्त्रियों की आवाजें सुनायी देने लगीं। हनुमान ने इधर निगाह दौडायी तो देखा कि परम सुन्दरी स्त्री मैले-कुचैले कपड़े पहने, सिर के बाल खोले, उदास बैठी भूमि की ओर ताक रही है और कई राक्षस स्त्रियां उसके समीप बैठी हुई उसे समझा रही हैं। हनुमान उस सुन्दरी को देखकर समझ गये कि यही सीताजी हैं। उनका पीला चेहरा, आंसुओं से भीगी हुई आंखें और चिन्तित मुख देखकर विश्वास हो गया। उनके जी में आया कि चलकर इस देवी के चरणों पर सिर रख दूं और सारा हाल कह सुनाऊं। वह दरख्त से उतरना ही चाहते थे कि रावण को बाग में आते देखकर रुक गये। रावण घमण्ड से अकड़ता हुआ सीता के पास जाकर बोला—सीता, देखो, कैसे सुहावना समय है, फूलों की सुगन्ध से मस्त होकर हवा झूम रही है ! चिड़ियां गा रही हैं, फूलों पर भौंरे मंडरा रहे हैं। किन्तु तुम आज भी उसी प्रकार उदास और दुःखित बैठी हुई हो। तुम्हारे लिए जो मैंने बहुमूल्य जोड़े और आभूषण भेजे थे, उनकी ओर तुमने आंख उठाकर भी नहीं देखा। न सिर में तेल डाला, न इत्र मला। इसका क्या कारण है ? क्या अब भी तुम्हें मेरी दशा पर दया न आयी।

सीताजी ने घृणा की दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—अत्याचारी राक्षस, क्यों मेरे घाव पर नमक छिड़क रहा है ? मैं तुझसे हजार बार कह चुकी कि जब तक मेरी जान रहेगी, अपने पति के प्यारे चरणों का ध्यान करती रहूंगी। मेरे जीते-जी तेरे अपवित्र विचार कभी पूरे न होंगे। मैं तुझसे अब भी कहती हूं कि यदि अपनी कुशल चाहता है तो मुझे रामचन्द्र के पास पहुंचा दे, और उनसे अपनी भूलों की क्षमा मांग ले। अन्यथा जिस समय उनकी सेना आ जायेगी, तुझे भागने की कहीं जगह न मिलेगी। उनके क्रोध की ज्वाला तुझे और तेरे सारे परिवार को जलाकर राख कर देगी। और खूब कान खोलकर सुन ले, कि वह अब यहां आना ही चाहते हैं।

रावण यह बातें सुनकर लाल हो गया और बोला—बस, जबान संभाल, मूर्ख स्त्री ! मुझे मालूम हो गया कि तेरे साथ नरमी से काम न चलेगा। अगर तू एक निर्बल स्त्री होकर जिद कर सकती है, तो मैं लंका का महाराजा होकर क्या जिद नहीं कर सकता ? जिस पुरुष के बल पर तुझे इतना अभिमान है उसे मैं यों मसल डालूंगा जैसे

कोई कीड़े को मसलता है। तू मुझे सख्ती करने पर विवश कर रही है; तो मैं भी सख्ती करूंगा। बस, आज से एक मास का अवकाश तुझे और देता हूं। अगर उस वक्त भी तेरी आंख न खुली तो फिर या तो तू रावण की रानी होगी या तो तेरी लाश चील और कौवे नोच-नोचकर खायेंगे।

रावण चला गया, तो राक्षस स्त्रियों ने सीताजी को समझाना आरम्भ किया। तुम बड़ी नादान हो सीता, इतना बड़ा राजा तुम्हारी इतनी खुशामद करता है, फिर भी तुम कान नहीं देतीं। अगर वह जबर्दस्ती करना चाहे तो आज ही तुम्हें रानी बना ले। मगर कितना नेक है कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहता। उसके साथ तुम्हारी बेपरवाही उचित नहीं। व्यर्थ रामचन्द्र के पीछे जान दे रही हो। लंका की रानी बनकर जीवन के सुख उठाओ। राम को भूल जाओ। वह अब यहां नहीं आ सकते और आ जायें तो राजा रावण का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

सीताजी ने क्रोधित होकर कहा—लाज नहीं आती? ऐसे पापी को जो दूसरे की स्त्रियों को बलात् उठा लाता है, तुम नेक और धर्मात्मा कहती हो? उससे बड़ा पापी तो संसार में दूसरा न होगा!

हनुमान ऊपर बैठे हुए इन स्त्रियों की बातें सुन रहे थे। जब वह सब वहां से चली गयीं और सीताजी अकेली रह गयीं तो हनुमानजी ने ऊपर से रामचन्द्र की अंगूठी उनके सामने गिरा दी। सीताजी ने अंगूठी उठाकर देखी तो रामचन्द्र की थी। शोक और आश्चर्य से उनका कलेजा धड़कने लगा। शोक इस बात का हुआ कि कहीं रावण ने रामचन्द्र को मरवा न डाला हो। आश्चर्य इस बात का था कि रामचन्द्र की अंगूठी यहां कैसे आयी। वह अंगूठी को हाथ में लिये इसी सोच में बैठी हुई थीं कि हनुमान पेड़ से उतरकर उनके सामने आये और उनके चरणों पर सिर झुका दिया।

सीताजी ने और भी आश्चर्य में आकर पूछा—तुम कौन हो? क्या यह अंगूठी तुम्हीं ने गिरायी है? तुम्हारी सूरत से मालूम होता है कि तुम सज्जन और वीर हो। क्या बतला सकते हो कि तुम्हें अंगूठी कहां मिली?

हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—माताजी! मैं श्री रामचन्द्रजी के पास से आ रहा हूं। यह अंगूठी उन्हीं ने मुझे दी थी। मैं आपको देखकर समझ गया कि आप ही जानकी जी हैं। आपकी खोज में सैकड़ों सिपाही छूटे हुए हैं। मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हुए।

सीताजी का पीला चेहरा खिल गया। बोलीं—क्या सचमुच तुम मेरे स्वामीजी के पास से आ रहे हो? अभी तक वे मेरी याद कर रहे हैं?

हनुमान—आपकी याद उन्हें सदैव सताया करती है। सोते-जागते आप ही के नाम की रट लगाया करते हैं। आपका पता अब तक न था। इस कारण से आपको छुड़ा न सकते थे। अब ज्योंही मैं पहुंचकर उन्हें आपका समाचार दूंगा, वह तुरन्त लंका पर आक्रमण करने की तैयारी करेंगे।

सीताजी ने चिन्तित होकर पूछा—उनके पास इतनी बड़ी सेना है जो रावण के बल का सामना कर सके?

हनुमान ने उत्साह के साथ कहा—उनके पास जो सेना है, उसका एक-एक सैनिक एक-एक सेना का वध कर सकता है ! मैं एक तुच्छ सिपाही हूं; पर मैं दिखा दूंगा कि लंका की समस्त सेना किस प्रकार मुझसे हार मान लेती है।

सीताजी—रामचन्द्र को यह सेना कहां मिल गयी ? मुझसे विस्तृत वर्णन करो, तब मुझे विश्वास आये।

हनुमान—वह सेना राजा सुग्रीव की है, जो रामचन्द्र के मित्र और सेवक है। रामचन्द्र ने सुग्रीव के भाई बालि को मारकर किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दिला दिया है। इसीलिए सुग्रीव उन्हें अपना उपकारक समझते हैं। उन्होंने आपका पता लगाकर आपको छुड़ाने में रामचन्द्र की सहायता करने का प्रण कर लिया है। अब आपकी विपत्तियों का बहुत शीघ्र अन्त हो जायेगा।

सीताजी ने रोकर कहा—हनुमान ! आज का दिन बड़ा शुभ है कि मुझे अपने स्वामी का समाचार मिला। तुमने यहां की सारी दशा देखी है। स्वामी से कहना, सीता की दशा बहुत दुःखद है; यदि आप उसे शीघ्र न छुड़ायेंगे तो वह जीवित न रहेगी। अब तक केवल इसी आशा पर जीवित हैं, किन्तु दिन-प्रतिदिन निराशा से उसका हृदय निर्बल होता जा रहा है।

हनुमान ने सीताजी को बहुत आश्वासन दिया और चलने को तैयार हुए; किन्तु उसी समय विचार आया कि जिस प्रकार सीताजी के विश्वास के लिए रामचन्द्र की अंगूठी लाया था उसी प्रकार रामचन्द्र के विश्वास के लिए सीताजी की भी कोई निशानी ले चलना चाहिए ! बोले—माता ! यदि आप उचित समझें तो अपनी कोई निशानी दीजिए, जिससे रामचन्द्र को विश्वास आ जाये कि मैंने आपके दर्शन पाये हैं।

सीताजी ने अपने सिर की वेणी उतारकर दे दी। हनुमान ने उसे कमर में बांध लिया और सीताजी को प्रणाम करके विदा हुए।

## लंका-दहन

अशोकों के बाग से चलते-चलते हनुमान के जी में आया कि तनिक इन राक्षसों की वीरता की परीक्षा भी करता चलूं। देखूं, यह सब युद्ध की कला में कितने निपुण है। आखिर रामचन्द्रजी इन सबों का हाल पूछेंगे तो क्या बताऊंगा। यह सोचकर उन्होंने बाग के पेड़ों को उखाड़ना शुरू किया। तुम्हें आश्चर्य होगा कि उन्होंने वृक्ष कैसे उखाड़े होंगे। हम तो एक पौधा भी जड़ से नहीं उखाड़ सकते। किन्तु हनुमान जी अपने समय के अत्यन्त बलवान पुरुष थे। जब उन्होंने हिन्दुस्तान से लंका तक समुद्र को तैरकर पार किया, तो छोटे-मोटे पेड़ों का उखाड़ना क्या कठिन था। कई पेड़ उखाड़े। कई पेड़ों की शाखाएं तोड़ डालीं और फल तो इतने तोड़कर गिरा दिये कि उनका फर्श सा बिछ

गया। बाग के रक्षकों ने यह हाल देखा तो एकत्रित होकर हनुमान को रोकने आये। किन्तु वह किसकी सुनते थे! उन सबों को डालियों से मार-मारकर भगा दिया। कई आदमियों को जान से मार डाला। तब बाहर से और कितने ही सिपाही आकर हनुमान को पकड़ने लगे। मगर आपने उन्हे मार भगाया। धीरे-धीरे राजा रावण के पास खबर पहुंची कि एक आदमी न जाने किधर से अशोकों के वन में घुस आया है और वन का सत्यानाश किये डालता है। कई मालियों और सैनिकों को मार भगाया है। किसी प्रकार नही मानता।

रावण ने क्रोध से दांत पीसकर कहा—तुम लोग उसे पकड़कर मेरे सामने लाओ।

रक्षक—हुजूर, वह इतना बलवान है कि कोई उसके पास जा ही नही सकता।

रावण—चुप रहो नालायको! बाहर का एक आदमी हमारे बाग में घुसकर यह तूफान मचा रहा है और तुम लोग उसे गिरफ्तार नही कर सकते? बड़ी शर्म की बात है।

यह कहकर रावण ने अपने लड़के अक्षयकुमार को हनुमान को गिरफ्तार कर लाने के लिए भेजा। अक्षयकुमार कई सौ वीरों की सेना लेकर हनुमान से लड़ने चला। हनुमान ने उन्हें आते देख एक मोटा-सा वृक्ष उठा लिया और उन आदमियों पर टूट पड़े। पहले ही आक्रमण में कई आदमी घायल हो गये। कुछ भाग खड़े हुए। तब अक्षयकुमार ने ललकारकर कहा—यदि वीर है तो सामने आ जा! यह क्या गंवारों की तरह मोटी टहनी लेकर घुमा रहा है।

हनुमान ताल ठोंककर अक्षयकुमार पर झपटे और उसकी टांग पकड़कर इतनी जोर से पटका कि वह वहीं ठण्डा हो गया। और सब आदमी हुर्र हो गये।

रावण को जब अक्षयकुमार के मारे जाने का समाचार मिला तब उसके क्रोध की सीमा न रही। अभी तक उसने हनुमान को कोई साधारण सैनिक समझ रखा था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह कोई अत्यन्त वीर पुरुष है। अवश्य इसे रामचन्द्र ने यहा सीता का पता लगाने के लिए भेजा है। इस आदमी को जरूर दण्ड देना चाहिए। कड़क-कर बोला—इस दरबार में इतने सूरमा मौजूद हैं, क्या किसी में भी इतना साहस नही कि उस दुष्ट को पकड़कर मेरे सामने लाये? लंका के इस राज्य में एक भी ऐसा आदमी नहीं? मेरे हथियार लाओ, मैं स्वयं जाकर उसे गिरफ्तार करूंगा। देखू, उसमें कितना बल है!

सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। रावण का दूसरा पुत्र मेघनाद भी वहां बैठा हुआ था। अब तक उसने हनुमान का सामना करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझा था, रावण को उद्विग्न देखकर उठ खड़ा हुआ और बोला—उसके वध के लिए मैं क्या कम हूं, जो आप जा रहे हैं? मैं अभी जाकर उसे बांध लाता हूं। आप यहीं बैठें।

मेघनाद अत्यन्त वीर, साहसी और युद्ध की कला में अत्यन्त निपुण था। धनुष-बाण हाथ में लेकर अशोक-वाटिका में पहुंचा और हनुमान से बोला—क्यों रे पगले क्या तेरे क्या दिन आये हैं जो यहां ऐसी अंधेर मचा रहा है? हम लोगों ने तुम्हें यात्री

जाने दिया और तू शेर हो गया। लेकिन मालूम होता है, तेरे सिर पर मौत खेल रही है। आ जा; सामने! बाग के मालियों और मेरे अल्पवयस्क भाई को मारकर शायद तुझे घमण्ड हो गया है। आ, तेरा घमण्ड तोड़ दूं।

हनुमान बल में मेघनाद से कम न थे; किन्तु उस समय उससे लड़ना अपने हेतु के विरुद्ध समझा। मेघनाद साधारण पुरुष न था। बराबर का मुकाबला था। सोचा, कहीं इसने मुझे मार डाला, तो रामचन्द्र के पास सीताजी का समाचार भी न ले जा सकूंगा। मेघनाद के सामने ताल ठोंककर खड़े तो हुए, पर उसे अपने ऊपर जान-बूझकर विजय पा लेने दिया। मेघनाद ने समझा, मैंने इसे दबा लिया। तुरन्त हनुमान को रस्सियों से जकड़ दिया और मूंछों पर ताव देता हुआ रावण के सामने आकर बोला—महाराज, यह आपका बन्दी उपस्थित है।

रावण क्रोध से भरा तो बैठा ही था, हनुमान को देखते ही बेटे के खून का बदला लेने के लिए उसकी तलवार म्यान से निकल पड़ी, निकट था कि रस्सियों में जकड़े हुए हनुमान की गर्दन पर उसकी तलवार का वार गिरे कि रावण के भाई विभीषण ने खड़े होकर कहा—भाई साहब! पहले इससे पूछिये कि यह कौन है, और यहां किसलिए आया है। सम्भव है, ब्राह्मण हो तो हमें ब्रह्म-हत्या का पाप लग जाये।

हनुमान ने कहा—मैं राजा सुग्रीव का दूत हूं। रामचन्द्रजी ने मुझे सीताजी का पता लगाने के लिए भेजा है। मुझे यहां सीताजी के दर्शन हो गये। तुमने बहुत बुरा किया कि उन्हें यहां उठा लाये। अब तुम्हारी कुशल इसी में है कि सीताजी को रामचन्द्रजी के पास पहुंचा दो। अन्यथा तुम्हारे लिए बुरा होगा। तुमने राजा बालि का नाम सुना होगा। उसने तुम्हें एक बार नीचा भी दिखाया था। उसी राजा बालि को रामचन्द्रजी ने एक बाण से मार डाला। खर-दूषण की मृत्यु का हाल तुमने सुना ही होगा। उनसे तुम किसी प्रकार जीत नहीं सकते।

यह सुनकर कि यह रामचन्द्रजी का दूत है, और सीताजी का पता लगाने के लिए आया है, रावण का खून खौलने लगा। उसने फिर तलवार उठायी; मगर विभीषण ने फिर उसे समझाया—महाराज! राजदूतों को मारना साम्राज्य की नीति के विरुद्ध है। आप इसे और जो दण्ड चाहे दें, किन्तु वध न करें। इससे आपकी बड़ी बदनामी होगी।

विभीषण बड़ा दयालु, सच्चा और ईमानदार आदमी था। उचित बात कहने में उसकी जबान कभी नहीं रुकती थी। वह रावण को कई बार समझा चुका था कि सीताजी को रामचन्द्र के पास भेज दीजिए। मगर रावण उसकी बातों की कब परवाह करता था। इस वक्त भी विभीषण की बात उसे बुरी लगी। किन्तु साम्राज्य के नियम को तोड़ने का उसे साहस नहीं हुआ। दिल में ऐंठकर तलवार म्यान में रख ली और बोला—तू बड़ा भाग्यवान है कि इस समय मेरे हाथ से बच गया। तू यदि सुग्रीव का दूत न होता तो इसी समय तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालता। तुझ जैसे धृष्ट आदमी का यही दण्ड है। किन्तु मैं तुझे बिलकुल बेदाग न छोड़ूंगा। ऐसा दण्ड दूंगा कि तू भी याद करे कि किसी से पाला पड़ा था

रावण सोचने लगा इस एस कौन-सा दण्ड दिया जाये कि इसकी जान तो न

निकले, पर यह भली प्रकार अपमानित और अप्रतिष्ठित हो। इसके साथ ही सांसत भी ऐसी हो कि जीवनपर्यन्त न भूले। फिर इधर आने का साहस ही न हो। सोचते-सोचते उसे एक अनोखा हास्य सूझा। वह मारे खुशी के उछल पड़ा। इसे बन्दर बनाकर इसकी दुम में आग लगा दी जाय। विचित्र और अनोखा तमाशा होगा। राक्षसों ने ऐसा तमाशा कभी न देखा होगा। बड़ा आनन्द रहेगा। हजारों आदमी उनके पीछे 'लेना-लेना' करके दौड़ेंगे और वह इधर-उधर उचकता फिरेगा। तुरन्त मेघनाद को आज्ञा दी कि इस आदमी का मुंह रंग दो, इसके शरीर पर भूरे-भूरे रोयें लगा दो और एक लम्बी दुम लगाकर अच्छा-खासा लंगूर बना दो। उसकी दुम में लत्ते बांधकर तेल में भिगो दो और उसमें आग लगा कर छोड़ दो। शहर में ढौंड़ी पिटवा दो कि आज शाम को एक नया, अनोखा और आश्चर्य में डालने वाला तमाशा होगा। सब लोग अपनी छतों पर से तमाशा देखें।

यह आदेश पाते ही राक्षसों ने हनुमान को बन्दर बनाना शुरू कर दिया। कोई मुंह रंगता था, कोई शरीर पर रोयें चिपकाता था, कोई दुम लगाता था। दम-के-दम में बन्दर का स्वांग बनकर खड़ा हो गया। खूब लम्बी दुम थी। फिर लोग चारों तरफ से लत्ते ला-लाकर उसमें बांधने लगे, इधर शहर में ढौंड़ी पिट गयी। राक्षस लोग जल्दी-जल्दी शाम का खाना खा, अच्छे-अच्छे कपड़े पहन अपनी-अपनी छतों पर डट गये। रावण की सैकड़ों रानियां थीं। सब-की-सब गहने-कपड़ों से सज्जित होकर यह तमाशा देखने के लिए सबसे ऊंची छत पर जा बैठीं। इतने में शाम भी हो गयी। हनुमान की दुम पर तेल छिड़का जाने लगा। मनों तेल डाल दिया गया। जब दुम खूब तेल से तर हो गयी, तो एक आदमी ने उसमें आग लगा दी। लपटें भड़क उठीं। चारों तरफ तालियां बजने लगीं। तमाशा शुरू हो गया।

हनुमान अपने इस अपमान और हंसी पर दिल में खूब कुढ़ रहे थे। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर इस दुष्ट ने मार डाला होता। दिल में कहा, अगर इस अपमान का बदला न लिया तो कुछ न किया, और वह भी इसी वक्त। ऐसा तमाशा दिखाऊं कि आयु-पर्यन्त न भूले। सारे शहर की होली हो जाये। जब दुम में आग लग गयी तो वह एक पेड़ पर चढ़ गये। इस कला में उनका समान न था। पेड़ की एक शाखा राजमहल में झुकी हुई थी। उसी शाखा से कूदकर वह रनिवास में पहुंच गये और एक क्षण में सारा राजमहल जलने लगा। सब लोग छतों पर थे। कोई रोकने वाला न था। बहुमूल्य कपड़े और सजावट के सामान, फर्श, गद्दे, कालीन, पर्दे, पंखे, इसमें आग लगते क्या देर थी। हनुमान जिधर से अपनी जलती हुई दुम लेकर निकल जाते थे, उधर ही लपटें उठने लगती थीं।

राजमहल में आग लगाकर हनुमान बस्ती की तरफ झुके। छतों से छतें मिली हुई थीं। एक घर से दूसरे घर में कूद जाना कठिन न था। घण्टे भर में सारा शहर आग ने घेरे में ढक गया। चारों तरफ कुहराम मच गया। कोई अपना असबाब निकालता था कोई पानी-पानी चिल्लाता था। कितने ही आदमी जो नीचे न उतर सके, जल-भुन गये संयोग से उसी समय जोर की हवा चलने लगी आग और भी भड़क उठी मानो हवा अग्नि देवता की सहायता करने आया है ऐसा मालूम होता था कि आसमान से आग

के गोले बरस रहे हैं।

शहर की होली बनाकर हनुमान समुद्र की तरफ भागे और पानी में कूदकर दुम की आग बुझायी। उन्होंने लंका-वासियों को सचमुच विचित्र और अनोखा तमाशा दिखा दिया।

# आक्रमण की तैयारी

हनुमान ने रातों-रात समुद्र को पार किया और अपने साथियों से जा मिले। यह बेचारे घबरा रहे थे कि न जाने हनुमान पर क्या विपत्ति आयी। अब तक नहीं लौटे। अब हम लोग सुग्रीव को क्या मुंह दिखायेंगे। रामचन्द्र के सामने कैसे जायेंगे। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि यहीं डूब मरें। इतने ही में हनुमान जा पहुंचे। उन्हें देखते ही सब-के-सब खुशी से उछलने लगे। दौड़-दौड़कर उनसे गले मिले और पूछने लगे—कहो भाई, क्या कर आये? सीताजी का कुछ पता चला? रावण से कुछ बातचीत हुई? हम लोग तो बहुत विकल थे।

हनुमान ने लंका का सारा हाल कह सुनाया। रावण के महल में जाना, अशोक के वन में सीताजी के दर्शन पाना, वाटिका को उजाड़ना, राक्षसों को मारना, मेघनाद के हाथों गिरफ्तार होना, फिर लंका को जलाना, सारी बातें विस्तार से वर्णन कीं। सबने हनुमान की वीरता और कौशल को सराहा और गा-बजाकर सोये। मुंह-अंधेरे किष्किन्धा-पुरी को रवाना हुए। सैकड़ों कोसों की यात्रा थी। पर ये लोग अपनी सफलता पर इतने प्रसन्न थे कि न दिन को आराम करते, न रात को सोते। खाने-पीने की किसी को सुध न थी। शीघ्र रामचन्द्र के पास पहुंचकर यह शुभ समाचार सुनाने के लिए अधीर हो रहे थे। आखिर कई दिनों के बाद किष्किन्धा पहाड़ दिखायी दिया। उसी के निकट राजा सुग्रीव का एक बाग था। उसका नाम मधुवन था। उसमें बहुत-सी शहद की मक्खियां पली थीं। सुग्रीव को जब शहद की जरूरत पड़ती तो उसी बाग से लेता था।

जब यह लोग मधुवन के पास पहुंचे तो शहद के छत्ते को देखकर उनकी लार टपक पड़ी। बेचारों ने कई दिन से खाना नहीं खाया था। तुरन्त बाग में घुस गये और शहद पीना आरम्भ कर दिया। बाग के मालियों ने मना किया तो उन्हें खूब पीटा। शहद की लूट मच गयी। सुग्रीव को जब समाचार मिला कि हनुमान, अंगद, जामवंत इत्यादि मधुवन में लूट मचाये हुए हैं, तो समझ गया कि यह लोग सफल होकर लौटे हैं। असफल लौटते तो यह शरारत कब सूझती। तुरन्त उनकी अगवानी करने चल खड़ा हुआ। इन लोगों ने उसे आते देखा तो और भी ऊधम मचाना शुरू किया।

सुग्रीव ने हंसकर कहा—मालूम होता है तुम लोगों ने कई-कई दिन से मारे खुशी के खाना नहीं खाया है। आओ तुम्हें गले लगा लूं

जब सब लोग सुग्रीव से गले मिल चुके, तो हनुमान ने लंका का सारा वृत्तांत कह सुनाया। सुग्रीव खुशी में फूला न समाया। उसी समय उन लोगों को साथ लेकर रामचन्द्र के पास पहुंचा। रामचन्द्र भी उनकी भाव-भंगी से ताड़ गये कि यह लोग सीताजी का पता लगा लाये। इधर कई दिनों से दोनों भाई बहुत निराश हो रहे थे। इन लोगों को देखकर आशा की खेती हरी हो गयी।

रामचन्द्र ने पूछा—कहो, क्या समाचार लाये? सीताजी कहां है? उनका क्या हाल है?

हनुमान ने विनोद करके कहा—महाराज, कुछ इनाम दिलवाइये तो कहूं।

राम—धन्यवाद के सिवा मेरे पास और क्या है जो तुम्हें दू। जब तक जीवित रहूंगा, तुम्हारा उपकार मानूंगा।

हनुमान—वायदा कीजिए कि मुझे कभी अपने चरणों से विलग न कीजियेगा।

राम—वाह! यह तो मेरे ही लाभ की बात है। तुम जैसे निष्ठावान मित्र किसको सुलभ होते हैं! हम और तुम सदैव साथ रहें, इससे बढ़कर मेरे लिए प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है? सीताजी क्या लका में है?

हनुमान—हां महाराज, लका के अत्याचारी राजा रावण ने उन्हें एक बाग में कैद कर रखा है और नाना प्रकार के कष्ट दे रहा है। कभी धमकाता है, कभी फुसलाता है, किन्तु वे उसकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं। जब मैंने आपकी अंगूठी दी, तो उसे कलेजे से लगा लिया और देर तक रोती रहीं। चलते समय मुझसे कहा कि प्राणनाथ से कहना कि शीघ्र मुझे इस कैद से मुक्त करें, क्योंकि अब मुझमें अधिक सहने का बल नहीं। यह कहकर हनुमान ने सीताजी की वेणी रामचन्द्र के हाथ में रख दी।

रामचन्द्र ने इस वेणी को देखा तो बरबस उनकी आंखों से आंसू जारी हो गये। उसे बार-बार चूमा और आंखों से लगाया। फिर बड़ी देर तक सीताजी ही के सम्बन्ध में बातें पूछते रहे। इन बातों से उनका जी ही न भरता था। वह कैसे कपड़े पहने हुए थी? बहुत दुबली तो नहीं हो गयी हैं? बहुत रोया तो नहीं करती? हनुमान जी प्रत्येक बात का उत्तर देते जाते थे और मन में सोचते थे, इन स्त्री और पुरुष में कितना प्रेम है!

थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा—अब आक्रमण करने में देर न करनी चाहिए। तुम अपनी सेना को कब तैयार कर सकोगे?

सुग्रीव ने कहा—महाराज? मेरी सेना तो पहले से ही तैयार है, केवल आपके आदेश की देर है।

राम—युद्ध के सिवा और कोई चारा नहीं है।

सुग्रीव—ईश्वर ने चाहा तो हमारी जीत होगी।

राम—औचित्य की सदैव जीत होती है।

# विभीषण

हनुमान के चले जाने के बाद राक्षसों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा, जिस सेना का एक सैनिक इतना बलवान और वीर है, उस सेना से भला कौन लड़ेगा! उस सेना का नायक कितना वीर होगा! एक आदमी ने आकर सारी लंका में हलचल मचा दी। यदि वीर मेघनाद स्वयं न जाता तो सम्भवतः हमारी सारी सेना मिलकर भी उसे न पकड़ सकती। कितना गजब का चतुर आदमी था? दुम तो लगायी गयी उसकी हंसी उड़ाने के लिए, उसका बदला उसने यह दिया कि सारी लंका जला डाली; और कोई भी न पकड़ सका, साफ निकल गया। अब रामचन्द्र की सेना दो-चार दिन में लंका पर चढ़ आयेगी। राजा रावण और राजकुमार मेघनाद कितने ही वीर हों; किन्तु सेना का सामना नहीं कर सकते। इस एक स्त्री के लिए रावण सारे देश को नष्ट करना चाहता है। यदि वह रामचन्द्र के पास न भेज दी गयी और उनसे क्षमा न मांगी गयी, तो अवश्य लंका पर विपत्ति आयेगी।

दूसरे दिन शहर से खास-खास आदमी रावण की सेवा में उपस्थित हुए और विनय की—महाराज! आपके राज्य में हम लोग अब तक बड़े आराम और चैन से रहे, अब हमें ऐसा भय हो रहा है कि इस देश पर कोई विपत्ति आनेवाली है। हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि आप सीताजी को रामचन्द्र के पास पहुंचा दें और देश को इस आने वाली विपत्ति से बचा लें।

रावण भी कल रात से इसी चिन्ता में पड़ा हुआ था, किन्तु अपनी प्रजा के सामने वह अपने दिल की कमजोरी को प्रकट न कर सका। उसे इसका धैर्य न था कि कोई उसके कार्यों पर आपत्ति करे। आपत्ति सुनते ही वह आपे से बाहर हो जाता था। उसका विचार था कि प्रजा का काम है राजा की आज्ञा मानना, न कि उसके कामों पर आपत्ति करना। क्रोध से बोला—तुम्हें ऐसी प्रार्थना करते हुए लाज नहीं आती? जिस आदमी ने मेरी बहन की मर्यादा धूल में मिलायी, उससे इसका बदला न लूं! ऐसा कभी नहीं हो सकता। रावण इतना शीलरहित और निर्लज्ज नहीं है। सीता मेरी है और मेरी रहेगी। तुम लोग जाकर अपना काम देखो। देश की रक्षा का मैं उत्तरदायी हूं। मैं तुमसे इस विषय में कोई परामर्श लेना नहीं चाहता।

यह फटकार सुनकर सब लोग चुप हो गये। सभी रावण के क्रोध से डरते थे, किन्तु विभीषण प्रजा का सच्चा मित्र था और न्यायोचित बात कहने में उसकी जबान कभी नहीं रुकती थी। बोला—महाराज! राजा का धर्म है कि जब प्रजा को पथ-भ्रष्ट होते देखे तो दण्ड दे, उसी प्रकार प्रजा का भी धर्म है कि जब राजा को पथ-भ्रष्ट होते देखे तो समझाये। आपको रामचन्द्र से अपमान का बदला लेना था तो उन पर आक्रमण करते। उस समय सारा देश आपका साथ देता। सीताजी को यहां लाकर कैद कर रखने में आपने अन्याय किया है और हमारा कर्तव्य है कि हम आपको समझायें। अगर आपने सीताजी को न वापस किया तो लंका पर अवश्य विपत्ति आयेगी।

रावण ने जब देखा कि उसका भाई भी प्रजा का पक्ष ले रहा है, तो और भी क्रुद्ध

होकर बोला—विभीषण, तुम पूजा करने वाले, पोथी-पुराण के कीड़े हो, राज्य के विषय में जबान खोलने का तुम्हे अधिकार नहीं। चुप रहो, मैं तुमसे अधिक योग्य हूं।

विभीषण—मैं आपको जता देना चाहता हूं कि इस लडाई में आपका साथ प्रजा कदापि न देगी।

रावण की आखों से चिनगारियां निकलने लगीं। गरजकर बोला—मैं जो कुछ कहूं या करूं प्रजा को मानना पड़ेगा।

विभीषण ने जोश में आकर कहा—कदापि नहीं। पाप के काम में प्रजा आपका साथ नहीं दे सकती।

अब रावण से सहन न हो सका। उसने उठकर विभीषण को इतने जोर से लात मारी कि वह कई पग दूर जा गिरा; और फिर बोला—निकल जा मेरे राज्य से! इसी वक्त निकल जा! मैं तुझ जैसे देशद्रोही और धोखेबाज का मुंह नहीं देखना चाहता। तू मेरा भाई नहीं, मेरा शत्रु है। मुझे ज्ञात न था कि तू अपनी कुटी में बैठा हुआ प्रजा को मेरे विरुद्ध भड़काता रहता है, अन्यथा आज तू मेरे सामने इस तरह जबान न चलाता। फिर कभी मेरे राज्य में पैर न रखना, वरना जान से हाथ धोयेगा।

विभीषण ने उठकर कहा—महाराज, आप मेरे बड़े भाई हैं इसलिए मैंने आपको समझाने का साहस किया था; उसका आपने मुझे यह दण्ड दिया। आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर। मैं जाता हूं। आप फिर मेरा मुंह न देखेंगे, किन्तु इतना फिर कहता हूं कि आपको एक दिन पछताना पड़ेगा। और उस समय आपको अभागे विभीषण की बात याद आयेगी।

## आक्रमण

विभीषण वहां से अपमानित होकर सुग्रीव की सेना में पहुंचा और सुग्रीव से अपना सारा वृत्तांत कहा। सुग्रीव ने रामचन्द्र को उसके आने की सूचना दी। रामचन्द्र ने विचार किया कि कहीं यह रावण का भेदी न हो। हमारी सेना की दशा देखने के लिए आया हो। इसे तुरन्त सेना से निकाल देना चाहिए। अंगद, जामवंत और दूसरे नायकों ने भी यही परामर्श दिया। उस समय हनुमान बोले—आप लोग इस आदमी के बारे में किसी प्रकार सन्देह न करें। लंका में यदि कोई सच्चा और सज्जन पुरुष है, तो वह विभीषण है। जिस समय सारा दरबार मेरा शत्रु था, उस समय इसी आदमी ने मेरी जान बचायी थी। इसे अवश्य रावण ने राज्य से निकाल दिया है। यह अब आपकी शरण में आया है। इससे शील-रहित व्यवहार करना उचित नहीं। आखिर रामचन्द्र का सन्देह दूर हो गया। उन्होंने उसी समय विभीषण को बुलाया और बड़े तपाक से मिले।

विभीषण बोला—महाराज, आपसे मिलने की बहुत दिनों से [illegible] थी। वह

आज पूरी हुई। मैं अपने भाई रावण के हाथों बहुत अपमानित होकर आपकी शरण आया हूं। अब आप ही मेरा बेड़ा पार लगाइये। रावण ने मुझे इतनी निर्दयता से निकाला है, जैसे कोई कुत्ते को भी न निकालेगा। अब मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहता।

रामचन्द्र ने कहा—किन्तु निरपराध तो कोई अपने नौकर को भी नहीं निकालता। सगे भाई को कैसे निकालेगा ?

विभीषण—महाराज ! मेरा अपराध केवल इतना ही था कि मैंने रावण से वह बात कही, जो उसे पसन्द न थी। मैंने उसे समझाया था कि सीताजी को रामचन्द्र के पास पहुंचा दो। यह बात उसे तीर की तरह लग गयी। जो आदमी वासना का दास हो जाता है उसे भले और बुरे का ज्ञान नही रहता। वह अपने बारे मे सच्ची बात सुनना कभी पसन्द नहीं करता।

रामचन्द्र ने विभीषण को बहुत आश्वासन दिया और वादा किया कि रावण को मारकर लंका का राज्य तुम्हें दूंगा। उसी समय विभीषण को राज्यतिलक भी दे दिया। विभीषण ने भी हर हालत में रामचन्द्र की सहायता करने का पक्का वादा किया।

दूसरे दिन से लंका पर चढ़ाई करने की तैयारियां शुरू हो गयीं और सेना समुद्र के किनारे आकर समुद्र को पार करने की युक्ति सोचने लगी। अन्त में यह निश्चित हुआ कि एक पुल बनाया जाये। नल और नील बड़े होशियार इंजीनियर थे। उन्होंने पुल बनाना प्रारम्भ किया।

इधर रावण को जब खबर मिली कि विभीषण रामचन्द्र से जा मिला, तो उसने दो जासूसों को सुग्रीव की सेना का हाल-चाल मालूम करने के लिए भेजा। एक का नाम था शक, दूसरे का सारण। दोनों भेष बदलकर सुग्रीव की सेना मे आये और प्रत्येक बात की छानबीन करने लगे। संयोग से उन पर विभीषण की दृष्टि पड़ गयी। तुरन्त पहचान गये। उन्हें पकड़कर रामचन्द्र के सामने उपस्थित कर दिया। दोनों जासूस मारे भय के कांपने लगे, क्योंकि रीति के अनुसार उन्हें मृत्यु का दण्ड मिलना निश्चित था; पर रामचन्द्र को उन पर दया आ गयी। उन्हें बुलाकर कहा—तुम लोग डरो मत, हम तुम्हें कोई दण्ड न देंगे। तुम खुशी से हर एक बात की जांच कर लो। कहो तो अपनी सेना की ठीक-ठीक गिनती बतला दूं, अपना रसद-सामान दिखला दूं। अगर देखभाल चुके हो तो लौट जाओ, और यदि अभी देखना शेष हो तो तुम्हें सहर्ष अनुमति देता हूं, खूब भली प्रकार देखभाल लो।

दोनों बहुत लज्जित हुए और जाकर रावण से बोले—महाराज ! आप रामचन्द्र से लड़ाई न करें। वह बड़े साहसी हैं। आप उन पर विजय नहीं पा सकते। उनकी सेना का एक-एक नायक हमारी एक-एक सेना के लिए पर्याप्त है। किन्तु रावण तो अपने बल के नशे में अन्धा हो रहा था। वह किसी के परामर्श को कब ध्यान में लाता था। बोला—तुम दोनों देशद्रोही हो। मेरे सामने से निकल जाओ। मैं ऐसे साहस-हीनों की सूरत देखना नहीं चाहता।

किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि रामचन्द्र ने समुद्र पर पुल बांध लिया तो उसका नशा हिरन हो गया। उस दिन उसे सारी रात नींद नहीं आयी

# लंका-कांड

# रावण के दरबार में अंगद

रामचन्द ने समुद्र को पार करके लंका पर घेरा डाल दिया। दुर्ग के चारों द्वारों पर चार बडे-बडे नायकों को खड़ा किया। सुग्रीव को सारी सेना का सेनापति बनाया। आप और लक्ष्मण सुग्रीव के साथ हो गये। तेज दौड़नेवालों को चुन-चुनकर समाचार लाने और ले जाने के लिए नियुक्त किया। जिस नायक को कोई आज्ञा देनी होती, इन्ही आदमियो द्वारा कहला भेजते थे। नगर के चारों द्वार बन्द हो गये। राक्षसो का बाहर निकलना दुर्गम हो गया। रसद का बाहर के देहातों से आना बन्द हो गया। लोग अन्दर भूखो मरने लगे।

रावण ने सोचा, अब तो रामचन्द्र की सेना लंका पर चढ़ आयी। मालूम नही, लड़ाई का फल क्या हो। एक बार सीता को सम्मत करने की अन्तिम चेष्टा कर लेनी चाहिए। अबकी उसने धमकी के बदले छल से काम लेने का निश्चय किया। एक कुशल कारीगर से रामचन्द्र की तस्वीर से मिलता-जुलता एक सिर बनवाया। वैसे ही धनुष और बाण बनवाये और इन चीजों को सीताजी के सामने ले जाकर बोला—यह लो, तुम्हारे पति का सिर है, जिस पर तुम जान देती थीं। मेरी सेना के एक आदमी ने इन्हे लड़ाई में मार डाला है और उनका सिर काटकर लाया है। रावण के बल का अनुमान तुम इसी से कर सकती हो। अब मेरा कहना मानो। मेरी रानी बन जाओ।

सीता धोखे में आ गयीं। सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। संसार उनकी आंखो मे अंधेरा हो गया। संयोग से विभीषण की पत्नी श्रमा उस समय अशोक-वाटिका में मौजूद थी। सीताजी का शोक-संताप सुनकर वह दौड़ी आयी और पूछने लगी, क्या बात है? रावण ने देखा, अब भेद खुलना चाहता है, तो तुरन्त बनावटी सिर और धनुष-बाण लेकर वहां से चल दिया। सीताजी ने रो-रोकर श्रमा से यह दुर्घटना बयान की। श्रमा हंसकर बोली—बहन, यह सब रावण की दगाबाजी है। वह सिर बनावटी होगा। तुम्हें छलने के लिए रावण ने यह चाल चली है। रामचन्द्र तो दुर्ग के चारों ओर घेरा डाले हुए है। लंका में खलबली मची हुई है। कोई दुर्ग के बाहर नही निकल सकता। यहां किसमे इतना बल है, जो रामचन्द्र से लड़ सके। उनके एक साधारण दूत ने लंकावालों के छक्के छुड़ा दिये, भला उन्हें कौन मार सकता है? श्रमा की बातों से सीताजी को आश्वासन मिला। समझ गयीं, यह रावण की दुष्टता थी।

उधर दुर्ग पर घेरा डाल करके रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा एक बार फिर रावण को समझाने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि समझाने से मान जाये तो क्या हो

विचार हुआ कि अंगद को दूत बनाकर भेजा जाये। अंगद ने बड़ी प्रसन्नता से यह बात स्वीकार कर ली। रावण अपने सभासदों के साथ दरबार में बैठा था कि अंगद जा धमके और ऊंची आवाज से बोले—ऐ राक्षसों के राजा, रावण! मैं राजा रामचन्द्र का दूत हूं। मेरा नाम अंगद है। मैं राजा बालि का पुत्र हूं। मुझे राजा रामचन्द्र ने यह कहने के लिए भेजा है कि या तो आज ही सीता को वापस कर दो, या किले के बाहर निकलकर युद्ध करो।

रावण घमण्ड से अकड़कर बोला—जाकर अपने छोकरे राजा से कह दे कि रावण उससे लड़ने को तैयार बैठा हुआ है। सीता अब यहां से नहीं जा सकती। उसका विचार छोड दें अन्यथा उनके लिए अच्छा न होगा। राक्षसों की सेना जिस समय मैदान में आयेगी, सुग्रीव और हनुमान दुम दबाकर भागते दिखायी देंगे। राक्षसों से अभी रामचन्द्र का पाला नहीं पड़ा है। हमने इन्द्र तक से लोहा मनवा लिया है। यह पहाड़ी चूहे किस गिनती में है।

अंगद—जिन लोगों को तुम पहाड़ी चूहा कहते हो, वह तुम्हारी एक-एक सेना के लिए अकेले काफी हैं। यदि तुम उनके बल की परीक्षा लेना चाहते हो, तो उन्हीं पहाड़ी चूहों में से एक तुच्छ चूहा तुम्हारे दरबार में खड़ा है, उसकी परीक्षा कर लो। खेद है कि इस समय मैं राजदूत हूं और दूत हथियार से काम नहीं ले सकता, अन्यथा इसी समय दिखा देता कि पहाड़ी चूहे किस गजब के होते हैं। है इस दरबार में कोई योद्धा, जो मेरे पैर को पृथ्वी से हटा दे? जिसे दावा हो, निकल आये।

अंगद की यह ललकार सुनकर कई सूरमा उठे और अंगद का पैर उठाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया, किन्तु जौ भर भी न हटा सके। अपना-सा मुह लेकर अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे। तब रावण स्वयं सिंहासन से उठा और अंगद के पैर पर झुक-कर उठाना चाहता था कि अंगद ने पैर खींच लिया और बोले—अगर पैरों पर सिर झुकाना है तो रामचन्द्र के पैरों पर सिर झुकाओ। मेरे पैर छूने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। रावण लज्जित होकर अपनी जगह पर जा बैठा।

अंगद अपना संदेश सुना ही चुके थे। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि रावण पर किसी के समझाने का प्रभाव न होगा, तो वह रामचन्द्र के पास लौट आये और सारा वृत्तांत कह सुनाया।

## मेघनाद

आखिर दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। दिन भर तलवारें चलती रहीं। रात को भी लड़ने वालों ने दम न लिया। मृत शरीरों के ढेर लग गये। रक्त की नदियां बह गयीं। की सेना इतनी वीरता से लड़ी कि राक्षसों की हिम्मत टूट गयी रावण जिस

सेना को भेजता, वही घण्टे-दो घण्टे में जान लेकर भागती। यहां तक कि उसने झल्लाकर अपने लड़के मेघनाद को भेजा। मेघनाद बड़ा वीर था। उसे इन्द्रजीत का उपनाम मिला हुआ था। राक्षसों को उस पर गर्व था।

मेघनाद के क्षेत्र में आते ही लड़ाई का रंग बदल गया। कहां तो राक्षस लोग मैदान से भाग रहे थे, कहां अब रामचन्द्र की सेना में भगदड़ मच गयी। मेघनाद ने बाणो की ऐसी वर्षा की कि आकाश काला हो गया। लक्ष्मण ने अपनी सेना को दबते देखा तो धनुष और बाण लेकर मैदान में निकल आये। मेघनाद लक्ष्मण को देखकर और भी उत्साह से गरजने लगा और बोला—आज तुम्हारी मृत्यु मेरे हाथों लिखी है। तुमसे लडने की बहुत दिनों से कामना थी। आज वह पूरी हो गई। लक्ष्मण ने उत्तर दिया—हार और जीत ईश्वर के हाथ है। डींग मारना वीरों का काम नहीं। किन्तु सम्भवतः तुम भी जीवित घर न लौटोगे। मेघनाद ने जोश मे आकर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र काम में लाना प्रारम्भ किये। कभी कोई विषैला बाण चला देता, कभी गदा लेकर पिल पड़ता। किन्तु लक्ष्मण भी कम वीर न थे। वह उसके सारे आक्रमणों को अपने बाणों से व्यर्थ कर देते थे। यहां तक कि उन्होंने उसके रथ, रथवान, घोड़े, सबको बाणों से छेद डाला। मेघनाद पैदल लड़ने लगा। अब उसे अपनी जान बचाना कठिन हो गया। चाहता था कि तनिक दम लेने का अवकाश मिले तो दूसरा रथ लाऊं; मगर लक्ष्मण इतनी तेजी से बाण चलाते थे कि उसे हिलने का भी अवकाश न मिलता था। आखिर उसने भयानक होकर शक्ति-बाण चला दिया। यह बाण इतना घातक था कि इससे घायल तुरन्त मर जाता था। वह बाण लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मेघनाद प्रसन्नता से मतवाला हो गया। उसी समय भागा हुआ रावण के पास गया और बोला—दो भाइयों में से एक को तो मैंने ठण्डा कर दिया। ऐसा शक्ति-बाण मारा है कि बच नही सकता। कल दूसरे भाई को मार लूंगा। बस, युद्ध का अन्त हो जायेगा। रावण ने बेटे को छाती से लगा लिया।

उधर रामचन्द्र की सेना में कुहराम मच गया। हनुमान ने मूर्च्छित लक्ष्मण को गोद में उठाया और रामचन्द्र के पास लाये। राम ने लक्ष्मण की यह दशा देखी तो बलात् आंखों से आंसू जारी हो गये। रो-रोकर कहने लगे—हाय लक्ष्मण! तुम मुझे छोड़कर कहां चले गये? हाय! मुझे क्या ज्ञात था कि तुम यों मेरा साथ छोड़ दोगे, नही तो मैं पिता की आज्ञा को रद्द कर देता, कभी वन की ओर पग न उठाता। अब मैं कौन मुह लेकर अयोध्या जाऊंगा। पत्नी के पीछे भाई की जान गंवाकर किसको मुह दिखाऊंगा। पत्नी तो फिर भी मिल सकती है, पर भाई कहां मिलेगा। हाय! मैंने सदैव के लिए अपने माथे पर कलंक लगा लिया। जामवन्त अभी तक कहीं लड़ रहा था। राम का विलाप सुनकर दौड़ा हुआ आया और लक्ष्मण को ध्यान से देखने लगा। बूढ़ा अनुभवी आदमी था। कितनी ही लड़ाइयां देख चुका था। बोला—महाराज! आप इतने निराश क्यों होते हैं? लक्ष्मणजी अभी जीवित है। केवल मूर्च्छित हो गये हैं। विष सारे शरीर मे दौड़ गया है। यदि कोई चतुर वैद्य मिल जाये तो अभी जहर उतर जाये और यह उठ बैठें। वैद्य की तलाश करनी चाहिए। विभीषण से कहा। शहर में सुखेन नाम का एक

वैद्य रहता है। विष की चिकित्सा करने में वह बहुत दक्ष है। उसे किसी प्रकार बुलाना चाहिए। हनुमान ने कहा—मैं जाता हूं, उसे लिये आता हूं। विभीषण से सुखेन के मकान का पता पूछकर वह वेश बदलकर शहर में जा पहुंचे और सुखेन से यह हाल कहा। सुखेन ने कहा—भाई, मैं वैद्य हूं। रावण के दरबार से मेरा भरण-पोषण होता है। उसे यदि ज्ञात हो जायेगा कि मैंने लक्ष्मण की चिकित्सा की है, तो मुझे जीवित न छोड़ेगा।

हनुमान ने कहा—आपको ईश्वर ने जो निपुणता प्रदान की है, उससे हर एक आदमी को लाभ पहुंचाना आपका कर्तव्य है। भय के कारण कर्तव्य से मुह मोड़ना आप-जैसे वयोवृद्ध के लिए उचित नहीं।

सुखेन निरुत्तर हो गया। उसी समय हनुमान के साथ चल खड़ा हुआ। बुढ़ापे के कारण वह तेज न चल सकता था, इसलिए हनुमान ने उसे गोद में उठा लिया और भागते हुए अपनी सेना में आ पहुंचे। सुखेन ने लक्ष्मण की नाड़ी देखी, शरीर देखा और बोला—अभी बचने की आशा है। संजीवनी बूटी मिल जाये तो बच सकते हैं। किन्तु सूर्य निकलने के पहले बूटी यहा आ जानी चाहिए। अन्यथा जान न बचेगी।

जामवन्त ने पूछा—संजीवनी बूटी मिलेगी कहां ?

सुखेन बोला—उत्तर की ओर एक पहाड़ है, वहीं यह बूटी मिलेगी।

बारह घंटे के अन्दर वहां जाना और बूटी खोजकर लाना सरल काम न था। सब एक-दूसरे का मुंह ताकते थे। किसी को साहस न होता था कि जाने को तैयार हो। आखिर रामचन्द्र ने हनुमान से कहा—मित्र ! कठिनाई तुम्हीं सरल बना सकते हो। तुम्हारे सिवा मुझे दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। हनुमान को आज्ञा मिलने की देर थी। सुखेन से बूटी का पता पूछा और आंधी की तरह दौड़े। कई घण्टों में वे उस पहाड़ पर जा पहुंचे; किन्तु रात के समय बूटी की पहचान न हो सकी। बहुत-सी घास-पात एकत्रित थी। हनुमान ने उन सबों को उखाड़ लिया और उल्टे पैरों लौटे।

इधर सब लोग बैठे हनुमान की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक-एक पल की गिनती की जा रही थी। अब हनुमान अमुक स्थान पर पहुंचे होंगे, अब वहां से चले होंगे, अब पहाड़ पर पहुंचे होंगे, इस प्रकार अनुमान करते-करते तड़का हो गया, किन्तु हनुमान का कहीं पता नहीं। रामचन्द्र घबराने लगे। एक घंटे में हनुमान न आ गये तो अनर्थ हो जायेगा। कई आदमी उन्हें देखने के लिए छूटे, कई आदमी वृक्षों पर चढ़कर उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाने लगे, पर हनुमान का कहीं निशान नहीं ! अब केवल आध घंटे की और अवधि है। इधर लक्ष्मण की दशा पल-पल पर खराब होती जाती थी। रामचन्द्र निराश होकर फिर रोने लगे कि एकाएक अगद ने आकर कहा—महाराज ! हनुमान दौडा चला आ रहा है। बस आया ही चाहता है। रामचन्द्र का चेहरा चमक उठा। वह अधीर होकर स्वयं हनुमान की ओर दौड़े और उसे छाती से लगा लिया। हनुमान ने घास-पात का एक ढेर सुखेन के सामने रख दिया। सुखेन ने इसमें से संजीवनी बूटी निकाली और तुरन्त लक्ष्मण के घाव पर इसका लेप किया। बूटी ने अक्सीर का काम किया। देखते-देखते घाव भरने लगा। लक्ष्मण की आंखें खुल गयी। एक घण्टे मे वह उठ बैठे और दोपहर तक तो बातें करने लगे सेना मे हर्ष के नारे लगाये गय

# कुम्भकर्ण

रावण ने जब सुना कि लक्ष्मण स्वस्थ हो गये तो मेघनाद से बोला—लक्ष्मण तो शक्ति-बाण से भी न मरा। अब क्या युक्ति की जाये? मैंने तो समझा था, एक का काम तमाम हो गया, अब एक ही और बाकी है, किन्तु दोनों-के-दोनो फिर से संभल गये।

मेघनाद ने कहा—मुझे भी बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि लक्ष्मण कैसे बच गया। शक्ति-बाण का घाव तो घातक होता है। इक्कीस घंटे के अन्दर आदमी मर जाता है। अवश्य उन लोगों को संजीवनी बूटी मिल गयी। खैर, फिर समझूंगा, जाते कहां हैं। आज ही दोनों को ढेर कर देता, लेकिन कल का थका हुआ हूं। मैदान में न जा सकूंगा। आज चाचा कुम्भकरण को भेज दीजिये।

कुम्भकर्ण रावण का भाई था। ऐसा डील-डौल दूसरे सूरमा राक्षसों में न था। उसे देखकर हाथी का-सा आभास होता था। वीर ऐसा था कि कोई उसका सामना करने का साहस न कर सकता था। किन्तु जितना ही वह वीर था, उतना ही प्रमादी और विलासी था। रात-दिन शराब के नशे में मस्त पड़ा रहता। लंका पर आक्रमण हो गया, हजारों आदमी मारे जा चुके, पर उसे अब तक कुछ खबर न थी कि कहां क्या हो रहा है। रावण उसके पास पहुंचा तो देखा कि वह उस समय भी बेहोश पड़ा हुआ है। शराब की बोतल सामने पड़ी हुई थी। रावण ने उसका कन्धा पकड़कर जोर से हिलाया, तब उसकी आंखें खुली। बोला—कैसे आराम की नींद ले रहा था, आपने व्यर्थ जगा दिया।

रावण ने कहा—भैया, अब सोने का समय नहीं रहा। रामचन्द्र ने लंका पर घेरा डाल लिया। हमारे कितने ही आदमी काम आ चुके। मेघनाद कल लड़ा था, पर आज थका हुआ है। अब तुम्हारे सिवा और कोई दूसरा सहायक नही दिखायी देता।

यह सुनते ही कुम्भकर्ण संभलकर उठ बैठा। हथियार बांधे और मैदान की ओर चल खड़ा हुआ। उसे मैदान में देखकर हनुमान, अंगद, सुग्रीव सब-के-सब दहल उठे। आदमी क्या पूरा देव था। साधारण सैनिक तो उसकी भयानक आकृति ही देखकर भाग खड़े हुए। कितने ही नायकों को उसने आहत कर दिया। आखिर रामचन्द्र स्वयं उससे लड़ने को तैयार हुए। उन्हें देखते ही कुम्भकर्ण ने भाले का वार किया। मगर रामचन्द्र ने वार खाली कर दिया और दो तीर इतनी फुर्ती से चलाये कि उसके दोनों हाथ कट गये। तीसरा तीर उसके सीने में लगा। काम तमाम हो गया। राक्षस-सेना ने अपने नायक को गिरते देखा तो भाग खड़े हुए। इधर रामचन्द्र की सेना में खुशी मनायी जाने लगी।

रावण को जब यह समाचार मिला तो सिर पीटकर रोने लगा। कुम्भकर्ण से उसे बड़ी आशा थी। वह धूल में मिल गई। भाई के शोक में बड़ी देर तक विलाप करता रहा।

# मेघनाद का मारा जाना

दूसरे दिन मेघनाद बड़े सजधज से मैदान में आया। उसने दोनों भाइयों को मार गिराने का निश्चय कर लिया था। सारी रात देवी की पूजा करता रहा था। उसे अपने बल और शौर्य का बड़ा अभिमान था। रावण की सारी आशायें आज ही की लड़ाई पर निर्भर थी। लंका में पहले से ही विजय का उत्सव मनाने की तैयारियां होने लगीं। मेघनाद ने मैदान में आकर डंके पर चोट दिलवाई तो विभीषण ने उसके सामने जाकर कहा— मेघनाद, मैं जानता हूं कि बल और साहस में तुम अपना समान नहीं रखते, किन्तु औचित्य की सदैव जीत हुई है और सदैव होगी। मेरा कहना मानो, चलकर रामचन्द्र से संधि कर लो। वह तुम्हें क्षमा कर देंगे।

मेघनाद ने क्रोध से आंखें निकालकर कहा—चचा साहब, तुम्हें लाज नहीं आती कि मुझे समझाने आये हो! देशद्रोह से बढ़कर संसार में दूसरा अपराध नहीं। जो आदमी शत्रु से मिलकर अपने घर और अपने देश का अहित करता है, उसकी सूरत देखना भी पाप है। आप मेरे सामने से चले जाइये।

विभीषण तो उधर लज्जित होकर चला गया, इधर लक्ष्मण ने सामने आकर मेघनाद को युद्ध का निमंत्रण दिया। लक्ष्मण को देखकर मेघनाद बोला—अभी दो-चार दिन घाव की मरहम पट्टी और करवा लेते, कहीं आज घाव फिर न ताजा हो जाये। जाकर अपने बड़े भाई को भेज दो।

लक्ष्मण ने धनुष पर बाण चढ़ाकर कहा—ऐसे-ऐसे घावों की वीर लोग लेशमात्र चिंता नहीं करते। आज एक बार फिर हमारी और तुम्हारी हो जाए। तनिक देख लो कि शेर घायल होकर कितना भयावह हो जाता है। बड़े भाई साहब का मुकाबला तो तुम्हारे पिता ही से होगा।

दोनों वीरों ने तीर चलाने शुरू कर दिये। धन्-धन्, तन्-तन् की आवाजें आने लगी। मेघनाद पहले तो विजयी हुआ, लक्ष्मण का उसके वारों को काटना कठिन हो गया, किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, लक्ष्मण संभलते गए, और मेघनाद कमजोर पड़ता जाता था, यहां तक कि लक्ष्मण उस पर विजयी हो गये और एक बाण उसकी गर्दन पर ऐसा मारा कि उसका सिर कटकर अलग जा गिरा।

मेघनाद के गिरते ही राक्षसों के हाथ-पांव फूल गए। भगदड पड़ गई। रावण ने यह समाचार सुना तो उसके मुंह से ठंडी सांस निकल गयी। आंखों में अंधेरा छा गया। प्रतिशोध की ज्वाला से वह पागल हो गया। राम और लक्ष्मण तो उसके वश के बाहर थे, सीताजी का वध कर डालने के लिए तैयार हो गया। तलवार लेकर दौड़ता हुआ अशोक-वाटिका में पहुंचा। सीताजी ने उसके हाथ में नंगी तलवार देखी, तो सहम उठी; किन्तु रावण का मंत्री बड़ा बुद्धिमान था। वह भी उसके पीछे-पीछे दौड़ता चला गया था। रावण को एक अबला स्त्री की जान पर उद्यत देखकर बोला—महाराज, धृष्टता क्षमा हो स्त्री पर हाथ उठाना आपकी मर्यादा के विरुद्ध है आप वेदों के पंडित हैं साहस और वीरता में आज संसार में आपका समान नहीं अपने पद और शान का ध्यान कीजिये

और इस कर्म से विमुख होइये। इन बातों ने रावण का क्रोध ठंडा कर दिया। तलवार म्यान में रख ली और लौट आया।

उसी समय मेघनाद की पतिव्रता स्त्री सुलोचना ने आकर कहा—महाराज, अब मैं जीवित रहकर क्या करूंगी। मेरे पति का सिर मंगवा दीजिये, उसे लेकर मैं सती हो जाऊंगी।

रावण ने आंखों में आंसू भरकर कहा—बेटी, तेरे पति का सिर तुझे उसी समय मिलेगा, जब मैं दोनों भाइयों का सिर काट लूंगा धैर्य रख।

सुलोचना अपनी सास मंदोदरी के पास आयी। दोनों सास-बहुएं गले मिलकर खूब रोईं। तब सुलोचना बोली—माताजी मैं अब अनाथ हो गई। मेरे पति का सिर मगवा दीजिये, तो सती हो जाऊं। अब जीकर क्या करूंगी। जहां स्वामी हैं वहीं मैं भी जाऊंगी। यह वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता।

मंदोदरी ने बहू को प्यार करके कहा—बेटी, यदि तुमने यही निश्चय किया है, तो शुभ हो। मेघनाद का सिर और तो किसी प्रकार न मिलेगा, तुम जाकर स्वयं मांगो तो भले ही मिल सकता है। रामचन्द्र बड़े नेक आदमी हैं। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी मांग को अस्वीकार न करेंगे।

सुलोचना उसी समय राजमहल से निकलकर रामचन्द्र की सेना में आयी और रामचन्द्र के सम्मुख जाकर बोली—महाराज! एक अनाथ विधवा आपसे एक प्रार्थना करने आयी है, उसे स्वीकार कीजिये। मेरे पति वीर मेघनाद का सिर मुझे दे दीजिये।

रामचन्द्र ने तुरन्त मेघनाद का सिर सुलोचना को दिलवा दिया और उसके थोड़ी ही देर बाद सुलोचना सती हो गयी। चिता की लपट आकाश तक पहुंची। किसी ने चाहे सुलोचना को जाते न देखा, पर वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गयी।

# रावण युद्ध-क्षेत्र में

रात भर तो रावण शोक और क्रोध से जलता रहा। सवेरा होते ही मैदान की तरफ चला। लंका की सारी सेना उसके साथ थी। आज युद्ध का निर्णय हो जायेगा, इसलिए दोनों ओर के लोग अपनी जानें हथेलियों पर लिये तैयार बैठे थे। रावण को मैदान में देखते ही रामचन्द्र स्वयं तीर और कमान लिये निकल आये। अब तक उन्होंने केवल रावण का नाम सुना था, अब उसकी सूरत देखी तो मारे क्रोध के आंखों से ज्वाला निकलने लगी। इधर रावण को भी अपने दो बेटों के रक्त का और अपनी बहन के अपमान का बदला लेना था। घमासान युद्ध होने लगा। रावण की बराबरी करने वाला लंका में तो क्या, की सेना में भी कोई न था। सुग्रीव अगद हनुमान इत्यादि वीर उस पर एक साथ भाले गदा और तीर चलाते थे नील और नल उस पर पत्थर मारते थे पर उसने

इतनी तेजी से तीर चलाये कि कोई सामने न ठहर सका। लक्ष्मण ने देखा कि रामचन्द्र उसके मुकाबले में अकेले रह जाते हैं तो वह भी आ खड़े हुए और तीरों की बौछार करने लगे। किन्तु रावण पहाड़ की नाईं अटल खड़ा सबके आक्रमणों का जवाब दे रहा था। आखिर उसने अवसर पाकर एक तीर ऐसा चलाया कि लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े, दूसरा तीर रामचन्द्र पर पड़ा; वह भी गिर पड़े; रावण ने तुरन्त तलवार निकाली और चाहता था कि रामचन्द्र का वध कर दे कि हनुमान ने लपककर उसके सीने में एक गदा इतनी जोर से मारी कि वह संभल न सका। उसका गिरना था कि राम और लक्ष्मण उठ बैठे। रावण भी होश में आ गया। फिर लड़ाई होने लगी। आखिर रामचन्द्र का एक तीर रावण के सीने में घुस गया। रक्त की धारा बह निकली। उसकी आंखें बन्द हो गयी। रथवान ने समझा, रावण का काम तमाम हो गया। रथ को भगाकर नगर की ओर चला। रास्ते में रावण को होश आ गया। रथ को नगर की ओर जाते देखकर क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसी समय रथ को मैदान की ओर ले चलने की आज्ञा दी।

संयोग से उसी समय विभीषण सामने आ गया। रावण ने उसे देखते ही भाले से वार किया। चाहता था कि उसकी धोखेबाजी का दण्ड दे दे। किन्तु लक्ष्मण ने एक तीर चलाकर भाले को काट डाला। विभीषण की जान बच गयी। अबकी रावण ने अग्नि-बाण छोड़ने शुरू किये। इन बाणों से अग्नि की लपटें निकलती थी। रामचन्द्र की सेना मे खलबली मच गयी। किन्तु रावण के सीने में जो घाव लगा था उससे वह प्रत्येक क्षण निर्बल होता जाता था, यहा तक कि उसके हाथ से धनुष छूटकर गिर पड़ा। उस समय रामचन्द्र ने कहा---राजा रावण, अब तुम्हें ज्ञात हो गया कि हम लोग उतने निर्बल नहीं है, जितना तुम समझते थे? तुम्हारा सारा परिवार तुम्हारी मूर्खता का शिकार हो गया। क्या अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलीं। अब भी यदि तुम अपनी दुष्टता छोड़ दो तो हम तुम्हे क्षमा कर देंगे।

रावण ने संभलकर धनुष उठा लिया और बोला—क्या तुम समझते हो कि कुम्भकर्ण और मेघनाद के मारे जाने से मैं डर गया हूं? रावण को अपने साहस और बल का भरोसा है। वह दूसरों के बल पर नहीं लड़ता। वीरों की संतान लड़ाई में मरने के सिवा और होती ही किसलिए है। अब संभल जाओ, मैं फिर वार करता हूं।

किन्तु यह केवल गीदड़-भभकी थी। रामचन्द्र ने अबकी जो तीर मारा, वह फिर रावण के सीने में लगा। एक घाव पहले लग चुका था, इस दूसरे घाव ने अन्त कर दिया। रावण रथ के नीचे गिर पड़ा और तड़प-तड़पकर जान दे दी। अत्याचारी था, अन्यायी था, नीच था; किन्तु वीर भी था। मरते समय भी धनुष उसके हाथ में था।

रावण को रथ से गिरते देख विभीषण दौड़कर उसके पास आ गया। देखा तो वह दम तोड़ रहा था। उस समय भाई के रक्त ने जोश मारा। विभीषण रावण के रक्त-कुण्ठित मृत शरीर से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगा। इतने में रावण की रानी मंदोदरी और दूसरी रानियां भी आकर विलाप करने लगीं। रामचन्द्र ने उन्हें समझाकर विदा किया। सैनिकों ने चाहा कि चलकर लंका को लूटें, किन्तु रामचन्द्र ने उन्हें मना किया। हारे हुए शत्रु के साथ वे किसी प्रकार की ज्यादती नहीं करना चाहते थे

# विभीषण का राज्याभिषेक

एक दिन वह था कि विभीषण अपमानित होकर रोता हुआ निकला था, आज वह विजयी होकर लंका में प्रविष्ट हुआ। सामने सवारों का एक समूह था। प्रकार-प्रकार के बाजे बज रहे थे। विभीषण एक सुन्दर रथ पर बैठे हुए थे, लक्ष्मण भी उनके साथ थे। पीछे सेना के नामी सूरमा अपने-अपने रथों पर शान बैठे हुए चले जा रहे थे। आज विभीषण का नियमानुसार राज्याभिषेक होगा। वह लंका की गद्दी पर बैठेंगे। रामचन्द्र ने उनको वचन दिया था उसे पूरा करने के लिए लक्ष्मण उनके साथ जा रहे हैं। शहर में ढिंढोरा पिट गया है कि अब राजा विभीषण लंका के राजा हुए। दोनों ओर छतों से उन पर फूलों की वर्षा हो रही है। धनी-मानी नजरें उपस्थित करने की तैयारियां कर रहे हैं। सब बन्दियों की मुक्ति की घोषणा कर दी गयी है। रावण का कोई शोक नहीं करता। सभी उसके अत्याचार से पीड़ित थे। विभीषण का सभी यश गा रहे हैं।

विभीषण को गद्दी पर बिठाकर रामचन्द्र ने हनुमान को सीता के पास भेजा। विभीषण पालकी लेकर पहले ही से उपस्थित थे। सीताजी के हर्ष का कौन अनुमान कर सकता है। इतने दिनों के कैद के बाद आज उन्हें आजादी मिली है। मारे हर्ष के उन्हें मूर्च्छा आ गयी, जब चेतना आयी तो हनुमान ने उनके चरणों पर सिर झुका कर कहा—माता! श्री रामचन्द्रजी आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। वह स्वयं आते, किन्तु नगर में आने से विवश हैं। सीताजी खुशी-खुशी पालकी पर बैठी। रामचन्द्र से मिलने की खुशी में उन्हें कपड़ों की भी चिन्ता न थी। किन्तु विभीषण की रानी श्रमा ने उनके शरीर पर उबटन मला, सिर में तेल डाला, बाल गूंथे, बहुमूल्य साड़ी पहनायी और विदा किया। सवारी रवाना हुई। हजारों आदमी साथ थे।

रामचन्द्र को देखते ही सीताजी की आंखों से खुशी के आंसू बहने लगे। वह पालकी से उतरकर उनकी ओर चली। रामचन्द्र अपनी जगह पर खड़े रहे। उनके चेहरे से खुशी नहीं जाहिर हो रही थी, बल्कि रंज जाहिर होता था। सीता निकट आ गयी। फिर भी वह अपनी जगह पर खड़े रहे। तब सीताजी उनके हृदय की बात समझ गयी। वह उनके पैरों पर नहीं गिरीं, सिर झुकाकर खड़ी हो गयीं। उनके आंखों से आंसू बहने लगे।

एक मिनट के बाद सीताजी ने लक्ष्मण से कहा—भैया, खड़े क्या देखते हो। मेरे लिए एक चिता तैयार कराओ। जब स्वामी जी को मुझसे घृणा है, तो मेरे लिए आग की गोद के सिवा और कोई स्थान नहीं। दर्शन हो गये, मेरे लिए यही सौभाग्य की बात है। हाय! क्या सोच रही थी, और क्या हुआ।

यह बात न थी कि रामचन्द्र को सीताजी पर किसी प्रकार का संदेह था। वह भली प्रकार जानते थे कि सीताजी ने कभी रावण से सीधे मुंह बात नहीं की। सदैव उससे घृणा करती रही। किन्तु संसार को निर्मल-हृदयता पर कैसे विश्वास आता? सीता जी भी मन में यह बात भली प्रकार समझती थी। इसलिए उन्होंने अपने विषय में कुछ भी न कहा जान ने के लिए तैयार हो गयीं रामच द्र का कलेजा फटा जाता था किन्तु

विवश थे।

तनिक देर में चिता तैयार हो गयी। उसमें आग दी गयी, लपटें उठने लगी। सीताजी ने रामचन्द्र को प्रणाम किया और चिता में कूदने चलीं। वहां सारी सेना एकत्रित थी। सीताजी को आग की ओर बढ़ते देखकर चारों ओर शोर मच गया। सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे—हमको सीताजी पर किसी प्रकार का संदेह नहीं है! वह देवी है, हमारी माता है, हम उनकी पूजा करते हैं। हनुमान, अंगद, सुग्रीव इत्यादि सीताजी का रास्ता रोककर खड़े हो गए। उस समय रामचन्द्र को विश्वास हुआ कि अब सीताजी की पवित्रता पर किसी को संदेह नहीं। उन्होंने आगे बढ़कर सीताजी को छाती से लगा लिया। सारा क्षेत्र हर्ष ध्वनि से गूंज उठा।

# अयोध्या की वापसी

रामचन्द्र ने लंका पर जिस आशय से आक्रमण किया था, वह पूरा हो गया। सीताजी छुड़ा ली गयीं, रावण को दण्ड दिया जा चुका। अब लंका में रहने की आवश्यकता न थी। रामचन्द्र ने चलने की तैयारी करने का आदेश दिया। विभीषण ने जब सुना कि रामचन्द्र जा रहे है तो आकर बोला—महाराज! मुझसे कौन-सा अपराध हुआ जो आपने इतने शीघ्र चलने की ठान ली? भला दस-पांच दिन तो मुझे सेवा करने का अवसर दीजिये। अभी तो मैं आपका कुछ आतिथ्य कर ही न सका।

रामचन्द्र ने कहा—विभीषण! मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की और कौन-सी बात हो सकती थी कि कुछ दिन तुम्हारे संसर्ग का आनन्द उठाऊं। तुम जैसे निर्मल हृदय पुरुष बड़े भाग्य से मिलते हैं। किन्तु बात यह है कि मैंने भरत से चौदहवें वर्ष पूरे होते ही लौट जाने का प्रण किया था। अब चौदह वर्ष पूरे होने में दो ही चार दिन का विलम्ब है। यदि मुझे एक दिन की भी देर हो गयी, तो भरत को बड़ा दुःख होगा। यदि जीवित रहा तो फिर कभी भेंट होगी। अभी तो अयोध्या तक पहुंचने में महीनों लगेंगे।

विभीषण—महाराज! अयोध्या तो आप दो दिन मे पहुंच जायेंगे।

रामचन्द्र—केवल दो दिन में? यह कैसे सम्भव है?

विभीषण—मेरे भाई रावण ने अपने लिए एक वायुयान बनवाया था। उसे पुष्पक विमान कहते हैं! उसकी चाल एक हजार मील प्रतिदिन है। बड़े आराम की चीज है। दस-बारह आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो आज के तीसरे दिन आप अयोध्या में होंगे। किन्तु मेरी इतनी प्रार्थना आपको स्वीकार करनी पड़ेगी! मैं भी आपके साथ चलूंगा। जहां आपके हजारों चाकर हैं। वहां मुझे भी एक चाकर समझिये।

उसी दिन पुष्पक-विमान आ गया। विचित्र और आश्चर्यजनक चीज थी। कल घुमाते ही हवा में उठकर उड़ने लगती थी बैठने की जगह अलग सोने की जगह अलग

हीरे-जवाहरात जड़े हुए। ऐसा मालूम होता था कि कोई उड़ने वाला महल है। रामचन्द्र इसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु जब चलने को तैयार हुए तो हनुमान, सुग्रीव अंगद, नील, जामवन्त सभी नायकों ने कहा—महाराज! आपकी सेवा में इतने दिनों से रहने के बाद अब यह वियोग नहीं सहा जाता। यदि आप यहां नहीं रहते हैं तो हम लोगों को ही साथ लेते चलिये। वहां आपके राज्याभिषेक का उत्सव मनायेंगे, कौशल्या माता के दर्शन करेंगे, गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज इत्यादि के उपदेश सुनेंगे और आपकी सेवा करेंगे।

रामचन्द्र ने पहले तो उन्हें बहुत समझाया कि आप लोगों ने मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं, वही काफी हैं, अब और अधिक उपकारों के बोझ से न दबाइये। किन्तु जब उन लोगों ने बहुत आग्रह किया तो विवश होकर उन लोगों को भी साथ ले लिया। सब-के-सब विमान में बैठे और विमान हवा में उड़ चला। रामचन्द्र और सीता में बातें होने लगीं। दोनों ने अपने-अपने वृत्तांत वर्णन किये। विमान हवा में उड़ता चला जाता था। जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से जा रहे थे। रास्ते में जो प्रसिद्ध स्थान आते थे, उन्हें रामचन्द्र जी सीता जी को दिखा देते थे। पहले समुद्र दिखायी दिया। उस पर बंधा हुआ पुल देखकर सीता जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर वह स्थान आया, जहां रामचन्द्र ने बालि को मारा था। इसके बाद किष्किन्धापुरी दिखायी दी, रामचन्द्र ने कहा—जिस राजा सुग्रीव की सहायता से हमने लंका विजय की, उनका मकान यही है। सीताजी ने सुग्रीव की रानी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की, इसलिए विमान रोक दिया गया, और लोग सुग्रीव के घर उतरे। तारा ने सीता जी के गले में फूलों की माला पहनायी और अपने साथ महल में ले गयी। सुग्रीव ने अपने प्रतिष्ठित अतिथियों की अभ्यर्थना की और उन्हें दो-चार दिन रोकना चाहा, किन्तु रामचन्द्र कैसे रुक सकते थे। दूसरे दिन विमान फिर रवाना हुआ। सुग्रीव इत्यादि भी उस पर बैठकर चले। रामचन्द्र जी से उन लोगों को इतना प्रेम हो गया कि उनको छोड़ते हुए इन लोगों को दुःख होता था।

रामचन्द्र ने फिर सीता जी को मुख्य-मुख्य स्थान दिखाना प्रारम्भ किया। देखो, यह वह वन है जहां हम तुम्हें तलाश करते फिरते थे। अहा, देखो, वह छोटी-सी झोपड़ी जो दिखाई दे रही है वही शबरी का घर है। यहां रात भर हमने जो आराम पाया, उतना कभी अपने घर भी न पाया था। यह लो, वह स्थान आ गया जहां पवित्र जटायु से हमारी भेंट हुई थी। वह उसकी कुटी है। केवल दीवारें शेष रह गयी हैं। जटायु ने हमें तुम्हारा पता न बताया होता, तो शायद नहीं कहां-कहां भटकते फिरते। वह देखो पंचवटी है। वह हमारी कुटी है। कितना जी चाहता है कि चलकर एक बार उस कुटी के दर्शन कर लूं। सीताजी इस कुटी को देखकर रोने लगीं। आह! यहां से उन्हें रावण हर ले गया था। वह दिन, वह घड़ी कितनी अशुभ थी कि इतने दिनों तक उन्हें एक अत्याचारी की कैद में रहना पड़ा। रावण का वह साधुओं का-सा वेश उनकी आंखों में फिर गया। आंसू किसी प्रकार न थमते थे। कठिनता से रामचन्द्र ने उन्हें समझाकर चुप किया। विमान और आगे बढ़ा। अगस्त्य मुनि का आश्रम दिखायी दिया। रामचन्द्र ने उनके दर्शन किये रुकने का [illegible] न था इसलिए थोड़ी देर के बाद फिर विमान रवाना हुआ चित्रकूट

दिखायी दिया। सीताजी अपनी कुटी देखकर बहुत प्रसन्न हुइ। कुछ दर बाद प्रया दिखायी दिया। यहां भारद्वाज मुनि का आश्रम था। रामचन्द्र ने विमान को उतारने क आदेश दिया और मुनि जी की सेवा मे उपस्थित हुए। मुनि जी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ी देर तक रामचन्द्र उन्हें अपने वृत्तांत सुनाते रहे। फिर और बातें होने लगीं। रामचन्द्र ने कहा—महाराज! मुझे तो आशा न थी कि फिर आपके दर्शन होंगे किन्तु आपके आशीर्वाद से आज फिर आपके चरण-स्पर्श का अवसर मिल गया।

भारद्वाज बोले—बेटा! जब तुम यहां से जा रहे थे, उस समय मुझे जितना दुःख हुआ था, उससे कहीं अधिक प्रसन्नता आज तुम्हारी वापसी पर हो रही है।

राम—आपको अयोध्या के समाचार तो मिलते होंगे?

भारद्वाज—हां बेटा, वहां के समाचार बराबर मिलते रहते हैं। भरत तो अयोध्या से दूर एक गांव में कुटी बनाकर रहते हैं; किन्तु शत्रुघ्न की सहायता से उन्होंने बहुत अच्छी तरह राज्य का कार्य संभाला है। प्रजा प्रसन्न है। अत्याचार का नाम भी नहीं है। किन्तु सब लोग तुम्हारे लिए अधीर हो रहे हैं। भरत तो इतने अधीर हैं कि यदि तुम्हे एक दिन की भी देर हो गयी तो शायद तुम उन्हें जीवित न पाओ।

रामचन्द्र ने उसी समय हनुमान को बुलाकर कहा—तुम अभी भरत के पास जाओ, और उन्हें मेरे आने की सूचना दो। वह बहुत घबरा रहे होंगे। मैं कल सवेरे यहां से चलूंगा। यह आज्ञा पाते ही हनुमान अयोध्या की ओर रवाना हुए और भरत का पता पूछते हुए नन्दिग्राम पहुंचे। भरत ने ज्योंही यह शुभ समाचार सुना उन्हें मारे हर्ष के मूर्च्छा आ गयी। उसी समय एक आदमी भेजकर शत्रुघ्न को बुलवाया और कहा—भाई, आज का दिन बड़ा शुभ है कि हमारे भाई साहब चौदह वर्ष के देश-निकाले के बाद अयोध्या आ रहे हैं। नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि लोग अपने-अपने घर दीप जलायें और इस प्रसन्नता में उत्सव मनावें। सवेरे तुम उनके उत्सव का प्रबन्ध करके यहां आना। हम सब लोग भाई साहब की अगवानी करने चलेंगे।

दूसरे दिन सवेरे रामचन्द्र जी भारद्वाज मुनि के आश्रम से रवाना हुए। जिस अयोध्या की गोद में पले और खेले, उस अयोध्या के आज फिर दर्शन हुए। जब अयोध्या के बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली प्रासाद दिखायी देने लगे, तो रामचन्द्र का मुख मारे प्रसन्नता के चमक उठा—उसके साथ ही आंखों से आंसू भी बहने लगे। हनुमान से बोले—मित्र, मुझे संसार में कोई स्थान अपनी अयोध्या से अधिक प्रिय नहीं। मुझे यहां के कांटे भी दूसरी जगह के फूलों स अधिक सुन्दर मालूम होते है। वह देखो, सरयू नदी नगर को अपनी गोद में लिये कैसे बच्चों की तरह खिला रही है। यदि मुझे भिक्षुक बनकर भी यहां रहना पड़े तो दूसरी जगह राज्य करने से अधिक प्रसन्न रहूंगा। अभी वह यही बातें कर रहे थे कि नीचे हाथी, घोड़ों, रथों का जुलूस दिखायी दिया। सबके आगे भरत गेरुवे रंग की चादर ओढ़े, जटा बढ़ाये, नंगे पांव एक हाथ में रामचन्द्र की खड़ाऊं लिये चले आ रहे थे। उनके पीछे शत्रुघ्न थे। पालकियों में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी थीं। जुलूस के पीछे अयोध्या के लाखों आदमी अच्छे-अच्छे कपड़े पहने चले आ रहे थे। जुलूस को देखते ही रामचन्द्र [illegible] विमान [illegible] उतारा [illegible] आदमियों [illegible] ऐसा मालूम

हुआ कि कोई बड़ा पक्षी पर जोड़े उतर रहा है। कभी ऐसा विमान उनकी दृष्टि के सामने न आया था। किन्तु जब विमान नीचे उतर आया, लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि उस पर रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण और उनके नायक बैठे हुए हैं। जय-जय की हर्ष-ध्वनि से आकाश हिल उठा।

ज्योंही रामचन्द्र विमान से उतरे, भरत दौड़कर उनके चरणों से लिपट गये। उनके मुंह से शब्द न निकलता था। बस, आंखों से आंसू बह रहे थे। रामचन्द्र उन्हें उठाकर छाती से लगाना चाहते थे, किन्तु भरत उनके पैरों को न छोड़ते थे। कितना पवित्र दृश्य था! रामचन्द्र ने तो पिता की आज्ञा को मानकर वनवास लिया था, किन्तु भरत ने राज्य मिलने पर भी स्वीकार न किया, इसलिए कि वह समझते थे कि रामचन्द्र के रहते राज्य पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने राज्य ही नहीं छोड़ा, साधुओं का-सा जीवन व्यतीत किया, क्योंकि कैकेयी ने उन्हीं के लिए रामचन्द्र को वनवास दिया था। वह साधुओं की तरह रहकर अपनी माता के अन्याय का बदला चुकाना चाहते थे। रामचन्द्र ने बड़ी कठिनाई से उठाया और छाती से लगा लिया। फिर लक्ष्मण भी भरत से गले मिले। उधर सीता जी ने जाकर कौशल्या और दूसरी माताओं के चरणों पर सिर झुकाया। कैकेयी रानी भी वहां उपस्थित थी। तीनों सासों ने सीता को आशीर्वाद दिया। कैकेयी अब अपने किये पर लज्जित थी। अब उनका हृदय रामचन्द्र और कौशल्या की ओर से साफ हो गया था।

# रामचन्द्र की राजगद्दी

आज रामचन्द्र के राज्याभिषेक का शुभ दिन है। सरयू के किनारे मैदान में एक विशाल तम्बू खड़ा है। उसकी चोबें चांदी की हैं और रस्सियां रेशम की। बहुमूल्य गलीचे बिछे हुए हैं। तम्बू के बाहर सुन्दर गमले रखे हुए हैं। तम्बू की छत शीशे के बहुमूल्य सामानों से सजी हुई है। दूर-दूर से ऋषि-मुनि बुलाये गये हैं। दरबार के धनी-मानी और प्रतिष्ठित राजे आदर से बैठे हैं। सामने एक सोने का जड़ाऊ सिंहासन रखा हुआ है।

एकाएक तोपें दगीं, सब लोग संभल गये। विदित हो गया कि श्रीरामचन्द्र राजभवन से रवाना हो गए। उनके सामने घंटा और शंख बजाया जा रहा था। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान, सुग्रीव इत्यादि पीछे-पीछे चले आ रहे थे। रामचन्द्र ने आज राजसी पोशाक पहनी है और सीताजी के बनाव-सिंगार की तो प्रशंसा ही नहीं हो सकती।

ज्योंही यह लोग तम्बू में पहुंचे, गुरु वशिष्ठ ने उन्हें हवन-कुण्ड के सामने बैठाया। ब्राह्मणों ने वेद-मन्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया। हवन होने लगा। उधर राजमहल में मंगल के गीत गाये जाने लगे। हवन समाप्त होने पर गुरु वशिष्ठ ने रामचन्द्र के माथे पर

केशर का तिलक लगा दिया। उसी समय तोपों ने सलामियां दागीं, धनिकों ने नजरें उपस्थित कीं; कवीश्वरों ने कवित्त पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। रामचन्द्र और सीताजी सिंहासन पर शोभायमान हो गये। विभीषण मोरछल झलने लगा। सुग्रीव ने चोबदारों का काम संभाल लिया और हनुमान पंखा झलने लगे। निष्ठावान हनुमान की प्रसन्नता की थाह न थी। जिस राजकुमार को बहुत दिन पहले उन्होंने ऋष्यमूक पर्वत पर इधर-उधर सीता की तलाश करते पाया था, आज उसी को सीता जी के साथ सिंहासन पर बैठे देख रहे थे। इन्हें इस उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचाने में उन्होंने कितना भाग लिया था, अभिमानपूर्ण गौरव से वह फूले न समाते थे।

भरत बड़े-बड़े थालों में मेवे, अनाज भरे हुए थे। रुपयों का ढेर उनके सामने लगा था। ज्योंही रामचन्द्र और सीता सिंहासन पर बैठे, भरत ने दान देना प्रारम्भ कर दिया। उन चौदह वर्षों में उन्होंने बचत करके राजकोष मे जो कुछ एकत्रित किया था, वह सब किसी-न-किसी रूप में फिर प्रजा के पास पहुंच गया। निर्धनों को भी अशर्फियों की सूरत दिखाई दे गई। नंगों को शाल-दुशाले प्राप्त हो गये और भूखों को मेवों और मिठाइयों से सन्तुष्टि हो गई। चारों तरफ भरत की दानशीलता की धूम मच गई। सारे राज्य में कोई निर्धन न रह गया। किसानों के साथ विशेष छूट की गई। एक साल का लगान माफ कर दिया गया। जगह-जगह कुएं खुदवा दिये गये। बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। केवल वही मुक्त न किये गये जो छल और कपट के अभियुक्त थे। धनिकों और प्रतिष्ठितों को पदवियां दी गईं और थैलियां बांटी गयीं।

# उत्तर-कांड

# राम का राज्य

राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त होने के उपरान्त सुग्रीव, विभीषण, अंगद इत्यादि तो विदा हुए, किन्तु हनुमान को रामचन्द्र से इतना प्रेम हो गया था कि वह उन्हें छोड़कर जाने पर सहमत न हुए। लक्ष्मण, भरत इत्यादि ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु वह अयोध्या से न गए। उनका सारा जीवन रामचन्द्र के साथ ही समाप्त हुआ। वह सदैव रामचन्द्र की सेवा करने को तैयार रहते थे। बड़े से बड़ा कठिन काम देखकर भी उनका साहस मन्द न होता था।

रामचन्द्र के समय में अयोध्या के राज्य की इतनी उन्नति हुई, प्रजा इतनी प्रसन्न थी कि 'राम राज्य' एक कहावत हो गयी है। जब किसी समय की बहुत प्रशंसा करनी होती है, तो उसे 'राम-राज्य' कहते हैं। उस समय में छोटे-बड़े सब प्रसन्न थे, इसीलिए कोई चोरी न करता था। शिक्षा अनिवार्य थी, बड़े-बड़े ऋषि लड़कों को पढ़ाते थे, इसीलिए अनुचित कर्म न होते थे। विद्वान लोग न्याय करते थे इसलिए झूठी गवाहियां न बनायी जातीं थीं। किसानों पर सख्ती न की जाती थी, इसलिए वह मन लगाकर खेती करते थे। अनाज बहुतायत से पैदा होता था। हर एक गांव में कुयें और तालाब खुदवा दिए गए थे, नहरें बनवा दी गयी थीं, इसलिए किसान लोग आकाश-वर्षा पर ही निर्भर न रहते थे। सफाई का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। खाने-पीने की चीजों की कमी न थी। दूध-घी विपुलता से पैदा होता था, क्योंकि हर एक गांव में साफ चरागाहें थीं, इसलिए देश में बीमारियां न थीं। प्लेग, हैजा, चेचक इत्यादि बीमारियों के नाम भी कोई न जानता था। स्वस्थ रहने के कारण सभी सुन्दर थे। कुरूप आदमी कठिनाई से मिलता था, क्योंकि स्वास्थ्य ही सुन्दरता का भेद है। युवा मृत्युएं बहुत कम होती थीं, इसलिए अपनी पूरी आयु तक जीते थे। गली-गली अनाथालय न थे, इसलिए कि देश में अनाथ और विधवाएं थीं ही नहीं।

उस समय में आदमी की प्रतिष्ठा उसके धन या प्रसिद्धि के अनुसार न की जाती थी, बल्कि धर्म और ज्ञान के अनुसार। धनिक लोग निर्धनों का रक्त चूसने की चिन्ता में न रहते थे, न निर्धन लोग धनिकों को धोखा देते थे। धर्म और कर्तव्य की तुलना में स्वार्थ और प्रयोजन को लोग तुच्छ समझते थे। रामचन्द्र प्रजा को अपने लड़के की तरह मानते थे। प्रजा भी उन्हें अपना पिता समझती थी। घर-घर यज्ञ और हवन होता था।

केवल अपने [illegible] की बात न सुनते थे वह स्वयं भी प्राय वेश बदल कर अयोध्या और राज्य के दूसरे नगरों में घूमते रहते थे वह चाहते थे कि

प्रजा का ठीक-ठीक समाचार उन्हें मिलता रहे। ज्योंही वह किसी सरकारी पदाधिकारी की बुराई सुनते, तुरन्त उससे उत्तर मांगते और कड़ा दण्ड देते। सम्भव न था कि प्रजा पर कोई अत्याचार करे और रामचन्द्र को उसकी सूचना न मिले। जिस ब्राह्मण को धन की ओर झुकते देखते, तुरन्त उसका नाम वैश्यों में लिखा देते। उनके राज्य में यह सम्भव न था कि कोई तो धन और प्रतिष्ठा दोनों ही लूटे, और कोई दोनों में से एक भी न पाये।

कई साल इसी तरह बीत गये। एक दिन रामचन्द्र रात को अयोध्या की गलियों में वेश बदले घूम रहे थे कि एक धोबी के घर में झगड़े की आवाज सुनकर वे रुक गए और कान लगाकर सुनने लगे। ज्ञात हुआ कि धोबिन आधी रात को बाहर से लौटी है और उसका पति उससे पूछ रहा है कि तू इतनी रात तक कहां रही। स्त्री कह रही थी—यहीं पड़ोस में तो काम से गयी थी। क्या कैदी बनकर तेरे घर में रहूं? इस पर पति ने कहा—मेरे पास रहेगी तो तुझे कैदी बनकर ही रहना पड़ेगा, नहीं कोई दूसरा घर ढूंढ ले। मैं राजा नहीं हूं कि तू चाहे जो अवगुण करे, उस पर पर्दा पड़ जाय। यहां तो तनिक भी ऐसी-वैसी बात हुई तो बिरादरी से निकाल दिया जाऊंगा। हुक्का-पानी बन्द हो जायगा। बिरादरी को भोज देना पड़ जायगा। इतना किसके घर से लाऊंगा। तुझे अगर सैर-सपाटा करना है; तो मेरे घर से चली जा। इतना सुनना था कि रामचन्द्र के होश उड़ गये। ऐसा मालूम हुआ कि जमीन नीचे धंसी जा रही है। ऐसे-ऐसे छोटे आदमी भी मेरी बुराई कर रहे हैं! मैं अपनी प्रजा की दृष्टि में इतना गिर गया हूं! जब एक धोबी के दिल में ऐसे विचार पैदा हो रहे हैं तो भले आदमी शायद मेरा छुआ पानी भी न पियें। उसी समय रामचन्द्र घर की ओर चले और सारी रात इसी बात पर विचार करते रहे। कुछ बुद्धि काम न करती थी कि क्या करना चाहिए! इसके सिवा कोई युक्ति न थी कि सीताजी को अपने पास से अलग कर दे। किन्तु इस पवित्रता की देवी के साथ इतनी निर्दयता करते हुए उन्हें आत्मिक दुःख हो रहा था।

सवेरे रामचन्द्र ने तीनों भाइयों को बुलवाया और रात की घटना की चर्चा करके उनकी सलाह पूछी। लक्ष्मण ने कहा—उस नीच धोबी को फांसी दे देनी चाहिए, जिससे कि फिर किसी को ऐसी बुराई करने का साहस न हो।

शत्रुघ्न ने कहा—उसे राज्य से निकाल दिया जाय। उसकी बदजबानी की यही सजा है।

भरत बोले—बकने दीजिए। इन नीच आदमियों के बकने से होता ही क्या है। सीता से अधिक पवित्र देवी संसार में तो क्या, देवलोक में भी न होगी।

लक्ष्मण ने जोश से कहा—आप क्या कहते हैं, भाई साहब! इन टके के आदमियों का इतना साहस कि सीताजी के विषय में ऐसा असन्तोष प्रकट करें? ऐसे आदमी को अवश्य फांसी देनी चाहिए। सीताजी ने अपनी पवित्रता का प्रमाण उसी समय दे दिया जब वह चिता में कूदने को तैयार हो गयी।

रामचन्द्र ने देर तक विचार में डूबे रहने के बाद सिर उठाया और बोले—आप लोगों ने सोचकर परामर्श नहीं दिया क्रोध में आ गये धोबी को मार डालने से हमारी बदनामी दूर न होगी बल्कि और भी फैलेगी बदनामी को दूर करने का केवल एक

इलाज है, और वह है कि सीताजी का परित्याग कर दिया जाय। मैं जानता हूँ कि सीता लज्जा और पवित्रता की देवी हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उन्होंने रावण के घर में भी मेरे अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं किया, किन्तु मेरा विश्वास प्रजा के दिल में विश्वास नहीं पैदा कर सकता, तो उससे लाभ ही क्या। मैं अपने वंश में धब्बा लगते नहीं देख सकता। मेरा धर्म है कि प्रजा के सामने जीवन का ऐसा उदाहरण उपस्थित करूं जो समाज को और भी ऊंचा और पवित्र बनाये। यदि मैं ही लोक-निन्दा और बदनामी से न डरूंगा तो प्रजा इसकी कब परवाह करेगी और इस प्रकार जनसाधारण को सीधे और सच्चे मार्ग से हट जाना सरल हो जायगा। बदनामी से बढ़कर हमारे जीवन को सुधारने की कोई दूसरी ताकत नहीं है। मैंने जो युक्ति बतलायी, उसके सिवाय और कोई दूसरी युक्ति नहीं है।

तीनों भाई रामचन्द्र का यह वार्तालाप सुनकर सुन्न-सुन्न हो गये। कुछ जवाब न दे सके। हां, दिल में उनके बलिदान की प्रशंसा करने लगे। वह जानते हैं कि सीताजी निरपराध हैं, फिर भी समाज की भलाई के विचार से अपने ऊपर इतना बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। कर्तव्य के सामने, प्रजा की भलाई के सामने इन्हें उसकी भी परवाह नहीं है, जो इन्हें दुनिया में सबसे प्रिय है। शायद वह अपनी बुराई सुनकर इसी तरह प्रसन्नता से अपनी जान दे देते।

रामचन्द्र ने एक क्षण के बाद फिर कहा—हां, इसके सिवा अब कोई दूसरी युक्ति नहीं है। आज मुझे एक धोबी से लज्जित होना पड़ रहा है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता। भैया लक्ष्मण, तुमने बड़े कठिन अवसरों पर मेरी सहायता की है। यह काम भी तुम्हीं को करना होगा। मुझसे सीता से बात करने का साहस नहीं है। मैं उनके सामने जाने का साहस नहीं कर सकता। उनके सामने जाकर मैं अपना राष्ट्रीय कर्तव्य भूल जाऊंगा, इसलिए तुम आज ही सीताजी को किसी बहाने से लेकर चले जाओ। मैं जानता हूं कि निर्दयता करते हुए तुम्हारा हृदय तुमको कोसेगा; किन्तु याद रखो, कर्तव्य का मार्ग कठिन है। जो आदमी तलवार की धार पर चल सके, वही कर्तव्य के रास्ते पर चल सकता है।

यह आज्ञा देकर रामचन्द्रजी दरबार में चले गए। लक्ष्मण जानते थे कि यदि आज रामचन्द्र की आज्ञा का पालन न किया गया तो वह अवश्य आत्महत्या कर लेंगे। वह अपनी बदनामी कदापि नहीं सह सकते। सीताजी के साथ छल करते हुए उनका हृदय उनको धिक्कार रहा था, किन्तु विवश थे। जाकर सीताजी से बोले—भाभी! आप जंगलों की सैर का कई बार तकाजा कर चुकी हैं, मैं आज सैर करने जा रहा हूं। चाहिए, आपको भी लेता चलूं।

बेचारी सीता क्या जानती थीं कि आज यह घर मुझसे सदैव के लिए छूट रहा है! मेरे स्वामी मुझे सदैव के लिए वनवास दे रहे हैं! बड़ी प्रसन्नता से चलने को तैयार हो गयीं। उसी समय रथ तैयार हुआ, लक्ष्मण और सीता उस पर बैठकर चले। सीताजी बहुत प्रसन्न थीं। हर एक नयी चीज को देखकर प्रश्न करने लगती थीं यह क्या है, वह क्या चीज है? किन्तु लक्ष्मण [illegible]

से शब्द न निकलता था। बातें करते तो तुरंत पर्दा खुल जाता, क्योंकि उनकी आंखो में बार-बार आंसू भर आते थे। आखिर रथ गंगा के किनारे आ पहुंचा।

सीताजी बोलीं — तो क्या हम लोग आज जंगलों ही में रहेंगे? शाम होने को आयी, अभी तो किसी ऋषि-मुनि के आश्रम में भी नहीं गयी। लौटेंगे कब तक?

लक्ष्मण ने मुंह फेरे हुए उत्तर दिया—देखिये, कब तक लौटते हैं।

मांझी को ज्योंही रानी सीता के आने की सूचना मिली, वह राज्य की नाव खेता हुआ आया। सीता रथ से उतरकर नाव में जा बैठी, और पानी से खेलने लगी। जंगल की ताजी हवा ने उन्हें प्रफुल्लित कर दिया था।

# सीता-वनवास

नदी के पार पहुंचकर सीताजी की दृष्टि एकाएक लक्ष्मण के चेहरे पर पड़ी तो देखा कि उनकी आंखों से आंसू बह रहे हैं। वीर लक्ष्मण ने अब तक तो अपने को रोका था, पर अब आंसू न रुक सके। मैदान में तीरों को रोकना सरल है, आंसू को कौन वीर रोक सकता है।

सीताजी आश्चर्य से बोलीं—लक्ष्मण, तुम रो क्यों रहे हो? क्या आज वन को देखकर फिर वनवास के दिन याद आ रहे हैं?

लक्ष्मण और भी फूट-फूटकर रोते हुए सीताजी के पैरों पर गिर पड़े और बोले—नहीं देवी! इसलिए कि आज मुझसे अधिक भाग्यहीन, निर्दय पुरुष संसार में नहीं। क्या ही अच्छा होता, मुझे मौत आ जाती। मेघनाद की शक्ति ही ने काम तमाम कर दिया होता तो आज यह दिन न देखना पड़ता। जिस देवी के दर्शनों से जीवन पवित्र हो जाता है, उसे आज मैं वनवास देने आया हूं। हाय! सदैव के लिए!

सीताजी अब भी कुछ साफ-साफ न समझ सकीं। घबराकर बोलीं—भैया, तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी तबीयत तो अच्छी है? आज तुम रास्ते भर उदास रहे। ज्वर तो नहीं हो आया है।

लक्ष्मण ने सीताजी के पैरों पर सिर रगड़ते हुए कहा—माता! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं बिलकुल निरपराध हूं। भाई साहब ने जो आज्ञा दी है, उसका पालन कर रहा हूं। शायद इसी दिन के लिए मैं अब तक जीवित था। मुझसे ईश्वर को यही वधिक का काम लेना था। हाय!

सीताजी अब पूरी परिस्थिति समझ गयी। अभिमान से गर्दन उठाकर बोलीं—तो क्या स्वामीजी ने मुझे वनवास दे दिया है? मेरा कोई अपराध, कोई दोष? अभी रात को नगर में भ्रमण करने के पहले वह मेरे ही पास थे। उनके चेहरे पर क्रोध का निशान तक न था। फिर क्या बात हो गई? साफ साफ कहो मैं सुनना चाहती हूं और अगर

सुननेवाला हो तो उसका उत्तर भी देना चाहती हूं।

लक्ष्मण ने अभियुक्तों की तरह सिर झुकाकर कहा—माता ! क्या बतलाऊं, ऐसी बात है जो मेरे मुंह से निकल नहीं सकती। अयोध्या में आपके बारे में लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की बात कह रहे है। भाई साहब को आप जानती हैं, बदनामी से कितना डरते है। और मैं आप से क्या कहूं।

सीताजी की आंखों में न आंसू थे, न घबराहट, वह चुपचाप टकटकी लगाये गंगा की ओर देख रही थीं, फिर बोलीं—क्या स्वामी को भी मुझ पर संदेह है ?

लक्ष्मण ने जबान को दांतों से दबाकर कहा—नही भाभीजी, कदापि नहीं। उन्हें आपके ऊपर कण बराबर भी सन्देह नहीं है। उन्हें आपकी पवित्रता का उतना ही विश्वास है, जितना अपने अस्तित्व का। यह विश्वास किसी प्रकार नहीं मिट सकता, चाहे सारी दुनिया आप पर उंगली उठाये। किन्तु जन-साधारण की जबान को वह कैसे रोक सकते हैं। उनके दिल में आपका जितना प्रेम है, वह मैं देख चुका हूं। जिस समय उन्होंने मुझे यह आज्ञा दी है, उनका चेहरा पीला पड़ गया था, आंखों से आंसू वह रहे थे; ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई उनके सीने के अन्दर बैठा हुआ छुरियां मार रहा है। बदनामी के सिवा उन्हें कोई विचार नही है, न हो सकता है।

सीताजी की आंखों से आंसू की दो बड़ी-बड़ी बूंदें टप-टप गिर पड़ीं। किन्तु उन्होंने अपने को संभाला और बोलीं—प्यारे लक्ष्मण, अगर यह स्वामी का आदेश है तो मैं उनके सामने सिर झुकाती हूं। मैं उन्हें कुछ नहीं कहती। मेरे लिए यही विचार पर्याप्त है कि उनका हृदय मेरी ओर से साफ है। मैं और किसी बात की चिन्ता नहीं करती। तुम न रोओ भैया, तुम्हारा कोई दोष नहीं, तुम क्या कर सकते हो। मैं मरकर भी तुम्हारे उपकारों को नहीं भूल सकती। यह सब बुरे कर्मों का फल है, नहीं तो जिस आदमी ने कभी किसी जानवर के साथ भी अन्याय नहीं किया, जो शील और दया का देवता है, जिसकी एक-एक बात मेरे हृदय में प्रेम की लहरें पैदा कर देती थी, उसके हाथो मेरी यह दुर्गति होती ? जिसके लिए मैंने चौदह साल रो-रोकर काटे, वह आज मुझे त्याग देता ? यह सब मेरे खोटे कर्मों का भोग है। तुम्हारा कोई दोष नहीं। किन्तु तुम्ही दिल में सोचो, क्या मेरे साथ यह न्याय हुआ है ? क्या बदनामी से बचने के लिए किसी निर्दोष की हत्या कर देना न्याय है ? अब और कुछ न कहूंगी भैया, इस शोक और क्रोध की दशा में संभव है मुह से कोई ऐसा शब्द निकल जाय, जो न निकलना चाहिए। ओह ! कैसे सहन करूं ? ऐसा जी चाहता है कि इसी समय जाकर गंगा में डूब मरूं ! हाय ! कैसे दिल को समझाऊं ? किस आशा पर जीवित रहूं ? किसलिए जीवित रहूं यह पहाड़-सा जीवन क्या रो-रोकर काटूं ? स्त्री क्या प्रेम के बिना जीवित रह सकती है ? कदापि नहीं। सीता आज से मर गयी।

गंगा के किनारे के लम्बे-लम्बे वृक्ष सिर धुन रहे थे। गंगा की लहरें मानो रो रही थीं। अंधेरा भयानक आकृति धारण किये दौड़ा चला आता था। लक्ष्मण पत्थर की मूर्ति बने निश्चल खड़े थे मानो शरीर में प्राण ही नहीं सीता दो-तीन मिनट तक किसी विचार में डूबी रहीं फिर बोलीं—नहीं वीर लक्ष्मण अभी जान न दूंगी मुझे अभी एक

बहुत बड़ा कर्त्तव्य पूरा करना है। अपने बच्चे के लिए जिऊंगी। वह तुम्हारे भाई की थाती है। उसे उनको सौंप कर ही मेरा कर्तव्य पूरा होगा। अब वही मेरे जीवन का आधार होगा। स्वामी नहीं हैं, तो उनकी स्मृति ही से हृदय को आश्वासन दूंगी ! मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। अपने भाई से कह देना, मेरे हृदय में उनकी ओर से कोई दुर्भावना नहीं है। जब तक जिऊंगी, उनके प्रेम को याद करती रहूंगी। भैया ! हृदय बहुत दुर्बल हो रहा है। कितना ही रोकती हूं, पर रहा नहीं जाता। मेरी समझ में नहीं आता कि जब इस तपोवन के ऋषि-मुनि मुझसे पूछेंगे; तेरे स्वामी ने तुझे क्यों वनवास दिया है, तो क्या कहूंगी। कम-से-कम तुम्हारे भाई साहब को इतना तो बतला ही देना चाहिए था। ईश्वर की भी कैसी विचित्र लीला है कि वह कुछ आदमियों को केवल रोने के लिए पैदा करता है। एक बार के आंसू अभी सूखने भी न पाये थे कि रोने का यह नया सामान पैदा हो गया। हाय ! इन्हीं जंगलों में जीवन के कितने दिन आराम से व्यतीत हुए हैं। किन्तु अब रोना है और सदैव के लिए रोना है। भैया, तुम अब जाओ। मेरा विलाप कब तक सुनते रहोगे ! यह तो जीवन भर समाप्त न होगा। माताओं से मेरा नमस्कार कह देना। मुझसे जो कुछ अशिष्टता हुई हो उसे क्षमा करें। हां, मेरे पाले हुए हिरन के बच्चों की खोज-खबर लेते रहना। पिंजरे में मेरा हिरामन तोता पड़ा हुआ है। उसके दाने-पानी का ध्यान रखना। और क्या कहूं। ईश्वर तुम्हें सदैव कुशल से रखे। मेरे रोने-धोने की चर्चा अपने भाई साहब से न करना। नहीं शायद उन्हें दुःख हो। तुम जाओ। अंधेरा हुआ जाता है। अभी तुम्हें बहुत दूर जाना है।

लक्ष्मण यहां से चले, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हृदय के अन्दर आग-सी जल रही है। यह जी चाहता था कि सीताजी के साथ रहकर सारा जीवन उनकी सेवा करता रहूं। पग-पग, मुड़-मुड़कर सीता जी को देख लेते थे। वह अब तक वहीं सिर झुकाये बैठी हुई थी। जब अंधेरे ने उन्हें अपने पर्दे में छिपा लिया तो लक्ष्मण भूमि पर बैठ गये और बड़ी देर तक फूट-फूट कर रोते रहे। एकाएक निराशा में एक आशा की किरण दिखायी दी। शायद रामचन्द्र ने इस प्रश्न पर फिर विचार किया हो और वह सीताजी को वापस लेने को तैयार हों। शायद वह फिर उन्हें कल ही यह आज्ञा दें कि जाकर सीता को लिवा लाओ। इस आशा ने खिन्न और निराश लक्ष्मण को बड़ी सान्त्वना दी। वह वेग से पग उठाते हुए नौका की ओर चले।

## लव और कुश

जहां सीता जी निराशा और शोक में डूबी हुई रो रही थीं, उसके थोड़ी ही दूर पर ऋषि वाल्मीकि का आश्रम था। उस समय ऋषि सन्ध्या करने के लिए गंगा की ओर जाया करते थे। आज भी वह जब नियमानुसार चले तो मार्ग में किसी स्त्री के सिसकने की

आवाज कान में आयी। आश्चर्य हुआ कि इस समय कौन स्त्री रो रही है। समझे, शायद कोई लकड़ी बटोरने वाली औरत रास्ता भूल गयी हो! सिसकियों की आहट लेते हुए निकट आये तो देखा कि एक स्त्री बहुमूल्य कपड़े और आभूषण पहने अकेली रो रही है। पूछा—बेटी, तू कौन है और यहां बैठी क्यों रो रही है?

सीता ऋषि वाल्मीकि को पहचानती थी। उन्हें देखते ही उठकर उनके चरणों से लिपट गयी और बोली—भगवन्! मैं अयोध्या की अभागिनी रानी सीता हूं। स्वामी ने बदनामी के डर से मुझे त्याग दिया है! लक्ष्मण मुझे यहां छोड़ गये हैं!

वाल्मीकि ने प्रेम से सीता को अपने पैरों से उठा लिया और बोले—बेटी, अपने को अभागिनी न कहो। तुम उस राजा की बेटी हो, जिसके उपदेश से हमने ज्ञान सीखा है। तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे। जब तक मैं जीता हूं, यहां तुम्हें किसी बात का कष्ट न होगा। चलकर मेरे आश्रम में रहो। रामचन्द्र ने तुम्हारी पवित्रता पर विश्वास रखते हुए भी केवल बदनामी के डर से त्याग दिया, यह उनका अन्याय है। लेकिन इसका शोक न करो। सबसे सुखी वही आदमी है, जो सदैव प्रत्येक दशा में अपने कर्तव्य को पूरा करता रहे। यह बड़े सौंदर्य की जगह है। यहां तुम्हारी तबीयत खुश होगी। ऋषियों की लड़कियों के साथ रहकर तुम अपने सब दुःख भूल जाओगी। राजमहल में तुम्हें वही चीजें मिल सकती थीं जिनसे शरीर को आराम पहुंचता है, यहां तुम्हें वह चीजें मिलेंगी, जिनसे आत्मा को शांति और आराम प्राप्त होता है। उठो, मेरे साथ चलो। क्या ही अच्छा होता, यदि मुझे पहले मालूम हो जाता, तो तुम्हें इतना कष्ट न होता।

सीताजी को ऋषि वाल्मीकि की इन बातों से बड़ा सन्तोष हुआ। उठकर उनके साथ उनकी कुटिया में आयी। वहां और भी कई ऋषियों की कुटिया थी। सीता उनकी स्त्रियों और लड़कियों के साथ रहने लगी। इस प्रकार कई महीने के बाद उनके दो बच्चे पैदा हुए। ऋषि वाल्मीकि ने बड़े का नाम लव और छोटे का नाम कुश रखा। दोनों ही बच्चे रामचन्द्र से बहुत मिलते थे। जहीन और तेज इतने थे कि जो बात एक बार सुन लेते, सदैव के लिए हृदय पर अंकित हो जाती। वह अपनी भोली-भाली तोतली बातों से सीता को हर्षित किया करते थे। ऋषि वाल्मीकि दोनों बच्चों को बहुत प्यार करते थे। इन दोनों बच्चों के पालने-पोसने में सीता अपना शोक भूल गयीं।

जब दोनों बच्चे जरा बड़े हुए तो ऋषि वाल्मीकि ने उन्हें पढ़ाना प्रारम्भ किया। अपने साथ वन में ले जाते और नाना प्रकार के फल-फूल दिखाते। बचपन ही से सबसे प्रेम और झूठ से घृणा करना सिखाया। युद्ध की कला भी खूब मन लगाकर सिखाई। दोनों इतने वीर थे कि बड़े-बड़े भयानक जानवरों को भी मार गिराते। उनका गला बहुत अच्छा था। उनका गाना सुनकर ऋषि लोग भी मस्त हो जाते थे। वाल्मीकि ने रामचन्द्र के जीवन का वृत्तांत पद्य में लिखकर दोनों राजकुमारों को याद करा दिया था। जब दोनों गा-गाकर सुनाते, तो सीताजी अभिमान और गौरव की लहरों से बहने लगती थीं।

# अश्वमेध यज्ञ

सीता का त्याग देने के बाद रामचन्द्र बहुत दु:खित और शोकाकुल रहने लगे । सीता की याद हमेशा उन्हें सताती रहती थी । सोचते, बेचारी न जाने कहां होगी, न जाने उस पर क्या बीत रही होगी ! उस समय को याद करके जो उन्होंने सीताजी के साथ व्यतीत किया था, वह प्राय: रोने लगते थे । घर की हर एक चीज उन्हें सीताजी की याद दिला देती थी । उनके कमरे की तसवीरें सीताजी की बनायी हुई थीं । बाग के कितने ही पौधे सीताजी के हाथों के लगाये हुए थे । सीता के स्वयम्वर के समय की याद करते, कभी सीता के साथ जंगलों के जीवन का विचार करते । उन बातों को याद करके वह तड़पने लगते । आनन्दोत्सवों में सम्मिलित होना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया । बिलकुल तपस्वियों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे । दरबार के सभासदों और मंत्रियों ने समझाया कि आप दूसरा विवाह कर लें । किसी प्रकार नाम तो चले । कब तक इस प्रकार तपस्या कीजियेगा ? किन्तु रामचन्द्र विवाह करने पर सहमत न हुए । यहां तक कि कई साल बीत गये ।

उस समय कई प्रकार के यज्ञ होते थे । उसी में एक अश्वमेध यज्ञ भी था । अश्व घोड़े को कहते हैं । जो राजा यह आकांक्षा रखता था कि वह सारे देश का महाराजा हो जाये और सभी राजे उसके आज्ञापालक बन जायें, वह एक घोड़े को छोड़ देता था । घोड़ा चारों ओर घूमता था । यदि कोई राजा उस घोड़े को पकड़ लेता था, तो इसके अर्थ यह होते थे कि उसे सेवक बनना स्वीकार नहीं । तब युद्ध से इसका निर्णय होता था । राजा रामचन्द्र का बल और साम्राज्य इतना बढ़ गया कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया । दूर-दूर के राजाओं, महर्षियों, विद्वानों के पास नवेद भेजे गये । सुग्रीव, विभीषण, अंगद सब उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आ पहुंचे । ऋषि वाल्मीकि को भी नवेद मिला । वह लव और कुश के साथ आ गये । यज्ञ की बड़ी धूम-धाम से तैयारियां होने लगीं । अतिथियों के मन-बहलाव के लिए नाना प्रकार के आयोजन किये गये थे । कहीं पहलवानों के दंगल थे, कहीं राग-रंग की सभाएं । किन्तु जो आनन्द लोगों को लव और कुश के मुंह से रामचन्द्र की चर्चा सुनने में आता था वह और किसी बात में न आता था । दोनों लड़के सुर मिलाकर इतने प्रियभाव से यह काव्य गाते थे कि सुननेवाले मोहित हो जाते थे । चारों ओर उनकी वाह-वाह मची हुई थी । धीरे-धीरे रानियों को भी उनका गाना सुनने का शौक पैदा हुआ । एक आदमी दोनों ब्रह्मचारियों को रनिवास में ले गया : यहां तीनों बड़ी रानियां, उनकी तीनों बहुएं और बहुत-सी स्त्रियां बैठी हुई थीं । रामचन्द्र भी उपस्थित थे । इन लड़कों के लम्बे-लम्बे केश, वन की स्वास्थ्यकर हवा से निखरा हुआ लाल रंग और सुन्दर मुखमण्डल देखकर सब-के-सब दंग हो गये । दोनों की सूरत रामचन्द्र से बहुत मिलती थी । वही ऊंचा ललाट था, वही लम्बी नाक, वही चौड़ा वक्ष । वन में ऐसे लड़के कहां से आ गये, सबको यही आश्चर्य हो रहा था । कौशल्या मन में सोच रही थीं कि रामचन्द्र के लड़के होते तो वह भी ऐसे ही होते । जब लड़कों ने कवित्त गाना प्रारम्भ किया तो सबकी आंखों से आंसू बहने शुरू हो गये ... लड़कों का सुर

जितना प्यारा था, उतनी प्यारी और दिल को हिला देने वाली उनकी कविता थी। गाना सुनने के बाद रामचन्द्र ने बहुत चाहा कि उन लड़कों को कुछ पुरस्कार दें, किन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया। आखिर उन्होंने पूछा—तुम दोनों को गाना किसने सिखाया और तुम कहां रहते हो ?

लव ने कहा—हम लोग ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हैं। उन्होंने हमें गाना सिखाया है।

रामचन्द्र ने फिर पूछा—और यह कविता किसने बनायी ?

लव ने उत्तर दिया—ऋषि वाल्मीकि ने ही यह कविता भी बनायी है।

रामचन्द्र को उन दोनों लड़कों से इतना प्रेम हो गया था कि वह उसी समय ऋषि वाल्मीकि के पास गये और उनसे कहा—महाराज ! आपसे एक प्रश्न करने आया हू, दया कीजियेगा।

ऋषि ने मुसकराकर कहा—राजा रंक से प्रश्न करने आया है ? आश्चर्य है। कहिये।

रामचन्द्र ने कहा—मैं चाहता हूं कि इन दोनों लड़कों को, जिन्होंने आपके रचे हुए पद सुनाये हैं, अपने पास रख लू। मेरे अंधेरे घर के दीपक होंगे। है तो किसी अच्छे वंश के लड़के ?

वाल्मीकि ने कहा—हां, बहुत उच्च वंश के हैं। ऐसा वंश भारत में दूसरा नहीं है।

राम—तब तो और भी अच्छा है। मेरे बाद वही मेरे उत्तराधिकारी होंगे। उनके माता-पिता को इसमें कोई आपत्ति तो न होगी ?

वाल्मीकि—कह नहीं सकता। सम्भव है आपत्ति हो पिता को तो लेशमात्र भी न होगी, किन्तु माता के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता। अपनी मर्यादा पर जान देने वाली स्त्री है।

राम—यदि आप उस देवी को किसी प्रकार सम्मत कर सकें तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी।

वाल्मीकि—चेष्टा करूंगा। मैंने ऐसी सज्जन, लज्जाशीला और सती स्त्री नहीं देखी। यद्यपि उसके पति ने उसे निरपराध, अकारण त्याग दिया है, किन्तु वह सदैव उसी पति की पूजा करती है।

रामचन्द्र की छाती धड़कने लगी। कहीं यह मेरी सीता न हो। आह दैव, यह लड़के मेरे होते ! तब तो भाग्य ही खुल जाता।

वाल्मीकि फिर बोले—बेटा अब [illegible] तुम समझ [illegible] गए हो कि मैं किस ओर संकेत

उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। मैं उस देवी को आज पन्द्रह सालों से देख रहा हूं। ऐसी पवित्र स्त्री संसार में कठिनाई से मिलेगी। तुम्हारे विरुद्ध कभी एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं सुना। तुम्हारी चर्चा सदैव आदर और प्रेम से करती है। उसकी दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। बहुत रुला चुके, अब उसे अपने घर लाओ। वह लक्ष्मी है।

रामचन्द्र बोले—मुनिजी, मुझे तो सीता पर किसी प्रकार का सन्देह कभी नहीं हुआ। मैं उनको अब भी पवित्र समझता हूं। किन्तु अपनी प्रजा को क्या करूं? उनकी जबान कैसे बन्द करूं? रामचन्द्र की पत्नी को सन्देह से पवित्र होना चाहिए। यदि सीता मेरी प्रजा को अपने विषय में विश्वास दिला दें, तो वह अब भी मेरी रानी बन सकती हैं। यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष की बात होगी।

वाल्मीकि ने तुरन्त अपने दो चेलों को आदेश दिया कि जाकर सीताजी को साथ लाओ। रामचन्द्र ने उन्हें अपने पुष्पक-विमान पर भेजा, जिससे वह शीघ्र लौट आयें। दोनों चेले दूसरे दिन सीताजी को लेकर आ पहुंचे। सारे नगर में यह समाचार फैल गया था कि सीताजी आ रही हैं। राजभवन के सामने, यज्ञशाला के निकट लाखों आदमी एकत्रित थे। सीताजी के आने की खबर पाते ही रामचन्द्र भी भाइयों के साथ आ गये। एक क्षण में सीताजी भी आयीं। वह बहुत दुबली हो गयी थीं, एक लाल साड़ी के अलावा उनके शरीर पर और कोई आभूषण न था। किन्तु उनके पीले मुरझाये हुए चेहरे से प्रकाश की किरणें-सी निकल रही थीं। वह सिर झुकाये हुए महर्षि वाल्मीकि के पीछे-पीछे इस समूह के बीच में खड़ी हो गयीं।

महर्षि एक कुश के आसन पर बैठ गये और बड़े दृढ़ भाव से बोले—देवी! तेरे पति वह सामने बैठे हुए हैं। अयोध्या के लोग चारों ओर खड़े हैं। तू लज्जा और झिझक को छोड़कर अपने पवित्र और निर्मल होने का प्रमाण इन लोगों को दे और इनके मन से सन्देह को दूर कर।

सीता का पीला चेहरा लाल हो गया। उन्होंने भीड़ को उड़ती हुई दृष्टि से देखा फिर आकाश की ओर देखकर बोलीं—ईश्वर! इस समय मुझे निरपराध सिद्ध करना तुम्हारी ही दया का काम है। तुम्हीं आदमियों के हृदयों से इस सन्देह को दूर कर सकते हो। मैं तुम्हीं से विनती करती हूं! तुम सबके दिलों का हाल जानते हो। तुम अन्तर्यामी हो। यदि मैंने सदैव प्रकट और गुप्त रूप में अपने पति की पूजा न की हो, यदि मैंने अपने पति के साथ अपने कर्तव्य को पूर्ण न किया हो, यदि मैं पवित्र और निष्कलंक न हूं, तो तुम इसी समय मुझे इस संसार से उठा लो। यही मेरी निर्मलता का प्रमाण होगा।

अन्तिम शब्द मुंह से निकलते ही सीता भूमि पर गिर पड़ीं। रामचन्द्र घबराये हुए उनके पास गये, पर वहां अब क्या था? देवी की आत्मा ईश्वर के पास पहुंच चुकी थी। सीताजी निरन्तर शोक में घुलते-घुलते यों ही मृतप्राय हो रही थीं, इतने बड़े जनसमूह के सम्मुख अपनी पवित्रता का प्रमाण देना इतना बड़ा दुःख था, जो वह सहन न कर सकीं। चारों ओर कुहराम मच गया।

सब लोग फूट फूटकर रोने लगे। सबकी जबान पर यही शब्द थे— यह सचमुच लक्ष्मी थी, फिर ऐसी स्त्री न पैदा होगी। कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा छाती पीटने लगीं

और रामचन्द्र तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब बड़ी कठिनता से उन्हें चेतना आयी तो रोते हुए बोले—मेरी लक्ष्मी, मेरी प्यारी सीता ! जा, स्वर्ग की देवियां तेरे चरणों पर सिर झुकाने के लिए खड़ी हैं। यह संसार तेरे रहने के योग्य न था। मुझ जैसा बलहीन पुरुष तेरा पति बनने के योग्य न था। मुझ पर दया कर, मुझे क्षमा कर। मैं भी शीघ्र तेरे पास आता हूं। मेरी यही ईश्वर से प्रार्थना है कि यदि मैंने कभी किसी पराई स्त्री का स्वप्न में ध्यान किया हो, यदि मैंने सदैव तुझे देवी की तरह हृदय में न पूजा हो, यदि मेरे हृदय में कभी तेरी ओर से सन्देह हुआ हो, तो पतिव्रता स्त्रियों में तेरा नाम सबसे बढ़कर हो। आने वाली पीढ़ियां सदैव आदर से तेरे नाम की पूजा करें। भारत की देवियां सदैव तेरे यश के गीत गायें।

अश्वमेध-यज्ञ कुशल से समाप्त हुआ। रामचन्द्र भारतवर्ष के सबसे बड़े महाराज मान लिये गये। दो योग्य, वीर और बुद्धिमान पुत्र भी उनके थे। सारे देश में कोई शत्रु न था। प्रजा उन पर जान देती थी। किसी बात की कमी न थी। किन्तु उस दिन से उनके होठों पर हंसी नहीं आयी। शोकाकुल तो वह पहले भी रहा करते थे, अब जीवन उन्हें भार प्रतीत होने लगा। राज-काज में तनिक भी जी न लगता। बस यही जी चाहता कि किसी सुनसान जगह में जाकर ईश्वर को याद करें। शोक और खेद से बेचैन हृदय को ईश्वर के अतिरिक्त और कौन सांत्वना दे सकता था !

## लक्ष्मण की मृत्यु

किन्तु अभी रामचन्द्र की विपत्तियों का अन्त न हुआ था। उन पर एक बड़ी बिजली और गिरने वाली थी। एक दिन एक साधु उनसे मिलने आया और बोला—मैं आपसे अकेले में कुछ कहना चाहता हूं। जब तक मैं बातें करता रहूं, कोई दूसरा कमरे में न आने पाये। रामचन्द्र महात्माओं का बड़ा सम्मान करते थे। इस विचार से कि किसी साधारण द्वार-पाल को द्वार पर बैठा दूंगा तो सम्भव है कि वह किसी बड़े धनी-मानी को अन्दर आने से रोक न सके, उन्होंने लक्ष्मण को द्वार पर बैठा दिया और चेतावनी दे दी कि सावधान रहना, कोई अन्दर न आने पाये। यह कहकर रामचन्द्र उस साधु से कमरे में बातें करने लगे। संयोग से उसी समय दुर्वासा ऋषि आ पहुंचे और रामचन्द्र से मिलने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण ने कहा—अभी तो महाराज एक महात्मा से बातें कर रहे हैं। आप तनिक ठहर जायें तो मैं मिला दूंगा। दुर्वासा अत्यन्त क्रोधी थे। क्रोध उनकी नाक पर रहता था बोले मुझे [illegible] नहीं है मैं इसी समय रामचन्द्र से मिलूंगा। यदि तुम मुझे अन्दर आने से रोकोगे तो तुम्हें ऐसा शाप दे दूंगा कि तुम्हारे वंश का

रामचन्द्र अप्रसन्न होते हैं, नहीं जाने देते तो भयानक शाप मिलता है। आखिर उन्हें रामचन्द्र की अप्रसन्नता ही अधिक सरल प्रतीत हुई। दुर्वासा को अन्दर आने की अनुमति दे दी। दुर्वासा अन्दर पहुंचे। उन्हें देखते ही वह साधु बहुत बिगड़ा और रामचन्द्र को सख्त-सुस्त कहता चला गया। दुर्वासा भी आवश्यक बातें करके चले गये। किन्तु रामचन्द्र को लक्ष्मण का यह कार्य बहुत बुरा मालूम हुआ। बाहर आते ही लक्ष्मण से पूछा—जब मैंने तुमसे आग्रहपूर्वक कह दिया था तो तुमने दुर्वासा को क्यों अन्दर जाने दिया ? केवल इस भय से कि दुर्वासा तुम्हें शाप दे देते।

लक्ष्मण ने लज्जित होकर कहा—महाराज ! मैं क्या करता। वह बड़ा भयानक शाप देने की धमकी दे रहे थे।

राम—तो तुमने एक साधु के शाप के सामने राजा की आज्ञा की चिन्ता नहीं की। सोचो, यह उचित था ? मैं राजा पहले हूं—भाई, पति, पुत्र या पति पीछे। तुमने अपने बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध नहीं काम किया है, बल्कि तुमने अपने राजा की आज्ञा तोड़ी है। इस दण्ड से तुम किसी प्रकार नहीं बच सकते। यदि तुम्हारे स्थान पर कोई द्वारपाल होता तो तुम समझते हो, मैं उसे क्या दण्ड देता ? मैं उस पर जुर्माना करता। लेकिन तुम इतने समझदार, उत्तरदायित्व के ज्ञान से इतने पूर्ण हो, इसलिए वह अपराध और भी बड़ा हो गया है और उसका दण्ड भी बड़ा होना चाहिए। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि आज ही अयोध्या का राज्य छोड़कर निकल जाओ। न्याय सबके लिए एक है। वह पक्षपात नहीं जानता।

यह था रामचन्द्र की कर्त्तव्य-परायणता का उदाहरण ! जिस निर्दयता से कर्तव्य के लिए प्राणों से प्रिय अपनी पत्नी को त्याग दिया उसी निर्दयता से अपने प्राणों से प्यारे भाई को भी त्याग दिया। लक्ष्मण ने कोई आपत्ति नहीं की। आपत्ति के लिए स्थान ही न था। उसी समय बिना किसी से कुछ कहे-सुने राजमहल के बाहर चले गये और सरयू के किनारे पहुंचकर जान दे दी।

## अन्त

रामचन्द्र को लक्ष्मण के मरने का समाचार मिला तो मानो सिर पर पहाड़ टूट पड़ा। संसार में सीताजी के बाद उन्हें सबसे अधिक प्रेम लक्ष्मण से ही था। लक्ष्मण उनके दाहिने हाथ थे। कमर टूट गयी। कुछ दिन तक तो उन्होंने ज्यों-त्यों करके राज्य किया; आखिर एक दिन साम्राज्य बेटों को देकर आप तीनों भाइयों के साथ जंगल में ईश्वर की उपासना करने चले गये।

यह है के जीवन की संक्षिप्त कहानी उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है, और उसका नाम है 'कर्तव्य' उन्होंने सदैव कर्तव्य को प्रधान समझा जीवन

भर कर्तव्य के रास्ते से जौ भर भी नहीं हटे। कर्तव्य के लिए चौदह वर्ष तक जंगलों में रहे, अपनी जान से प्यारी पत्नी को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया और अन्त में अपने प्रियतम भाई लक्ष्मण से भी हाथ धोया। प्रेम, पक्षपात और शील को कभी कर्तव्य के मार्ग में नहीं आने दिया। यह उनकी कर्तव्य-परायणता का प्रसाद है कि सारा भारत देश उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है। इसी कर्तव्य-परायणता ने उन्हें आदमियों के समूह से उठाकर देवताओं के समकक्ष बैठा दिया। यहां तक कि आज निन्यानवे प्रतिशत हिन्दू उन्हें आराध्य और ईश्वर का अवतार समझते हैं।

लड़को! तुम भी कर्तव्य को प्रधान समझो। कर्तव्य से कभी मुह न मोड़ो। यह रास्ता बड़ा कठिन है। कर्तव्य पूरा करने में तुम्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा; किन्तु कर्तव्य पूरा करने के बाद तुम्हें जो प्रसन्नता प्राप्त होगी, वह तुम्हारा पुरस्कार होगा।

●●

# प्रेमचन्द साहित्य

## उपन्यास

गोदान
वरदान
प्रतिज्ञा
गबन
कायाकल्प (भाग-1)
कायाकल्प (भाग-2)
निर्मला
सेवासदन
कर्मभूमि
प्रेमाश्रम (भाग-1)
प्रेमाश्रम (भाग-2)
रंगभूमि (भाग-1)
रंगभूमि (भाग-2)
आजाद कथा (भाग-1)
आजाद कथा (भाग-2)

## कहानियां

मानसरोवर (भाग-1)
मानसरोवर (भाग-2)
मानसरोवर (भाग-3)
मानसरोवर (भाग-4)
मानसरोवर (भाग-5)
मानसरोवर (भाग-6)
मानसरोवर (भाग-7)
मानसरोवर (भाग-8)
मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं
प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियां
प्रेम पचीसी
प्रेम तीर्थ
प्रेम पूर्णिमा
प्रेम द्वादशी
प्रेम प्रसून
सद्‌गति
मर्यादा की वेदी
होली का उपहार
प्रेमा
रूठी रानी
नारी जीवन की कहानियां
ग्रामीण जीवन की कहानियां

## नाटक

कर्बला
संग्राम
प्रेम की वेदी
कामयाबी

बड़प्पन की ही द्योतक है। अपनी एक अंतिम कहानी में उन्होंने बताया है कि कैसे वे आँख-मूँद कर सड़े सेब उठा लाये। कभी-कभी हमारी सद्वृत्तियां हमें छल लेती हैं। ऐसे समय जो महान हैं वे छल की ओर से आँखें मूँद लेते हैं। जो उतने महान नहीं हैं वे राग-द्वेष के शिकार हो जाते हैं।

प्रेमचद पूर्णतः परिवारनिष्ठ थे। उनके विषय में उनकी धर्मपत्नी ने जो लिखा है, उससे यह स्पष्ट है। कदाचित् इसी कारण उन्होंने हमें पारिवारिक जीवन की अत्यन्त सुन्दर कहानियाँ दीं। देखने में उनका जीवन एक सीधीसादी कहानी है जिसमें सचमुच ऊबड़-खाबड़ पहाड़-घाटियाँ अधिक नहीं हैं। परन्तु प्रेमचंद की भावुकता के अतः-स्रोत को देखने वाली आँखें जान लेती हैं कि सत्य कुछ ओर ही है। अपने परिवार, अपनी पत्नी, अपने बच्चों, अपने देश और मानव-मात्र के सुख-दुख की प्रत्येक छोटी-बड़ी बात उनके हृदय में संवेदना जगाने में समर्थ थी। वे जीवन भर अस्वस्थ रहे परन्तु वे बराबर अपने कर्तव्यों का पालन करते रहे एक ओर साहित्यसेवा, दूसरी ओर परिवार-सेवा। वे स्वप्नदर्शी थे। साहित्यिक और कुछ हो भी नहीं सकता। परन्तु उनके सपने साहित्य तक सीमित थे। उनके लोक-व्यवहार की भूमि प्रतिदिन के सुख-दुख की अनुभूति पर आधारित थी। वे आँखें मूँद कर जीवन-पथ पर बढ़ने वाले व्यक्ति नहीं थे। परन्तु वे आँखें मूँद भी सकते थे, जान-बूझ कर मूँद सकते थे। यह उनका बड़प्पन था। इस बड़प्पन के कारण ही वे बराबर ठगे गये।

कुछ उनके विचारों को भी लें। प्रेमचंद जैसे महान व्यक्तित्व को उनके विचारों से अलग नहीं रखा जा सकता। वे अनुभूति और चरित्र में महान हैं। परंतु इन्हीं दो से उनका व्यक्तित्व

पूर्ण नहीं हो जाता। उनके अपने साहित्य में विचार और व्यक्तित्व इस प्रकार गुँथ गये हैं कि उन्हें अलग करना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति के सम्बंध में प्रेमचंद के विचार बहुत सुलझे हुए थे। वे साहित्य को समाज और राजनीति से अलग करके नहीं देखते थे। उनका कहना था कि जब तक यहाँ के साहित्य में तरक्की न होगी, तब तक साहित्य, समाज और राजनीति सबके सब ज्यों के त्यों पड़े रहेंगे।

शिवरानी बोलीं—तो क्या आप इन तीनों की एक माला पिरोना चाहते हैं।

इस पर बोले—और क्या! ये चीजें माला—जैसी ही हैं। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ-साथ चलनेवाली चीजें हैं।

इस पर शिवरानी ने कहा—तो यह क्या जरूरी है कि तीनों को साथ ही लेकर चला जाय।

प्रेमचंद—इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों चीजों की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज तथा राजनीति का सम्बन्ध बिल्कुल अटल है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि-लाभ तथा सुख-दुःख होता है, वह आदमियों पर ही तो होता है न। राजनीति में जो सुख-दुःख होता है वह आदमियों ही पर पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य

से आदमी की भावनायें अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भवनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन सब तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है।

यह स्पष्ट है कि यह साहित्य का सच्चा दृष्टिकोण है। वह समाज, धर्म और राजनीति का पिछलग्गू नहीं, उनका नेतृत्व करने वाली दीपशिखा है। प्रेमचंद साहित्य के इसी दृष्टिकोण को लेकर आगे बढ़े। इसी से उन्होंने, हाथीदाँत के मीनार पर बैठकर कमल-चर्वण करते हुए साहित्यकारों का साथ नहीं दिया। उनके आदर्श वे लेखक थे जो समाज और राजनीति के नेताओं से किसी भी तरह कम प्रगतिशील नहीं थे। जो कलम के मजदूर थे, परन्तु जिनकी कलम में सौ तोपों की शक्ति थी। बालजाक, गेल्सवर्दी, तोल्सताय और गोर्की उनके आदर्श थे। इसीलिए उनका साहित्य पृष्ठ-पृष्ठ में समाज और राजनीति को समेट कर चलता है और फिर भी वह छोटा नहीं बन पाता। भारतीय साहित्य के इतिहास में यह एकदम नया दृष्टिकोण था। लेखक की जिम्मेवारियों से प्रेमचन्द पूर्णतः अवगत थे। उन्होंने महाराजा साहब अलवर के यहाँ नौकरी करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने लिखा—"मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे याद किया। मैंने अपना जीवन साहित्य-सेवा के लिए लगा दिया है। मैं जो कुछ लिखता हूँ, उसे आप पढ़ते हैं, इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। आप जो यह मुझे दे रहे हैं, मैं उसके योग्य नहीं हूँ। मैं इतने में ही अपना सौभाग्य समझता हूँ कि आप मेरे लिखे को ध्यान से पढ़ते हैं।" १९२८ में जब कालाकांकर के महाराज घर आये और प्रेमचन्द उन्हें कुर्सी भी न दे सकें, तो उनकी पत्नी की कुंठा बढ़ी। परन्तु प्रेमचन्द ने समाधान किया कि वे राजा लोगों के लिए थोड़े ही इन्तजाम करते हैं।

वे तो मजदूर हैं। जो मोटा-झोटा खाने-पहनने को मिला, खाया-पहना। उनकी गद्दी तो जमीन है।

यह मजदूर कलमजीवी का आदर्श हमारे लिए एकदम नया आदर्श था। प्रेमचंद ने इस आदर्श को जिंदगी भर निबाहा। परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं कि वे जीवन भर मजदूर कलमजीवी बने रहे। वे अपने सामाजिक और राष्ट्रीय महत्व को पूर्णतः समझते थे। जब वे १९२८ में महात्मा गांधी से मिलकर लौटे तो शिवरानी के एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि उन्होंने गांधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही 'प्रेमाश्रम' (१९२२) की रचना की थी। '(गांधीजी) का भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों, वह इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिखकर उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गांधी हिंदू-मुसलमानों की एकता चाहते हैं, तो मैं भी हिंदी और उर्दू को मिला करके हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।' इस 'हिन्दुस्तानी' बनाने की बात पर प्रेमचन्द और शिवरानी के बीच में बड़ा तर्क-वितर्क चला। शिवरानी देवी ने उन्हें तरह-तरह से निरस्त्र करना चाहा। अंत में बात धर्म की चट्टान पर आकर रुक गई। शिवरानी देवी ने पूछा—आखिर आप राम को मानते हैं कि रहीम को? आप बोले—मेरे लिए राम, रहीम, बुद्ध, ईसा सभी श्रद्धा के पात्र हैं।

वह बोली—आखिर आप हैं क्या?

प्रेमचन्द ने कहा—मैं एक इंसान हूँ, और जो इंसानियत रखता हो, इंसान का काम करता हो, मैं वहीं हूँ, और उन्हीं लोगों को चाहता हूँ। मेरे दोस्त अगर हिन्दू हैं, तो मेरे कम दोस्त मुसलमान भी नहीं हैं। और इन दोनों में मेरे नजदीक कोई खास फर्क नहीं है; मेरे लिए दोनों बराबर हैं।

इंसानियत के इस दृष्टिकोण के सामने हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच का प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु हिंदू-मुसलिम समस्या को प्रेमचन्द केवल इंसानियत के दृष्टिकोण से ही नहीं देखते थे। उनके पास इस समस्या की नाप-तौल के लिए एक बुद्धिवादी मापदंड भी था। शिवरानीदेवी ने कहा--हम लोगों की पूजा की चीज गाय है।

प्रेमचन्द बोले--तुम लोग कौन कम हो मुसलमानों से। तुम लोग भी तो भेड़-बकरे देवी को बलि चढ़ाते हो। क्या उस बकरे के जान नहीं होती? इसी से मैं कहता हूँ, कोई धर्म न अच्छा होता है, न बुरा। उन्हीं हिंदुओं को मैं कहता हूँ जो गाय के पीछे प्राण देते हैं,वही हिंदू अपने मां-बाप को रोटियाँ नहीं दे सकते। वही हिंदू घर की बेटी को निकाल देते हैं। यह क्या इन्सानियत से दूर रहनेवाली बातें नहीं हैं? फिर भी लोग नाज से कहते हैं, गऊ हमारे पूजने की चीज हैं। जो मा को रोटी न दे सके, वह गाय को क्या चारा देगा?

शिवरानी बोली--यहाँ सैकड़ों आदमी गाय के पीछे प्रति वर्ष कुरबान होते हैं। गाय के पीछे।

वे बोले--रानी, पागल न हो तुम, सुनो। वह गाय के पीछे नहीं कुर्बान होते, बल्कि वे अपनी कुरेदन के पीछे कुर्बान होते हैं। उनके अन्दर जो कुरेदन रहती है, उसी को मौका पाकर दोनों निकालना चाहते हैं।

शिवरानी देवी ने पूछा--आप किस मजहब को अच्छा समझते हैं?

इस पर प्रेमचंद ने उत्तर दिया—अवश्य मेरे लिए कोई मजहब नहीं। राम, रहीम, बुद्ध, ईसा सभी बराबर हैं। इन महापुरुषों ने जो कुछ किया सब ठीक किया। उनके अनुयायियों ने उसका उलटा किया। कोई धर्म ऐसा नहीं है कि जिसमें इंसान से हैवान होना पड़े। इसीसे मैं कहता हूँ, मेरा कोई खास मजहब नहीं है। सबको मानता भी हूँ। इस तरह के जो नहीं हैं, उनसे मुझे कोई मुहब्बत नहीं। यही मेरा धर्म समझो।

इंसानियत, सार्वभौमिक धर्मभावना और सत्साहित्य की यह भूमि थी जिस पर खड़े होकर प्रेमचंद ने अपने समय के देश और समाज को देखा और उन्हें खोखला पाया। उनके मापदंड पर उनका युग बहुत छोटा पड़ा। उन्होंने उसे चुनौती दी। जहाँ जहाँ इंसानियत, सार्वभौमिक धर्मभाव और सत्साहित्य का खून होता था वहाँ-वहाँ प्रेमचंद ने ललकार उठाई। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य, धर्म और साहित्य न पूर्व के हैं, न पश्चिम के। ये देशकाल से परे की सच्चाई हैं। इसी रूप में इन्हें देखना और पाना होगा।

भारतीय नारी की घर-बाहर की समस्याओं को प्रेमचंद ने जैसा समझा था, वैसा कदाचित् उनके समय के किसी भी लेखक ने नहीं समझा था। यह कहना कुछ साहस का काम है। शरत-साहित्य में नारी-समस्या को लेकर बहुत उधेड़बुन मिलेगी। उनका 'शेष प्रश्न' और रवीन्द्रनाथ के 'चार अध्याय' और शेष कविता' उपन्यास नई नारी की शंखध्वनि हैं। परंतु ये महापुरुष नारी-जीवन के घर के प्रश्नों को ही अधिक उभारते हैं। उनकी आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को वे सामने नहीं लाते। उनके लिए नारी केवल रूपजीवी, विवाहजीवी, पुरुषजीवी

है। प्रेमचंद का नारीजगत अधिक बड़ा है और उन्होंने जहाँ नारी के प्रेम, बलिदान और त्याग की बात उठाई है, वहाँ नारी-जीवन के उन पहलुओं पर भी विचार किया है जिनका सम्बन्ध अर्थशास्त्र और राजनीति से है। इस सम्बन्ध में शिवरानी और प्रेमचंद में जो बातचीत हुई वह इस प्रकार है।

'आप बतायें न, स्त्रियाँ कैसे आगे बढ़ें ?'

'अधिकार भी बड़ी मँहगी चीज है। बलिदान करो न उसके लिए। दया से कोई चीज मिल भी जाय तो अच्छा नहीं और स्थायी भी नहीं होती। अपने पौरुष से की हुई चीज अच्छी होती है।'

मैं—हमें अपाहिज बनाने वाला है कौन ?

'इसकी शिकायत तुम न करो। वह समय ही ऐसा था। पहले का रोना रोने से काम नहीं चलेगा। अब सँभलो।'

मैं—उस पुरानी हालत में भी हम-तुम दोनों साथ थे और आज भी साथ देने को तैयार हैं। तब आप कैसे कहते हैं कि माँगने से नहीं मिलता। तुम्हीं अपना बलिदान करो।

तब बोले—जो अब तक स्त्रियों के साथ बराबरी का बर्ताव नहीं बरत पाये हैं, वे इतनी जल्दी उदार नहीं हो सकते।'

आगे उन्होंने कहा—'स्त्री-पुरुष का अलगौझा कैसा ? स्त्रियों के अलगाव में तो हम जीवित भी नहीं रह सकते।'

मैं—पुरुष तो पहले ही स्त्रियों पर डंडा लेकर उठते हैं। 'वह पशुबल है। जिसकी दुनिया में कोई वकत नहीं। देव-दानव में झगड़ा होने पर दानव हमेशा जीते हैं, क्योंकि वे जायज-नाजायज सब कुछ कर सकते हैं, जहां कोई नीति नहीं, कोई धर्म नहीं। उस समय देव हमेशा बैठा रहता है, क्योंकि ओछा वह जो ओछे के मुँह लगे।

इसी वास्ते वह देव हमेशा ही ऊँचा रहेगा। जो दानव है, उससे शिकायत क्या की जाय। इसी तरह स्त्री और पुरुष हैं। पुरुषों को स्त्रियां मिटाना नहीं चाहतीं तो खुद नहीं मिटेंगी तो होगा क्या? मगर, हाँ, वे हमेशा पूजनीय हैं, यह उन्हीं के योग्य हैं।

उनका और शिवरानी का सम्बन्ध इसी भावना के आधार पर टिका था। शिवरानी ने इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक लिखा है। इंद्रनाथ मदन को लिखे अपने पत्र में उन्होंने कहा है कि उनका नारी का आदर्श है बलिदान, सेवा और पवित्रता——तीनों एक व्यक्तित्व में घुली-मिली। उसके बलिदान की कोई सीमा न हो, सेवाभाव में मोल-तोल नहीं, पवित्रता ऐसी कि जरा भी शंका न उठ सके। यह निश्चय ही मध्यवित्ती आदर्श है। मध्यवित्त अपनी स्त्री को इसी रूप में देखना चाहता था और प्रेमचंद भी मध्यवित्त थे। 'परन्तु प्रेमचांदः घर में', पढ़ने से हम उनकी नारी-संबंधी भावुकता और तत्संबंधी विचारधारा से भी परिचित होते हैं। इन पृष्ठों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपनी वर्ग-चेतना का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने पर भी प्रेमचंद के विचार कितने प्रगतिशील थे। एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो लगभग नास्तिक था, जिसने स्पष्ट लिखा है कि उसका ईश्वर या संसार के कर्ता-धर्ता के संबंध में अपना विश्वास डगमगा रहा है और कदाचित् संसार में ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती, नारी के संबंध में ऐसे उदात्त विचार रखना कम आश्चर्य की बात नहीं है। प्रगतिवादियों और साम्यवादियों से उनकी भित्ति एकदम अलग है, यह इसी एक प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है। स्त्रियों की 'मोक्ष' के संबंध में उनके जो विचार थे वे भी एक प्रगतिशील समझौते की ओर ही इंगित करते हैं। वे स्त्री-पुरुषों की समानता के आधार पर नए समाज की नींव रखना चाहते

थे। जहाँ स्त्री-पुरुष में बने नहीं वहाँ वे मोक्ष की आवश्यकता को स्वीकार कर लेते हैं। सर्वहारा वर्ग में मोक्ष बराबर चल ही रही है। केवल मध्यवित्तों और उच्च वर्गों में ही मोक्ष नहीं चलती। प्रेमचंद इन वर्गों में मोक्ष का विरोध नहीं करते, परंतु उनका कहना है कि असमान विवाह का कोई भी निराकरण मोक्ष द्वारा संभव नहीं है। कम से कम वह कोई अनिवार्य निदान नहीं है। और मोक्ष ( तलाक ) हो तो पत्नी के लिए अर्थ का सहारा तो चाहिये ही। अपने इन्हीं विचारों को वह साहित्य में भर देना चाहते थे। साहित्य उनके लिए निरर्थक उधेड़बुन या कमल-चर्वण नहीं था। वह क्रांति का जागरूक अस्त्र था। शिवरानी देवी ने उनसे एक दिन पूछा—स्त्रियों के संबंध में आप क्या विचार रखते हैं?

बोले—'मैं दोनों में समानता चाहता हूँ।'

'समानता का आन्दोलन आप क्यों नहीं करते?'

'मैं उन ताकतों को साहित्य में भरना चाहता हूँ।'

'जनता क्या वह पढ़ती है?'

'इसके माने यह थोड़े ही हैं कि जनता की अशिक्षा के कारण साहित्य में इसको भरा ही न जाय। धीरे-धीरे सभी अपने रास्ते पर आ जायंगे।...,

इस पर शिवरानी बोलीं—'तब तक तो मैं देख नहीं सकूंगी।

वे बोले—तुम तत्काल फल चाहती हो। बहुत संभव है कि हम देखलें। इधर २५ वर्षों में ही जमाना बहुत आगे निकल गया।

साहित्यिक जीवन के आरंभ से अंत तक प्रेमचंद देश की राजनैतिक प्रगति के साथ रहे, कुछ मानों में वे आगे भी रहे। 'गोदान' और 'कफन' की कहानियाँ प्रमाण हैं। १९०५ ई० के

बंगभंग आन्दोलन से प्रेरणा लेकर उन्होंने 'सोजेवतन' (१९०७) की राष्ट्रीय कहानियाँ लिखीं। 'प्रेमाश्रम' ( १९२२ ) के साथ के फिर इस क्षेत्र में उतरे और उन्होंने देश की मुक्ति के लिए चलाए हुए गाँधी जी के सभी आन्दोलनों का चित्रण किया। रंगभूमि ( १९२४ ) कायाकल्प ( १९२८ ) कर्मभूमि ( १९३२ ) और 'गोदान' ( १९३६ ) के अतिरिक्त उन्होंने इस विषय पर सौ से कम कहानियाँ नहीं लिखी होंगी। इन उपन्यासों और कहानियों से प्रेमचंद की देश-निष्ठा का पता चलता है। उन्होंने अपने साहित्य को गांधी जी की प्रेरणा और उनके विचारों से संबंधित कर दिया है। इसमें संदेह नहीं कि उनका अधिकांश साहित्य गांधीवादी साहित्य है परंतु गांधी जी अपने युग की सबसे अधिक प्रगतिशील शक्तियों के प्रतीक थे और प्रेमचंद किसी भी विषय में गांधी जी से पीछे नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट कहा है—'गाँधी इस युग का सबसे बड़ा पंडित है। उसका दिल ( हिंदुओं और मुसलमानों) दोनों के लिए बराबर है। वह आदमियत पहले देखता है। जब आदमी आदमी न रहा तो मजहब क्या और किसका?' जब शिवरानी ने पूछा कि क्या आप गांधी बनना चाहते हैं तो बोले—'गांधी भी आदमी हैं। कोशिश से सभी गांधी हो सकते हैं।' आगे कहा —'मैं भी काम करता हूँ। गाँधी जी भी काम करते हैं। उन पर भी मुसीबतें पड़ती हैं, पर उन्होंने कभी परवाह की? यही जीवन है। कलम चलाना तो मजदूरी का काम है। न चलाऊँ तो क्या खाक खाऊँ। महात्मा गांधी भी तो खाना ही पाते हैं। परंतु यह गाँधी का अनुकरण नहीं है।' प्रेमचंद के सिद्धांत बहुत कुछ गाँधीवाद से मिल जाते हैं, परंतु उन्होंने अपने विचारों को अपनी अनुभूति पर आश्रित किया है और इसी से उन पर बराबर मौलिकता की छाप है। वह सामयिक

राजनीति के साथ चलने वाली इकाई नहीं हैं। वह आगे के मील के पत्थर हैं। उन्होंने अपने साहित्य में गांधीवादियों और तथा-कथित नेताओं की कम चुटकियां नहीं ली हैं। अंतिम दिनों में तो वह हृदय से गांधीवादी होते हुए भी कर्म और विचार से साम्य-वादी बन गये हैं। एक बार उन्होंने धन्नू (अमृत राय) को तांगेवाले से झिकझिक सुनकर बिगड़कर कहा—देखते हो लौंडों को ! अगर वह गरीब चार पैसे ज्यादा ही ले लेता तो क्या हो जाता ? खुद कन्जूसी नहीं करते। यह बड़ी गन्दी आदत है। संसार विचित्र है।

मैं बोली—'आपको तरह कोई साधु न बने तो।' तब आप बोले—'क्यों नहीं, बुरी बात है। जब हम दूसरों से ईर्ष्या करते हैं और अपना रोना रोते हैं। तब दूसरों के साथ भी वही बर्ताव करना चाहिये। आदमी को अपनी तरह दूसरों को भी समझना चाहिये। फिर अगर ऐसी बात न हो तो दूसरों के मोटे होने पर ईर्ष्या न करो। न फिर तुम्हें गिला करने का हक है। जैसे तुम उन लोगों को मोटा नहीं देखना चाहते, वैसे ही खुद भी मोटे होने की इच्छा न करो।

मैं बोली—यह तो आप रूस के डिक्टेटर के स्वर में बोल रहे हैं।

आप हँस कर बोले—खैर, मैं तो नहीं हूं, पर देखना कभी भारत का बच्चा-बच्चा रूस के डिक्टेटर से भी ज्यादा गरम विचार का बनेगा। तुम्हें भी उस समय गरीबों के कठिन से कठिन काम में हिस्सा लेना पड़ेगा।

मैं बोली—और आपको फावड़ा।

हँसते हुए जवाब दिया—कलम फावडे से ज्यादा ताकत होती है।

प्रेमचंद की गाँधीवादी पृष्ठभूमि को देखते हुए ये विचार कुछ विवादी स्वर-से लगते हैं, परन्तु वस्तुतः प्रेमचंद गांधी-युग के होते हुए भी गांधी युग के नहीं हैं। वे गांधी-युग से आगे हैं या कहिये संसार के महान लेखकों की भाँति वह सभी युगों के हैं। उन्होंने साहित्य के द्वारा वर्गमुक्ति और मानवता का सन्देश दिया है। आगे की पीढ़ियाँ उन्हें इसी रूप में देखेंगी।

इस चित्र में किसानों-मजदूरों की बात नहीं आई है, परन्तु इन वर्गों से भी उनका अत्यन्त निकट का परिचय था। उन्होंने लिखा है कि पांडेपुर के सूरदास की प्रेरणा उन्हें अपने गांव (लमही) के एक अंधे भिखारी से मिली। उनका जन्म गांव में हुआ। प्रारम्भिक जीवन अधिकांश गाँवों और छोटी बस्तियों में बीता और लगभग अंत तक गाँव उनकी प्रेरणा का मूल विषय रहा। अपने जीवन में उन्होंने बराबर गाँव की धरती की ओर लौटना चाहा, परन्तु लौट न सके। वहां मर भी नहीं सके। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे गाँव के सुख-दुख से पूर्णतः परिचित थे। 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने गाँव की वर्तमान स्थिति का जैसा वस्तुवादी चित्र दिया है वह अपूर्व है, परन्तु अंत में उन्होंने गांव-सम्बन्धी अपना स्वर्ग भी उपस्थित किया है। वह मशीनवादी युग के ऐतिहासिक महत्व को भी अच्छी तरह जानते थे और यह भी जानते थे कि गाँव उजड़ रहे हैं, नगर बस रहे हैं। 'रंगभूमि' और 'गोदान' में गाँव के उजड़ने और नगर के बसने का ही चित्र हैं। परन्तु कदाचित् प्रेमचंद इस वस्तु-स्थिति के संतुष्ट नहीं थे। सूरदास और होरी भारतीय गांव के प्रतीक थे। शहर ने उनके प्राण ले लिये। परन्तु इस ऐतिहासिक सत्य से मुँह न मोड़ कर प्रेमचन्द ने ठीक ही किया। 'प्रेमचन्द : घर में' संस्मरण-ग्रंथ से हमें प्रेमचन्द की गांव-सम्बन्धी पृष्ठभूमि पर अधिक

नहीं मिलता और हम यह नहीं जानते कि इस क्षेत्र में उनकी प्रेरणा के मूल उत्स कौन-कौन थे, कैसे उन्होंने सैकड़ों ग्रामीण चरित्रों को खड़ा किया, कैसे उन्होंने गांव के किसानों और नगर के मजदूरों के हृदय में प्रवेश किया, परन्तु उनका हृदय गाँव से अनेक सूक्ष्म तंतुओं द्वारा जुड़ा था, इसका आभास इस संस्मरण-ग्रंथ के घरेलू चित्रों के बीच भी मिल जाता है।

ऐसे थे प्रेमचन्द और ऐसा था उनका अनुभूति और विचार का जगत। उनकी रचनाओं में उनके इस बात का ही साहित्य के रूप रंगों और कला की रेखाओं से पुष्ट प्रसाद हमें मिलता है। प्रेमचन्द के साहित्य का इस पृष्ठभूमि में पढ़ने की आवश्यकता है। तभी हम मनुष्य प्रेमचन्द और साहित्यकार प्रेमचन्द में सम्बन्ध जोड़ सकेंगे।

[ ४ ]

प्रेमचंद अपने किशोर-जीवन में जिस साहित्य से परिचित हुए वह मुख्यतः मनोरजन-प्रधान ऐयारी, जादूगरी, तिलिस्म और रोमांस का साहित्य था। यह साहित्य अधिकांश उर्दू में था। इसी साहित्य ने उन्हें प्रारंभिक प्रेरणा दी और उनके साहित्यिक मन का निर्माण किया। जिस समय उनकी आयु कोई बारह-तेरह वर्ष की रही होगी, उसी समय उन्होंने उर्दू के सारे उपन्यास-साहित्य को पढ़ डाला। तिलिस्म होशरुबा, बोस्ताने ख्याल, दास्ताने अमीरे हम्जा और उम्र ऐयार जैसे वृहदकाय ग्रंथ उन दिनों उर्दूपाठी मुंशी-वर्ग में अत्यंत लोकप्रिय थे। इन उपन्यासों में पृथ्वी-आकाश को एक सूत्र में ग्रथित कर दिया जाता। देव, मनुष्य, ऐतिहासिक महान पुरुष और दानव एक ही धरातल पर आ इकट्ठे होते। घटना-वैचित्र्य की प्रधान रहती। एक कथा-सूत्र से दूसरा कथा-सूत्र और दूसरे से तीसरा इस

तरह जुड़ा चलता कि पाठक कथारस में डूबता-उतराता रहता और कथा समाप्त ही नहीं हो पाती। इस उपन्यासों का विषय था परकीया प्रेम, या अवैध प्रेम। लालसा और तज्जन्य साहस के चित्रणों की प्रधानता मिलती। परन्तु और चाहे जिस प्रकार ये उपन्यास हीन हों, इनमें वर्णन-क्षमता का चमत्कार ऐसा था कि अभूतपूर्व। कोई भी प्रसंग हो लेखक अत्यंत प्रवाहशाली और मनोहारी भाषा में पृष्ठ पर पृष्ठ रङ्गता चला जाता। अंतिम पृष्ठ तक उसकी आकांक्षा इसी प्रकार बनी रहती। इन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की साधारण रूपरेखाएं भी नहीं उभर पाती थीं। समसामयिक राष्ट्रीय या सामाजिक जीवन इनमें किंचित मात्र भी नहीं आया है। वस्तुतः इन उपन्यासों मे धारावाहिक, वर्णन-प्रधान शैली में प्रणय, अवैध मिलन, साहस, हिंसा, तिलिस्मी अजूबों और ऐयारों के छल-छंदों की अत्यंत अविश्वसनीय इन्द्रजालिक कथा कुछ इस प्रकार कही गई थी कि पाठक का मन उस छलना में पूर्णतः रम जाता था और वह उस संसार को भी अपने संसार की तरह स्थूल और विश्वसनीय मान लेता था। प्रेमचन्द के साहित्य में जो घटना-संगठन, वर्णन और प्रासादिक कथा-निरूपण की अपार क्षमता है उसके स्रोत यही उपन्यास हैं। 'कायाकल्प' के इंद्रजाल में प्रेमचन्द अपने किशोरमन के उन सपनों और छल-छंदों को रूप दे रहे हैं जो उन्होंने इस रचनाओं से अपने भीतर जगाये थे। इन उपन्यासों की विशेषताओं को समझे बिना हम कायाकल्प के रस का पूर्णतः आस्वादन ही नहीं कर सकते, न उसे प्रेमचन्द से ठीक-ठीक ढंग से संबंधित कर सकते हैं। प्रेमचंद के इन्द्रजालिक मन की एक महत्वपूर्ण वितृष्णा स उपन्यास की अलौकिक कथा द्वारा उन्मुक्त हुई है। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचन्द की औपन्यासिक प्रतिभा का निर्माण इन्हीं

उपन्यासों द्वारा हुआ और उनके उपन्यासों की विशद चित्रपटी और उनकी बहुसूत्रता की व्याख्या बहुत कुछ इनके आधार पर संभव है।

रेनाल्ड के उर्दू अनुवाद भी लगभग इसी श्रेणी की चीजें थीं। उस समय की जनता में ये अत्यंत लोकप्रिय थे। इनमें अवैध प्रेम, व्यभिचार, जारकर्म और अभिसार के सैकड़ों प्रसंगों को इतिहास की पृष्ठभूमि देकर उपस्थित किया गया था। इन उपन्यासों में लंदन और पेरिस के राजघरानों का जो उच्छृंखल, विलासपूर्ण और मर्यादाहीन चित्र उपस्थित किया गया था, वह पाठकों में वाजिदअली शाह के लखनऊ और दिल्ली-आगरे के मुगल घरानों की स्मृति ताजा कर देता। यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने इन उपन्यासों से अधिक नहीं सीखा और न इनका अनुकरण किया।

उस समय तक उर्दू उपन्यास काफी विकसित हो चुका था। डिकेंस, थेकरे, रेनाल्ड और स्काट उर्दू उपन्यासकारों के आदर्श थे। मौलाना शरर के ऐतिहासिक उपन्यासों में हम स्काट और रेनाल्ड की ही पुनरुक्ति पाते हैं। उन्होंने बीसियों उपन्यास लिखे और एक तरह से इसलामी इतिहास को पुनर्जीवित किया। इन उपन्यासों का वातावरण प्रेमों, रहस्यों, युद्धों और बलिदानों का वातावरण था। उस युग में मुसलिम राष्ट्रीयता के जन्म और विकास में इन रचनाओं ने महत्वपूर्ण भाग लिया। प्रेमचन्द में उस ऐतिहासिक चेतना का अभाव था जो शरर की विशेषता थी। इसी से उन्होंने इन उपन्यासों से केवल कथा-रस लिया। मुसलिम इतिहास की एक लोकप्रिय बलिदान-गाथा को लेकर उन्होंने 'कर्बला' नाम ( ) का एक नाटक अवश्य

लिखा, परंतु वह हिंदू इतिहास की उपेक्षा ही करते रहे। प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' पर लिखते हुए उन्होंने उनके ऐतिहासिक नाटकों के संबंध में जो कहा है, वह उनके तत्संबंधी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है।

प्रेमचंद की उपन्यासकला जिन पूर्ववर्ती उर्दू उपन्यासकारों की कला के निकट आती है वे नज़ीर अहमद (१८३६-१९१२), रतन नाथ सरशार (१८४६-१९०७) और रुसवा (१८५९-१९१३) हैं। इन उपन्यासकारों ने उपन्यास को वास्तविक जीवन से संबद्ध किया और पहली बार चरित्र-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। 'मेरी पहली रचना' शीर्षक अपने लेख में प्रेमचंद ने इन अग्रजों का ऋण स्वीकार किया है। नज़ीर अहमद का क्षेत्र इस्लामी समसामयिक समाज था। वह भी प्रेमचंद की भाँति सुधारवादी और आदर्शवादी थे। वह उर्दू के प्रथम वस्तुवादी उपन्यासकार थे जिन्होंने समाज का यथावत् चित्रण किया। उन्होंने खानदानी मुसलमानों के दुःख-सुख और उनकी सभ्यता-संस्कृति की बेलाग तस्वीर खींची। मुसलमान परिवार के प्रतिदिन के हास-अश्रु इनकी रचनाओं में मिलते हैं। घर की चहार-दीवारी के भीतर जो जैसा होता है उसे उसी तरह काव्यकला और चमत्कृति का समावेश किये बिना पाठक के सामने रखने नज़ीर अहमद की विशेषता रही है। स्त्रियों के चरित्र-चित्रण और उनके दुख-सुखपूर्ण जीवन के उन्मीलन में वे विशेष रूप से सिद्धहस्त हैं। उनकी भाषा-शैली भी प्रेमचंद की याद दिलाती है। न उपमा-उत्प्रेक्षा का प्राधान्य है, न कठिन शब्दों का मोह। सहज प्रासादिक शैली में बोलचाल के साधारण मुहावरों में उपन्यासकार समाज के मर्म पर चोट कर जाता है। प्रेमचंद ने हिंदू घरेलू जीवन को अपनाया और साहित्य के क्षेत्र में

नजीर अहमद के पूरक का काम किया। परतु वे मुसलमान घरों की बात भी नहीं भूले। उनके सभी बडे उपन्यासों में मुसलमान पात्र मिल जाते हैं और वे मुसलिम परिवार का अत्यंत सहानुभूतिपूर्ण चित्रण उपस्थित करते हैं। रुसवा ( मुहम्मद हादी-१८५६-१९१३ ) की कला से भी उन्होंने बहुत कुछ सीखा। रुसवा भी वास्तविक जीवन को लेकर चलते थे। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—'हमारे नाविल न ट्रेजडी है न कामेडी, न हमारे हीरो तलवार से कत्ल होते हैं, और न उनमें से किसी ने खुदकशी की है, न हिज्र हुआ है न वस्ल। हमारे नाविलो को मौजूदः जमाने की तारीख समझना चाहिए।' यदि हम प्रेमचंद से ये शब्द कहलायें तो जरा भी अत्युक्ति नहीं होगी। नजीर अहमद के उपन्यासों में प्रतिदिन का जीवन है परंतु वह परिवारों, व्यक्तियों और समाज के इने-गिने स्तर तक सीमित हैं। रुसवा सारे समाज को लेते हैं और उनमें सामाजिक जीवन के भरे-पुरे चित्र देने की वह विशेषता है जो प्रेमचंद को इतना आकर्षक बना देती है। उनके अधिकांश उपन्यास लखनऊ पर केन्द्रित हैं परंतु लखनऊ के सामयिक जीवन के सभी स्तर उन्होंने छुए हैं। नवाबों से लेकर रंडियों, पहलवानों, मुशायरों और मेलेठेलों तक उनकी पहुँच है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भी कथानक में गुँथा चलता है। वस्तुतः प्रेमचंद में नजीर अहमद और रुसवा की कला एक स्थान पर मिल जाती है।

परंतु जिस उर्दू उपन्यासकार से प्रेमचंद को सबसे बड़ी प्रेरणा मिली वह कदाचित् रतननाथ सरशार थे। प्रेमचन्द की वर्णनकला पर व्यापक रूप से सरशार का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उनकी कलम की बादशाहत का बहुत कुछ रहस्य सरशार की रचनाओं के अध्ययन से खुल जाता है। प्रेमचन्द की स्मृति में

लिखते हुए प्रो० रघुपति सहाय ने पंडित रतन नाथ सरशार को अनिवार्यतः याद कर लिया है। वे लिखते हैं--आज से प्रायः तीस वर्ष पहले जब पंडित रतन नाथ सरशार का देहांत हुआ था, तब मुझे जहाँ तक स्मरण है सर तेज बहादुर सप्रू ने अपने बहुमूल्य और प्रभावशाली शोक-सूचक लेख में आरंभिक वाक्य में ( जो हिन्दुस्तान रिव्यू में प्रकाशित हुआ था ) साहित्य-सेवियों के उस शिरामणि के संबंध में लिखा था कि सरशार की जादू का-सा काम करने वाली कलम अब सदा के लिए मौन हो गयी वास्तव में यह बात बिलकुल ठीक थी। फिसाना आजाद विस्तृत कहानी में जो घटनायें, कथोपकथन और परिहास आदि का क्रम लगभग चार हजार पृष्ठों पर फैला हुआ, है वह अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय है। लेकिन उसमें बहुत-सी अस्वाभाविक तिलिस्मी बातें भी जरूर हैं। कहते हैं कि सरशार ने सरवांत ( Cervantes ) के चरित्र डान क्वीक्सेट के साँचे में अपनी कथा को ढाला है, लेकिन क्वीक्सेट अपने हास्यास्पद अतिरेकों और ज्यादतियों के रहते हुए भी महत्व और वीरता की अमर आत्मा का सूचक है। सरशार की रचना यद्यपि यह सूचित करती है कि उसका लेखक लेखन-कला का पूर्ण पंडित था लेकिन फिर भी वह रचना हमारे सामने एक ऐसी बात रखती है जिसमें प्रत्यक्ष अस्तित्व के विचार से कोई दृढ़ और स्थायी वास्तविकता नहीं है बल्कि स्वप्न-जगत की एक स्पष्ट फिल्मी चित्रकारी है। फिसाना आजाद में लखनऊ के अवनतिशील और जल्द मिट जाने वाले शिया अमीरों और रहस्यों के जीवन में एक प्रकार के अवास्तविक तिलिस्म का आकर्षण अवश्य होता है। सरशार ने इसी तकल्लुफ और बनावट के जीवन के ऐसे चित्र फिसाने आजाद के चित्रों में अंकित किये हैं जो

देखने-वालों को मोहित कर देते हैं, और यह चित्र उन्होंने अपनी जादूगरी कलम से कुछ इस प्रकार अंकित किये हैं कि उसका प्रत्येक पृष्ठ स्वप्नजगत के एक जादू के महल की खिड़की की तरह मालूम होता है, जो स्वप्न की ही अवस्था में खुलती है, और अपने शोभापूर्ण दृश्य दिखलाती है। 'प्रेमचंद ने फिसाना-आजाद का हिंदी रूपांतर ( ) उपस्थित किया है। उन्होंने सरशार की पूरी कथा को चौथाई पृष्ठों में धाराप्रवाह रूप से अपनी टकसाली भाषा में कह दिया है। यह स्पष्ट है कि सरशार की यह रचना उन्हें प्रिय थी और उन्होंने अपनी व्यंगप्रधान रचनाओं में इस रचना से ही प्रेरणा पाई है। फिसाना आजाद मूलतः सामंतवादी सभ्यता का चित्र है—रवीद्रनाथ ने कुछ कहानियों में बंगाल के ठाकुरों के बिगड़े हुए दिनों के ऐसे ही सफल चित्र उपस्थित किये हैं। प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी नवाबी की गिरी मनोवृत्ति और उस समय के सभ्य समाज के द्वन्दों को ही चित्रित करती है। 'प्रेमाश्रम' में जहाँ उन्होंने एक बिगड़े हुए अमीर कायस्थ घराने का चित्र उपस्थित किया, वे मूलतः सरशार की कला से ही अनुप्राणित हैं, यद्यपि उनकी कथा समाज के एक दूसरे वर्ग से संबंध रखती है। वस्तुतः सरशार को हम उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों का भारतवर्ष का सब से बड़ा कलाकार कह सकते हैं। फिसाना आजाद के अतिरिक्त उन्होंने और भी अनेक रचनायें लिखीं जिनपर उनकी स्वाभाविक प्रसन्नशैली, उनके सप्राण व्यंगों और उनके व्यक्तित्व की छाप है। परंतु 'फिसाने आजाद' को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई वह उनकी रचनाओं में भी अद्वितीय थी। भाषाशैली, वर्णन-प्रवाह, औपन्यासिक ओज और चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से प्रेमचंद नजीर अहमद, रुसवा और सरशार की श्रेणी में ही आते

हैं। इन क्षेत्रों में वे उर्दू की पूर्ववर्ती रचनाओं का विकास सूचित करते हैं। उनकी कला की बाहरी सारी सज्जा एक बड़ी लंबी परंपरा से पुष्टि प्राप्त करती है।

परंतु यह असंभव है कि वे समसामयिक हिंदी उपन्यास-कला से नितांत अपरिचित रहे हैं। काशी उनका अपना क्षेत्र था और हिंदी के दो प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण उपन्यासकार देवकी नन्दन खत्री ( १८६१-१९१३ ) और किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) काशी में ही निवास करते थे। प्रेमचंद ने हिंदी में बहुत बाद में रचना आरंभ की। परंतु वे हिंदी अक्षर-ज्ञान से ही अपरिचित थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। परंतु देवकी नन्दन के ऐयारी-तिलिस्मी उपन्यास एक तरह से तिलिस्म होशरुबा और दास्ताने अमीर हमजः की दुनिया ही नये ढंग से उपस्थित करते थे और किशोरलाल गोस्वामी, शरर, मुहम्मद अली और रुसवा के ऐतिहासिक और रोमांचक कथा के क्षेत्र को ही छूते थे। इन दोनों उपन्यासकारों की रचनाओं में ऐसा कम था जो उससे अच्छे ढंग पर उर्दू में उपस्थित न हो। अतः प्रेमचंद के लिए हिंदी परंपरा से परिचित होने और उससे अपना संबंध स्थापित करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। परंतु जब वे हिंदी में आये तो उन्होंने स्वतः उस परंपरा में अपना स्थान ग्रहण कर लिया और किशोरीलाल गोस्वामी की उपन्यास-कला का कहीं विकसित, कहीं अधिक सांस्कृतिक रूप उपस्थित किया। उनके आते ही हिंदी उपन्यास-क्षेत्र में क्रांति हो गई। जिन्होंने 'सेवासदन' (१९१६) को पढ़ा वे चकित हो गये। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में भी बाहरी सज्जा इतनी पुष्ट नहीं थी। प्रेमचंद कलम की बादशाहत लेकर आये थे। उर्दू भाषा के सारे संस्कारों और टकसाली मुहावरों का महान् ऐश्वर्य वे हिंदी में

लाये और उन्होंने एक ही रचना से हिंदीवालों का हृदय जीत लिया। वेश्याओं द्वारा तरुण युवकों के बिगड़ने की कथा की एक परंपरा हिंदी में परीक्षागुरु (१८८४) से शुरू हुई थी। देवकीनंदन खत्री का 'काजर की कोठरी' उपन्यास और किशोरीलाल गोस्वामी की कुछ अन्य रचनायें इसी विषय को छूती थी। प्रेमचंद ने भी यही विषय उठाया। मध्यवित्त हिन्दू गृहस्थ-जीवन के लिए वेश्या एक अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या बन गई थीं। प्रेमचंद के पहले लोकप्रसिद्ध उपन्यास ने वेश्या जीवन का एक सांगोपांग चित्रण उपस्थित किया और इसदिशा में कला और चिंतन की नई रूपरेखाएं उभारी। इसी से वे हिंदी के न होते हुए भी पहली रचना से ही हिंदी के केन्द्र में प्रतिष्ठित हो गए। वह चाहे किसी भी प्रकार उर्दू से संबंधित रहे हों, इसमें संदेह नहीं कि काशी के उपन्यासकारों की लोकप्रियता ने उन्हें हिंदी-क्षेत्र की ओर आकर्षित किया। वह आये अवश्य अपनी शक्ति लेकर और उसी शक्ति के बल पर वह कुछ ही दिनों में हिंदी-प्रदेश के हृदय पर राज करने लगे।

बंगला उपन्यासकारों में प्रेमचंद उस प्रारंभिक युग में बंकिम चंद और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं में अवश्य परिचित रहे होंगे। इन दोनों उपन्यासकारों की कृतियाँ बहुत शीघ्र ही उर्दू में अनूदित हो गई थीं और किसी भी साहित्य-जिज्ञासु और उपन्यास प्रेमी के लिए उनकी रचनाओं से अपरिचित रहना असंभव था। परंतु बंकिम का प्रभाव प्रेमचंद की रचनाओं में अधिक नहीं मिलता। उनकी उपन्यास-कला उर्दू के पूर्ववर्ती लेखकों का ही विकास सूचित करती है। बंकिमचंद की प्रसिद्धि से वे अवश्य प्रभावित हुए जान पड़ते है। 'प्रेमचंद' उपनाम इसी प्रभाव को सूचित करता है। परंतु बंकिम की भावुकता तरलता, काव्योपमता और साहित्य-कला की वर्णच्छटा उनमें

नहीं है। उनकी कला पुरुष-कला है। उसमें ओज, विदग्धता और एक तरह का अक्खड़पन तो है, परंतु बंकिम और शरत की नारी-कला से वह भिन्न है। उसमें आंसुओं की अपरिसीम महिमा नहीं है, हृदय का हाहाकार नहीं है। प्रेमचंद को इस बात का श्रेय ही मिलना चाहिये कि उन्होंने बंगला कथाकारों के प्रभाव और अनुकरण के इस युग में भी बंकिम, रवीन्द्रनाथ और शरतचंद के प्रभाव को या तो मूलतः अस्वीकार कर दिया या केवल इस हद तक स्वीकार किया जिस हद तक वह अपनी प्रकृत भूमि पर खड़े होकर अपनी मौलिकता और विशेषता की रक्षा कर सकते हैं। केवल एकाध कहानी को छोड़ शरत और प्रेमचंद में कुछ भी समान नहीं मिलता। उस समय तक तो शरतचंद आये भी नहीं थे। हाँ, रवीन्द्रनाथ के पांच प्रसिद्ध उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। इन उपन्यासों की कला से प्रेमचंद ने अधिक नहीं लिया, यदि किसी रचना का विशेष प्रभाव उन पर पड़ा दिखलाई देता है तो वह 'चोखेर बालि' (१६०१) है जिसका अनुवाद 'आँख की किरकिरी' नाम से हिंदी में हुआ था। 'प्रतिज्ञा' (१६०५) पर यह प्रभाव सूचित होता है, परन्तु यह प्रभाव केवल कथानक से संबंध रखता है। प्रेमचंद की प्रकृति न उतनी काव्यप्रिय थी, न उतनी सूक्ष्मदर्शिनी कि वह केवल कला-विकास के लिए दो-चार पात्रों को लेकर उनके मन की उधेड़-बुन में अनेक पृष्ठ समाप्त कर देते। वे कला-विलासी नहीं, संदेश-प्रधान लेखक थे। बंगला के उपरोक्त तीनों उपन्यासकारों में वह विषय और दृष्टिकोण को देखते हुए शरतचंद के ही अधिक समीप रहे हैं, परंतु दोनों महान उपन्यासकारों की कला-भावना में आकाश-पताल का अन्तर है। शरतचन्द की कला रवि बाबू की 'चोखेर बाली' की कला का

आधा विलास और विकास है। प्रेमचन्द की कला की भित्ति उनकी अपनी है।

परन्तु कहानी के क्षेत्र में वे रवीन्द्रनाथ के प्रभाव को स्वतः स्वीकार करते है। वे लिखते हैं—मैंने पहले-पहल १६०७ में गल्पें लिखनी शुरू की। डाक्टर रवीन्द्रनाथ की कई गल्पें मैंने अँग्रेजी में पढ़ी थीं, और उनका उर्दू अनुवाद उर्दू पत्रिकाओं में छपवाया था। गल्प १६०७ के पहले मैंने एक भी न लिखी। मेरी पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रत्न'। वह जमाने में छपी। इसके बाद मैंने चार-पाँच कहानियाँ और लिखी। पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजेवतन' के नाम से १६०६ में छपा उस समय बंगभंग का आन्दोलन हो रहा था। कांग्रेस में गर्मदल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पाँचों कहानियों में स्वदेश प्रेम की महिमा गाई गई थी। प्रेमचंद की कहानियाँ रवीन्द्रनाथ की कहानियों से प्रेरणा ग्रहण करती हैं, परंतु बाद में उन्होंने अपनी निजी शैली विकसित कर ली। रवीन्द्रनाथ की कवि-प्रतिभा ने हमारी जानी-पहचानी वास्तविकता को न-जाना न-पहचाना बना दिया है। उनकी कहानियों में प्रतिदिन का परिचित जीवन भी असाधारण और नया-नया बन जाता है। उनके 'गल्पगुच्छ को बंकिम की रचनाओं के समकक्ष रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ बंकिम ने वास्तविकता से मुँह मोड़ कर इतिहास और भावनाओं के घात-प्रतिघात में रस की खोज की है, वहाँ रवीन्द्रनाथ ने उसी वास्तविकता को एक अपूर्व महिमा से मंडित कर दिया है। उनकी कल्पना ने साधारण और सुपरिचित, तुच्छ और क्षुद्र को असाधारण और अपरिचित सुन्दर और महान बना दिया। उन्होंने वास्तविक जीवन को ही लोकोत्तर विस्मयजनक और अपूर्व बनाया। उन्होंने

साधारण परिस्थितियों अतिपरिचित संबंधों और क्षुद्रातिक्षुद्र व्यक्तियों में अंतर्निहित सौन्दर्य का आविष्कार किया और अपनी कल्पना द्वारा वस्तु-जगत को आदर्श और रोमांस की मिली-जुली रेखाओं से मंडित कर महा-महिम किया। साधारण धूल-मिट्टी को सोने में परिवर्तित कर देना सरल काम नहीं था, परन्तु कवि की अंतर्भेदिनी दृष्टि और उसकी निर्मात्री प्रतिभा के लिए यह जरा भी कठिन नहीं रहा। उन्होंने मनुष्य के साधारण सुखदुख, आशानिराशा से मंडित भावनाओं से ओत-पोत कला-मूर्ति उपस्थित की। इस प्रकार का साहित्य भारतवर्ष में पहले था ही नहीं। अतः समसामयिक कथा-कारों और साहित्य कारों को कवि की यह रचना अपूर्व लगी। परन्तु धूलिकणों को लेकर सोने का निर्माण करना सब के लिए सम्भव नहीं था। प्रेमचंद ने साधारण मनुष्य के सुख-दुख की बात कहना कवि से ही सीखा, कहानी का कलात्मक रूप भी उन्हीं से ग्रहण किया, परन्तु कवि भी तटस्थता और कल्पनाकती रंगीनी से उनका साहित्य मुक्त है। वे रवीन्द्रनाथ की अपेक्षा उनके समसामयिक दूसरे प्रसिद्ध बंगला-गल्प-लेखक प्रभात कुमार के अधिक निकट हैं। वह वास्तविकता को वास्तविकता के रूप में ग्रहण करते हैं, उसे कवि-कल्पना और दार्शनिकता से मंडित करके अपूर्व नहीं बना देते। परन्तु प्रभात कुमार की कहानियों में व्यंजना और संकेत का अभाव है और कदाचित् उनमें प्रेमचंद जैसी कला-मर्मज्ञता भी नहीं है। छोटी कहानियों के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद प्रेमचंद का ही नाम आता है।

पश्चिमी कथाकारों के प्रभाव का उल्लेख करते हुए प्रेमचंद ने तोलसताय, विक्टर ह्यूगो और रोमांरोलां का नाम लिया है। कुछ पश्चमी कथाकारों और नाटककारों के उन्होंने अनुवाद भी

प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने 'सृष्टि का आरंभ' ( १९३६ ) नाम से बर्नाडशा के मेथूसेलाह ( Methusselah ) नाटक का अनुवाद किया और गेल्सवर्दी के तीन नाटक जस्टिस, सिल्वर बाक्स और स्ट्राइक क्रमशः न्याय ( १९२८ ), चांदी की डिबिया (१९२९) और हड़ताल (१९३०) नाम से उपस्थित किये। उन्होंने तोल्सताय की कुछ चुनी हुई कहानियों का संग्रह 'टालसटाय' की कहानियाँ (१९२४) नाम से प्रकाशित कराया। जार्ज इलियट के 'सायलस मेरनिप' और अनातोले फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यास 'थाया' के अनुवाद भी उन्होंने 'सुखदास' ( १९३० ) और 'अहंकार' (१९२९) नाम से प्रस्तुत किये। कदाचित् बर्नार्डशा का कोई प्रभाव उनकी कृतियों पर नहीं है। उनकी रचना की श्रेणी ही दूसरी है। एक नई तरह की विचारोत्तेजक रचना हिंदी को देने के लिए उन्होंने शा के नाटक का अनुवाद किया है, परंतु तोल्सताय, गेल्सवर्दी, जार्ज इलियट और अनातोले फ्रांस सचमुच अपूर्व हैं उनकी प्रतिभा उतनी भिन्न नहीं थी और इन श्रेष्ठ पश्चिमी साहित्यकारों की रचनाओं से उन्होंने लाभ उठाया है। थेकरे, डिकिन्स, मोपासां, चेखव, और गोर्की का भी नाम इस सिलसिले में लिया जा सकता है। प्रेमचंद ने स्वतः इन उपन्यासकारों के प्रभाव का उल्लेख नहीं किया परंतु वे निश्चय रूप से अनेक सूत्रों से इन कथाकारों से संबंधित थे। कहानी के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ के बाद मोपांसा, चेखव और तोल्सताय ही उनके आदर्श जान पड़ते हैं। और उपन्यासों के क्षेत्र में थेकरे, डिकिन्स, तोल्सताय और गोर्की। गेल्सवर्दी का क्षेत्र दूसरा था, परंतु दृष्टिकोण में समानता थी। अतः प्रेमचंद का उनसे प्रभावित होना असंभव नहीं है। 'कायाकल्प' पर हेगर्ड के 'शी' उपन्यास के प्रभाव और 'रंगभूमि' पर थेकरे के 'हेनरी एसमान्ड' के प्रभाव की बात भी लेखकों ने उठाई है और कदाचित् वे अंशतः सच्चे भी हैं। परंतु प्रेमचंद ने जहाँ उधार लिया वहाँ अपनी

मौलिकता,प्रतिभा और कला का योग देकर उसे नया भी बना लिया है। सभी महान लेखक यही करते हैं।पूर्णतः मौलिक होने का प्रयत्न हास्यास्पद और असंभव है। प्रेमचंद की एक कहानी मोपांसा के 'द नेकलेस' कहानी का रूपांतर मात्र है और कदाचित् बाद में इसी कहानी में गेल्सवर्दी के 'जस्टिस' नाटक का कथानक मिला कर उन्होंने अपने प्रारंभिक उपन्यास 'कृष्णा' को 'गबन' ( १६३१ ) बना दिया है, परन्तु 'गबन' मोपांसा की कहानी और गेल्सवर्दी के नाटक दोनों से बड़ा बन गया है। इसी प्रकार जार्ज इलियट का 'सुखदास' रंगभूमि का 'सूरदास, बन जाता है, परन्तु कितने अंश में! कहां साइलस, कहाँ सूरदास! गोर्की और प्रेमचंद में इतनी बड़ी समानता है कि दोनों एक दूसरे के स्थान में रखे सकते हैं। सूरत शकल में भी दोनों एक दूसरे की प्रतिकृति जान पड़ते हैं। वही स्वप्न भरी आँखें, चेहरे पर सहानुभूति और कर्मनिष्ठा का भाव, वही बड़ी बड़ी घनी हँसती मूँछे,। दोनों एक ही प्रकार धरती की उपज हैं। वाल्गा और गंगा की तरह ही दोनों कलाकारों की कृतियाँ विशाल भू-भाग से रस खींचती हुई और उसे अपने हृदय का सारा रस देती हुई अमरता की ओर बढ़ती हैं। दोनों दीनों, उपेक्षितों और पीडित मानवता के कलाकार हैं, परंतु सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना प्रेमचंद में कुछ अधिक ही है। उनका साहित्य आवारा-जीवन की रोमांस-कल्पना-जड़ित गाथा नहीं है। वह वज्र की तरह चोट करता है। उसका लेखक अपने लक्ष्य की ओर पूर्णतयः सतर्क है। गोर्की की परवर्ती रचनाओं में यह चेतना पूर्ण रूप से मौजूद है, परंतु उनकी पहली सारी रचनायें आवारों और पीड़ितों को महापुरुष और महामानव मात्र बनाकर या उनके सुख-दुख को रोमांस में रंजित कर रह जाती हैं और उनकी तेजस्विता कुंठित हो जाती है। जो हो, यह

निश्चित है कि प्रेमचद गोर्की के ऐतिहासिक महत्व से पूर्णतः परिचित थे। उनकी मृत्यु से कुछ पूर्व ही गोर्की का देहांत हुआ था और अस्वस्थ रहने पर भी प्रेमचंद ने गोर्की के सम्मान में आयोजित एक सभा में भाषण दिया था। यही उनका अंतिम भाषण था। गोर्की के प्रति उनकी श्रद्धा असीम थी और उनकी कला की संभावनाओं से पूर्णतः आश्वस्त थे।

ऊपर जो लिखा गया है उससे यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने अपने समय के सारे कथा-साहित्य से रस खींचा। पूर्ववर्ती हिंदी कथा साहित्य में उनके लिए अधिक नहीं था, परंतु उर्दू' बंगला और पश्चिमी कलाकारों की श्रेठतम कृतियों से वह अच्छी तरह परिचित थे और उनकी रचनाओं में अनेक रङ्ग घुल-मिल कर एक हो गये थे। उनके साहित्य की सारी बाहरी सज्जा, उनकी भाषा-शैली, वर्णन-विशेषता, कथा-प्रवाह की कला उर्दू के पूर्ववर्ती कथाकारों की परंपरा का विकास है, परंतु कला के भीतरी तत्वों के लिए उन्होंने रवींद्रनाथ और अनेक पश्चिमी कलाकारों के मर्म टटोला है और उनसे बहुत कुछ पाया भी है। कदाचित् प्रेमाश्रम ( १९२२ ) की रचना तक वे पश्चिमी कलाकारों से अधिक प्रभावित नहीं थे, परंतु बाद में उन्होंने उनका गहरा अध्ययन किया। कायाकल्प ( १९२८ ), ग़बन ( १९३१ ) रंगभूमि ( १९२४ ) और अनेक कहानियों पर पश्चिमी कलाकारों का प्रभाव स्पष्ट है परंतु बाद में उन्होंने सब प्रभावों को पचा कर उन्हें प्रेमचंदी बना लिया है। कर्मभूमि ( १९३२ ) के लिए वे कदाचित् किसी भी अन्य रचना की अपेक्षा अपनी रंगभूमि के ही विशेष आश्रित हैं और गोदान ( १९३६ ) में वे पश्चिमी कलाकारों को भी बहुत पीछे छोड़ गये हैं। इस अंतिम रचना ने प्रेमचंद्र को संसार के श्रेष्ठतम साहित्यकारों की पंक्ति में स्थान दे दिया है। इसे हम निश्चय रूप

से संसार के सामने उपस्थित कर सकते हैं। अन्य रचनाओं में भी प्रेमचंद अपनी निजी विशेषताओं के कारण पूर्ववर्ती और समसामयिक सभी कथाकारों से अलग हैं। भाषा, शैली, उपन्यास का ढांचा, कथानक और कुछ हद तक चरित्र भी उन्होंने पिछले उपन्यासकारों से लिये हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं परंतु उनकी रचनाओं की आत्मा सब से रस खींच कर भी सबसे स्वतंत्र, सब से महान है। उनके संबंध में सब से बड़ी बात यही कही जा सकती है कि उन्होंने अपनी उपन्यास-कला को समसामयिक जीवन पर खड़ा किया अपने इर्द-गिर्द के समाज को उन्होंने ध्यान से देखा और जीवित-जाग्रत मनुष्यों को पात्र-पात्रियों का रूप देकर उपस्थित किया। उनकी पैनी दृष्टि ने साधारण जीवन की घटनाओं में भी मार्मिक स्थल ढूंढ लिये। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के द्वन्द्वों, संघर्षों और उत्सर्गों की कहानी जिस मार्मिकता से, जिस कलामय तरीके से उन्होंने उपस्थित की वह सचमुच अपूर्व बात थी।

समसामयिक कथाकारों से प्रेमचंद इस लिये भी भिन्न हैं कि उन्हें अपने सामाजिक और राष्ट्रीय महत्व का पूर्ण ज्ञान है। वह कला को मनोरंजन, भावावेश, शृंगारिक ऊहापोह और जड़ स्वप्नों का भंडार नहीं मानते। पिछले युग के साहित्य के संबंध में लिखते हुए वे कहते हैं—हमने जिस युग को अभी पार किया है ,उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी कर उसमें मनमाना तिलिस्म बाँधा करते थे। कहीं फिसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने ख्याल की, और कहीं चंद्रकांता-संतति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था, और हमारे अद्‌भुत-रस-प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था।

कहानी जीवन है, जीवन जीवन; दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। कवियों पर भी व्यक्तिवाद का रँग चढ़ा हुआ था। प्रेम का आदर्श वासनाओं का तृप्त करना था, और सौन्दर्य का आँखों को। इन्हीं शृंगारिक भावों को प्रगट करने में कविमण्डली अपनी प्रतिभा और कल्पना के चमत्कार दिखाया करती थी। पद्य में कोई नई शब्द-योजना, नई उपमा, उत्प्रेक्षा या नई कल्पना का होना दाद पाने के लिए काफी था—चाहे वह वस्तु-स्थिति से कितनी ही दूर क्यों न हो। आशियाना, कफ़स, बर्क़, खिरमन की कल्पनायें विरह-दशाओं के वर्णन में निराश वेदना की विविध अवस्थायें, इस खूबी से दिखाई जाती थीं कि सुनने वाले दिल थाम लेते थे। इस सारे साहित्य के पीछे सामाजिक या राष्ट्रीय चेतना का नितांत अभाव था। प्रेमचन्द ने इस साहित्य को मानसिक गिरावट का साहित्य कहा है। वे लिखते हैं—'कवियों के लिये उनकी रचना ही जीविका का साधन थी। और कविता की कदरदानी रईसों और अमीरों के सिवा कौन कर सकता है? हमारे कवियों को साधारण जीवन का सामना करने और उसकी सच्चाइयों से प्रभावित होने का या तो अवसर ही न थे, या हर छोटे-बड़े पर कुछ ऐसी मानसिक गिरावट छाई हुई थी कि मानसिक और बौद्धिक जीवन रह ही नहीं गया था। हम इसका दोष उस समय के साहित्यकारों पर ही नहीं रख सकते। साहित्य अपने काल का प्रतिबिंब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पंदित करते हैं। वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। ऐसे पतन के काल में लोग या तो आशिकी करते हैं या आध्यात्म-वैराग्य में मन रमाते हैं। जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढ़ा हो, और उसका एक एक शब्द निराशा में डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा हो, और शृंगारिक भावों का प्रतिबिंब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति

जड़ता और ह्रास के पंजे में फस चुकी है और उसमें उद्योग और संघर्ष का बल बाकी नहीं है। उसने ऊँचे लक्ष्यों की ओर आँखे बंद कर लीं, और उसमें दुनियाँ को देखने-समझने की शक्ति लुप्त हो गई है।' शृंगार से उन्हीं चिढ़ नहीं है। उनके उपन्यासों में प्रेम के अनेक चित्र मिलते हैं परन्तु वहाँ प्रेम बलिदान और त्याग की आँच में तप कर शुद्धता प्राप्त करता है। वे कहते है—'शृंगारिक मनोभाव जीवन का एक अंग मात्र हैं और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से संबंध रखता हो वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व, की वस्तु नहीं हो सकता, न उसकी सुरुचि का प्रभाव हो सकता है।' इन विचारों की पृष्ठभूमि में रख कर यदि हम प्राक-प्रेमचन्द युग के कथा साहित्य को परखें तो लगभग सारा साहित्य व्यर्थ सिद्ध होगा। उस साहित्य का कोई उद्देश्य ही नहीं। उसमें ऐयारी, तिलिस्म जासूसी, शृंगारिक जीवन और मानसिक उधेड़-बुन के सिवा और क्या है? ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रति प्रेमचन्द इसीलिये कठोर हैं कि वह न इतिहास हैं, न उपन्यास। उनमें लेखक अपने युग और उसकी समस्याओं से पूर्णतः छुटकारा पा जाता है और राजघरानों के छलछंद और अमर्यादित प्रणयकथा को ही जीवन समझ लेता है। प्रेमचन्द प्रारंभ से ही ऊँचा लक्ष्य ले कर चले और यही एक बात उन्हें पूर्ववर्ती और समसामयिक अनेक कथाकारों से अलग कर देती है।

प्रेमचन्द का यह ऊँचा लक्ष्य क्या था?

सबसे पहली बात तो यह है कि प्रेमचन्द ने साहित्य का आधार जीवन माना। इस तरह वह स्वप्न-जीवी या बुद्धिविलासी कथाकारों से अलग हो गये। वह कहते हैं—'साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवारें खड़ी होती

हैं। उसकी अट्टारियाँ, मीनार और गुम्बद बनते हैं लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को जी भी न चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है ; इसलिये अनंत है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इस लिये सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। जीवन परमात्मा को अपने कार्यों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं, लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाब देह है। इसके लिये कानून हैं, जिनसे वह इधर-उधर नहीं हो सकता। साहित्य की मर्यादाएं क्या हैं और वह किस प्रकार जीवन के प्रति जवाबदेह है? प्रेमचंद का कथन है—"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद, इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता —कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिये।" "जो दलित हैं, पीड़ित हैं, वंचित हैं—चाहे वह व्यक्ति हों या समूह, उनकी हिमायत और वकालत करना उसका ( साहित्यकार का ) फर्ज है।" "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देशबंधुओं के कष्टों से विकल हो जाती है और उस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, परन्तु उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।" आगे इसी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—"यदि साहित्यकार ने अमीरों के याचक बनने को जीवन का सहारा बना लिया हो, और वह उन आन्दोलनों, हलचलों और

क्रांतियों से बेखबर हो जो समाज में हो रही हों, तो इस दुनिया में उसके लिए जगह न होने में कोई अन्याय नहीं है।,,

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद सद्देश्य साहित्य के हामी हैं। वह ऐसे साहित्य के उपासक हैं जो मनुष्यत्व की ध्वजा लेकर आगे बढ़ता है और प्रेम, सद्भाव, न्याय और नीति की जय गाता है। वह दलितों, पीड़ितों और वंचकों का पक्ष ग्रहण करता है और व्यक्तिगत और सामाजिक अन्याय के प्रति खड्ग-हस्त होता है। वह देश के समसामयिक जीवन का पूर्ण प्रतिबिम्ब होता है। वह सामाजिक और राष्ट्रीय आन्दोलनों, हलचलों और क्राँतियों को अपना बल प्रदान करता है। यह साहित्य का सामाजिक रूप है और प्रेमचंद ने साहित्य के इसी पक्ष पर बल दिया है।

परन्तु साहित्य की ये मर्यादाएँ स्थापित कर प्रेमचंद उसे छोटा नहीं करते। साहित्य सामाजिक और राजनैतिक हलचलों के बेखबर न रहे, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह सामाजिक नेताओं, सुधार-वादियों और राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली बन जाये। प्रेमचंद कहते हैं—"वह ( साहित्य ) देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई ही नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।" स्वयं प्रेमचंद की रचनाएं उनके इस आदर्श की साक्षी हैं। १९२४ ई० में रंगभूमि प्रकाशित हुआ, परन्तु उस समय तक राजनीति के क्षेत्र में क्या उतनी व्यापकता आई थी, क्या पूजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष ने वह उग्रता थी? क्या देशी राज्यों की समस्या सामने भी आई थी? 'कर्मभूमि' में उन्होंने हरिजनों और चमारों की समस्या को जिस रूप में उपस्थित किया उसकी ओर नेताओं की दृष्टि भी नहीं गई थी। और 'गोदान' में वे गाँधीवादी युग से कितना आगे

बढ़े हुए हैं। युग की समस्याओं को लेकर भी कलाकार आगे की परिस्थितियों की व्यंजना देता है। यही उसकी सामर्थ्य है। प्रेमचंद में यह सामर्थ्य कम नहीं थी।

इस दृष्टिकोण के कारण ही प्रेमचंद को अहंवादी व्यक्तिवादी और विध्वंसवादी साहित्य से चिढ़ है। अहंवादी और व्यक्तिवादी व्यक्ति को समाज से अलग करके देखता है। उसकी रचना में व्यक्ति विशेष के सुख दुख का चाहे जैसा अपूर्व चित्रण हो, वह बुद्धिविलास-मात्र ही है। प्रेमकहानियों का सुख-दुख उस समय तक व्यर्थ है जब तक वह बलिदान, आत्म-त्याग और कष्ट-सहन की कसौटी पर नहीं कसा जाता। कदाचित् इसी कारण 'चोखेर बालि' कला की पुनारावृत्ति हमें प्रेमचंद के साहित्य में नहीं मिलती और जिस एक रचना में हम 'चोखेर बालि' की कथा वस्तु का प्रभाव देखते हैं, उसे भी विधवा-जीवन की पृष्ठ भूमि देकर उन्होंने सामाजिक बना दिया है। रवि बाबू की विधवा विलासिनी मात्र है, उसके मन के छल-छंद समाज के किसी भी अंग को नहीं झकोरते, परन्तु 'प्रतिज्ञा' की पूर्णिमा विधवा-जीवन की निस्सहायता और सामाजिक विडंबना की कहानी बन जाती है। इसी लिए प्रेमचंद लिखते हैं—'(अब) साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रही बल्कि वह मनोविज्ञानिक और समाजिक होता जाता है। यह अब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता, है, किंतु उसे समाज के एक अंग-रूप में देखता है।'—'मनोवैज्ञानिक से प्रेमचंद का तात्पर्य 'चोखेर बालि' और 'गृहदाह' की हेमलेटवाली मानसिक उथल-पुथल से नहीं है जो मनोहारी होने पर भी प्रत्येक दृष्टि से व्यर्थ है। प्रेमचंद उपन्यास में उतना मनोविज्ञान उपादेय मानते हैं जितना मनोविज्ञान व्यक्ति

की मनोभूमि को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दे और उसे व्यर्थ का बुद्धि-विलास या भाव-विलास न बना दे। विध्वंसकारी साहित्य से भी वे पूर्णतः परिचित थे। उग्र, ऋषभ चरण जैन, आस्कर वाइल्ड इत्यादि अनेक साहित्यकारों की रचनायें इसी श्रेणी में आयेंगी। प्रेमचंद का कहना है कि स्थायी साहित्य विध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है। वह मानव-चरित्र की कालिमाएं नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलता दिखाता है।

इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद उपयोगितावादी ठहरते हैं। वह कहते भी हैं—"मेरा पक्का मत है कि परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सभी कलाएँ उपयोगिता के सामने घुटना टेकती है।" "मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ। परंतु यह उपयोगिता नीतिशास्त्र के ढंग की उपयोगिता नहीं है। प्रेमचंद का कथन है—"नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक ही है—केवल उपदेश की विधि में अंतर है। नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है, साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों को चुना है......"। इसे ही दूसरे स्थान पर वह यों कहते हैं—"साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है।" इस तरह यह साफ प्रगट हो जाता है कि प्रेमचंद हृदय की संवेदनाओं और मनः-विश्लेषण को भी उतनी ही प्रधानता देते हैं जितनी नैतिक तत्व या उपदेश को। उनका साहित्य कोरा प्रचारात्मक साहित्य नहीं है। साहित्य के सारे अंगों से उनकी रचनाएँ पुष्ट हैं। अतः हम उनको प्रचारक या कोरा उपयोगितावादी नहीं कह सकते। कला के उपयोगिता-वाले पहलू पर उनका आग्रह इसलिए है कि यह उनके युग की माँग

थी। वह लिखते हैं—'कला के लिए कला का समय वह होता है जब देश संपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, दुःख-दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचार-शील प्राणी का हृदय न दहल उठे? हाँ उपन्यास-कार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि उसके विचार परोक्ष रूप में व्यक्त हों। उपन्यास की स्वाभाविकता मे उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।' इसप्रकार हम प्रेमचंद के उपयोगितावाद और कला-वाद में सन्तुलन स्थापित करता हुआ पाते हैं।

परन्तु उपयोगितावादी कलाकारों में भी प्रेमचंद का स्थान निश्चित करना होगा। यथार्थवादी और आदर्शवादी दोनों मूलतः उपयोगितावादी हैं, परन्तु उनका साहित्यिक और प्रेरणात्मक दृष्टिकोण नितांत भिन्न है। प्रेमचंद यथार्थवाद के विरोधी नहीं हैं। कायाकल्प में वह चक्रधर से कहलाते हैं—'यथार्थवाद स्तुत्य है, परन्तु नग्न यथार्थता घृणित है।' यह दृष्टिकोण उन्हें प्रकृतिवादी यथार्थप्रेमियों से एकदम अलग कर देता है। यथार्थ के भी कई रूप हो सकते हैं। वह नग्न और असुन्दर हो सकता है, अनर्गल हो सकता है अथवा मंगलमय हो सकता है। प्रेमचंद नग्न और असुन्दर यथार्थवाद के पक्षपाती नहीं है। वे कहते हैं—'असुन्दर का साहित्य में उतना ही स्थान है जिससे उसमें जो सुन्दर है उसकी सुन्दरता न बिगड़ने पावे, परन्तु सुन्दर क्या है, असुन्दर क्या है, यह जाँचना कठिन है। वह अनर्गल यथार्थ को अग्राह्य और मंगलमय यथार्थ को संग्रहणीय मानते हैं। उनका कहना है कि श्रेष्ठ लेखक यथार्थ को एकदम छोड़ ही नहीं सकता; वह

यथार्थ के इतना निकट होता है कि उसकी रचनाओं से यथार्थ का ही भ्रम होता है। उन्होंने जिस तरह उपयोगितावाद और कलावाद का गठबंधन करना चाहा है उसी तरह वे यथार्थवाद और आदर्शवाद में भी समझौता कर लेते हैं। उनका झुकाव आदर्शवाद की ओर है। वे कहते हैं—'आदर्शवादी कहता है, यथार्थ का यथार्थ रूप दिखाने से फायदा ही क्या, वह तो हम अपनी आँखों से देखते ही हैं। कुछ देर के लिए तो हमें इन कुत्सित व्यवहारों से अलग रहना चाहिए; नहीं तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है। वह साहित्य को समाज का दर्पण नहीं मानता, बल्कि दीपक मानता है जिसका काम प्रकाश फैलाना है भारत का प्राचीन साहित्य आदर्शवाद ही का समर्थक है। हमें भी आदर्श की ही मर्यादा का पालन करना चाहिये। अँधेरी गर्म कोठरी में काम करते-करते जब हम थक जाते हैं तो इच्छा होती है कि किसी बाग में निकल कर निर्मल स्वच्छ वायु का आनंद उठायें—इस कमी को आदर्शवाद पूरा करता है। यथार्थवाद यदि हमारी आँखे खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की मूर्ति मात्र हों—जिनमें जीवन न हो।' यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद आदर्शवाद की सीमाएँ भी जानते हैं। भारतीय साहित्यक परंपरा मे लोक-मंगल की भावना की प्रधानता है। प्रेमचंद इस परंपरा में अक्षुण्ण रखना चाहते हैं। यथार्थ जीवन का चित्रण हमें जीवन की सामान्य भूमि से परिचित करा सकता है वह हमें ऊपर नहीं उठा सकता आदर्शवाद हमें ऊपर उठा देता है। हम उज्ज्वल चरित्रों से परिचित होते हैं और क्षमा, दया प्रेम और सहिष्णुता का पाठ पढ़ते हैं। परंतु उज्ज्वल चरित्रों और महान आदर्शों के चक्कर में पड़ कर पाठक जीवन के सामान्य

समतल को एकदम भूल न जाये ,वह अपने लिए एक छलावे को सृष्टि न कर ले, प्रेमचंद इस विषय में भी सतर्क हैं। वह अपने समझौते को इन शब्दों में प्रगट करते हैं——"वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया है। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिये और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद् व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें। अपने अनेक उपन्यासों में प्रेमचंद इसी समझौते——इसी मज्झिम मार्ग' पर चले हैं। उनके इस दृष्टिकोण की भली भाँति समझे बिना उनके साहित्य को पूर्णरूपेण समझना असंभव है।

इस विवेचन से प्रेमचंद का साहित्यिक लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। प्रेमचंद साहित्य में जन-जीवन का चित्रण चाहते हैं परंतु वह चित्रण फाटोग्राफी के ढंग का चित्रण, या नग्न चित्रण, या अनर्गल चित्रण न हो। उसके पीछे एक उद्देश्य हो। साहित्यकार जन-जीवन को चित्रित करते हुए उसकी सम्भावनाओं को सदा आँखों के सामने रखे। वह जन-जीवन को ऊँचा उठाता है और पाठक की सद् वृत्तियों को चुनौती देता है। वह जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण हो जो सोद्देश्य हो, जिसमें लोकमंगल की भावना सन्निहित हो। वह पूर्णतः मनोवैज्ञानिक हो, परंतु वह मनः चित्रण इंद्रजाल न बन जाये। उसमें कल्पना की मात्रा कम हो, अनुभूति की अधिक। बौद्धिक तत्व उसमें यथेष्ट मात्रा में मौजूद हों परंतु वह बुद्धिविलास मात्र न हो उसका हृदय-पक्ष पुष्ट हो साहित्यकार जिन घटनाओं और चरित्रों की सृष्टि करता है, उनके लिए वह जवाबदेह भी होता है। अतः उसे जनहित का भी ध्यान रखना होता है। यह

दृष्टिकोण एक तरह का समझौता है और संभव है अन्य समझौता की तरह यह पाठक के मन को पूर्णतयः संतुष्ट नहीं कर सके। परंतु प्रेमचंद की कला को समझने के लिए उनके इस समझौते को समझना होगा। इस समझौते को प्रेमचंद ने एक वाक्य में इस प्रकार उपस्थित किया है—" साहित्य की आत्मा आदर्श है और उसकी देह यथार्थ चित्रण।" प्रेमचँद की सारी रचनाओं में जीवन का यथातथ्य रूप ही उपस्थित किया गया है, परंतु अंत में सद्वृत्तियों और सदाशयों की विजय होती है और आदर्श परीक्षा की अग्नि में तप कर खरा निकलता है। यह समझौता उनकी अपनी सूझ है। वह कहाँ तक कला की रक्षा कर सका है, यह दूसरी बात है।

---

३

## प्रेमचन्द के उपन्यास—

## रोमांचक कृतियां

प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों को हम रोमांचक उपन्यासों की श्रेणी में रख सकते हैं। उनका केन्द्रीय भाव प्रेम है। जिस प्रकार की सामाजिक और राजनैतिक प्रेरणा प्रेमचंद की परवर्ती रचनाओं में मिलती है, उस प्रकार की चेतना का इन उपन्यासों में अभाव है। अतः उनकी अपनी विशेष श्रेणी है। इन उपन्यासों को हम एक विशिष्ट श्रेणी के अंतर्गत रख सकते हैं।

ये उपन्यास हैं इसरारे मुहब्बत (१८६८) जो बनारस के उर्दू साप्ताहिक 'आवाजे खल्क' में क्रमशः प्रकाशित हुआ था; प्रतापचंद (१६०१) जो अपने मूल रूप में कभी प्रकाशित नहीं हुआ और बाद में कदाचित् 'बरदान' (१६०३) के नाम से सामने आया और 'प्रतिज्ञा' या प्रेमा (१६०४)। अंतिम उपन्यास उर्दू में 'हमखुर्मा और हम सबाब' नाम से प्रकाशित हुआ और बाद

में हिंदी में 'प्रेमा' 'विभव और 'प्रतिज्ञा' नाम से। 'प्रतिज्ञा' में इस प्रारंभिक उपन्यास का बहुत बड़ा रूपांतर हो गया है और इसे हम सर्वथा नवीन उपन्यास कह सकते हैं। इस रूप में यह १९२९ ई० में प्रकाशित हुआ और उर्दू में 'बेवा' नाम से। इन उपन्यासों में प्रेमचंद के समाज-सुधारक या किसी भी क्रांतिकारी रूप का पता नहीं लगता। प्रेमाश्रम (१९२२), रंगभूमि (१९२४), कायाकल्प (१९२८) और कर्मभूमि (१९३२) में भी प्रेम-रोमांस के प्रसंग चलते हैं, कुछ उपन्यासों में तो कथा की दृष्टि से प्रधानता भी प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु 'कायाकल्प' (१९२८) को छोड़ कर अन्य उपन्यासों में सामजिक-राजनैतिक चेतना ही अधिक जाग्रत है।

इन प्रारंभिक उपन्यासों में कला का रूप भली भाँति विकासित नहीं हो पाया है। 'वरदान' (१९०३) और 'प्रतिज्ञा' (प्रेमा, १९०४) के कथानकों की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। 'प्रेमा' अब सुलभ नहीं है और 'प्रतिज्ञा' में उसका रूप बहुत कुछ बदल गया है। इसलिए तुलना करते समय यह याद रखना होगा कि 'प्रतिज्ञा' परिमार्जित और परिवर्द्धित रचना है और उसमें प्रारंभिक प्रेमचंद के दर्शन बहुत कम होते हैं।

'बरदान' की कथा एक स्वच्छंद प्रेम-कथा है। नायिका है ब्रजरानी ( विरजन ), नायक प्रताप और खलनायक कमलाचरण। कथा का पूर्व रूप शरतचंद के देवदास से पूर्णतः मिलता है, यद्यपि उसके कलात्मक रूप में बड़ा भेद है। प्रताप और विरजन पड़ोसी बालक-बालिका है। प्रताप के पिता संन्यासी हो गये हैं और उसकी माता सुवामा बड़ी कठिनाई से बालक प्रताप का

लालन-पोषण कर रही है। विरजन के पिता-माता हैं। उसकी माँ सुशीला की सुवामा से बड़ी मित्रता है। समय-समय पर वह उसकी सहायता करती है। प्रताप भी विरजन के घर आता रहता है। धीरे-धीरे प्रताप और विरजन में बाल-सुलभ मैत्री का जन्म हो जाता है। सुवामा सोचती है, विरजन का विवाह प्रताप से हो जाये तो बड़ा अच्छा हो। इसमें कोई बाधा भी नहीं है। सुशीला से उसका बहनापा है। वह मान ही जायेगी।

परंतु समाज की भित्ति है धन। धन बीच में आ जाता है। डिप्टी श्यामाचरण की पत्नी प्रेमवती सुवामा से मिलने आती है, परिचित है और बृजरानी को देख कर अपने पुत्र कमलाचरण के लिए उसे बधू रूप में अपनाने की सोचती है। सुवामा भी राजी हो जाती है। निर्धनता के कारण एक महान दुखांत का सृजन हो जाता है। प्रताप अब सब कुछ समझने लगा है। विरजन भी कोई छोटी नहीं है। वह भी सब समझती है, परंतु धन के आगे किस की चलती है। शुभ मुहूर्त में विरजन और कमलाचरण का विवाह संपन्न होता है। प्रताप ने इस विवाह में जरा भी भाग नहीं लिया। उसके हृदय में ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का जन्म होता है।

यह स्पष्ट है कि इस प्रेमकथा में त्रिकोण का अभाव है। कमलाचरण और प्रताप एक ही कक्षा में पढ़ते हैं, परंतु बृजरानी के प्रेम को लेकर दोनों मे संघर्ष नहीं चलता। कहानी की भित्ति सामाजिक है। समाज में जैसा होता है उसी को लेकर प्रेमचन्द कहानी का निर्माण करते हैं। देवदास में 'पारो' भी धनी प्रौढ़ को विवाही गई है, परन्तु देवदास और पार्वती में मुख्य बाधा है जाति-भेद। शरतचंद धन-भेद की बात नहीं उठाते परंतु दोनों महान् उपन्यासकारों की प्रारम्भिक प्रेम-कथाओं का निर्वाह लगभग एक-सा

है। विवाह से पहले विरजन-प्रताप और पार्वती-देवदास की आधीरात की भेंट के ये दो दृश्य दर्शनीय हैं:

'विवाह के केवल पांच दिन रह गये। विरजन व्याकुल होकर अपने कमरे से निकली और प्रताप के कमरे में जा पहुंची। चतुर्दिक सन्नाटा छाया हुआ था। विरजन कमरे में गई तो क्या देखती है कि लालटेन जल रही है और प्रताप एक चारपाई पर सो रहा है। वस्तुएं इधर-उधर बेढंगी पड़ी हुई हैं। पुस्तकें फैली। ऐसा जान पड़ता है कि इस कमरे को महीनों से किसी ने नहीं खोला। यह वही प्रताप है जो स्वच्छता को प्राणप्रिय समझता है। विरजन ने चाहा उसे जगा दूँ, पर कुछ सोच कर भूमि से पुस्तकें उठा-उठा कर आलमारी में रखने लगी। मेज पर से धूल झाड़ी, चित्रों पर से गर्द का परदा उठा दिया। अचानक प्रताप ने करवट ली और उसके मुँह से यह वाक्य निकला—'विरजन, मैं तुम्हें भूल नहीं सकता।' फिर थोड़ी देर के पश्चात् —'विरजन! विरजन! कहाँ जाती हो? यहीं बैठो, फिर करवट बदल कर—'न बैठोगी? अच्छा जाओ। मैं भी तुमसे न बोलूँगा।'

फिर कुछ ठहर कर—'अच्छा जाओ, देखें, कहाँ जाती हो?' विरजन ने उसके हाथ में हाथ रख दिया। उसकी आँख खुल गई। एक मिनट तक उसकी भावशून्य दृष्टि विरजन के मुँह की गड़ी। रही फिर चौंक कर उठ बैठा और विरजन का हाथ छोड़ कर बोला—तुम कब आईं? विरजन! मैं अभी तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था:

विरजन ने बोलना चाहा परन्तु कंठ रुँध गया, और आँखे भर आईं।

प्रताप--विरजन, तुम मुझे भूल क्यों नहीं जातीं ?

विरजन ने आर्द्र नेत्रों से देख कर कहा-- क्या तुम मुझे भूल गये ?

प्रताप ने लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर विरजन ने पूछा --तुम मुझसे क्यों रुष्ट हो ? मैंने कोई अपराध किया है ?

प्रताप--न जाने क्यों जब तुम्हें देखता हूँ, तो जी चाहता है कि कहीं चला जाऊँ।

विरजन--क्या तुमको मेरी तनिक भी छोह नहीं लगती ? मैं दिन भर रोया करती हूँ। तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती ? तुम मुझसे मिलते तक नहीं। बतलाओ मैंने तुम्हें क्या कहा कि तुम रूठ गये।

प्रताप--मैं तुमसे रूठा थोड़े ही हूँ।

विरजन--तो मुझसे बोलते क्यों नहीं ?

प्रताप--मैं चाहता हूँ कि तुम्हें भूल जाऊँ। तुम धनवान हो, तुम्हारे माता-पिता धनी हैं, मैं अनाथ हूँ। मेरा-तुम्हारा क्या साथ ?

विरजन -- अब तक तो तुमने कभी यह बहाना न निकाला था।

यह कह कर विरजन रोने लगी। प्रताप बोला--हमारा तुम्हारा बहुत दिनों तक साथ रहा। अब वियोग के दिन आ गये। थोड़े दिनों में तुम यहाँ वालों को छोड़ कर अपनी ससुराल चली जाओगी। उस समय मुझे अवश्य ही भूल जाओगी। इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि तुम्हें भूल जाऊं। पर कितना ही चाहता हूँ

कि तुम्हारी बातें स्मरण में न आवें पर वे नहीं मानतीं। अभी सोते-सोते तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था।' शरतचंद के 'देवदास' में भी इसी तरह का एक प्रसंग आया है। अर्धरात्रि के समय सब आखों से छिप कर पारो (पार्वती) देवदास के एकांत कक्ष में आयी है। देवदास भी सो रहा है। 'पार्वती ने देवदास के पैर के ऊपर हाथ रख कर धीरे से पुकारा—देवूदा।' देवदास और पार्वती से बीच में सबसे बड़ी बाधा समाज है। फिर आधीरात के समय यह एकांत मिलन पार्वती के लिए अनिष्टकारी हो सकता है। कथाकार ने देवदास की समाज-भीरुता और पार्वती के निश्चल प्रेम को बड़ी सफलता से अंकित किया है।

देवदास ने भय और उद्वेग से कहा--रास्ते में डर नहीं लगा ?

पार्वती ने मुस्करा कहा—मुझे भूतों से भय नहीं लगता !

'प्रेतों से भय न लगे पर मनुष्य से तो भय लगता है। क्यों आई हो ?'

पार्वती ने उत्तर नहीं दिया। पर उसने मन ही मन कहा—इस समय शायद मुझे वह भी नहीं है।

मकान में कैसे घुसीं ! किसी ने देखा तो नहीं ?

दरबान ने देखा है।

देवदास ने बिस्तरे पर से कूद कर किवाड़ बंद कर दिये, फिर उसने पूछा--किसी ने तुझको पहचाना ?

इस पर पार्वती ने कहा कि शायद किसी ने पहचाना हो। तब देवदास बोला—क्या कहती हो ? ऐसा काम तुमने कैसे किया, 'पारो !' पार्वती ने मन ही मन कहा—सो तुम कैसे समझोगे ?

देवदास ने कहा—तो कल तुम्हारा मस्तक लज्जा से कट नहीं जायगा ?

प्रश्न सुनकर पार्वती ने तीव्र, साथ ही करुण दृष्टि से देवदास के चेहरे की तरफ कुछ देर तक ताक कर बिना किसी संकोच के कहा—मस्तक तो जरूर कट जाता यदि मुझे यह निश्चय न होता कि तुम हमारी सारी लज्जा को ढक दोगे ?

यह स्पष्ट है कि दोनों प्रसंग एक ही प्रकार के हैं और कथा का प्रवाह भी कम से कम प्रारंभ में एक-जैसा ही है। परंतु प्रेमचंद की कथा में मनोभावों की उतनी हलचल नहीं है, न वह नाटकीयता ही है जो 'देवदास' को विशिष्ट बना देती है। वह एक साधारण मिलन-वियोग की कहानी कह रहे हैं और उसमें सामाजिक अनाचार की बात उठती ही नहीं। इसीसे उसमें आत्मनिरोध और विद्रोह का विस्तार नहीं हो पाया है। परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि प्रेमचन्द की यह प्रारंभिक रचना शरतचन्द की रचना से किसी तरह छोटी है। शरतचंद और प्रेमचंद के सामाजिक दृष्टिकोणों में महान् अंतर है। शरतचन्द मूलतः क्रांति के उपासक हैं, प्रेमचन्द विकास के। 'चरित्रहीन' की किरणमयी और 'शेष प्रश्न' की कमल उनकी सामाजिक विद्रोह और क्रांति की प्रतीक है। अपनी अनेक रचनाओं में उन्होंने सनातन समाज को मर्म-भेदी चोट पहुँचाई है। 'नारी का मूल्य' नाम के उनके वृहद् लेख में उनके सामाजिक दर्शन का पूरा लेखाजोखा मिलता है। वे अपने युग के समाज को सर्वबंधन-मुक्ति का संदेश देते हैं और सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध कहीं वे एकदम खड्ग-हस्त हो जाते हैं, कहीं उनकी वाणी की कटुता उनके दृष्टिकोण को प्रकाशित करती है, कहीं उनके पात्र सामाजिक विरोध और असफल होने पर आत्मघात का पथ पकड़ते हैं

प्रेमचन्द में सामाजिक क्रांति का यह रूप नहीं दिखलाई देता। वे कहते हैं—'मैं सामाजिक विकास में विश्वास करता हूँ। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम जनमत को शिक्षित करें। क्रांति का अर्थ है गंभीर (विकासात्मक) सद्प्रयत्नों की असफलता। मेरा आदर्श है कि समाज के प्रत्येक जन को समान रूप से सुविधाएं प्राप्त हों। प्रगति और विकास के बिना यह आदर्श अप्राप्य रहेगा। अंतिम तथ्य है जनता का नैतिक स्तर, जनता का चरित्र। कोई भी समाज-पद्धति सफल नहीं हो सकती, जब तक समाज का प्रत्येक व्यक्ति चरित्रवान न हो। क्रांति के फल के संबंध में हम सदैव असफल ही रहते हैं। संभव है, क्रांति के बाद डिक्टेटर का राज्य स्थापित हो जाये जिसमें जरा भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता न रह सके। इसी से मैं विध्वंस नहीं चाहता, मैं पुनर्निर्माण में विश्वास रखता हूँ। यदि मुझे यह पूर्वाशा हो, यदि किसी प्रकार मैं जान सकूँ कि जिस स्वर्ग के पाने की कल्पना हमारे मन में है वह नाश और विध्वंस से प्राप्त हो सकेगा तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ।' प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों का अध्ययन करते हुए भी हम उन्हें इस दृष्टिकोण का ध्यान रखें तो वे शरतचन्द से कम प्रगतिशील दिखलाई नहीं देंगे। अंतर केवल दृष्टिकोण का है।

परंतु वरदान' को लिखते समय तक प्रेमचन्द का सामाजिक दृष्टिकोण कदाचित् अधिक विकसित नहीं हो पाया था। प्रताप चन्द कोई बड़ा सामाजिक 'हीरो' नहीं है। वह किसी बड़ी क्रांति का सूत्रपात नहीं करता। वस्तुतः समाज यहाँ उस तरह सामने ही नहीं आता जिस तरह 'देवदास' में। यहाँ तो प्रश्न ही दूसरा है। प्रताप निर्धन है, कमला धनी है, डिपुटी कलेक्टर का लड़का है। अतः वही बाजी मार ले जाता है और प्रताप हार जाता है। यह तो महाजनी सामाजिक व्यवस्था है ही। धन ही जहाँ एक

मात्र मापदंड है, वहाँ प्रताप की स्वतंत्रता और इच्छित वैवाहिक बंधन की बात उठाई ही कैसे जा सकती है ?

विरजन ( वृजरानी ) का विवाह कमलाशंकर से हो जाता है। जब तक विवाह नहीं होता, तब तक प्रताप की किशोर-सुलभ ईर्ष्या-भावना जाग्रत रहती है। वह प्रतिदिन आवारा कमला की कोई न कोई करतूत ले आता है और उसे विरजन की मा को सुना कर प्रसन्न होता है। परंतु जब विरजन चली जाती है, तो वह स्वयं उसके मार्ग में से हट कर पढ़ने में लग जाता है। पार्वती के देवदास की तरह वह आवारा जीवन बिता कर अपनी आत्म-हत्या नहीं कर लेता। यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द बँधे-सधे रोमांस को लेकर नहीं चल रहे। वह नित्य-प्रति के जीवन को ही दर्पण की भाँति उठा कर सामने रख रहे हैं। यथार्थ जीवन के प्रति उनका यह मोह बराबर बना रहता है और यही उन्हें उनके युग के अन्य उपन्यासों से अलग करता है।

अंत में कमलाशंकर की करतूतों ने सुशीला के प्राण ले लिए। वृजरानी उन दिनों मायके में ही थी। प्रताप खिंचा-खिंचा रहता था। सुशीला से वह भीतर-भीतर बहुत रुष्ट था। परंतु जब विरजन ने आकर बताया कि मा मृत्यु-शय्या पर है, तब वह तुरन्त सुशीला के पास पहुँच गया। बिचारी सुशीला का इसमें क्या दोष ? दो-तीन दिन तक बराबर दौड़-धूप होती रही, परंतु अंत में सुशीला चल बसी। इसके बाद विरजन ससुराल चली गई और प्रताप प्रयाग में रह कर पढ़ने लगा।

ससुराल में आकर विरजन ने कमलाशंकर को सुधारने के अनेक प्रयत्न किये। वह कुछ सँभला भी। विरजन की चित्तवृत्ति

में भी शनैः-शनैः परिवर्तन होने लगा। पिछली बातें स्वप्नवत् लगने लगीं। अब तो कमलाचरण ही उसका सब कुछ था। परंतु सच तो यह है कि वह अभी परिस्थितियों से पूर्णतः समझौता नहीं कर सकी थी। कमलाचरण प्रेम की बातें करता तो उसे कोई रस ही नहीं आता। दिन-दिन उसका स्वास्थ्य गिरता जाता और एक दिन वह बुरी तरह बीमार पड़ गई। प्रताप को तार दिया गया। उसके आने के साथ ही विरजन की दशा बदलने लगी। प्रताप के अश्रुबिंदुओं ने वह कर दिखाया जो बड़े-बड़े वैद्य नहीं कर सके। परंतु इस रोग ने एक तरह से विरजन को बदल दिया और उसे परिस्थिति से पूर्णतः समझौता करने के लिये तैयार कर दिया। बीमारी के दिनों में कमलाचरण ने दिन-रात एक कर दिये थे, वह उपकार क्या भुलाया जा सकता था। धीरे-धीरे भीतर बँधा हुआ बाँध टूट गया और विरजन कमलाचरण की हो गई। कुछ दिनों तक दोनों सब कुछ भूल गए--कमला प्रेमोन्माद में और विरजन कर्तव्य-निष्ठा में।

अंत में एक दिन डिपुटी साहब ने प्रताप को प्रयाग भेज दिया। वह वहाँ पढ़े। वहाँ प्रताप है। पत्नी से दूर रहेगा तो कुछ पढ़ भी जायेगा। परंतु प्रयाग पहुंच कर कमला विरजन के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर हो गया और अनेक दुष्कर्मों में फँस गया। चारित्रिक पतन के बीज उसमें पहले से ही विद्यमान थे। इस बार और नीचे पहुँचा और एक दुष्कर्म के चक्कर में फँस कर उसकी जान ही चली गई। जिस बोर्डिंग हाउस में वह रहता था उससे मिली हुई एक सेठ की वाटिका थी। उसकी देख-भाल एक माली करता है। उसकी सरयू नाम की कुमारी लड़की को वह अपने जाल में फँसाने लगा। परंतु एक दिन खुल जाने पर

ट्राम में बैठ कर भागा और घटना-वश मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह टिकट लेना भूल गया था और टिकट-कलेक्टर को देख कर गाड़ी से कूद पड़ा था। उधर डिपुटी श्यामाचरण को कुछ डाकुओं ने गोली मार दी। इस प्रकार इस पारिवारिक दुर्घटना ने उपन्यास को अप्रत्याशित दिशा में मोड़ दिया।

कमलाचरण की मृत्यु के बाद प्रताप के हृदय में आशा का जन्म हुआ। संभव है विरजन अब उसकी हो जाये। उसे बनारस जाकर एक बार देखना तो चाहिये। परन्तु जब वह रेल से उतर कर डिपुटी श्यामाचरण के घर की ओर बढ़ने लगा तब उसके हाथ-पैर काँप रहे थे। उसके हृदय में देवासुर-संग्राम मचा हुआ था। मकान में घुस कर एक दरार में आँख लगा कर उसने भीतर का दृश्य देखा। विरजन एक सफेद साड़ी पहने बाल खोले, हाथ में एक लेखनी लिए जमीन पर बैठी हुई कुछ लिख रही थी। उसके मुँह पर ऐसा तेज था कि प्रताप का अणु-अणु पीड़ित होने लगा। उसकी सारी दुर्वासनाएँ इस पवित्रता की अग्नि में जल गईं। उसके हृदय का पिशाच परास्त हो गया। वह उल्टे पाँव लौट आया।

इसके बाद प्रताप ने नया जीवन आरंभ किया। वह साधु बन गया। बाला जी नाम से उसने बड़ी लोक-प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। उसके तेज, उसकी विद्या, और उसके चमत्कारों की कहानियाँ दूर-दूर तक फैल गईं। लोक-सेवा उसका व्रत हो गया। उसमें वह अपने पूर्व-जीवन को पूर्णतः भूल गया। इधर विरजन कवियित्री बन गई। 'भारत-महिला' के नाम से उसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। परंतु क्या विरजन प्रताप को पूर्णतयः भूल गई थी ! और प्रताप? और प्रताप को क्या पता था कि एक तीसरा प्राणी भी उसी के लिए तपस्या कर रहा था।

जब वह मृत्यु-शय्या पर पड़ी विरजन को देखने गया था, तब उसके सिरहाने बैठ कर जो उसकी छोटी बहन माधवी उसकी सेवा-सुश्रुषा कर रही थी, उसने उसे अपना जीवन-देवता बना लिया था, परंतु प्रताप को यह बात कैसे मालूम होती ? सुवामा चाहती थी कि माधवी के साथ प्रताप का विवाह हो जाये और वह वैराग्य छोड़ दे। बृजरानी जानती है, प्रताप ही 'बाला जी' हैं। वह माधवो के प्रणय की बात भी जानती है।

अंत में १२ वर्ष बाद प्रताप काशी लौटते हैं। काशी में उनका बहुत बड़ा स्वागत हुआ। स्वयं विरजन ने उनके स्वागत में एक कविता लिखी। वह तो त्यागमयी है। चाहती है प्रताप माधवी के साथ प्रणय-सूत्र में बँध जाये। दोनों का विवाह हो जाये। माधवी बारह वर्ष से तप कर रही है। उसका तप समाप्त हो। वह एक ऐसा सूत्र रचती है कि 'बाला जी' (प्रताप) और माधवो पास-पास आ जाते हैं। प्रताप सो रहे हैं। अचानक लालटेन उलट जाती है और आग लग जाती है। माधवी जाग रही है। वह वह उस निशीथ में सब कुछ भूल कर प्रताप के एकांत शयनागार में प्रवेश करती है। प्रताप जाग कर उससे कुछ प्रश्न करता है तो उसके प्रेम का रहस्य उस पर खुल जाता है।

"क्यों माधवी ! तुम्हारा विवाह तो हो गया है न ?"

माधवी के कलेजे में कटारी चुभ गई। सजल नेत्र होकर बोली-'हाँ, हो गया है।'

बाला जी—'और तुम्हारे पति ?'

माधवी 'उन्हें मेरी कुछ सुध ही नहीं। उनका विवाह मुझसे नहीं हुआ।'

बाला जी विस्मित हो कर बोले—'तुम्हारा पति करता क्या है?

माधवी—'देश की सेवा।'

बाला जी की आँखों के सामने से एक पर्दा-सा हट गया। वे माधवी का मनोरथ जान गये और बोले—'माधवी, इस विवाह को कितने दिन हुए!'

माधवी 'मुझे कुछ स्मरण नहीं। बहुत दिन हुए।'

बाला जी के नेत्र सजल हो गये।

प्रताप की दुर्बलताएं फिर एक बार जग जाती हैं। परंतु माधवी उन्हें देवता के पूज्य स्थान से नीचे उतार कर सामान्य धरती पर बिठाना नहीं चाहती। वह त्याग और तप का मार्ग ग्रहण करेगी। प्रताप उसके होकर भी सबके होंगे। कहती है—'मैं सन्यास ले लूंगी और आपके साथ रहूंगी पर आपका संग न छोड़ूंगी।'

परंतु दूसरे दिन प्रताप को जन-सेवा का आह्वान मिल गया। सदिया में नदी का बाँध टूट गया था और दस हजार आदमी बेघर-बेदर हो गये थे। बाला जी के सिवा जनता की आँखे किस की ओर उठतीं! बाला जी भी चुप नहीं रहे। उन्होंने एक बार फिर ममता-मोह की बलि दी। दूसरे दिन सुबह होते-होते प्रताप काशी से चल दिये थे।

माधवी योगिनी हो गई। बृजरानी की तरह वह भी कविताएं लिखने लगी। उसमें भी अद्भुत तेज का प्रादुर्भाव हुआ। जो उसे देखता, वहं पवित्र हो जाता!

'वरदान' की कथा की यह एक सामान्य रूपरेखा है। यह स्पष्ट है कि इस कथा में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसमें हमें प्रेमचंद का पूर्वाभास हो। प्रेमचंद अभी 'प्रेमचंद' बने भी नहीं थे। परंतु भाषा-शैली, विचारधारा और कला की सामान्य रूप-रेखाओं को लें तो परवर्ती प्रेमचंद का बीज रूप 'वरदान' के पृष्ठों में मिल जायेगा। कथा के केन्द्र प्रतापचंद हैं। १९०१ ई० में 'प्रतापचंद' नाम से यह उपन्यास लिखा गया था, परंतु मूल रूप में वह प्रकाशित नहीं हुआ। 'वरदान' में हमें 'प्रतापचंद' का परिवर्तित परिवर्द्धित रूप मिलता है परंतु इसमें संदेह नहीं कि कथा 'प्रताप चंद' पर ही केन्द्रित है। प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व ही उपन्यास का प्राण है। प्रेमचंद के अन्य मध्यवित्त नायकों की तरह प्रताप भी दुर्बल-चरित्र और समाज-भीरु है। जब-जब उसे यथार्थ जीवन का सामना करना होता है, तब-तब वह भागता है। वह स्वतः इतना बड़ा नहीं है कि परिस्थितियों पर हावी हो जाये, परंतु परिस्थतियाँ उसे धीरे २ सामान्य मध्यवित्त से बहुत ऊपर उठा देती हैं। अंत तक वह माया-मोह को पूर्णतः परास्त नहीं कर सका है; परंतु अंत में कर्तव्य का आह्वान उसे बदल देता है। अब उसकी दिशा निर्दिष्ट हो चुकी है। ज्ञानशंकर, विनय चक्रधर, रमानाथ और अमरकांत प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों के मध्यवित्त नायक हैं और यह प्रतापचंद से भिन्न नहीं हैं। इनमें से सभी मानवीय दुर्बलताओं के शिकार होते हैं, पतन के गर्त को वे छू तक लेते हैं, परंतु उनके भीतर का देवासुर-संग्राम, उनकी कर्तव्यनिष्ठा, उनका जन-सेवा-व्रत, उनका आदर्शवाद उन्हें देर तक गिरने नहीं देता। रमानाथ को छोड़ कर शेष सब अन्त में पूर्ण-मानव की झाँकी हमें दिखा जाते हैं। परिस्थितियाँ भिन्न हैं, परन्तु इन कथा-नायकों की सामान्य रूप-रेखा बहुत भिन्न नहीं है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि इनमें से कोई भी प्रेम में परास्त होकर

आत्मघात पर उतारू नहीं होता। वह जनसेवा का पथ पकड़ता है और धीरे-धीरे महामानव बन जाता है। स्पष्ट है कि प्रेमचंद की पुकार कर्मपथ की पुकार है, आत्मप्रताड़न और आत्महत्या की नहीं। इस दृष्टि से वह शरतचंद से भिन्न हैं। देवदास और प्रतापचंद एक ही परिस्थिति के दो भिन्न परिणाम हैं और यह भिन्नता दृष्टिकोणों की भिन्नता के कारण है। प्रेमचंद मनोविज्ञान की नितांत उपेक्षा कर आदर्श जीवन की दुहाई देते है। शरत के पैर पृथ्वी पर रहते हैं। परन्तु पृथ्वी की भाँति ही क्या आकाश भी उतना ही सत्य नहीं है?

कथाविकास में प्रेमचंद जीवन की दैनंदिनी घटनाओं और मानव-मनोविज्ञान से पूर्णतः परिचालित हैं, यह स्पष्ट है। वह कल्पना के बल पर निरुद्देश्य कथानक का निर्माण नहीं करते। परन्तु यह भी सच है कि कथा-प्रवाह को यों मुक्त और अनाटकीय ढंग पर छोड़ने से कथा में वह तीव्रता नहीं आने पाती है जो शरत के साहित्य में पूर्ण रूप से केन्द्र में विराजमान है। उनके स्त्री-पात्र भी हमें उनके दृष्टि-कोण की ओर आकर्षित करते हैं। व्रजरानी (विरजन) और माधवी सोफिया का ही पूर्व रूप जान पड़ते हैं। यहाँ नारी त्यागमयी है। वह पुरुष को वासना की सोने की शृंखलाओं में बाँध कर नहीं रखना चाहती। तप कर वह एकदम कंचन हो उठी है। परन्तु यहाँ एक प्रश्न भी उठता है—क्या इस तपनिष्ठ नारी की झांकी विरजन में ही पूर्ण रूप में नहीं मिल जाती? माधवी क्यों लाई गई? संभवतः लेखक स्वयं समाज-भीरु है। वह विधवा-विवाह का प्रचार नहीं करना चाहता। विधवा विरजन से प्रताप का प्रेम-संबंध उसके चरित्र को नीचे ही उतारना। अतः प्रताप के चरित्र को और ऊंचा उठाने के लिए हुए माधवी की सृष्टि हुई और उसे बारह

वर्ष तप करना पड़ा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने साधारण जीवन की एक यथार्थ कहानी को लेकर उसमें नए अर्थ भर दिये हैं और कथा और पात्रों को नई विदग्धता प्रदान की है।

'वरदान' की भाँति 'प्रतिज्ञा' को भी हम पूर्णतयः रोमांस नहीं कह सकते। सच तो यह है कि वरदान की अपेक्षा उसका सामाजिक पहलू अधिक स्पष्ट है। उसे हम नारी-जीवन की विडंबना का चित्रण मान सकते हैं। अर्थ-मूलक समाज में अर्थहीन, पुरुषाश्रित नारी विधवा बनकर कैसी दयनीय बन जाती है, इसका पूर्ण चित्र 'प्रतिज्ञा' में मिलता है, यद्यपि वर्णन-प्रवाह और कथा-संगठन में कुछ ऐसा बल है कि हमें इस कथा की सामाजिक और आर्थिक भित्ति का ज़रा भी पता नहीं चलता। 'वरदान' की भाँति यह उपन्यास भी कई मंजिलें पार करने के बाद हमारे सामने आया है। कदाचित् पहले रूपों में इस उपन्यास की नायिका 'प्रेमा' ही थी, परन्तु जिस रूप में 'प्रतिज्ञा हमें प्राप्त है उस रूप में नायिका पूर्णा (पूर्णिमा) है और प्रेमा पीछे पड़ जाती है।

'प्रतिज्ञा' का कथानक 'वरदान की अपेक्षा कहीं अधिक सुगठित है। कदाचित् प्रेमचंद का कोई भी उपन्यास इतना सुगठित न हो। हो सकता है, प्रारंभ में यह प्रौढ़ता उपन्यास को प्राप्त नहीं हुई हो। इसकी आशा भी नहीं की जा सकती। परन्तु जिस रूप में यह पुस्तक हमें आज प्राप्त है उस रूप में हमें उस पर विचार करना है। इस उपन्यास में प्रेमचंद पूर्ण रूप से यथार्थवादी दिखलाई पड़ते हैं। भाषाशैली, कला और चरित्र—चित्रण में भी उतना संयम नहीं है। साधारणतः प्रेमचंद के उपन्यासों में प्रेम के चित्र बड़े संयत हैं, परन्तु यहाँ वह संयम नहीं है। पूर्णा के रूप में हम एक नितांत अभिनव नारी से परि-

चित होते हैं जो सद्‌चरित्र होती हुई भी चुहलवश पुरुष से खेल कर सकती है। 'कर्मभूमि' की मुन्नी में हमे इस प्रकार की एक दूसरी नारी से परिचय प्राप्त होता है।

'प्रतिज्ञा' का केन्द्र लाला बद्रीप्रसाद का परिवार है, परन्तु उसमें अनिवार्य रूप से अमृत राय और दाननाथ नाम के दो मित्रों की कथा भी जुड़ी हुई है। उपन्यास का क्षेत्र काशी है। बद्रीप्रसाद के परिवार में वह स्वयं हैं और उनकी पत्नी कमला, पुत्र कमलाप्रसाद, पुत्रवधू सुमित्रा और दो लड़कियाँ पूर्णिमा और प्रेमा। यह एक छोटा-सा मध्यवित्त कायस्थ-परिवार है। बड़ी लड़की का विवाह अमृत राय से हुआ था। उस समय अमृत राय कालिज में पढ़ते थे। परन्तु प्रसवकाल में ही स्त्री-पुत्र जाते रहे और वे विधुर बन गये। अपने परिवार में वे अकेले रह गये थे। एक बहन थी, उसका विवाह हो गया था और माता-पिता हैजे में चल बसे थे। पत्नी की मृत्यु के बाद उनका चित्र उचाट हो गया था। दो वर्ष तक देशाटन करते रहे। लौटे तो होली के दिन थे। ससुराल में दावत हुई। प्रेमा सामने आयी। वह अब तरुणी बन गई थी। बद्रीप्रसाद भी यह चाहते थे कि प्रेमा की शादी उन्हीं से हो जाये और पहला रिश्ता बना रहे। स्वयं प्रेमा अमृत राय पर मुग्ध है। जब से बहन गई है तब से उन्हीं के नाम की माला फेर रही है। स्वयं अमत राय भी प्रेमा की ओर आकर्षित हैं।

परंतु उन्हीं दिनों अमत राय अपने मित्र दान नाथ के साथ काशी के आर्य-मंदिर में विधवा-विवाह पर एक व्याख्यान सुनने गये और यह प्रण कर बैठे कि यदि उन्होंने विवाह किया तो केवल विधवा से करेंगे। लाला बद्रीप्रसाद ने यह बात सुनी तो उन्हें प्रेमा की ओर से चिंता हुई। स्वयं प्रेमा को कुछ कम दुःख

नहीं हुआ। प्रेमा के भाई कमलाप्रसाद ने यह बात सुनी तो उसने अपने बहनोई की बड़ी दिल्लगी उड़ाई। बद्रीप्रसाद जानते थे कि दाननाथ प्रेमा की ओर आकृष्ट है, वह भी उतना ही प्रतिभाशाली है जितना अमृत राय, परंतु अमृत राय से संबंध हो चुका था और वह उसे बनाये रखना चाहते थे। अंत में जब वे अमृत राय के किसी भी प्रकार प्रतिज्ञा भंग करने पर राजी न कर सके तो उन्होंने प्रेमा का विवाह दाननाथ से ही कर दिया। प्रेमा के लिए यह बहुत बड़ी चोट थी परंतु इस एक मार्ग के सिवा और कोई मार्ग भी नहीं था।

प्रेमा धीरे २ अपने पति की हो गई। उसने अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व और उसके सुख–दुख में डुबा देना ही ठीक समझा। परंतु दाननाथ को कुछ ऐसा लगा कि प्रेमा उन्हें अपने हृदय का संपूर्ण प्रेम नहीं दे रही है। उन्हें शंका हुई कि अब भी वह अमृत राय को चाहती है। फलस्वरूप अमृत राय से उन्हें द्वेष हो गया। वे उनके पक्के विरोधी बन गये। अमृत राय विधवाओं के लिए 'वनिताश्रम' खोलना चाहते थे और दाननाथ ने इस काम में उनकी बराबर सहायता की थी। दोनों कितनी बार एक ही रंगमंच पर बोले थे। जनता दोनों को अभिन्न समझती थी। परंतु अब वे पग-पग पर अमृतराय का विरोध करते। उन्होंने पुरातनपंथियों का साथ दिया और वह विधवा-विवाह के कट्टर शत्रु बन गये। लोगों को इस परिवर्तन पर महान आश्चर्य था। परंतु इस शत्रुता का सूत्रपात कैसे हुआ यह कोई नहीं जानता था। दाननाथ के घर अमृत राय को परास्त करने के लिये नई-नई योजनाएं बनतीं और प्रेमा का भाई कमलाप्रसाद भी इनमें भाग लेता। एक दिन यह तय हुआ कि अमृत राय जिस सभा में बोलने जा रहे हैं उसे गुंडों-द्वारा

भंग करा दिया जाय। चाहते यह थे कि केवल कोलाहल और बम-चख से ही यह काम हो जाये परंतु यह भी असंभव नहीं था कि गुंडे मार-पीट पर उतर आयें। प्रेमा ने यह योजना सुनी तो दंग रह गई। उसने दाननाथ को विरत करने का प्रयत्न किया परंतु वह तो ईर्ष्या के हिंडोलें में झूल रहे थे। परंतु प्रेमा हताश होकर बैठने वाली नहीं थी। उसने यह तय किया कि अमृत राय के घर जाकर उन्हें परिस्थिति से सूचित किया जाये और टाउन हाल जाने से रोका जाये परंतु जब वह वहाँ पहुँची तो दाननाथ चल पड़े थे। प्रेमा रुकी नहीं। कर्तव्य उसके पैर आगे बढ़ा रहा था। जब वह पहुँची अमृतराय रंगमंच से बोल रहे थे। सहसा गुंडों ने शोर मचाना शुरू किया। शांतिभंग होने की आशंका हो गई। तब प्रेमा आगे बढ़ी और उसने रंगमंच पर पहुंच कर अमृत राय के पक्ष में जोरदार व्याख्यान दिया। इससे लोगों के विचार बदल गये। उसकी चंदे की अपील पर गुंडों ने भी चंदा दिया—सभा विसर्जित होने पर अमृतराय ने प्रेमा से कहा 'यह तुमने क्या अनर्थ कर डाला, प्रेमा? दाननाथ तुम्हें मार डालेगा।'

प्रेमा ने हँस कर कहा—'जब इन उजड्डों को मना लिया तो उन्हें भी मना लूंगी।'

घर आकर प्रेमा ने देखा दाननाथ बिगड़े बैठे हैं। उसने उन्हें सँभालने की कोशिश की, परन्तु वे फिरे ही रहे। प्रेमा के सम्बन्ध में उसका संदेह और भी दृढ़ हो गया था। परंतु उन्हीं दिनों कमलाप्रसाद के एक कृत्य की तीव्र आलोचना हुई और उसके संबंध में लोग दाननाथ को भी दोषी ठहराने लगे। उनका निकलना-बैठना मुश्किल हो गया। परन्तु इस आड़े समय अमृत राय काम आये। उन्होंने

एक लेख लिख कर परिस्थिति साफ की और दाननाथ को जनता की निंदा से बचा लिया। अमृतराय के इस कृत्य ने दान नाथ को जीत लिया। उनमे और अमृतराय में सुलह हो गई। वह भी अमृतराय के वनिताश्रम के कामों में सहयोग देने लगे।

कमला प्रसाद को लेकर जो तीव्र आलोचना जनता में चली थी उसका संबंध पूर्णिमा ( पूर्णा ) से था। बद्रीप्रसाद के पड़ोस में पं० बसंत कुमार रहते थे। पूर्णा उन्हीं की पत्नी थी। प्रेमा और पूर्णा में बड़ा प्रेम था। एक तरह से दोनों परिवार अभिन्न हो रहे थे। परंतु उसी समय अकस्मात् ऐसी दुर्घटना हुई जिसने पूर्णिमा के जीवन को ही बदल दिया। होली का दिन था। बसंत कुमार ने भाँग छानी और गंगा नहाने निकले। कुछ रंग में थे। जी भर कर नहाये। सहसा उन्हें धार में कोई लाल चीज दिखाई दी। देखा, लाल कमल है। बसंत कुमार का जी मचल गया। सोचा, ये मिल जायें तो पूर्णा के लिए झूमक बनाऊँ। वह फूल लेने आगे बढ़ गये, परंतु फूल दूर थे और उधर प्रवाह भी तीव्र था। वह किसी तरह फूलों तक पहुँच तो गये परंतु प्रवाह से बाहर निकल नहीं सके। कुछ क्षणों की भावुकता ने उनके प्राण ले लिये। पूर्णा विधवा हो गई।

बद्रीप्रसाद ने पूर्णा की असहाय अवस्था पर दया करके यह निश्चय किया कि उसके नाम से बैंक में चार हजार रुपये जमा करा दिये जायें और उसके सूद से उसकी जिंदगी कटे। अपने पुत्र कमलाप्रसाद से जब उन्होंने यह निश्चय कहा तो वह भीतर-भीतर बड़ा कुंठित हुआ। चार हजार रुपया क्या कम होता है? परंतु जब वह किसी तरह पूर्णा को वहाँ से हटा देने और मैके भेजने की नियत से उस पास गया तो उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गया। उसके हृदय में वासना का उदय हुआ। उसने

सोचा, पूर्णा को घर लाकर रखा जाये। पिता से बातें बना कर वह उसे घर ले भी आया। पूर्णा कमलाप्रसाद की चेष्टाओं से उसके मन की धृष्टता कुछ-कुछ समझ गई थी, परंतु और कोई रास्ता दिखलाई नहीं देता था।

कमलाप्रसाद पहले लंपट नहीं था, परंतु धीरे-धीरे उसकी वृत्तियां बदलीं। सुमित्रा ने भी इस परिवर्तन का अनुभव किया। वह पूर्णिमा को एक क्षण के लिए भी अलग नहीं छोड़ती थी, परछाहीं की तरह उसके साथ रहती। कई बार कमला ने मना भी किया। परंतु वह उसे हटा न सका। कई बार उसने किसी बहाने से पूर्णा से प्रेम जताने की चेष्टा की, परंतु सुमित्रा ने उसके प्रयत्नों को असफल कर दिया। उसने पूर्णा को मिठाई पहुँचाना चाही, साड़ी देना चाही। परंतु सुमित्रा ने झूठ बोल कर उन्हें अपने पास रख लिया। कमलाप्रसाद सुमित्रा को जलाता परंतु सुमित्रा अडिग थी। इस प्रकार पूर्णा को लेकर पति-पत्नी के बीच में एक बड़ा व्यवधान उपस्थित हो गया।

पूर्णा ने चाहा कि वह पति-पत्नी के बीच में नहीं पड़े। वह कमलाप्रसाद से मिल कर अपनी परिस्थिति साफ कर देना चाहती थी। परंतु कई दिन तक कोई ऐसा अवसर ही नहीं मिला। उधर दस-बारह दिन से पति-पत्नी में अबोला था। एक दिन आधी रात के बाद पूर्णा को सुमित्रा के कमरे का द्वार खुलने की आहट मिली। उसने देखा, सुमित्रा पति के कमरे तक गई और फिर लौट आई। कई दिन से उसे ज्वर आ रहा था परन्तु कदाचित् वह झुकना नहीं चाहती थी। पूर्णा की सद्वृत्तियां उत्तेजित हो चुकी थी। उसने कमला के द्वार का दरवाजा खटखटाया। कमला जाग रहा था। उसने दरवाजा खोला। उस दिन कमला ने उससे पहली बार स्पष्ट रूप से प्रेम-निवेदन किया

और छल का आश्रय लेकर ही पूर्णा बड़ी कठिनता से उसके चंगुल से बच सकी। परंतु इसके बाद भी सुमित्रा और कमला की अनबन जारी रही और कमला की कुचेष्टाएं बढ़ती रहीं। एक दिन तो कमला ने उसका हाथ ही पकड़ लिया और उसे कमरे के भीतर बंद कर आत्म-हत्या की धमकी देने लगा। बड़ी कठिनता से पूर्णा उससे बच कर निकली।

और एक दिन सुमित्रा भी खुल गई। उसने पूर्णा से कहा—मुझे सब मालूम हो चुका है। तुम उससे कहो कि तुमसे विवाह कर ले। पूर्णा रो पड़ी। सुमित्रा जानती थी कि दोष उतना पूर्णा का नहीं है, परन्तु वह क्या करे! उसी दिन पूर्णिमा ने तय किया कि वह यह घर छोड़ देगी। परन्तु उसी दिन कमला ने एक चाल चली। वह एक पत्र लिए हुए आया और बोला कि प्रेमा ने उसे बुलाया है। पूर्णा को तांगे पर बिठा कर वह उसे एक निर्जन बंगले में ले गया और वहाँ उसने उस से बलात्कार करना चाहा। पूर्णा भागने लगी परन्तु भागने का कोई रास्ता नहीं था। अंत में उसने एक कुर्सी उठा कर कमला के सिर पर दे मारी। कमला मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। पूर्णा भाग कर गंगा में डूबना चाहती थी, पर एक बूढ़े ने उसे अमृतराय के बनिताश्रम में पहुँचा दिया। विधवा पूर्णा कमलाशंकर से खेल करना चाहती है परंतु वह उद्दाम लालसा के प्रवाह में बह जाती है। परंतु अंत में उपन्यासकार की नैतिक वृत्ति जाग्रत हो उठती है और वह पूर्णा की आत्मा की धिक्कार भी सुनता है। क्षण भर में पूर्णा बदल जाती है। वह फिर प्रकृत नारी है। विलासी कमलाशंकर दाँत तुड़वा कर परास्त हो जाता है और अंत में पूर्णा को हम एक नितांत नये रूप में पाते हैं। यह पूर्णा वही पुरानी पूर्णा नहीं है। यह उसका साधिका-रूप है। अग्नि में तप कर वह शुद्ध सोने के तरह निखर

आई है। सद् प्रवृत्तियों की जय के साथ कथा का पटाक्षेप प्रेम-चंद की आदर्शन्मुख यथार्थवादी कला की विशेषता है इस प्रारंभिक उपन्यास में भी यह कला पूर्णतयः रक्षित हुई है।

ऊपर के कथा-विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस छोटे से उपन्यास में कथा-वस्तु अत्यंत संगठित है और रचना-कौशल की दृष्टि से यह रचना प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के साथ रखी जा सकती है। परंतु वास्तव में यह रूप वाद का दिया हुआ रूप है। जो हो, इसमें संदेह नहीं कि कथानक वरदान की अपेक्षा कहीं अधिक सुलझा हुआ है और उसमें छोटी कहानी जैसी मार्मिकता और कलाविदुता आ गई है यद्यपि उपन्यास का अंत उस आदर्शवाद में हुआ है जो प्रेमचंद की विशेषता है और जो बनिताश्रम, सेवा-सदन और प्रेमाश्रम जैसी संस्थाओं के रूप में सामने आता है। वस्तु-संगठन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचंद पूर्णतः यथार्थवादी हैं। कमलाशंकर कदाचित् वरदान के कमलाचरण का ही पूरक है। वह खलनायक है। प्रेमचंद के साधारण खल-नायक उतनी दूर नहीं बढ़ते जितनी दूर यह खल-नायक बढ़ गया है—छल-प्रपंच, विश्वासघात और बलात्कार ये सब उनके चरित्र में गुँथ गए हैं। जो प्रेमचंद को आसमानी कथा-लेखक कहते हैं वे इस पात्र को देखें जो प्रेमचंद के परवर्ती कथा-साहित्य में शायद नहीं मिल सके—यथार्थ चित्रण में प्रेमचंद इतना आगे बढ़ सकते थे—परंतु वे कला की मर्यादा जानते थे और उनके लिए कला मनोरंजन और कुत्सित मनोविज्ञान की वस्तु नहीं थी। उन्होंने 'उपन्यास' शीर्षक अपने निबंध में लिखा है—"कला के लिए कला का समय वह होता है जब देश संपन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं

हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में अकड़े हुए हैं। जिधर निगाह उठती है, दुःख-दारिद्र्य के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचार-शील प्राणी का हृदय न दहल उठे। हां, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि उसके विचार परोक्षरूप में व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में इस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये। अन्यथा उपन्यास नीरस हो जाएगा।' फिर भी प्रतिज्ञा की भित्ति पुरानी होने के कारण उसमें सामाजिक प्रश्न के स्वर दब गये हैं और रोमांस ही उभर आया है। आधुनिक उपन्यास में भी ऐसी उद्वेगकारी वातावरण, ऐसा यथार्थ-चित्रण, इंद्रिय-लिप्सा और लालसा का का ऐसा रंगीन पट कदाचित् ही कहीं मिले।

परंतु, जैसा हमने ऊपर कहा है, 'प्रतिज्ञा' में सामाजिक क्रांति का स्वर तीव्र नहीं है। यह मूलतः उद्दाम लालसा और अवैध प्रेम की कहानी है। पूर्णिमा पतन के गर्त के किनारे तक पहुंच जाती है, परंतु अपनी स्वाभाविक अंतवृत्ति और भारतीय नारी के रोम-रोम में अंतर्हित निरोध के कारण वह गिरने से बच जाती है। इस प्रकार कहानी का केन्द्र कमलाशंकर और पूर्णिमा हो जाते हैं। विधवा-विवाह का प्रश्न पीछे पड़ जाता है। वह केवल कहानी को पृष्ठभूमि मात्र बन सका है। पूर्णिमा सजग हो जाती है और उसमें नारी का स्वाभाविक तेज जहाँ जल उठता है, वहां कथा स्वतः समाप्त हो जाती है। वनिताश्रम की स्थापना केवल दाननाथ और अमृतराय की कथा की ही पूर्ति है। इस प्रकार यथार्थवादी प्रेमचंद के ऊपर आदर्शवादी प्रेमचंद की जय होती है।

जरा ध्यान से देखें तो प्रेमचंद के इस उपन्यास के पीछे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चोखेर बालि ( आँख की किरकिरी ) के सुर बजते सुनाई पड़ते हैं । यह १६०१ ई० की रचना है। प्रकाशित होने के कुछ ही दिनों बाद यह रचना हिंदी में अनूदित हो गई थी और इसने हिन्दी और बंगला उपन्यास-साहित्य पर निश्चय रूप से बड़ा व्यापक प्रभाव डाला । 'चोखेर बालि' भी एक विधवा के अवैध प्रेम की कथा है और 'प्रतिज्ञा' की कथा की भाँति उसका अंत भी अस्वाभाविक आदर्शवाद में हुआ है। उसमें बनिताश्रम की स्थापना नहीं हुई है, परन्तु अंत में विहारी ( महेन्द्र ) के हृदय में विधवा विनोदिनी के प्रति पूजा-भाव ही जाग्रत होता है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें विनोदिनी और विहारी के मन का बड़ा सूक्ष्म, बड़ा मनोहारी चित्र उपस्थित हुआ है । मन के घात-प्रतिघात का यह चित्र अपूर्व है। कम से कम भारतीय उपन्यास-साहित्य में 'चोखेरबालि' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। परन्तु इस उपन्यास में विधवा के प्रेम जैसे एक अत्यंत वर्जित विषय को लेकर भी रवीन्द्र बाबू सामाजिक उथल-पुथल का चित्र उपस्थित नहीं कर सके। विनोदिनी विधवा है, अतः विहारी के प्रति उसका आकर्षण, उसकी चुहल, उसका विनोद-भाव सामाजिक दृष्टि से अकल्याण-कर है, इस बात को लेकर वे नहीं चले हैं। वे मूलतः कवि हैं और उन्होंने कवि की सहानुभूतिपूर्ण और सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि से विनोदिनी के मन की छलना को पकड़ना चाहा है। उपन्यास को अंत करते समय विधवा-विवाह की असामाजिकता की बात स्पष्ट रूप से उनके मन में है, फलतः वे पूर्णतः मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी ढंग से उपन्यास का अंत नहीं कर सके हैं। ज्ञात या अज्ञात रूप से

उन्होंने विनोदिनी के रूप में ऐसी पात्री की सृष्टि कर डाली है जिसकी परिणिति के संबंध में वे अपने मन को स्थिर नहीं कर पाये हैं। 'प्रतिज्ञा' के लेखक की दशा भी इससे अधिक अच्छी नहीं है। उसने बनिताश्रम के रूप में एक परिणिति सुझाई है। विधवा की प्रेम-लिप्सा सामाजिक दृष्टि से मन की छलना-मात्र है। उसके लिए जप-तप, पूजा-व्रत बहुत है। बनिताश्रम के रूप में ऐसी संस्थाएं खोल दी जायें जहाँ विधवाएं आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होकर सम्मान-पूर्वक जीवन बिता सकें। परन्तु यह परिणिति वास्तव में विधवा-समस्या का कोई समाधान उपस्थित नहीं करती। कलाकार रवीन्द्रनाथ कला की सीमा जानते हैं। वह विनोदिनी की प्रकृत प्रेम-लिप्सा का दिनानुदिन चित्र उपस्थित करके तटस्थ भाव से अपनी लेखनी रख देते हैं। यह चित्र पाठकों को कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देता है।

परन्तु चरित्र-चित्रण और कलामर्मज्ञता की दृष्टि से 'चौखेर बालि' और 'प्रतिज्ञा' उत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुव हैं। 'प्रतिज्ञा' घटना-प्रधान रचना है। 'चौखेर बालि' जैसी पूर्णता उसमें नहीं है। मन का वैसा कलापूर्ण चित्रण बाद में भी किसी कलाकार के लिए संभव हो सका है, यह कहना कठिन है। यह क्षोभ का विषय है कि प्रेमचंद ने रवीन्द्रनाथ की औपन्यासिक कला से बहुत अधिक नहीं सीखा। कहानी के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ की कला के ऋण को उन्होंने पूर्णतयः स्वीकार किया है, परन्तु रवीन्द्रनाथ की उपन्यास कला का विशेष विकास उनमें नहीं मिलता। उसके लिए हमें शरत्चंद के उपन्यासों की ओर मुड़ना होगा। शरत्चंद की उपन्यासकला का मूल उत्स भी 'चौखेर बालि' ही है, परन्तु उन्होंने इस प्रभाव को अपने ढंग पर ग्रहण किया। वे रविबाबू की कला में पूर्णतः डूब गये हैं और उन्होंने उसमें से नये-नये मोती निकाले

हैं। 'चोखेर बालि' के सामने 'चरित्र-हीन' को रखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। चोखेर-बालि ( १६०१ ), प्रतिज्ञा ( १६०५ ) और चरित्र-हीन ( १६१२-१३ ) विधवा की अमर्यादित प्रेम-लिप्सा और उसके मन के निरोध में तीन चित्र हैं। यह स्पष्ट है कि इनमें 'चोखेर बालि' ही सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु चरित्रहीन उसके बहुत पास तक पहुँच जाता है। 'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद उतने ऊपर नहीं उठ पाते। एक सुगठित, द्वन्दों से परिचालित कथानक वे अवश्य हमें देते हैं, परन्तु रवीन्द्रनाथ और शरतचंद कथानक से बहुत बड़ी चीज हमें देते हैं। रवीन्द्रनाथ मन का ऐसा सूक्ष्म चित्रण उपस्थित करते हैं कि उनकी कविप्रतिभा और अंतः दृष्टि पर हम मुग्ध हो जाते हैं। शरतचंद समाज के स्तंभों को तिलमिला देते हैं। 'किरणमयी' और 'सावित्री' के रूप में वह भारतीय नारी-जगत की दो सर्वश्रेष्ठ विभूतियाँ हमें देते हैं।

जो हो, इसमें संदेह नहीं कि अभी प्रेमचंद अपने को ढूंढ़ रहे हैं और पूर्णतयः अपने को पा नहीं सके हैं। कदाचित् रवीन्द्रनाथ और शरतचंद के प्रेम-रोमांस के क्षेत्र में अभूतपूर्व रचना देने की क्षमता उनकी नहीं थी। उनकी प्रतिभा समसामयिक समाज और राजनीति के साथ अधिक बँधी थी। 'प्रेमा' के बाद वह कई वर्ष तक मौन रहे। कृष्णा ( १६०२ ) नाम से 'गबन' का पूर्व रूप उन्होंने अवश्य उपस्थित किया परन्तु कला की दृष्टि से यह 'गबन' से बहुत भिन्न है। १६१६ ई० में 'सेवासदन' के साथ वह एक बड़ा उपन्यास लेकर फिर साहित्यिक क्षेत्र में आये। इस बार उनके हाथ में प्रेम की दीपशिखा नहीं थी, सामाजिक क्रांति की तड़ित-पताका थी।

४

# प्रेमचंद के उपन्यास:

## सामाजिक रचनाएँ

प्रेमचंद के 'रोमांसों' की विवेचना करते समय हमने यह देखा है कि परोक्ष रूप से सामाजिक चेतना के स्वर उनमें बज रहे हैं। 'वरदान' अर्थ-भेद की विडंबना को लेकर उपस्थित होता है। अर्थ की दृष्टि से समाज में ऊँचा-नीचा माना जाता है और जिसे हम हृदय दे डालते हैं, उसे हम सदैव पा नहीं सकते। अर्थ-प्रधान समाज में प्रणय की सरिता अबाध गति से प्रवाहित हो ही नहीं सकती। 'प्रतिज्ञा' में विधवा-विवाह की समस्या उठाई गई है और यद्यपि सामाजिक चेतना रोमांस के नीचे दब गई है, वह वहाँ स्पष्ट रूप में विद्यमान है।

सेवा-सदन ( १६१६ ), निर्मला ( १६२३ ) और गबन (१६३१) में सामाजिक चेतना ने अन्य औपान्यासिक तत्त्वों पर विजय पाई है और इन्हें हम सामाजिक रचनाओं के रूप में उपस्थित कर सकते हैं। इन रचनाओं का एक पुष्ट साहित्यिक पक्ष भी है, परंतु वह पक्ष अलग है। इन उपन्यासों की मूल प्रेरणा प्रेम या साहित्य नहीं है। इनकी मूल प्रेरणा के लिए हमें मध्यवित्त हिंदू समाज की कुरीतियों, उसके संस्कारों, उसके निरोधों, उसके द्वन्द्वों को पूर्ण रूप से समझना होगा।

'सेवा सदन' की समस्या पथ-भ्रष्ट नारी की समस्या है। यह पथ-भ्रष्ट नारी अंततः वेश्या बन जाती है और हिंदू समाज के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में सामने आती है। वेश्या-जीवन भी स्वतः इतना सुलझा हुआ नहीं है। उसकी अपनी समस्यायें हैं, अपने संस्कार हैं, और केवल मौखिक या बँधे-सधे प्रयत्नों से उसमें सुधार करना असंभव है। चाहते तो प्रेमचंद इस समस्या को विधवा की समस्या भी बना सकते थे, परन्तु उन्होंने इस समस्या को अलग ही रखा है और इस प्रकार सुमन के स्खलन के लिए एक नई ही मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार की है।

प्रेमचंद के अपने अनुभवों में इस उपन्यास का मूल ढूँढ़ पाना जरा कठिन ही है। यह तो ठीक है कि वे बनारस से बचपन में ही परिचित हो चुके थे और मूलगंज से अपरिचित न रह सके होंगे। परन्तु इस समस्या को कथा का रूप देना उनकी नई सूझ थी। हिंदी-उर्दू में वेश्या-जीवन को लेकर काफी लिखा जा चुका था, परंतु इन सब रचनाओं में वेश्या तरुणों को पथभ्रष्ट करती और वह सचमुच काजल की कोठरी बन जाती है। वेश्या-जीवन का सर्वांग और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण पहली बार 'सेवा-सदन' में ही सामने आया। कदाचित् इस समय बनारस और अन्य स्थानों पर चौक से वेश्याओं को हटाने के लिए आन्दोलन हो रहे थे और प्रेमचंद ने वहीं से प्रेरणा प्राप्त की। उपन्यास का वाद-विवादात्मक भाग समसामयिक परिस्थितियों की ही सूचना देता है। परंतु कदाचित् पुस्तक के कला-रूप को स्थापित करने में थैकरे के 'वेनिटी फेयर' ने सहायता दी। 'सेवा-सदन' उर्दू भाषा में 'बाजारे हुस्न' नाम से लिखा गया था। हिंदी में बाद को अनूदित होकर सेवासदन नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक स्थान

पर प्रेमचंद ने थेकरे के ऋण की बात स्वीकार की है परंतु यह भी बता दिया है कि थेकरे से उन्होंने प्रेरणा भर ली। 'सेवा-सदन' और 'वेनिटी फेयर' में समानता की अपेक्षा असमानता ही अधिक है।

वस्तुतः वेश्या आज हमारी उतनी बड़ी समस्या नहीं है जितनी उन्नीसवीं शताब्दी में थी या उन बुजुर्गों के लिए थी जो मुसलमानी संस्कृति के प्रभाव की छाया में चल रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी की अनेक रचनाओं में वेश्या का काला चरित्र अंकित किया गया है। वह एक 'टाइप' है। समाज के लिए वह हानिकारक है। प्रेमचंद और शरत में हम पहली बार इस शरीर-जीवी नारी के प्रति सहानुभूति पाते हैं। प्रेमचंद यह स्पष्ट कर देते हैं कि वेश्या-जीवन मध्यवित्त हिंदू सामाजिक जीवन की युग-पुराचीन विडंबनाओं की उपज है। मध्यवित्त समाज में वेश्या को जो सम्मान दिया जाता है, वह अंत में वैवाहिक जीवन पर ही कुठाराघात करता है और वेश्या का आकर्षण, उसका धन-यौवन-बल, 'घर की रानी' की अपेक्षा उसका कहीं अधिक मान कुछ ऐसी चीजें हैं जो गृहस्थ नारी को पथभ्रष्ट करने में समर्थ हैं। वैसे प्रेमचंद ने गजाधर के चरित्र में ऐसी कठोर रेखाएं उभारी हैं जो उसके गृहस्थ-जीवन को धूल में मिला देती हैं और इस तरह सुमन के पतन के लिए मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी तैयार कर दी है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस मनोवैज्ञानिक भूमि से 'सेवासदन' की सामाजिक भूमि कहीं अधिक महत्वपूर्ण है और कदाचित् उसे ही अधिक बल मिला है।

परन्तु वेश्याओं की समस्या का हल क्या है? क्या केवल उन्हें चौक से हटा देना? या 'सेवासदन'! जहाँ तक परिस्थित

के चित्रण का संबंध है प्रेमचंद पूर्णतयः यथार्थवादी हैं। वे उन स्वार्थों को सामने लाते हैं जो वेश्याओं के सुधार के विरोधी हैं। इन स्वार्थों से वे टक्कर भी लेते हैं। विट्ठलदास और पद्मासिंह के छद्म भेष में वे कुछ भी उठा नहीं रखते। उपन्यास के अंत में सुधारकों की ही विजय होती है। 'सेवासदन' की स्थापना हो जाती है और कुसुम उसकी व्यवस्थापिका बनती है। इस आश्रम में पथभ्रष्ट नारियों और वेश्याओं को सुधारा जायेगा। उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र करने से ही काम चल जायगा। प्रतिज्ञा में 'बनिताश्रम' है, यहाँ 'सेवासदन' नाम से एक दूसरा आश्रम खोला गया है इस प्रकार हम देखते हैं कि अंत में चौक से वेश्याएं हटा दी गईं और पथभ्रष्ट रूप-जीवी नारियों के कला-कौशल के शिक्षण और स्वतंत्र जीवन-यापन के लिए एक आश्रम भी खोल दिया गया।

यह स्पष्ट है कि व्यवहार ( चित्रण ) में क्रांतिवादी होने पर भी प्रेमचंद अंत में साधारण सुधारवादी ही ठहरते हैं। जैसा हमने पहले उद्धृत किया है वे विकासवादी हैं। वे क्रांति को उसी समय श्रेय देने के लिए तैयार हैं जब सुधारवादी दृष्टिकोण असफल रहे। उन्होंने वेश्या जीवन को मनोवैज्ञानिक की दृष्टि में नहीं देखा। क्या सभी वेश्याएं पथभ्रष्ट नारियाँ हैं ? क्या केवल धनलिप्सा ही नारी के लिए यह राजमार्ग खोलती है ? क्या पुरुष की स्वाभाविक यौनलिप्सा कुछ अंशों में इस सामाजिक विडंबना के लिए उत्तरदायी नहीं है ? क्या किसी भी समाज में पुरुष सदैव एक-स्त्री-व्रती रहा है ? —ऐसे अनेक गंभीर प्रश्न है जिन्हें प्रेमचंद ने नहीं उठाया है। फलतः सब कुछ होकर भी प्रेमचंद का 'सेवासदन' अंत में सुधारवादी उपन्यास-मात्र रह जात

रूसी उपन्यास 'यामा द पिट' में भी वेश्या-जीवन का चित्रण उपस्थित किया गया है। परन्तु लेखक का दृष्टिकोण मुख्यतः यथार्थ

जीवन का चित्रण है। लेखक वेश्या-जीवन के क्लेश, उसकी क्लांति उसकी चहल-पहल और उसके स्वार्थों के संघर्ष को प्रतिबिंबित करने में सफल हुआ है। वहाँ भी अंत में नगर से दूर उद्योग-धंधों की शिक्षा देने वाली ऐसी संस्था का निर्माण होता है, जो वेश्याओं के जीवन को बदल देती है, परन्तु वहाँ भी कदाचित् वेश्यायें अंत में भी समाज-बहिष्कृत ही बनी हुई हैं। 'यामा' में लेखक का दृष्टिकोण मुख्यतः यथार्थवादी और क्रांतिकारी है। वह वेश्या-जीवन के ऊपर से सोने का आवरण उठा कर उसके भीषण के भयंकर पिचाश को दिखाना चाहता है। इस चमक-दमक के पीछे प्राणों का कैसा क्रंदन है, कैसी विश्रांति है, कैसी वितृष्णा और कैसी घृणा है, यह दिखा कर लेखक अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। 'यामा' का पूर्वार्द्ध अपने इस चित्रण के लिए यह महत्त्वपूर्ण है। उत्तरार्द्ध कमजोर है। वह प्रधानतयः सुधारवादी है। एक तरुण दार्शनिक वृत्ति का युवक कैसे वेश्याओं के जीवन में परिवर्तन करने में सफल होता है, यह उत्तरार्द्ध का विषय है। परन्तु सच तो यह है कि यह हल कोई हल नहीं है। यदि कुछ थोड़े से युवक वेश्याओं से विवाह करने पर तैयार हो जायें तो यह समस्या इतनी सरलता से सुलझ नहीं जाती। प्रेमचंद ने 'यामा' के लेखक की तरह वस्तुवादी हैं, न उसका समस्या का समाधान इतना पोच है। अंत में समस्या के नैतिक और आर्थिक पहलू को भी वे उपस्थित कर देते हैं। उनका उपन्यास मूलतः एक भावुक परन्तु पथभ्रष्ट मध्यवित्त नारी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है जो काजल की कोठरी में भी घुस कर अपने अंचल को पवित्र रखने में सफल होती है। यह 'सेवासदन' का आदर्शवादी अंश है। प्रेमचंद वेश्यालय के जीवन का उतना यथार्थवादी चित्रण नहीं करते, जितना उसको लेकर मध्यवित्तों

की नैतिक और आध्यात्मिक दुर्बलता को सामने लाते हैं। गजाधर और मुंशी पद्मसिंह के रूप में उन्हों ने अपने बहु-परिचित मध्यवित्त वर्ग की सारी बिडंबना का विस्तारपूर्वक चित्रण किया है। इस दृष्टि से हम 'सेवासदन' को 'गबन' की श्रेणी में ही रखेंगे। उसका वाह्य रूप सामाजिक है, परन्तु अंतरंग मनोविज्ञान और मध्यवित्त समाज के द्वन्दों से पुष्ट है।

'निर्मला' दहेज और दोहाजू की समस्या है। दहेज की समस्या का मूल कारण है समाज की आर्थिक असमानता और समाज-सत्ता में स्त्री का निम्न स्थान। 'वरदान' में इस समस्या की एक झलक मिलती है। प्रताप निर्धन है, कमलाशंकर धनी है। अतः विरजन और प्रताप परस्पर विवाह सूत्र में बंध नहीं सकते। निर्मला में आर्थिक विषमता का दूसरा पहलू है। यहाँ भी धन की समस्या ही सामने आती है, परन्तु यहां दूसरा पक्ष निर्बल है। लड़की का पिता निर्धन है, अतः वह मन-चाहे वर को अपनी कन्या नहीं देता। लड़का सुधारवादी है। परन्तु लाचार है। यदि दहेज की समस्या उठ नहीं खड़ी होती तो दोनों परिणय-सूत्र में बँध जाते और निर्मला का सारा जीवन एक भयंकर खंडहर नहीं बन जाता। परंतु होता इसके विपरीत है। 'निर्मला' दहेज की समस्या को उसकी बिडंबना को इतनी शक्ति के साथ उपस्थित करती है कि हम चकित रह जाते हैं। एक के बाद एक दुर्घटनायें आती जाती है। निर्मला उस घर में पूर्णतः खो जाना चाहती है परन्तु वह अंत तक खो नहीं पाती। वह विमाता है, परन्तु उसने माता का हृदय पाया है। वह तीनों बच्चों को अपना बनाना चाहती है, परंतु अंत में उसका कोई भी नहीं होता। उसका पति उसपर संदेह करता है और उसके जीवन पर दुःख और प्रतारणा की इतनी बड़ी छाया पड़ जाती है कि उसे स्वयं अपने से घृणा हो जाती है।

'दोहाजू' जीवन की शंका-शीलता, असफलता और विस्फोटन-कारी परिस्थितियों का प्रेमचंद ने अत्यंत यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया है। यह उनकी प्रकृत भूमि थी। वह इस जीवन से पूर्णतः परिचित थे। आठ-दस वर्ष की आयु में ही उनकी माता का देहांत हो गया और पिता ने नई शादी की। विमाता घर आई। 'प्रेमचंदः घर में' संस्मरण ग्रंथ से हम उनकी विमाता के संबंध में बहुत कुछ जानते हैं। निर्मला में प्रेमचंद ने विमाता को अपार सहानुभूति दी है, परन्तु 'सौतेली माँ' एवं अन्य कहानियों में उन्होंने अपने कटु अनुभवों का भी चित्रण किया है। यह उनके कलाकार की जीत है कि उन्होंने निर्मला में अपने अनुभवों की कटुता को जरा भी नहीं आने दिया। कहानी के अंत में हम निर्मला के प्रति पूर्ण रूप से गलिताश्रु बन जाते हैं। वह परिस्थितियों के चक्र के नीचे पूर्णतयः पिस गई। विवाह के बाद उसने क्या सुख देखा? एक अच्छे-खासे परिवार को उसने खंडहर बना दिया? परन्तु क्या वह स्वयं इसके लिए दोषी थी? क्या उसने अपने पति और उनके बालकों को अपना सारा सेवा-भाव नहीं दिया? वह असफल रही, परन्तु यह तो परिस्थिति की विडंबना थी। कदाचित् लेखक गेल्सवर्दी के दुखांत-संबंधी दृष्टिकोण को 'निर्मला, में पूर्णतयः स्वीकार कर लेता है। गेल्सवर्दी का दुखांत-संबंधी दृष्टिकोण शेकसपिअर के दृष्टिकोण से नितांत भिन्न है। शेक्स-पिअर अपने नायकों में कोई-न-कोई ऐसी दुर्बलता रख देता है जो उनके सारे उच्चादर्शों की नींव खोखली कर देती है। पाठक इस बात को जानता है। हेमलेट कैसा महत्वाकांक्षी, कितना सुलझा हुआ युवक है, परन्तु वह कर्मी नहीं है। जहां कुछ करना चाहिये, वहाँ वह केवल स्वप्न देखता है। जब उसकी कर्म-शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं तो वह अपूर्व बन जाता है, परन्तु अंत तक वह

कर्मठ नहीं बना रहता। उसका दुखांत उसकी अंतःप्रवृत्ति में अंतर्हित है। गेल्सवर्दी व्यक्ति को समाज की रूढ़िवादी परंपराओं और परिस्थितियों का शिकार मानता है। प्रेमचंद की भाँति गेल्सवर्दी के कथानक भी मध्यवित्त नायकों से संबंधित हैं और प्रेमचंद की तरह गेल्सवर्दी का दृष्टिकोण भी मूलतः सामाजिक है। गेल्सवर्दी के नायकों की तरह प्रेमचंद की निर्मला भी परिस्थितियों और सामाजिक विडंबनाओं का शिकार है। परन्तु कलाकार की दृष्टि से प्रेमचंद गेल्सवर्दी से आगे बढ़ गए हैं। नाटककार की अपनी सीमायें हैं। वह केवल एक ही विषम परिस्थिति का पूर्णतयः निर्वाह कर सकता है। उपन्यासकार एक से अधिक परिस्थितियों को ले सकता है और इस प्रकार दुखांत को और भी गहराई, और भी मार्मिकता दे सकता है। सचमुच कला की दृष्टि से 'निर्मला' अत्यंत सुन्दर रचना है और उसमें हमें शरतचंद-जैसी मार्मिकता और दुःख-विदग्धता का स्वाद मिल जाता है। अंतिम दृश्य में तो हमें शरतचंद की कला की याद बरबस आ ही जाती है। जो आलोचक यह कहते हैं कि प्रेमचंद में शरत-जैसी मनोवैज्ञानिकता, शरत-जैसी दुःखानुभूति नहीं है वह 'निर्मला' को एक बार फिर पढ़ें और शरत की 'बड़ि दिदि' और 'पंडित जी जैसी रचनाओं की कला से प्रेमचंद की कला की तुलना करें। इसमें संदेह नहीं कि तुलना में प्रेमचंद छोटे नहीं निकलेंगे। अंतर केवल इतना रहेगा कि प्रेमचंद ने मनोविज्ञान को हवाई नहीं रहने दिया, उन्होंने उसे अनिवार्यतः एक भयकर सामाजिक समस्या से संबद्ध कर दिया है।

'ग़बन' कदाचित् प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है। कला के दृष्टिकोण और व्यंग-प्रधान शैली के कारण यह 'सेवा-सदन' से भी ऊँचा है। परन्तु उसको समाज से संबन्धित करना

उतना सरल नहीं है। सामाजिक व्यंग का भाव 'सेवा-सदन' में भी है, परन्तु यहाँ यह व्यंग इतना स्पष्ट नहीं है। समस्या भी कुछ अधिक सूक्ष्म है। उसे हम पूर्णतः सामाजिक भी नहीं कह सकते। 'प्रतिज्ञा' में विधवा-विवाह है, 'सेवा-सदन' में वेश्या-जीवन की समस्या है और 'निर्मला' में 'दहेज' और 'दोहाजू' की समस्याएँ हैं। ये समस्याएँ सामाजिक कुरीतियों या रूढ़ियों के कारण हमारे सामने आती हैं। परन्तु 'गबन' में जो है, वह कोई सामाजिक कुरीति नहीं है। वह तो सामाजिक धन-संपत्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण और व्यक्तिगत आकांक्षाओं और निरोधों का फल है। हमारा सारा सामाजिक जीवन ही धन के छल पर आश्रित है। सभी बड़े बनना चाहते हैं। बड़ेपन का मान-दंड धन है। अतः धनवान होने का दिखावा समाज में साधारण-सी बात हो गई है। इस दिखावे के लिए आदमी क्या नहीं करता ! रमानाथ अपनी पत्नी जालपा को प्रसन्न करना चाहता था। जालपा ने बचपन में ही एक चंद्रहार देखा था और तब से उसके मन में बड़े होकर चंद्रहार पहरने की आकांक्षा बराबर बनी हुई थी। एक दिन रमानाथ के मित्र की एक पत्नी को हार पहरे देख कर यह लालसा जाग उठी। रमानाथ ने अपनी पत्नी के लिए हार खरीदना ही अच्छा समझा। उसे गबन करना पड़ा। परन्तु परिस्थिति-वश वह अपना अपराध छिपा नहीं सका। भाग कर उसने कलकत्ते में अज्ञातवास की शरण ली। बात कोई बड़ी नहीं है, यहाँ प्रेमचंद ने उसे जिस रूप में लिखा है वह सचमुच अपूर्व है। इस उपन्यास की रूपरेखा १९०४ ई० में ही बन चुकी थी। उस समय उन्होंने इंडियन प्रेस से 'कृष्णा' नाम का एक उर्दू उपन्यास छपवाया था, परन्तु १९३० ई० के लगभग उन्होंने इस उपन्यास को नए ढांचे में ढालना शुरू किया। १९३१ ई० में

'गबन' प्रकाशित हुआ। उसका नया रूप प्रेमचंद की प्रौढ़ प्रतिभा की उपज था। उसमें पुरानापन जरा भी नहीं रह गया था।

मध्यवित्त नारी की आभूषण-प्रियता और मध्यवित्त पुरुष की धनमर्यादा-सम्बन्धी छलना प्रेमचंद की कुछ कहानियों का भी विषय है। 'गबन' की ट्रेजडी आभूषण-प्रेम की ट्रेजडी है। आभूषण प्रेमी पत्नी उनकी तीन अन्य कहानियों में चित्रित है और ये तीन कहानियाँ हैं 'कौशल' 'बहनें' और 'आभूषण'। 'आभूषण'-कहानी स्पष्ट रूप से मोपांसा की 'दे नेकलेस' (हार) कहानी से प्रभावित है। प्रेमचंद भारतीय मध्यवित्त की इस कमजोरी के पूर्ण रूप से परिचित थे और उन्होंने इसे कलात्मक रूप देना चाहा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु वास्तव में 'गबन' की कहानी केवल आभूषण-प्रेम की कहानी नहीं है। वह उससे कहीं बड़ी चीज है। उसमें मध्यवित्त तरुण रमाकांत के दुर्बल चरित्र का एक संपूर्ण चित्र मिलता है। हमारा मध्यवित्त कितना गल-सड़ गया है, कितना भावाक्रांत है, अपनी रूढ़ियों और मानापमान की भावनाओं से कितना जकड़ गया है, यह 'गबन' के पाठक से छिपा नहीं रहता। 'वरदान' और 'निर्मला' में भी मध्यवित्त जीवन की आर्थिक और नैतिक विडंबना ही उपन्यासकार का विषय है, परन्तु यह प्रासंगिक है। 'गबन' में इस विषय को लेकर एक सर्वांगपूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। इस रचना में हम पहली बार प्रेमचन्द को उस व्यंग-प्राण शैली का प्रयोग करते पाते हैं जो विकसित रूप में 'गोदान' और कफन की कहानियों में प्राप्त होती है। परन्तु 'गबन' की यह व्यंग-प्राण शैली ही उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, उसकी सम्पूर्ण कल्पना ही व्यंग-प्राण है। मध्यवित्त वर्ग की जनता किस प्रकार झूठी इज्जत-सम्बन्धी धारणा का शिकार है और इस धारणा से कैसे-कैसे

बवंडर उठ सकते हैं, क्या-क्या दुर्घटनायें हो सकती हैं, इसका सम्पूर्ण विवरण हमें प्रेमचंद के इस उपन्यास में मिलेगा। सारा मध्यवित्त समाज ही इस सम्बन्ध में एक बड़े ढकोसले का शिकार है। झूठी इज्जत के लिये झूठ बोलना यहाँ साधारण बात हो गई है, परन्तु इस झूठ की कलई भी एक दिन खुल जाती है। तब उससे बड़ा झूठ बोल कर उस पहले झूठ को ढकने की चेष्टा की जाती है। अंत में झूठ की कागज की नाव मँझधार में ही डूब जाती है। पुश्त-दर-पुश्त यही झूठ चल रहा है। रमानाथ के पिता दयानाथ बड़े सज्जन और सहृदय व्यक्ति हैं। कचहरी में नौकर थे तो पचास रुपये वेतन पाते थे। परन्तु रिश्वत को हराम समझते थे। यह सब है परन्तु लड़के की शादी के अवसर पर झूठी इज्जत की भावना के शिकार हो जाते हैं। शादी की जाये तो मामूली क्यों हो? परन्तु हो कहाँ से? और न हो तो इज्जत जाती है। इस विचार के आते ही वर्षों का संयम समाप्त हो जाता है। बड़प्पन की भावना की विजय होती है। धीरे-धीरे वे सैकड़ों के कर्जदार हो जाते हैं। अंत में बहू तो घर में आती है, परन्तु घर उजड़ जाता है। तब दयानाथ के सामने एक ही बात रह जाती है। बहू के गहने किसी तरह ले लिये जायें, चोरी से या छिपा कर या और किसी तरह परन्तु बहू को पता नहीं चले और इज्जत बनी रहे। गहने सोनार के यहाँ बेच कर कर्जदारों को रुपया चुकाया जाये। आखिर इज्जत कैसे बचे! दयानाथ अपने पुत्र रमानाथ को सुझाते हैं कि वह अपनी स्त्री के गहने उड़ा ले और उनकी जगह मुलम्मे के गहने रख दे। परन्तु जब रमानाथ गहने उठा लाता है, तो वे नाक-भौं सिकोड़ते हैं और अनजान की तरह पूछते हैं—इसे क्यों उठा लाये? इस पर रमानाथ पूछता है कि क्या वह गहने वहीं रख लाये जहाँ से उठाये थे। तब दयानाथ

कहते हैं—'अब क्या रखोगे ? कहीं देख ले तो गजब ही हो जाय। वही काम करोगे जिसमें जग-हँसाई हो। खड़े क्या हो, सन्दूकची मेरे बड़े सन्दूक में रख आओ, और जाकर लेट रहो। कहीं जाग पड़े तो बस।' मध्यवित्ती समाज के मन का छल इतनी स्पष्टता से और कहाँ पकड़ा गया है। चारों ओर छल, चारों ओर प्रवंचना। यहीं तो मध्यवित्त की मजबूरियाँ हैं।

इज्जत का दिखावा बनाये रखने के लिए रुपये चाहिये। बिना रुपये इज्जत बन ही नहीं सकती। समाज का सङ्गठन ही कुछ ऐसा है। फलतः रिश्वत को प्रश्रय मिलता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति जितना है उससे कहीं गुना बड़ा बनना चाहता है या बनने का दिखावा करता है, वहाँ बँधी हुई तनख्वाह से क्या काम चलेगा। इसीलिए आमदनी के गुन गाये जाते हैं। किसी भी जगह के सम्बन्ध में बात करते हुए कह दिया जाता है—'जगह आमदनी की है।' आमदनी यानी रिश्वत या घूस या दस्तूरी, जो कहो। बात एक है। परन्तु इसको गुनाह समझा जाये तो काम कैसे चले। इसलिए ईमानदारी और रिश्वत में समझौता करना पड़ता है। दयानाथ जब सुनते हैं कि रमानाथ घूस लेता है तो वह आपे से बाहर हो जाते हैं। वे रमानाथ पर बिगड़ पड़ते हैं कहते हैं—'कभी एक पैसा भी हराम का नहीं लिया। तुममें यह आदत कहाँ से आ गई। यह मेरी समझ में नहीं आता।' परन्तु जब रमानाथ साफ कह देता है कि वह रिश्वत नहीं लेता तो वह पूछते हैं—'तुम दस्तूरी नहीं लेते ?' रमानाथ कबूल कर लेता है कि वह दस्तूरी लेता है, छिप कर नहीं लेता, खुल्लम-खुल्लम लेता है। इस पर दयानाथ झल्ला कर कहते हैं—'सभी खुल्लम-खुल्ला लेते हैं और लोग बिना माँगे देते हैं, इससे तो रिश्वत की बुराई कम नहीं हो जाती।' परन्तु यह भी स्पष्ट है कि स्वयं पिता

दयानाथ कोई दूध का धोया हुआ नहीं है। वह केवल अपने मन को समझाना चाहता है। उसने जीवन भर ईमानदारी का ढोंग चलाया, अब चाहता है बेटा भी वही ढोंग जीवित रखे। मध्यवित्त वर्ग अपनी मजबूरियों का शिकार है परन्तु वह स्वयं अपनी नज़रों में सन्त बनना चाहता है और अपनी चोरी और धोखा-धड़ी की ऐसी व्याख्या करता है कि हमें आश्चर्य होता है उसके छल पर। रमानाथ रिश्वत को बुरा मानता है परन्तु इस रिश्वत को दस्तूरी कह दो तो वह प्रसन्न है। वह कहता है—'दस्तूरी का बंद कर देना मेरे बस की बात नहीं है। मैं खुद न लूँ, चपरासी और मुहर्रिर का हाथ तो नहीं पकड़ सकता। आठ-आठ नौ-नौ पाने वाले नौकर अगर न लें तो उनका काम नहीं चल सकता मैं खुद न लूँ, पर उन्हें नहीं रोक सकता। रमानाथ की माँ भी बराबर यह चाहती है कि दयानाथ घूस लें। स्वयं रमानाथ की स्त्री जालपा भी आमदनी की बात सुन कर प्रसन्न होती है। घूस के पैसों से जब रमानाथ जालपा को एक चंद्रहार बनवा देता है, तो उस दिन जालपा की पति-भक्ति का ठिकाना ही नहीं है। पहले रमानाथ की सहूलियतों की ओर उसका ज़रा भी ध्यान नहीं जाता था, अब वह ज़रा-ज़रा सी बातों पर ध्यान रखती है। चन्द्रहार मिलते ही उसका व्यक्तित्व बदल जाता है।

यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द 'गबन' की समस्या को गहने की समस्या तक ही सीमित नहीं रखते। वह मध्यवित्त समाज का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित करते हैं। मध्यवित्त वर्ग का प्रेम, द्वेष, सदाचार, पातिव्रत्य, प्रतिष्ठा और ईमानदारी का भाव सचमुच बहुत बड़ा ढकोसला है। यह ढकोसला, यह छल सारे समाज को खोखला बना रहा है। प्रेमचन्द ने 'कृष्णा' ( १६०४ ) की साधारण कहानी को 'गबन' का रूप देने के लिए

उसे मध्यवित्त समाज को व्यापक प्रवंचना की विशाल भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया है। रमानाथ की कहानी सारे मध्यवित्त समाज की कहानी बन गई है।

इन उपन्यासों में प्रेमचंद श्रेष्ठ कथाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। यदि वे ये सामाजिक उपन्यास ही लिखते और उनके बड़े २ राजनीतिक उपन्यास हमारे सामने नहीं आते तब भी उन्हें कदाचित् उतना ही सम्मान प्राप्त होता जितना आज प्राप्त है हिंदी के सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में भी ये रचनायें अपूर्व हैं। कम से-कम 'सेवासदन' और 'गबन' की रचना करना किसी भी दूसरे कलाकार के लिए असंभव था। सच तो यह है कि जब प्रेमचंद ने राजनीतिक उपन्यास लिखना शुरू किया उनका 'प्रेमाश्रम' सामने आया तो उनके कुछ प्रशंसक उनसे रुष्ट हो गये। वे उनसे 'सेवासदन' की श्रेणी की रचनायें ही चाहते थे। समसामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन और साधारण किसानों-मजदूरों को लेकर किसी बड़े उपन्यास की रचना की जा सकती है, यह उनके लिए अचिन्त्य था। परन्तु 'रंगभूमि' ( १९२४ ) की सफलता ने उनको निरस्त्र कर दिया। सामाजिक क्षेत्र तक सीमित रहते हुए प्रेमचंद के लिए 'रंगभूमि' जैसी चीज देना असंभव था। नये क्षेत्र ने नई संभावनाओं को जन्म दिया।

परन्तु फिर भी इन सामाजिक रचनायों का महत्व कम नहीं है। जहाँ तक कथा-सौष्ठव, चरित्र-चित्रण, वातावरण-निर्माण और भाषा-शैली के कलात्मक प्रयोग का संबंध है, वहाँ तक ये रचनायें प्रेमचंद की परवर्ती कला की पूर्व-सूचना देती हैं। ये वे प्रयोग-शालाएं हैं जिनमें प्रेमचंद ने अपनी प्रतिभा की जाँच-पड़ताल की है और उसे सामाजिक क्रांति के अस्त्र से पुष्ट कर साहित्य-क्षेत्र मेंउतारा है।

'सेवासदन' ( १९१६ ) प्रेमचंद का सब से पहला बड़ा उपन्यास है। 'वरदान' ( १९०१ ) और 'प्रतिज्ञा' ( प्रेमा, १९०४ ) में प्रेमचद का कलागत दृष्टिकोण सीमित है और ये रचनायें समाज से उतनी निकट रूप से संबंधित नहीं हैं। 'सेवासदन' में प्रेमचंद पहली बार प्रेमचंद के रूप में हमारे सामने आये हैं और यहाँ उनकी सारी विशेषताएं एक ही तरह एक ही साथ विकसित रूप में दिखलाई देती हैं। यहाँ वे श्रेष्ठ कथाकार तो हैं ही। वे समाज के आलोचक भी हैं और उनकी यह आलोचना अत्यंत सप्राण है।

सामान्य रूप से इसे भी पारिवारिक कथा और वैवाहिक रूप में देख सकते हैं। दारोगा कृष्णचंद, उनकी पत्नी गंगाजली और उनकी पुत्रियों सुमन और शांता तक यह परिवार सीमित है। उनके एक छोटे भाई उमानाथ भी हैं परन्तु वे अलग रहते हैं। कृष्णचंद ने २५ वर्ष तक दारोगागिरी की परन्तु अपनी ईमानदारी और सच्चरित्रता के कारण वे कुछ भी कमा नहीं सके। अब दोनों लड़कियां बड़ी हो रही हैं। सुमन तो काफी बड़ी हो चुकी है। उसका विवाह होना चाहिये। परन्तु विवाह के लिए रुपया चाहिये। पच्चीस वर्ष की ईमानदारी का यह फल है कि आज हाथ में एक पैसा नहीं है। वे साफ देख रहे हैं कि उनके साथी और उनके छोटे घूस लेकर लाखों के आदमी बन गये। अंत में परिस्थितियां उन्हें बाध्य कर देती हैं कि वे भी कुछ साहस से काम लें। एक मामले में घूस लेते हैं परन्तु भाग्य साथ नहीं देता। कभी घूस लिया नहीं और अमले को मिलाना नहीं जाना। नतीजा यह हुआ कि उनके घूस की खबर ऊपर तक पहुँच गई। दारोगा जी गिरफ्तार हो गए और उनको पाँच वर्ष की कैद हो गई। उनके जेल जाने के बाद उनकी स्त्री गंगाजली, सुमन और शांता को

लेकर भाई उमानाथ के यहाँ चली आई। उमानाथ सुमन को घर पर पड़े रहने देना नहीं चाहते। वह बड़ी हो चली है और उन्हें समाज का भय है। अंत में उसका विवाह पंद्रह रुपये के नौकर गजाधर प्रसाद से हो जाता है। यह दोहाजू विवाह है। 'निर्मला' में प्रेमचंद ने दहेज और दोहाजू की समस्या को लिया है, परन्तु वहाँ उसका रूप कुछ बदल गया है।

यहाँ से सुमन की कथा आरंभ होती है। हिन्दू गृहिणी के बनने बिगड़ने के बड़े सुन्दर चित्र लेकर प्रेमचंद उपस्थित होते हैं। प्रेमचंद ने सुमन की कथा को मनोविज्ञान से पुष्ट किया है। सुमन आरंभ से रुपये पैसे और ऐश्वर्य की चकाचौंध में आ जाती है। वह गृहकार्य में कुशल नहीं है, चटोरी है और खर्च करने की आदी है। गजाधर प्रसाद और सुमन की मनोवृत्तियों में भी महान् भिन्नता है। गजाधर सूम है। वह कोड़ी-कोड़ी दाँत से पकड़ना चाहता है। इधर पड़ोस भी अच्छा नहीं है। गजाधर जिस किराये के मकान में रहता है उसके सामने भोली नाम की एक वेश्या भी रहती है। पहले-पहल तो सुमन हिंदू गृहबधू के जन्मजात संस्कारों के कारण भोली को अच्छा नहीं समझती परन्तु जब वह देखती है कि समाज के सभी स्तर के स्त्री-पुरुषों में समान रूप से उसका मान है तो वह उसकी ओर आकर्षित होती है और उससे मेल-जोल बढ़ाती है। परन्तु गजाधर के हिन्दू मध्यवित्त संस्कारों को इससे धक्का पहुँचता है और वह सुमन से स्पष्ट कह देता है कि भोली के यहाँ जाना बड़ी लज्जा की बात है। इससे सुमन के मन में असंतोष भर जाता है। वह क्या वेश्या से भी गई-गुजरी है? वह वेश्या से बड़ी बनने के लिए धर्मनिष्ठ बन जाती है। भोली पर अपनी धर्मनिष्ठा का सिक्का जमाने के लिए वह नित्य गंगा-स्नान करती है, मंदिर में कथा-वार्ता सुनती है, परंतु एक दिन

वह देखती है कि भोली मंदिर में भी बुलाई गई है और उसके भक्तों की वहाँ भी कमी नहीं है। गजाधर से जब वह इस प्रसंग का जिक्र करती है, तब वह धर्म को धूर्तों का अड्डा बताता है, परंतु वह स्वयं भोली को आदर भाव देता है। घटना-चक्र-वश शहर के एक प्रसिद्ध रईस पद्मसिंह और उनकी पत्नी सुभद्रा से सुमन की भेंट हो जाती है। वे कितने सज्जन हैं। नगर में उनका कितना मान है। वहां भी एक दिन भोली का मुजरा होता है।

उस दिन सुमन जब पद्मसिंह के घर से लौटी है तो देखती है कि गजाधर हाथ में डंडा लेकर सो गया है। बड़ी मुश्किल से गजाधर ने किवाड़ खोले परंतु उसने उसी समय सुमन को गहने का सन्दूक देकर बाहर निकाल दिया। सुमन ने कुछ दिनों तो सुभद्रा का आश्रय लिया परन्तु कुछ स्वार्थी मनुष्य घाट-बाजार पद्मसिंह को बदनाम करने लगे। फलतः सुमन को वहां रहना भी असंभव हो गया। समाज की संगठित शक्ति के सामने पद्म-सिंह को भी माथा झुकाना पड़ा। सुमन उनके आश्रय से निकाल दी गई। वहाँ से निकल कर वह भोली के पंजे में फँसी।

सुमन जब चकले पहुँच गई तो हिंदू समाज में एक छोटी-मोटी उथल-पुथल मच गई। सुधारकों की तो नाक ही कट गई थी। ब्राह्मण गृहस्थ स्त्री पति के जीवित रहते हुए भी चकले में बैठे, इससे बड़ा कालिख का टीका हिंदू समाज के माथे पर और क्या लगेगा। विट्ठलदास पद्मसिंह के मित्रों में से थे। समाज-सुधार के प्रत्येक काम में वह आगे रहा करते। विधवा-आश्रम जैसी कई सुधार-संस्थायें भी उन्होंने खोल रखी थीं। पद्मसिंह से उनकी चल भी पड़ी थी। गजाधर ने विट्ठलदास के पास जाकर

पद्मसिंह को बदनाम किया था कि वकील साहब ने मुझ गरीब की स्त्री को लोभ दिखा कर अपने यहाँ बिठा लिया। पद्मसिंह ने सुमन को निकाल कर विट्ठलदास को वस्तुस्थिति की सूचना की, परंतु तब तक सुमन चकला सजा चुकी थी। इससे पद्मसिंह के मन में भी ग्लानि हुई और उन्होंने भी सुमन के उद्धार के कार्य में विट्ठलदास को सहायता देने का प्रण दिया। परंतु अपने मध्यवित्त संस्कारों के कारण बदनामी के डर से वह खुले आम सुमन की चर्चा नहीं करते थे।

विट्ठलदास ने हवा तो खूँब बाँधी परंतु वे सुमन का उद्धार नहीं कर सके। सुमन अब भी पतित नहीं हुई थी। वह गाने-बजाने से लोगों का मनोविनोद अवश्य करती, परंतु इससे आगे नहीं बढ़ती है। वह हिंदू समाज के अंचल में लौट जाना चाहती थी परंतु आत्म-भाव के साथ। उसने कहा, यदि स्वतंत्र रूप से रहने का गुजारा हो जाय, पचास रुपये महीना भी उसे मिलने लगे तो वह वेश्यालय छोड़ दे। परंतु सुधार की डींगें मारने वाला हिंदू समाज उसके लिए यह रुपया भी नहीं जुटा सका। इस प्रकार प्रेमचंद ने यह दिखलाया है कि हिंदू समाज पथभ्रष्ट नारी के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं है। न तो वह उसे स्वीकार करता है, न उसके सम्मानपूर्वक गुजारे का प्रबंध करता है। फलस्वरूप जो एक बार पतित हुई वह अंत तक पतित ही है। शरीर से भ्रष्टा वह चाहे न हो, परंतु वेश्या-समाज में एक बार पदार्पण करके सुमन उनके लिए अग्राह्य तो है ही। उधर पद्मसिंह और उनके मित्र म्यूनिसपिलटी में एक प्रस्ताव पेश करते हैं कि वेश्यायें चौक से हटा दी जायें और उन्हें नगर के बाहर बसाया जाय परंतु मजा यह है कि जो मेम्बर रंगमंच पर बड़े-बड़े व्याख्यान झाड़ते है वही सुमन के तलुवे चाटते है।

उधर पदुमसिंह का भतीजा सदन उनके यहाँ रह कर पढ़ने आया है परंतु वह सुमन के सौन्दर्य का शिकार हो जाता है। और चाची का कंगन चुरा कर उसे उपहार-रूप भेंट करता है सुमन उस कंगन को पद्मसिंह के पास पहुँचा देती है। वह सदन को इस रास्ते पर नहीं डालना चाहती। सदन जब अपनी चाची के हाथ में अपना चुराया कंगन देखता है तो क्षोभ और ग्लानि से गांव भाग जाता है। यहाँ पिता मदनसिंह ने उसके विवाह की बात चला रखी है। जिस लड़की से उसका विवाह तय हुआ वह सुमन की बहन शांता ही है। बरात लेकर जब मदनसिंह शांता के यहाँ पहुँचते हैं तो सुमन-शांता के संबंध से परिचित होते हैं। उनके मध्यवित्त संस्कार जोर करते हैं। वह रंडी की बहन को घर में लाकर अपनी इज्जत में बट्टा लगाना नहीं चाहते। वे बरात लौटा लाते। इससे शांता को बड़ी मानसिक वेदना होती है। वह हृदय-मन से सदन को अपना पति समझ लेती है। वह पदुमसिंह की चर्चा सुनती है और उन्हें वस्तुस्थिति बतलाती हुई पत्र लिखती है। वह बिट्ठलदास से सलाह लेते हैं और उसे उनके आश्रम में पहुँचा देते हैं। इस बीच में सुमन पर बिट्ठलदास के तर्कों और उनके चरित्र की विजय हुई है और वह चकला छोड़ कर उनके आश्रम में आ गई है। इस प्रकार दोनों बहनें फिर मिलती हैं। परन्तु सुमन यहां भी सुखी नहीं है। उसने अपनी बहन का जीवन बिगाड़ा है, इसका उसको बड़ा रंज है।

उधर सदन के मन में पश्चाताप का उदय होता है। वह सोचता है—मैं मानता हूं कि माता-पिता की आज्ञा-पालन करना मेरा धर्म है। किन्तु उनके दुराग्रह पर मैं इस रमणी का निरस्कार नहीं कर सकता जिसकी रक्षा करना मेरा धर्म है।' वह परिवार से अलग होकर स्वावलंबी बन जाता है और मल्लाही करके अपना

जीवन-यापन करता है। गंगा के उस पार उसकी झोपड़ी है। वह ठीक विट्ठलदास के विधवा-आश्रम के सामने है जहाँ सुमन—शांता है। एक दिन दोनों बहनों को इस आश्रम को भी छोड़ना पड़ा। विधवाओं ने उनके साथ रहने से इंकार कर दिया। रात के अंधकार में दोनों बहनें गंगा पार करती हैं और सदन अपने झोंपड़े में उन्हें आश्रय देता है। अन्त में सदन शांता को ग्रहण करने के लिए तैयार है। जब वह उसे इस बात की सूचना देता है तो वह मूर्च्छित हो जाती है। सुमन का तेज जाग उठता है। वह कहती है—"तुमने उसके साथ जो अत्याचार किया, उसी का यह फल है। तुमने उसके साथ यह अत्याचार केवल इसलिए किया कि मैं उसकी बहिन हूं, जिसके पैरों पर तुमने वर्षों नाम रगड़ी, जिसके तलुवे तुमने वर्षों सहलाये हैं...आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो। अंधेरे में जूठा खाने को तैयार पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं...कोई और स्त्री होती तो तुम्हारी बातें सुनकर फिर तुम्हारी ओर आँख उठा कर न देखती, तुम्हें कोसती"।...यह तेज सुमन के उपयुक्त है। इसका फल भी उचित होती है शांता के साथ सदन का विवाह हो जाता है। पदुमसिंह और विट्ठलदास इस समारोह में भाग लेते हैं। मदनसिंह को सूचना देने पदुमसिंह घर जाते हैं और बड़ी कठिनाई के बाद उन्हें रास्ते पर लाते हैं।

सुमन की कथा यहीं समाप्त हो जाती तो सब ठीक था परन्तु पति-परित्यक्ता और रूपजीवी-नारी के लिए हिंदू समाज में स्थान ही कहाँ है? धीरे २ मल्लाहों को पता लगता है कि सुमन कभी दालमंडी में बैठ चुकी है। उन्होंने सदन के घर का पानी पीना बंद कर दिया साल बीतते-बीतते सदन भी उससे फिर गया। वह बात-बात पर सुमन पर झल्लाता। एक दिन शांता ने सुमन के पूछने पर कह ही दिया—लेकिन, बात यह है कि उनकी बदनामी

हो रही है। लोग मनमानी बातें उठाया करते हैं।... सुमन के मन की व्यथा का पारावार हिल्लोलित हो उठता है। क्या उसकी बहन भी उसके प्रति शंकालु है?

अंतिम प्रहार भी पड़ता है। सदन के माता-पिता अंत में राजी हो गये और उससे मिलने आये। उस दिन सुमन को लेकर भीतर बड़ी चर्चा होती रही। सुमन ने सुना, सदन की माँ मामा कह रही है--'मैं उसे यहाँ सोने न दूँगी, ऐसी स्त्री का क्या विश्वास!' सुमन ने सुन लिया। वह उलटे पांव लौट गई। उसने सोचा, चलो, आज यह देह गंगा माता के समर्पित कर दो। अब वह समाज का बोझ नहीं बनेगी। परन्तु तभी स्वामी गजानंद से उसकी भेंट होती है। यह गजाधर प्रसाद ही हैं जो साधु बन गये हैं। उन्होंने सेवा-धर्म को अपना लिया है। उन्होंने वेश्याओं की लड़कियों के लिए एक अनाथालय खोल रखा है। सुमन इस संस्था की व्यवस्थापिका बनेगी। क्या यह सुमन के पाप का प्रायश्चित होगा या गजाधर के या समाज के?--परन्तु प्रेमचंद मौन हैं। सुमन ने इस आश्रम का काम स्वीकार कर लिया। यही 'सेवा सदन' है। समाज की निराहता नारी उसमें तिल भर भी स्थान न पाकर इसी आश्रम की सेवा में अपनी व्यथा भुलाने लगी।

पता नहीं, प्रेमचंद ने अंत में सुमन के विद्रोह को क्यों कुंठित कर दिया। सुमन के जीवन की समस्या का कोई क्रांतिकारी हल उन्हें क्यों नहीं सूझा। १९३१ की एक घटना का वर्णन करते हुए शिवरानी देवी ने अपने संस्मरणों में लिखा है--म्युनिसिपैलिटी से रंडियों के निकाले जाने का प्रस्ताव पास हो चुका था। मैं सोचने लगी कि आखिर ये जायेंगी कहाँ और इनका पेशा क्या होगा? ये ऐसी घृणास्पद हैं कि दुनिया में रहने के लिए इनको जगह नहीं है। आखिर ये हमारी ही बिरादरी की तो हैं। मैं इन्हीं चिंताओं

में मशगूल थी-पाप करने में क्या इन्हीं का हिस्सा होता है ? पुरुष समाज क्या इससे बाहर है ? यह अत्याचार उन्हीं लोगों की प्रेरणा का फल है ।' प्रेमचंद से उन्होंने कहा कि आप इस पर लिख और बोल तो सकते हैं । यह बात क्या कि जो चीज बुरी लगे, उसे वैसा मान कर बैठ जाय ।

प्रेमचंद—'लिखने के मामले में तो मैं कभी पीछे नहीं रहा हूं । इन्हीं की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए मैंने 'सेवासदन' लिखा । और भी कहानियां और लेख मैंने लिखे हैं । अमल न करना तो उन लोगों के हाथ में है ।'···फिर बोले—'जब तक हिन्दुस्तान आजाद नहीं होता, तब तक इनकी गुत्थियां नहीं सुलझ सकतीं या तो फिर कोई बड़ा महात्मा पैदा हो कि इन गुत्थियों को सुलझा दे । सदियों से बिगड़ा हुआ जमाना इतनी जल्दी कैसे सुधर जायगा ।'

इस पर शिवरानी बोलीं—पुरुष वर्ग यह क्यों समझता है कि दुनिया में उन्हीं लोगों के रहने की जगह है । उन लोगों को पहले वे ही लोग घर से निकाल लाते हैं । वे लोग उन्हीं लोगों के खराब करने की वजह से खराब होती हैं । फिर आखिर वे दुनिया से कहां जायँ ? मरने पर भी तो छुटकारा नहीं ।

प्रेमचंद ने इस पर यह कह कर टाल दिया कि समाज से लड़ने के लिया स्त्रियाँ जितनी विवश हैं, उससे कम विवश पुरुष नहीं है । अपना वश ही नहीं है तो क्या किया जाये ?

तो क्या प्रेमचंद 'सेवासदन' ( १६१६ ) में सुझाये हुए अपने समाधान की व्यर्थता समझे थे ?

'निर्मला' में प्रेमचंद ने नारी-जीवन के दुःखांत को बड़ी कला-मर्मज्ञता और सहानुभूति से अंकित किया है। इस उपन्यास में उनकी कला शरतचंद की कला से होड़ करती है और कुछ बातों में अधिक प्रभावशाली ही सिद्ध होती है। उपन्यास का केन्द्र निर्मला है। उसको लेकर तीन कुटुम्ब उजड़ जाते हैं और वह स्वयं खंडहर की तरह उजाड़ होकर एक दिन प्राण दे देती है। उपन्यास की घटनायें इतनी तीव्र गति से घटित होती हैं और कथा-वस्तु निर्मला पर इतनी शक्ति के साथ के केन्द्रित है कि हमें मुग्ध हो जाना पड़ता है। दुःख पर दुःख, निराशा पर निराशा! दैव निर्मला के विरुद्ध हैं। निर्मला की कहानी भारतीय नारी के समाजवेदी पर बलिदान की अत्यंत शक्तिशाली कहानी है।

बाबू उदयभानु लाल की दो लड़कियां है निर्मला और कृष्णा। यों तो वे धनी व्यक्ति नहीं हैं, परंतु निर्मला की शादी पक्की हो जाने पर ऋण लेकर भी आनबान रखने का विचार करते हैं। उनकी स्त्री कल्याणी चाहती है कि विवाह सादे ढंग से हो, परिवार पर ऋण का बोझ न लद जाये। अभी एक और लड़की बैठी है और पुरुष का भी पौरुष कभी तो थकेगा ही। अब वह वकालत के दिन भी नहीं रहे। इस बात को लेकर पति-पत्नी में अनबन हो जाती है। कल्याणी झुँझला कर घर छोड़ने को तैयार हो जाती है परंतु छोड़ नहीं पाती। उसे अपने बच्चों का मोह है। परंतु बाबू उदयभानु लाल पत्नी को सीख देना चाहते हैं। सोचते है, जरा स्वांग रचा जाये। जरा देखें तो यह घर कैसे चलाती है। कोट में अपने नाम का एक कार्ड डाला और गंगा के किनारे निकल गये। सोचा था, कोट उतार कर गंगा के घाट पर रख देंगे और दो चार दिन के लिए मिर्जापुर चले

जायेंगे। लोग समझेंगे, डूब गये। जरा हंगामा ही मचेगा। औरत को सीख भी मिलेगी। परंतु जो स्वांग बनना था, वह सच ही हो गया। मतई नाम के एक अपराधी को वह कई बार जेल दिला चुके थे। वह गलियों में घूमते हुए मिल गया। गली सुन-सान थी और मतई की लाठियों ने शीघ्र ही उनके प्राण ले लिये।

कल्याणी के दुःख का कोई कहना ही नहीं था। दो-दो लड़कियां ब्याहने को बैठी थीं। भालचंद के लड़के भुवन-मोहन से शादी ठहर रही थी। लड़के के पिता जानते थे, वकील साहब इज्जत पर जान देते हैं। पंद्रह बीस हजार वैसे ही दे देंगे। इसीसे उन्होंने दहेज की बात नहीं उठाई थी। परन्तु अब कल्याणी ने पति के न रहने पर विवाह की बात चलाई तो उन्होंने साफ इंकार कर दिया। लड़के ने भी कह दिया कि जहाँ खूब रुपये मिलें वहां शादी ठीक कराइये। लड़के की मां रँगीली बाई पर कल्याणी के पत्र का थोड़ा सा रंग चढ़ा भी परन्तु वह पुत्र और पति का आसन डिगाने में असफल सिद्ध हुई। पाँच हजार रुपया मिलने पर भुवन मोहन का विवाह सुधा से हो गया।

उधर मोटेराम पुरोहित ने लौट कर कल्याणी के सामने जब यह वस्तु स्थिति रखी तो कल्याणी के पैरों के नीचे की धरती जैसे निकल गयी। परन्तु निर्मला का विवाह तो होना था। मोटेराम ने बड़ी दौड़ धूप के बाद कल्याणी की राय से मुंशी तोताराम के साथ उसकी शादी तय की। वे वकील थे। तीन लड़के थे मंसाराम १६ वर्ष, जियाराम १२ वर्ष और सियाराम ७ वर्ष का। घर पर वकील साहब की विधवा बहिन रुक्मणी थी। पचास से ऊपर उसकी उम्र थी और वही काम-काज चलाती थी।

विवाह हो गया। वकील साहब वैसे ही अच्छे वकील थे। इन दिनों उनकी वकालत और चमक उठी। थोड़े ही दिनों में निर्मला जेवरों से लद गई। परन्तु जब वह वकील साहब की ओर देखती तो उसके हृदय में एक हूक सी उठती। रुक्मणी के कारण भी घर क्लेश में डूबा रहता। वह बच्चों को निर्मला से अलग रखती, आये दिन भाई से शिकायत करती। इन्ही शिकायतों का बहाना लेकर वकील साहब बार-बार निर्मला से मिलने का अवसर निकालते। परन्तु वे निर्मला के मन को जीत नहीं सके। निर्मला बच्चों में व्यस्त रहती या घर में डूबी रहती। मुंशी जो समझते, यह उपेक्षा कर रही है। उन्हें अपनी जवानी के दिन याद आते। स्त्री से प्रेम पाने की प्रबल इच्छा उनके मन में जाग उठी। एक मित्र से अपना दुखड़ा रोया तो उसने उनकी बुड्भस की हँसी उड़ाने के लिए कई नुस्खे बता दिये। —'रंगीलेपन का स्वाँग रचो, यह ढीला-ढीला कोट फेंको। तन्जेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पायजामा, गले में सोने की जंजीर जड़ी हुई, सिर पर जयपुरी साफा बँधा हुआ, आँखों में सुरमा और बालों में हिना का तेल पड़ा हो।' कहा—'तोंद का पचकाना भी जरूरी है। दोहरा कमर बन्द बाँधो...जवांमर्दी और साहस के काम करने का मौका ढूढ़ते रहो। रात को झूठ-मूठ शोर करो—चोर-चोर और तलवार लेकर पिल पड़ो। हाँ, ज़रा मौका देख लेना। ऐसा न हो कि सच-मुच कोई चोर आ जायें, और तुम उसके पीछे दौड़ो, नहीं तो सारी कलई खुल जायेगी, और मुफ्त में उल्लू बनोगे। उस वक्त तो जवाँमर्दी इसी में है कि दम साधे खड़े रहो, जिसमें वह समझे कि तुम्हें खबर भी नहीं हुई, लेकिन ज्योंही चोर भाग खड़ा हो, तुम भी उछल कर बाहर निकलो, और तलवार लेकर 'कहां-कहां' कहते दौड़ो।' मुंशीजी ने जब यह नुस्खे निर्मला पर आजमाना शुरू किये

तो निर्मला को उनकी हालत पर दया आई । हाय भगवान, इन्हें यह क्या हो गया है !'--वह सोचती । परन्तु मुंशी जी सोचते, क्या बात है कि कोई नुस्खा काम क्यों नहीं करता ।

बहुत दिनों बाद मुंशी जी की समझ में एक दिन यह रहस्य आ ही गया । उन्होने ताड़ा, मंशाराम और निर्मला में बहुत स्नेह है । मन्शाराम स्कूल से आता है तो उसीसे खाना माँगता है और निर्मला भी इस बात का ध्यान रखती है कि वह जल्दी लौटे और खाना ठंडा न हो जाये । उधर निर्मला से उन्हें यह भी मालूम हुआ कि मंशाराम अवकाश के समय में उसे अंग्रेजो पढ़ाता है । मुंशीजी की शंका ने दृढ़ता प्राप्त की । एक दिन वह मंशाराम पर बिगड़ गये और उसे आवारा बता कर बहुत कुछ सख्त-सुस्त कहा । मंशाराम अब घर के भीतर कम ही जाता । वकील साहेब को अब भी पूर्ण आश्वासन नहीं मिला था । निर्मला मंशाराम के संबंध में जो कुछ भी कहती उसका वे दूसरा अर्थ लगा लेते । एक दिन उन्होंने तय किया कि मंशाराम को बोर्डिंग में रख कर पढ़ाया । निर्मला ने सुना तो कहा कि मंशाराम उसे अंग्रेजी पढ़ा रहा है और उसकी पढ़ाई रुक जायेगी । यह सुना तो वकील साहब की छाती पर साँप सा लोट गया । त्यौरियां बदल कर बोले—'कब से पढ़ा रहा है तुम्हें ? मुझसे तुमने कभी नहीं कहा !' बात कुछ भी नहीं थी, परन्तु इसने वकील साहब को चिंतामग्न कर दिया । बात इतनी बढ़ जायेगी, यह तो उन्होंने सोचा ही नहीं था । आजकल जो यह महारानी इतनी खुश दिखाई देती हैं, इसका रहस्य आज समझ में आया । पहले कभी कमरा इतना सजा-सजाया न रहता था, बनाव-चुनाव भी न करती थी, पर अब देखता हूँ, कायापलट-सी हो गई है ।

अंत में उन्होंने मंशाराम को बोर्डिंग में रख दिया। मंशा सब समझता था। यह चोट उसके सँभाले सँभल नहीं सकी। वह उसी दिन खाट से लग गया है। मुँशीजी को खबर मिली। वह बोर्डिंग गये तो देखा कि मंशा सचमुच बीमार है। उन्होंने उसे घर लाना चाहा परंतु मंसा ने साफ मना कर दिया। मुंशी जी भी दिल से यही चाहते थे कि वह घर न आवे। वह अस्पताल पहुँचा दिया गया और वहाँ शीघ्र ही उसकी हालत खराब हो गई। वह मृत्यु-शय्या पर पड़ गया। निर्मला सुनती और दम घोट कर रह जाती। फिर उसने सुना कि मंशा बचेगा नहीं, उसे ताजा खून चाहिये। इस बार वह अपनी मर्यादा का बाँध तोड़ कर बाहर आई परन्तु मुंशी जी ने उसे वहां भी दुतकार दिया। निर्मला का हाथ पकड़ कर दुतकारते हुए उन्होंने कहा—तुम्हें यहां आने की कोई जरूरत नहीं। जब मैं बुलाऊं तब आना, समझ गईं! मंशाराम के जीवन की दीपशिखा क्षीण हो रही थी परंतु पिता का यह अत्याचार उससे देखा नहीं गया। उस समय न जाने कहां से उसके भीतर अलौकिक शक्ति आ गई थी। वह उठ खड़ा हुआ और निर्मला के पैरों पर गिर कर रोते हुए बोला—अम्मा जी, इस अभागे के लिए आप को व्यर्थ इतना कष्ट हुआ।—ईश्वर जानता है, मैंने आप को विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो, लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थीं, और मैंने आपको सदैव इसी दृष्टि से देखा। अब नहीं बोला जाता, क्षमा कीजिये।' और ऐसा कहते-कहते वह वहीं जमीन पर लेट कर दम तोड़ने लगा।

मंशाराम के चले जाने पर मुंशीजी को निर्मला की सच्चरित्रता का विश्वास तो हो गया परंतु भीतर-भीतर वह पश्चात्ताप की आग

से जलने लगे। कुछ दिन बाद निर्मला के एक कन्या ने जन्म लिया। परन्तु मुंशी जी का गृह-क्लेश फिर बढ़ने लगा। जियाराम बात-बात में मुंशी जी से उलझ पड़ता। वह समझता था कि मुंशीजी और निर्मला ने मिलकर उसके बड़े भाई की जान ले डाली। उसके हृदय में अब माता-पिता की ओर जरा भी श्रद्धा-भाव नहीं रह गया था। एक दिन उसने निर्मला का गहनों का बक्स ही उड़ा दिया। मित्रों को दे दिया। मुंशी जी ने थाने में रिपोर्ट की। तहकीकात हुई। थानेदार ने गहने बरामद कर लिये। जियाराम को पता लगा कि भेद खुल गया है और वह पकड़ जायेगा तो उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली।

इस घटना ने रहा-सहा बल भी तोड़ दिया। अब कचहरी-दरबार में मुंशी जी का मन ही नहीं लगता। निर्मला को कन्या की चिंता थी। वह पैसा-पैसा बचाती। घर के खर्च कम कर दिये। नौकरानी छुड़ा दी। सियाराम तरकारी लाने लगा। ऊपर का काम भी उसी को करना पड़ता। बात-बात में उससे झिकझिक होती। एक दिन वह उकता कर कुछ साधुओं के साथ घर छोड़ कर चला गया। मुंशीजी की आँखों के आगे अँधेरा था। कोई नामलेवा भी नहीं बचा था। रात के बारह बजे लड़के को ढूंढ कर बाहर लौटे हैं। दरवाजे पर लालटेन जल रही थी। निर्मला द्वार पर खड़ी थी। देखते ही बोली—कहा भी नहीं, न जाने मैं आप कब चल दिये। कुछ पता लगा?

मुंशीजी ने आग्नेय नेत्रों से ताकते हुए कहा—हट जाओ, सामने से, नहीं तो बुरा होगा। मैं आपे नहीं हूँ। यह तुम्हारी करनी है। तुम्हारे ही कारण आज मेरी यह दशा हो रही है। आज से छः साल पहले क्या इस घर की यही दशा थी? तुमने मेरा बना-बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने मेरे लहलहाते बाग को उजाड़

डाला। केवल एक ठूंठ रह गया है। उसका निशान मिटा कर तभी तुम्हें संतोष होगा। जो लड़के पान की तरह फेरे जाते थे, उन्हें मेरे जीते जी तुमने चाकर समझ लिया, और मैं आँखों से सब कुछ देखते हुए भी अंधा बना बैठा रहा। जाओ, मेरे लिये थोड़ा-सा संखिया भेज दो। बस, यही कसर रह गई है। वह भी पूरी हो जाय।

निर्मला ने रोते हुए कहा—मैं तो अभागिन हूँ ही, आप कहेंगे, तो जानूंगी? न जाने ईश्वर ने मुझे जन्म क्यों दिया था। मगर यह आपने कैसे समझ लिया कि सियाराम आवेंगे ही नहीं।

मुंशीजी ने अपने कमरे की ओर जाते हुए कहा—जलाओ मत, जाकर खुशियां मनाओ। तुम्हारी मनोकामना पूरी हो गई।

दूसरे दिन मुंशीजी लड़के को खोजने निकल पड़े। दिन बीतने लगे। एक महीना बीत गया, परन्तु मुंशीजी का पता नहीं। निर्मला किसी तरह गृहस्थी चलाती थी। अब उसके जीवन में उत्साह का लेश-मात्र भी नहीं रह गया था।

परोस में एक डाक्टर रहते थे। उन्होने ही मंसा का इलाज किया था। उनकी स्त्री सुधा से निर्मला का बहनापा हो गया था। एक दिन बातों-बातों को निर्मला ने कह दिया कि इन्हीं डाक्टर भुवनमोहन से उसकी शादी हो रही थी। सुधा ने पति ने दहेज के पीछे एक अबला कन्या को कुयें में ढकेल दिया यह उसके लिये कोई गौरव की बात नहीं थी। एक दिन निर्मला सुधा के यहाँ पहुँची तो सुधा नहीं थी। डाक्टर साहब ने उसे आग्रहपूर्वक सुधा के कमरे में बैठाया, परंतु न जाने क्यों उनके मन में एक भीषण द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। निर्मला जब जाने के लिए कहने लगी तो वह

अनुराग में दबे हुए स्वर में बोले—नहीं निर्मला, सुधा अब आती ही होगी। अभी न जाओ! रोज सुधा की खातिर बैठती हो, आज मेरी खातिर बैठो। बताओ कब तक इस आग में जला करूँ? सत्य कहता हूं, निर्मला...'। क्या कहते हैं, यह सुनने के लिए निर्मला बैठी नहीं रही। अलगनी से लटकती हुई चादर उतार कर वह चल पड़ी। रास्ते में सुधा मिली। उसने उसकी अस्त-व्यस्तता का कारण पूछा तो वह रो दी। आज वह कितनी अकिंचन हो गई है। संसार में कोई भी उसका नहीं है। घर आकर सुधा ने डाक्टर को धिक्कारा और पश्चाताप और ग्लानि में डूब कर डाक्टर ने आत्महत्या कर ली। निर्मला ने सुना तो जड़ मूर्ति बन गई। उसके दुर्भाग्य ने तीन परिवारों को मिट्टी में मिला दिया। वह बीमार हो गई। ऐसी हो गई कि रुक्मणी को भी उस पर तरस आने लगा। परंतु निर्मला के प्राणों में दुःख इस तरह बस गया था कि उसका बचना संभव ही नहीं था। अंत में एक दिन चल बसी। मुहल्ले के लोग जमा हो गये। लाश बाहर निकाली गई। उस समय यह प्रश्न उठा कि कौन दाह करेगा। लोग इसी चिंता में पड़े थे कि सहसा एक बूढ़ा पथिक एक बुगचा लटकाये आ कर खड़ा हो गया। यह मुंशी तोताराम थे।

यह है निर्मला की कहानी। परंतु हम कहानी को जिस उतार-चढ़ाव, जिस विदग्धता और मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि के साथ लिखा है वह इस रूपरेखा में कहीं भी बँध नहीं पाती। उसे पकड़ने के लिये तो निर्मला का पृष्ठ-पृष्ठ पढ़ना पड़ेगा।

'ग़बन' एक साधारण घटना परंतु असाधारण मनोविज्ञान पर आश्रित एक मध्यवित्त तरुण की मानसिक दुर्बलता और हृदय की छलना की कहानी है। कहानी कुछ लंबी हो गई है और उसमें कुछ प्रासंगिक कथायें भी आ गई हैं। कुछ छोटी होती तो कदाचित्

अधिक कलापूर्ण होती, परंतु इसमें संदेह नहीं कि कथा-संगठन की दृष्टि से यह प्रेमचंद की एक सुन्दर कहानी है।

इस कहानी का केन्द्र भी एक परिवार है और गबन का दुःखांत पारिवारिक विडम्बना के रूप में आता है। रमानाथ के पिता दयानाथ कचहरी में नौकर थे। उन्होंने रमा की शादी मुंशी दीनदयाल की पुत्री जालपा से कर दी। पहले तो दयानाथ राजी नहीं थे, कहते थे कि लड़का कुछ कमाता नहीं है। परंतु जब उनकी स्त्री जोगेश्वरी ने उनसे कहा कि बहू आ जायगी, तो उसकी आँख भी खुलेगी, देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेल है,—तो वे मान गये। मुंशी दीनदयाल ने एक हजार रुपये टीके में दिये। वैसे दयानाथ रुपया लेकर शादी नहीं करना चाहते थे परंतु जब टीके के एक हजार रुपया देखे तो लागडाट पर लग गये। बड़ा कर्ज लिया। बड़ी धूमधाम की। मोटर नाच-तमाशे और धूमधाम में सैकड़ों रुपये बरबाद किये। गहने भी चढ़ाये गये। परंतु इन गहनों में चंद्रहार नहीं था। उधर बहू जालपा के मन में बचपन से चंद्रहार की चाह जम गई थी। उसने जब गहनों में चंद्रहार नहीं देखा तो उसे बड़ी निराशा हुई।

विवाह हुआ। बहू घर में आई। परंतु विवाह के बाद तकाजे भी शुरू हुए। उधर जालपा गहनों को छूती भी नहीं थी। उसका कहना था कि जब चंद्रहार आयेगा तब गहने पहनेगी। इधर महाजनों के तकाजे के मारे दयानाथ की जान पर बनी हुई थी। एक दिन उन्होंने बेटे रमानाथ को बुलाकर अपनी सारी परिस्थिति समझा दी। उन्होंने सुझाया कि दयानाथ जालपा को समझा-बुझा कर कुछ गहने ले आये और जितने रुपये कर्ज के बैठते हैं उतने के गहने महाजन के हाथ बेच दिये जायें। परंतु रमानाथ के लिए यह रास्ता बंद था। वह पहले ही दिन से बड़ी बड़ी जीटें

उड़ा चुका था। उसने जमींदारी बताई, बैंक में रुपये बताये, सूद की आमदनी बताई, फिर यह जगह ही कहाँ रह गई कि पत्नी से घर की सारी हालत साफ कह दें और गहने मांगे। तय हुआ कि रात को जब जालपा सो रही हो तो रमानाथ गहने का बक्स उठा लाये। किया भी ऐसा ही गया। जालपी को विश्वास हो गया कि गहने चोरी चले गये। उधर पिता-पुत्र ने जेवर बेच कर कर्ज चुकाया। इस तरह इस मध्यवित्त, इज्जत के दीवाने और दिखावे के धनी परिवार की इज्जत बची।

कुछ दिनों बाद रमानाथ को म्यूनिसिपैलटी में नौकरी मिल गई। जगह तीस रुपये की थी परन्तु ऊपर भी थोड़ी बहुत आमदनी हो जाती थी। मध्यवित्त की अपनी आय को बढ़ी-चढ़ी बताने की प्रवृति के अनुसार उमानाथ ने पत्नी को अपने वेतन और आमदनी की बात बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताई। इसपर जालपा का चंद्रहार का सोचा सपना भी जागा। रमानाथ पर तकाजे होने लगे। रमानाथ भी मित्रों में डींग मारते—वह तो जेवरों का नाम तक नहीं लेती। मैं कभी पूछता भी हूँ, तो मना करती है, लेकिन अपना कर्तव्य भी तो है। जब से गहने चोरी चले गये, एक चीज भी नहीं बनी। उधर जालपा कहती—नहीं, मेरे लिये कर्ज लेने की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं हूँ कि तुम्हें नोच खसोटकर अपना रास्ता लूं। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है।' परन्तु अंत में जब रमानाथ साढ़े छः सौ रुपया उधार लेकर कहीं से गहने ले आया तो जालपा ने यह पूछा भी नहीं कि इस थोड़ी-सी आमदनी पर क्या चंद्रहार खरीदना संभव था। वह गहने लेकर फूली नहीं समाई। गहने मिले तो पति-सेवा का भाव भी बढ़ा। कैसा तीव्र व्यंग है! प्रेमचंद लिखते हैं—'उस दिन से जालपा के पति-स्नेह में सेवा-भाव का उदय हुआ। वह स्नान करने जाता, तो उसे

अपनी धोती चुनी हुई मिलती, आले पर तेल और साबुन भी रखा हुआ पाता। जब दफ्तर जाने लगता तो जालपा उसके कपड़े सामने लाकर रख देती। पहले पान माँगने पर मिलते थे, अब जबरदस्ती खिलाये जाते थे। जालपा उसका रुख देखा करती। उसे कुछ कहने की जरूरत न थी। यहाँ तक कि जब वह भोजन करने बैठता तो पंखा झला करती। पहले वह अनिच्छा से भोजन बनाने जाती थी, और उस पर भी बेगार-सी टालती थी, अब बड़े प्रेम से रसोई में जाती। चीजें भी वही बनती थीं, पर उनका स्वाद बढ़ गया था।' यह है मध्यवित्त के जीवन की विडम्बना। उसे अपनी पत्नी का प्रेम भी बिना दामों नहीं मिलता। जेवर हों तो प्रेम मिलेगा। इस महाजनी समाज में हर चीज बिकती है। फिर पत्नी का प्रेम ही बेमोल क्यों मिल जाये? प्रेमचंद यह साफ बता रहे हैं कि इस समाज की गिरावट की हद हो गई है। जालपा और रमानाथ का संबंध समाज और राष्ट्र के लिए एक बड़ा भयचिन्ह है। यह खतरे की लाल झंडी है। जहाँ समाज का इतना पतन हो गया है कि पति-पत्नी का नैसर्गिक संबंध हृदय के छल और मन की प्रताड़ना पर आश्रित है, वहाँ कौन सी ऊँचाई की आशा की जा सकती है? इन्हीं दिनों रमानाथ को एक दलाल ने फाँस लिया और उसने उससे एक जड़ाऊ कंगन और कानों के रिंग खरीदे गये। रमानाथ पर कर्जे का बोझ और भी बढ़ा, परन्तु जालपा की बन आई। मुहल्ले और नगर की स्त्रियों में उसका बड़ा मान होता। रूप-लावण्य और स्वभाव की विनयशीलता तो पहले से ही उसे मिली थी, जेवरों की चमक दमक और वस्त्रों की शान ने उसे और भी ऊँचा उठा दिया। वह क्लब भी जाने लगी। नगर का स्त्री-समाज उसके बिना सूना होता। जहाँ जाती, वहाँ रानी की तरह सब का हृदय मोह

लेती। इधर रमानाथ का कर्ज का बोझ बढ़ता जाता परन्तु उसे प्रसन्नता यह थी कि अपनी पत्नी के कारण उसका प्रवेश सभ्य समाज में हो गया। वह भी बड़ों की मंडली में उठने-बैठने लगा था। किसी ने उससे यह नहीं पूछा कि इतना धन कहाँ से फट पड़ा। बढ़-बढ़ कर बातें बनाने की आदत और भी जोर पकड़ गई। कोई पूछता तो यह नहीं बताता कि २५-३० रुपये का क्लर्क है। कहता—कानून की तरफ जाने का इरादा था, पर नये वकीलों की वहां जो हालत हो रही है, उसे देख कर हिम्मत न पड़ी।

जालपा को एडवोकेट इन्दुभूषण की पत्नी रतन से बड़ी मित्रता था। यह उनकी दूसरी पत्नी थी। पचास वर्ष की उम्र में उन्होंने यह दूसरा विवाह किया था और वह हर समय पत्नी की दिलजोई करते रहते। एक दिन जालपा रतन के घर जड़ाऊ कंगन पहर कर गई। रतन को कंगन बहुत पसंद आया और रमानाथ के कहने पर उसने उन्हें आठ सौ रुपये इस लिए दिये कि वैसा ही कंगन उसे खरीद दे। रमानाथ कंगन लेने सर्राफ के यहाँ पहुँचा तो उसने पिछले हिसाब में ये सब रुपये काट लिये। अब वह रतन को कंगन कहाँ से लाकर दे। धीरे-धीरे दिन बीतने लगा। अंत में रतन की ओर से भी आग्रह होने लगा। फिर अंत में एक दिन रमानाथ ने एक चाल चली। कल उसे रतन को रुपये लौटाना था। उसके पास चुंगी के आठ सौ रुपये रखे थे। उस दिन की आमदनी के रुपये थे। ये रुपये उसने अपने पास रोक लिये। जब खजान्ची साहब चले गये तो वह रुपये जेब में डाल कर घर ले आया उसका इरादा गबन का नहीं था। वह यही चाहता था कि वह इन रुपयों को दिखा कर रतन की तसल्ली पर दे और वह सुबह रुपया खजान्ची के पास जमा कर दे। रतन उस दिन शाम को आकर रुपये ले जाने वाली थी, किन्तु किसी कारण जब देर हो गई, और

वह नहीं आई, तो रमानाथ ने समझा कि वह अब नहीं आती, और वह घूमने निकल पड़ा। कुछ देर बाद रतन आई और जालपा से उसने रुपये की बात चलाई। जालपा रुपयों की बात जानती थी उसने आलमारी खोल कर रुपयों की थैली निकाल कर रतन के हवाले कर दी। जब रमानाथ लौटा तो यह जान पर बहुत परेशान हुआ। किसी तरह पांच सौ रुपयों का बन्दोबस्त उसने किया और उन्हें लेकर खजान्ची बाबू (रमेश) के पास पहुंचा। वहां उसने यह झूठ उड़ाया कि उसकी जेब कट गई। जब उसकी बात पर विश्वास नहीं किया गया और उसके हाथ में हथकड़ियां पड़ने की धमकी दी गई तो रमानाथ बड़े चक्कर में फँसा। पहले तो उसने सोचा कि पत्र लिख कर जालपा को वस्तु-स्थिति बता दे। वह रुपयों का इंतजाम कर देगी। परंतु वह पत्नी की आँखों में छोटा नहीं होना चाहता था। फिर भी उसने पत्र लिख कर जेब में रख लिया। जब वह घर पहुंचा तो जालपा किसी सेठानी के यहां दावत में जा रही थी। जालपा ने उससे कहा—मुझे कुछ रुपये तो दे दो, शायद वहाँ कुछ जरूरत पड़े।

रमा ने चौंक कर कहा— रुपये, रुपये इस वक्त तो नहीं हैं।

जालपा—हैं, हैं, मुझसे बहाने कर रहे हैं। बस मुझे दो रुपये दे दो, और ज्यादा नहीं चाहती? यह कह कर उसने रमा की जेब में हाथ डाल दिया, कुछ पैसे के साथ उस पत्र को भी निकाल लिया।' रमा ने पत्र छीन लेना चाहा, किंतु जालपा अड़ गई, और उसने खत नहीं दिया। वह खत पढ़ने लगी, इधर रमानाथ को ऐसा जान पड़ा मानो आसमान फट पड़ा, मानों कोई भयंकर जंतु उसे पकड़ने के लिए बढ़ा आता है। वह फड़-फड़ करता हुआ ऊपर से उतरा, और घर से बाहर निकल गया।

आह, सारा पर्दा खुल गया, सारा कपट खुल गया। गाड़ी तैयार खड़ी थी, वह उस पर सवार हो गया। सीधा स्टेशन पहुंचा और कलकत्ते चला गया।

जालपा ने पत्र पढ़ कर गहने बेच कर रुपये दूसरे दिन दाखिल करा दिये, परंतु रमानाथ के पीछे गबन का भूत बराबर दौड़ता रहा। उस दिन से जालपा का जीवन ही बदल गया। उसे आभूषणों और साज-शृंगार से घृणा हो गई।

उधर रमानाथ कलकत्ते की गलियों की खाक छानने लगा। वह बराबर नीचा-नीचा गिरता गया। यहाँ भी उसकी मध्यवित्ती वृत्तियों ने उसका साथ नहीं छोड़ा। वह देवीदीन के यहाँ रहता जो तम्बोली का दुकान करता था। उसकी बीबी जागी उससे हिसाब-किताब लिखवाती। परंतु वह मन में अवश्य कुढ़ती कि यह ठलुआ न जाने कहां से आ गया। फुरसत के वक्त में रमा देवीदीन को अंग्रेजी पढ़ाता। धीरे-धीरे देवीदीन ने उसका सारा रहस्य जान लिया परंतु हथकड़ी पड़ने के भय से रमानाथ लौट नहीं सका। कुछ समय के बाद रमानाथ ने एक चाय की दुकान खोल ली। कुछ पैसे भी हाथ आने लगे। परंतु एक दिन वह पुलिस के चक्कर में पड़ गया। वह अनुमान करता था कि उसके नाम वारन्ट जरूर कटा होगा। एक दिन पुलिस को आता देख कर वह ऐसी चेष्टाएं करने लगा कि पकड़ ही गया। दारोगा ने उससे सारी बातें जान कर तहकीकात की तो पता चला कि म्यूनिसपिलटी में कोई गबन नहीं हुआ है। उसने रमानाथ को लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहा। उसे एक राजनैतिक मुकदमें में शहादत देना पड़ी। तब तक जालपा भी कलकत्ते पहुंच गई थी। उसने रमानाथ को इस परिस्थिति की सूचना दी परंतु रमानाथ के लिए अपने वर्ग से ऊपर उठना असंभव था। वह ऐसे तत्वों का बना ही

नहीं था। उसकी शहादत पर न जाने कितने युवक बलि चढ़ जाते परंतु अंत में उसमें पश्चाताप जाग्रत हुआ। उसने जज से सारी बातें बता दीं। मुकदमे की जाँच फिर से हुई। पुलिस ने बड़ा जोर बांधा परंतु जज के लिए असह्य था कि वह इतने बेगुनाहों का खून अपने सिर पर ले ले। उसने हाई कोर्ट को सूचना दी और सरकार को भी। अखबारों ने इस विषय को लेकर एक शक्तिशाली आन्दोलन शुरू किया। मुकदमा उठा लिया गया। बेगुनाहों का खून पृथ्वी पर गिरते-गिरते बचा।

कथा यहीं पर समाप्त हो जाती तब भी ठीक था। परन्तु प्रेमचंद उसे और आगे बढ़ाते हैं। इससे कथा में थोड़ी अस्वाभाविकता आ जाती है। उपन्यास के अंत में रतन की मृत्यु हो जाती है और जोहरा और रमानाथ गंगा में डूब जाते हैं। इस परिणति की कोई आवश्यकता नहीं थी, परंतु जान पड़ता है प्रेमचंद कथा-प्रवाह में बह गये।

प्रेमचंद के इन सामाजिक उपन्यासों की कथाओं को जरा गहराई से देखना होगा। इन उपन्यासों में प्रेमचंद हमारे सामने सीधी-सादी कथा उपस्थित नहीं करते। वह उसे सामाजिकता प्रदान करते हैं और उसे व्यंग का बल देते हैं। तीनों उपन्यास मूलतः मध्यवित्त समाज की कठिनाइयों और विडम्बनाओं से संबंध रखते हैं। यह मध्यवित्त समाज कितना कमजोर हो गया है, उसका मन कितने और कैसे द्वन्दों का शिकार है, उसमें वर्ग-संघर्ष और प्रगति-विरोधी तत्वों का क्या रूप है, यह हम केवल उसी समय देखते है जब हम कथा से हट कर उनके भीतर अंतर्हित तत्व और प्रेमचंद की व्यंगप्राण कला की खोज कर सकें।

मध्यवित्त समाज का एक रूप 'गबन' में मिलता है। इस समाज में ईमानीदारी को लेकर चलना कितना कठिन है। पच्चीस वर्ष

तक कृष्णचंद ईमनदार दारोगा बने रहे, परंतु अंत में पश्चाताप उनके पल्ले पड़ा और अंत में उन्हें कहना पड़ा—'धर्म का मजा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख लिया, अब लोगों के खूब गले दबाऊंगा, खूब रिश्वत लूँगा।' उपन्यास के आरंभ का वाक्य ही प्रेमचंद के व्यंग को उभार कर सामने लाता है। प्रेमचंद लिखते हैं—'पश्चाताप के कडुवे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं, लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दारोगा कृष्णचंद अपनी भलाई पर पछता रहे हैं।' प्रकारांतर से कृष्णचंद का चरित्र पुलिस के चारित्रिक ह्रास को भी सामने लाता है। समाज चाहता है कि लड़की के विवाह में कृष्णचंद दहेज दें। दारोगा रहे हैं। हजारों पर हाथ साफ करते रहे होंगे। अब मौका पड़ा है तो पल्ला झाड़ कर कैसे भाग सकते हैं। यह तो समाज की मांग है। फिर किसी से ईमानीदारी की आशा ही कैसे की जा सकती है। समाज मर्यादा चाहता है, दिखावा चाहता है, तड़क-भड़क चाहता है। इसके फल-स्वरूप रिश्वत, घूस और गबन चलते हैं परंतु जब इस सामाजिक मांग को पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है और भेद खुल जाता है तो समाज कृष्णचंद को ही बुरा-भला कहता है। कालांतर में दहेज न होने के कारण उनकी लड़की सुमन को वेश्यालय सजाना पड़ता है। कृष्णचंद भी जेल जाते हैं। परंतु जेल से लौटने पर भी समाज उन्हें क्षमा नहीं करता। समाज ने सुमन को घर से निकाल कर। चौक में बिठाया और वही समाज अब शांता का विवाह इस लिए नहीं होने देता कि वह वेश्या बनी है। अंत में कृष्णचंद को आत्महत्या करनी पड़ती है। कृष्णचंद की विकृति और उनकी आत्महत्या के लिए कौन जिम्मेदार है?

और तमाशा यह है कि फिर भी यह समाज धर्म का ठेकेदार है। ईमानदारी से बड़ा धर्म और क्या होगा? परंतु जो समाज

मनुष्य को घूस लेने और चोरी तक करने को मजबूर करता है, वही समाज निठल्ले पुरोहितों और अखाड़े के महंतों की सेवा -पूजा करने में सबसे अग्रगण्य है। कुछ ही पंक्तियों में प्रेमचंद इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को ठीक-ठीक रूप कर देते हैं। वह लिखते हैं— दारोगा जी के हल्के में एक महंत रामदास रहते थे। वह साधुओं की एक गद्दी के महंत थे उनके यहाँ सारा कारोबार बाँकेबिहारी जी के नाम पर होता था,श्री बाँकेबिहारी जी लेनदेन करते थे, और ३२) सैकड़े से कम सूद न लेते थे। वही मालगुजारी वसूल करते थे, वही रेहननामे बैनामे लिखते थे। श्री बाँकेबिहारी जी की रकम दबा का साहस किसी को न था और अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी उनसे अधिक कड़ाई नहीं करा सकता है। श्री बाँकेबिहारी जी को रुष्ट करके इस इलाके में रहना कठिन था। महंत रामदास के यहाँ दस बीस मोटे-ताजे साधु स्थायी रूप से रहते थे। वह अखाड़े में दंड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते संध्या को दुधिया भँग छानते, और गाँजे-चरस की चिलम तो कभी ठंडी न हो पाती। ऐसे बलवान जत्थे के विरुद्ध कौन सिर उठाता! महन्त जी का अधिकारियों में खूब मान था। श्री बाँकेबिहारी जी उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग खिलाते थे उनके प्रसाद से कौन इंकार कर सकता है। ठाकुरजी संसार में आकर संसार की रीति-नीति पर चलते थे। दरोगा जी तो घूस लेने चले तो आफत आ गई और इधर महंत जी आदमी की हत्या तक करा डालने में समर्थ हैं। धर्मप्राण हिन्दू समाज की इस महंत-पंथी को प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' (१९३२) में फिर लिया है। इस धर्म-निष्ठा का एक दूसरा रूप 'सेवा-सदन' में ही देखिये। यहाँ सद्गृहणियाँ सड़कों और सीढ़ियों पर धक्के खाती हैं और वेश्यायें मंदिरों को पवित्र करती हैं। सुमन रामनौमी के दिन एक बड़े मंदिर में

जन्मोत्सव देखने गई तो देखती है कि वहाँ तिल रखने की भी जगह नहीं है। भोली (वेश्या) गा रही है। भक्तगण बैठे हैं। कोई वैसाव-सा तिलक लगाये, कोई भस्म रमाये, कोई गले में कंठी-माला डाले और रामनाम की चादर ओढ़े कोई गेरुए वस्त्र पहने। गजाधर ठीक कहता है—'आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा है। इस निर्मल सागर में एक से एक मगर-मच्छ पड़े हैं। भोले-भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लंबी-लंबी जटायें में, लंबे-लंबे तिलक-छापे और लंबी-लंबी दाढ़ियां देखकर, लोग धोखे में आ जाते हैं, पर हैं वे सब के सब महा पाखंडी।'

इस समाज में घर की रानी तिरस्कृत है और कोठे पर बैठकर रूप का बाजार लगाने वाली वेश्या पूज्य है। सुमन की जीवनकथा समाज की इसी द्वैधात्मक स्थिति की ओर संकेत करती है। उसका पति गजाधर प्रसाद ही क्यों, समाज के बड़े बड़े आदमी गृहिणी को दिये जाने वाला आदर-सत्कार और प्रेम वेश्या को दे रहे हैं। उन्हें इसमें जरा भी संकोच नहीं लगता। गजाधर वेश्या के घर जाकर जशन में सम्मिलित कैसे हो गया, सुमन पूछती है—तुम्हें तो वहाँ जाते हुए संकोच हुआ होगा ?

इस पर गजाधर उत्तर देता है— जब इतने भले मानुष बैठे हुए थे तो मुझे क्यों संकोच होने लगा। यही नहीं, समाज के क्रीड़ास्थल भी वेश्याओं के लिए उन्मुक्त हैं। सुमन पार्क की एक बेंच पर बैठ गई तो चौकीदार ने उसे गवारिन समझ कर वहां से उठा दिया, किंतु दूसरे ही क्षण जब दो वेश्यायें आईं तो उसी चौकीदार ने उनका स्वागत कर उन्हें बैठाया। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति अपनी गृहणियों की आँखों के नीचे अपने घर वेश्याओं के मुजरे कराते हैं। वेश्या का समाज में यह आदर देखकर ही सुमन

उससे अपनी तुलना करने लगती है। 'वह इस परिणाम पर पहुँची कि वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं, उसकी दुकान खुली हुई है, मेरी बंद है। वह डालियों पर स्वच्छंदता से चहकती है, मैं पिंजड़े में बंद तड़पती हूँ। उसने लज्जा त्याग दी है, मैं उसे पकड़े हूँ।' कैसी विडम्बना है। नारी के लिए परिस्थिति का इससे बड़ा व्यंग और क्या होगा? सुमन समाज के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है जो आज भी बनी हुई है। समाज के मुँह पर थप्पड़ मारने के लिए ही सुमन वेश्या बन जाती है। सुधारक विट्ठलदास जब उससे कहते हैं—'जब हमारी पूज्य ब्राह्मण महिलायें ऐसे कलंकित मार्ग पर चलने लगीं, तो हमारे अधः-पतन का कोई पारावार नहीं है। सुमन, तुमने हिंदू जाति का सिर नीचा कर दिया।' तो सुमन गंभीरभाव से उत्तर देती है—'आप ऐसा समझते होंगे, और तो कोई ऐसे नहीं समझता अभी कई सज्जन यहाँ मुजरा सुनकर गये हैं। हिंदू थे, लेकिन किसी का सिर नीचा नहीं मालूम होता था। वह मेरे यहाँ आने पर बहुत प्रसन्न थे। फिर इस मंडी में मैं ही एक ब्राह्मणी नहीं हूँ। जब हिंदू जाति को खुद ही लाज नहीं है, तो हम जैसी अबलायें रक्षा कहां तक कर सकती हैं।' विट्ठलदास जब उसे अपवाद का भय दिखाते हैं तब वह व्यंग करती है—'मेरा तो यह अनुभव है जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर नहीं जाने दिया, लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानों मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।'

सुधारकों की अवस्था भी अच्छी नहीं है। बड़ी-बड़ी डींगें मार कर भी वह सुमन के लिए ५०) प्रतिमास का प्रबंध नहीं कर सके।

वह समाज-भीरु हैं। पद्मसिंह आर्य-समाज के रत्न और समाज-सुधारक होते हुए भी लोकापवाद से सुमन को घर से निकाल कर चकले में बैठा देते हैं। बाद में वह बराबर पश्चताप की आग में जलते हैं और स्वयं को दोषी मान कर इस अपराध का निराकरण करना चाहते हैं। परन्तु यह मनोस्थिति स्पष्टतयः द्वन्दात्मक है और समाज की अपनी द्वन्दस्थिति की उपज है। यह समाज कितना गल सड़ गया है। यह म्यूनिसपिलटी के वाद-विवादों और किन्स पार्क के भाषणों से स्पष्ट हो जाता है। प्रेमचंद का व्यंग इतना सूक्ष्म है कि हमें उसकी उपस्थिति की बात तक मालूम नहीं होती, परंतु वह प्राणों की चीर डालता है। उदाहरण के लिए, एक भाषण के सिलसिले में एक सज्जन कहते हैं—'सच तो यह है कि यदि इनको ( वेश्याओं को ) निकाल दिया गया तो देवताओं की स्तुति करने वाला भी कोई न रहे। वेश्या-गृह ही वह स्थान है जहाँ हिंदू-मुसलमान दिल खोल कर मिलते हैं, जहाँ द्वेष का वास नहीं है। जहाँ हम जीवन-संग्राम से विश्राम लेने के लिए अपने हृदय में शोक और दुख भुलाने के लिए शरण लिया करते हैं। अवश्य उन्हें शहर से निकाल देना उन्हीं पर नहीं, वरना सारे समाज पर अत्याचार होगा।' इस समस्या को लेकर हिंदू-मुसलमान नेता जिस तरह सांप्रदायिक चोंचें चलने लगीं। यह हमारे समाज का एक दूसरा चित्र है। हिंदू और मुसलमान दोनों कहते हैं कि वेश्याओं को चौक से हटाने में दूसरे पक्ष की चाल है और हमारा धर्म संकट में है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल कथा के रूप में 'सेवासदन उतना बड़ा नहीं है, जितना व्यंग-चित्र के रूप में। इस रचना में प्रेमचंद वेश्याओं के जीवन की समस्या नहीं लेते वे संपूर्ण हिंदू मुस्लिम जन-समाज को चुनौती देते हैं। 'गबन' में प्रेमचंद की

यह व्यंगात्मक रचना शैली पूर्णता को पहुंच गई है। मध्यवित्त की दुर्बलताओं का जैसा खाका इस रचना में उड़ाया गया है वह कहीं भी नहीं मिलेगा। अन्यत्र हमने इस रचना की विस्तृत विवेचना उपस्थित की है और इसके सामाजिक महत्व को स्पष्ट किया है। मध्यवित्त की प्रताड़ना—झूठ, झूठ, और झूठ--का जितना सुन्दर चित्र इस रचना में हैं, वह अद्वितीय है। पच्चीस रुपये का क्लर्क रमानाथ जब एडवोकेट से अपना परिचय देते हुए कहता है—'कानून की तरफ जाने का इरादा था, पर नये वकीलों की यहां जो हालत हो रही है, उसे देख कर हिम्मत नहीं पड़ी।' तो हमें हँसी नहीं आती, मध्यवित्त की दयनीय अवस्था पर रोना आता है। जहाँ समाज का आधार ही धन-भेद है और एक वर्ग बड़ा बनने का दिखावा उपस्थित कर दूसरे वर्ग को छल रहा है, वहाँ क्या कुछ दुराचार नहीं होगा। चोरी, झूठ, छल...अपनी स्त्री से भी छल...सचमुच जिस समाज में रमानाथ जैसे व्यक्ति हैं उसे रसातल में चला जाना चाहिये। यह समाज तो नश्तर खाकर ही ठीक होगा। छोटे-मोटे उपचार बेकार हैं।

प्रेमचंद को लोग गांधीवादी कलाकार कहते हैं, परन्तु उनकी रचनाओं में गांधीवादी नेतागिरी पर भी कुछ कम व्यंग नहीं मिलेंगे। 'गबन' में देवीदीन के मुख से सुनिये—'इन बड़े-बड़े आदमियों के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। छोकरियों की भाँति विसूरने के सिवाय इनसे और कुछ नहीं होगा। बड़े-बड़े देशभक्तों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो, एक भी देशी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिए, घर का और सब सामान विलायती है। सबके सब लोग-विलास में अंधे हो रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार

करेंगे। अरे, तुम क्या देश का उद्धार करोगे! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूट कर विलायत का का घर भरना तुम्हारा काम है। इसीलिए तुम्हारा इस देश में जन्म हुआ है। हां, रोये जाओ, विलायती शराबें उड़ाओ, विलायती मोटरें दौड़ाओ, विलायती मुरब्बे और आचार खाओ, बिलायती बर्तनों में खाओ, विलायती दवाइयाँ पिओ, पर देश के नाम पर रोये जाओ। मुदा, इस रोने से कुछ न होगा। रोने से माँ दूध पिलाती है। शेर अपना शिकार नहीं छोड़ता। रोओ उसके सामने जिसमें दया और धरम हो। तुम धमका कर ही क्या कर लोगे? जिस धमकी में कोई दम नहीं है, उस धमकी की परवाह कौन करता है? जिस धमकी में कोई दम नहीं है, उससे कौन डरता है? एक बार यहाँ बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर खूब उछले-कूदे। जब वह नीचे आये तब मैंने उनसे पूछा—साहब, सच बताओ जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है। तुम भी अंग्रेजों की तरह बड़ी-बड़ी तलब लोगे। तुम भी अंग्रेजों की तरह बँगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाए घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बन्दों की जिन्दगी भले ही आराम और ठाट से गुजरे पर देश को तो कोई फायदा न होगा। तुम दिन में पाँच बार खाना चाहते हो, और वह भी बढ़िया माल। गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूस कर तो सरकार तुम्हें हुन्डे देती है। अब तो तुम भोग-विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज्य हो जायगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।' इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद किसी भी दल के पीछे आँखें मूंद कर चलने

वाले नहीं थे। वह गांधीवाद को लेकर बैठे नहीं रहे। उन्होंने नेताओं और जनसेवकों की दुर्बलताओं की ओर देश का ध्यान फेरा। चक्रधर, विनय और अमरकांत जैसे भावुकता-प्रधान अधकचरे नेता देश को बहुत आगे बढ़ा नहीं सकते। प्रेमचंद ने इस बात को समझ लिया था। इसी से उन्होंने व्यंग का सहारा लिया और स्वयं कांग्रेस आंदोलन के भीतर अनीति और अनाचार का जो झंझावात बह रहा था, उसे चुनौती दी। इसके लिए बड़े साहस की आवश्यकता थी परंतु प्रेमचंद में यह साहस पर्याप्त मात्रा में मौजूद था।

सच तो यह है कि प्रेमचद की कला की व्यंग-भंगिमा पर हमने किंचित भी ध्यान नहीं दिया और इसी से हम उन्हें सामयिक जीवन का चित्रकार समझ कर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। प्रेमचद ने समाज के विभिन्न दलों और वर्गों को अपनी तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि से देखा है और उनके गले-सड़े अंगों पर नश्तर लगाए हैं पुलिस, नेता, कवि, लोकसेवक, अधिकारी, जमींदार, अखबार-नवीस—कोई भी उनकी तीक्ष्ण समालोचना से बच नहीं सका है। इस प्रकार प्रेमचंद की रचनाओं में विद्रोह और क्रांति के चिन्ह अनिवार्य रूप से मिलते हैं। 'गबन' में पुलिस के हथकडों का प्रेमचंद ने जैसा चित्रण उपस्थित किया है, वह न्याय और समाज-सुरक्षा की भावना को चुनौती है। ऊपर क्या, नीचे क्या, बीच में क्या—समाज के सारे स्तर बिगड़ गये हैं, गल-सड़ गए हैं, अपने जीवन को समाप्त कर चुके हैं और अब उनकी जरा भी उपयोगिता शेष नहीं रही है। सुकरात की तरह प्रेमचंद अपने युग के सामने प्रश्न पर प्रश्न उपस्थित करते चले जाते हैं, परंतु वह अपनी ओर से कोई भी समाधान नहीं रखते। समाधान रखते भी हैं तो वह अधूरा ही होता है। परंतु हम कलाकार से समाधान

आशा भी नहीं करते। वह अपने यथार्थ-चित्रण और अपनी भाषा-शैली द्वारा ही चोट कर जाता है। प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यास इस श्रेणी के अन्य उपन्यासों से भिन्न हैं। उनका बौद्धिक स्तर और उनकी व्यंग-कला प्रायः उन्हें इस श्रेणी की अन्य रचनाओं से अलग कर देती है। यह आश्चर्य का विषय है कि 'सेवासदन' और 'गबन' के इन पहलुओं पर अधिक विचार नहीं किया गया। हमने इस रचनाओं को यथातथ्य, केवल-मात्र कथा, केवल-मात्र चरित्र-चित्रण मानकर इन्हें छोटा किया है। प्रेमचंद की कला की मूल भित्ति हमने नहीं पकड़ी है।

'निर्मला' में व्यंग-शैली का इतना ऐश्वर्य नहीं है, परंतु परिस्थिति का व्यंग वहाँ भी काफी तीव्रता से सामने आता है। कला की दृष्टि से 'निर्मला' 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' की श्रेणी की ही चीज जान पड़ती है। परंतु प्रेमचंद यहाँ भी व्यंग से चूके नहीं हैं। उन्होंने मुंशी तोताराम की निर्मला के आगे जवान बनने का दिखावा करने की चेष्टा को इतना हास्यास्पद बना दिया है कि मुंशी जी की स्थिति सचमुच दयनीय हो गई है। निर्मला के ये कुछ पृष्ठ बड़े ही मार्मिक हैं। प्रेमचंद जैसा समर्थ कलाकार ही परिस्थिति के इस व्यग को इतनी सुन्दरता में अंकित कर सकता था। निर्मला की जीवन-गाथा में भाग्य की दुर्दमनीयता, भारतीय नारी की आर्थिक और सामाजिक विडंबना और मानव-स्वभाव की ऊँचाइयाँ और तलैटियाँ इस सुन्दर से योजित हैं कि हम कथा से प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकते। वैवाहिक विडंबनाओं को लेकर घोर दुखांत परिणिति उत्पन्न करने में शरच्चंद अत्यंत सिद्ध हस्त हैं, परंतु प्रेमचन्द ने 'निर्मला' लिख कर यह दिखा दिया है कि वह इस क्षेत्र में भी किसी से कम नहीं है। जो उपन्यासकार हमें 'सेवासदन', 'गबन' और 'निर्मला' दे सकता है, उसे

हम शरच्चंद्र से छोटा कैसे मान ले। यह शोक की बात है कि प्रेमचंद ने हमें सामाजिक कथायें बहुत थोड़ी दीं, अधिक देते तो हिंदी को शरच्चंद के अनुवादों का मुँह नहीं जोहना पड़ता, परंतु यह उनके लिए श्रेय की बात ही समझना चाहिये कि उन्होंने युग की चुनौती को स्वीकार किया और राजनैतिक और राष्ट्रीय हलचलों को लेकर ऐसे वृहद्काय उपन्यासों की रचना की जो सचमुच अपूर्व हैं और जो उन्हें रूस के महाप्रतिभ उपन्यासकारों (तोल्सताय, गोर्की और शोलोखव) के समकक्ष रख देते हैं। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने अपने युग के दो श्रेणी के उपन्यासों का नेतृत्व किया और दोनों क्षेत्रों में उनकी रचनाओं को शीर्ष-स्थान प्राप्त हुआ।

## ५

# प्रेमचंद के उपन्यास :

## समसामयिक राजनैतिक-सामाजिक रचनायें

प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों का विवेचन हम उपस्थित कर चुके। इसमें संदेह नहीं कि ये सामाजिक उपन्यास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। कम-से-कम 'सेवासदन' और 'गबन' प्रेमचंद की अमर कृतियाँ हैं और यही दो कृतियाँ उन्हें श्रेष्ठ कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए काफी थीं। भारतीय हिंदू समाज की दो बड़ी विडंबनाएं इन उपन्यासों का विषय हैं। परंतु ये केवल सामाजिक रचनाएं नहीं हैं। ये पूर्णतः चरित्रनिष्ठ हैं। साहित्य और कला के प्रत्येक मान-दंड पर ये पूरी उतरती हैं।

परंतु समाज की सारी समस्यायें यहीं समाप्त नहीं हो जातीं। और अनेक सामाजिक समस्यायें ऐसी हैं जो राजनीति के क्षेत्र की भी मुख्य समस्याएं हैं। वस्तुतः इस देश में समाज और राजनीति की समस्याएं बहुत सटी-सटी चलती हैं और स्वतंत्र रूप से बहुत सी समस्याओं का अध्ययन करना असंभव ही हो जाता है। उदाहरण के लिए हम हरिजन (अछूत)-समस्या या हिंदू-मुसलिम समस्या को ले सकते हैं। ये समस्याएं मूलतः सामाजिक समस्याएं हैं। परंतु विशेष कारणों से इन्होंने राजनैतिक महत्व प्राप्त कर लिया है। अब इन्होंने कुछ ऐसा राज-

नैतिक महत्व प्राप्त कर लिया है कि इनके मूल सामाजिक रूप की ओर या तो हमारा ध्यान ही नहीं जाता या हम उसकी उपेक्षा करते हैं और राजनैतिक पहलू को ही अधिक महत्व देते हैं।

प्रेमाश्रम (१६२२) के साथ प्रेमचंद व्यापक क्षेत्र में उतरे हैं। उन्होंने समाज के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को लिया है। और राजनीति से उनका संबंध स्थापित किया है। उनका चित्रपट विशाल है और उस पर समसामयिक जीवन की विविधता, विशदता और विराटता का अंकन अत्यंत सुचारु रूप से हो सका है। अब प्रेमचंद एक व्यक्ति या एक परिवार के जीवन की कथा न कह कर सारे देश, समस्त समाज की कथा कहना चाहते हैं। प्रेमशंकर, विजय, सूरदास और अमरकांत इस कथा के प्रतीक मात्र हैं। कथा बड़ी है, चित्र-भूमि सर्व-देश-व्यापी है, अतः उसे प्रतिनिधि रूप में ही ठीक-ठीक कहा जा सकता है। यह आवश्यकता है कि हम इस पूरी कथा को साथ-साथ समझें एक ही चित्र के विभिन्न अंगों के रूप में समझें। ऐसा करने पर ही हम संपूर्ण चित्र के साथ न्याय कर सकेंगे। प्रेमाश्रम (१६२२) गोदान (१६३६) और मंगलसूत्र (१६३६, अपूर्ण) में यह संपूर्ण चित्र मानवीय संवेदनाओं और हृदय-मन के घातों-प्रतिघातों के साथ अत्यंत सजीव रूप में अंकित हुआ है। इस विवेचना में हमें 'कायाकल्प' के अलौकिक अंश को छोड़ देना पड़ेगा। वह मुख्यतः प्रेम-रोमांस की चीज है।

'प्रेमाश्रम' (१६२२) की कथा लखनपुर गाँव के बनने-बिगड़ने की कथा है। या यों कहिये, बिगड़े हुए लखनपुर के बनने की कथा है। लखनपुर बिगड़ी दशा के संबंध में कादिर खाँ कहता है—पहले २० बीघे का काश्तकार था, १००) लगान देने पड़ते थे।

दस-बीस रुपये साल नजराने में निकल जाते थे। अब जुमला २०) लगान है और नजराना नहीं लगता। पहले अनाज खलिहान के घर तक न आता था। आपके चपरासी-कारिन्दे वहीं गला दबा कर तुलवा लेते थे। अब अनाज घर में भरते हैं और सुभीते से बेचते हैं। दो साल में कुछ नहीं, तो तीन चार सौ बचे होंगे। डेढ़ सौ की एक जोड़ी बैल लाये, घर की मरम्मत कराई, सायबान डाला, हाँडियों की जगह ताँबे और पीतल के बर्तन लिये और सबसे बड़ी बात यह है कि अब किसी की धौंस नहीं। मालगुजारी दाखिल करके चुपके, घर चले आते हैं। नहीं तो हरदम जान सूली पर चढ़ी रहती थी। अल्लाह की इबादत में भी जी लगता है, नहीं तो नमाज भी बोझा मालूम होती थी।' यह बिगड़ा हुआ लखनपुर भारतवर्ष के सभी गांवों का प्रतीक है। सभी गांवों की समस्यायें लगभग एक-सी हैं। अंत में जमींदार प्रेमशंकर और मायाशंकर के प्रयत्नों से लखनपुर में राम-राज्य स्थापित हो जाता है। दुखरन भगत कहता है—भैया, अब न तुम्हारे अकबाल से सब तरह कुशल है। अब जान पड़ता है कि हम भी आदमी हैं, नहीं तो पहले बैलों से भी गये बीते थे। बैल तो हर से आता है, तो आराम से अपना भोजन करके सो जाता है। यहाँ हर से आकर बैल की फिकिर करनी पड़ती है। उसमें छुट्टी मिली तो कारिन्दे साहब की खुशामद करने जाते। वहाँ से दस ग्यारह बजे लौटते तो भोजन मिलता। १५ बीघे का काश्तकार था। १० बीघे मौरूसी थे। उनके ५०) लगान देता था। ५ बीघे जमीन जोतते थे। उनके ६०) देने पड़ते थे अब १२ बीघे के कुल ३०) देने पड़ते हैं। हरी-बेगारी, नजर-नियाज सब से गला छूटा। दो साल में तीन चार सौ हाथ में हो गये। १००) की एक पछाई भैंसें लाया हूँ। कुछ कर्जा था, वह चुका दिया।

यह राम-राज खाने पीने तक ही सीमित नहीं है। यह गांव के सारे जीवन को ही बदलने का उपक्रम है। दुखरन भगत की बात सुन कर सुखराम कहता है—"और तबला हारमोनियम लिया है, वह क्यों नहीं कहते? एक पक्का कुआँ बनवाया है, उसे क्यों छिपाते हो? भैया, यह पहले ठाकुर जी के बड़े भगत थे। एक बार बेगार में पकड़े गये तो आ कर ठाकुर जी पर क्रोध उतारा। उनकी प्रतिमा को तोड़-ताड़ कर फेंक दिया। अब फिर ठाकुर जी के चरणों में इनकी श्रद्धा हुई है। भजन-कीर्तन का सामान इन्होंने मँगाया है। यह राम-राज प्रेमचंद के मन मे उदय हुआ है। प्रेमचंद गाँवों की दुर्दशा से पूर्णतयः परिचित थे। जिस लमही ( पांडेपुर, जिला बनारस ) में उनका जन्म हुआ और जहाँ बचपन के अनेक वर्ष कटे, वहां उन्होंने लखनपुर के पूर्वरूप के ही दर्शन किये। १९२० ई० में गांधी जी की हुँकार सुन कर जब वे गाँव की ओर लौटे तो उन्होंने 'लमही' को लखनपुर बनाने का स्वप्न कागज पर उतारा। यह सपना केवल सपना नहीं था। प्रेमचंद गाँवों की दुर्दशा के मूल कारणों से पूर्णतयः परिचित थे। उनका गाँवों की दुर्दशा का चित्रण और इस रोग का निदान कोई हवाई चीज नहीं था। वह जानते थे कि गाँवों के दो मुख्य शत्रु हैं। ये हैं हाकिम और अमले। इनके पीछे विदेशी राज्य और उनके पिट्ठुओं की भारी शक्ति है। गांवों वालों के पास इसका एक ही उत्तर है संगठन। दुखरन कहता है कि यह हाकिम और अमले तो विद्यावान हैं। अरे, हम तो मूरख, गँवार, अपढ़ हैं। वह लोग तो विद्यावान हैं। उन्हें न सोचना चाहिये कि यह गरीब लोग हमारे ही भाई-बंध है। हमें भगवान ने विद्या दी है तो इनपर निगाह रखें। इन विद्यावानों से तो हम मूरख ही अच्छे। अन्याय सह लेना अन्याय करने से अच्छा है।

सुक्खू--'यह विद्या का दान नहीं देश का अभाग है।'

मनोहर--'न विद्या का दोष है न देश का अभाग। यह हमारी फूट का फल है। सब अपना दोष है। विद्या में और कुछ नहीं होता तो दूसरों का धन ऐंठना तो आ जाता है। मूरख रहने से तो अपना धन गँवाना पड़ता है।' आगे वह इस बात का और भी स्पष्ट कर देता है...'तुम हमारे खेत पर चढ़ोगे हम तुम्हारे खेत पर चढ़ेंगे। छोटे सरकार की चाँदी होगी। सरकार की आँखें तो तब खुलतीं जब कोई किसी के खेत पर दाँव न लगाता। सब कौल कर लेते।' लेकिन यह कहाँ होने वाला है। मनोहर के इन शब्दों में प्रेमचंद ने प्रेमाश्रम का पूरा रहस्य खोल दिया है। हाकिम और अमले दोषी हैं परन्तु वे ही पूर्णतः दोषी नहीं हैं। गाँवों की दुर्दशा का कारण यही है कि किसानों में संगठन नहीं है, फूट है और इसी फूट के कारण सारा लखनपुर एक रस्सी में बंध कर जेल चला जाता है। पुरुष के नाम पर गाँव में एक जवान भी नहीं रह जाता।

परन्तु प्रश्न तो यह है कि लखनपुर स्वर्ग कैसे बने? प्रेमचंद ने मनोहर के मुख से एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्त्व की बात कहलवा दी है: यह हमारी फूट का फल है। सब अपना दोष है। परन्तु कथा का संगठन उन्होंने कुछ दूसरे ढंग से ही किया है। लखनपुर में जो परिवर्तन हुआ है उसका मूल कारण जमींदार प्रेमशंकर की प्रगतिशीलता है। उन्होंने जी-जान से अथक परिश्रम किया और तब कहीं जाकर गौस खाँ वाले हत्याकांड में फँसे हुए लखनपुर के आदमी छूट पाए। उन्होंने ही मायाशंकर को आदर्श जमींदार बनाया। उनका 'प्रेमाश्रम' ही नई जिंदगी की नींव डालने में समर्थ हुआ। मायाशंकर के संबंध में प्रेमचंद लिखते हैं—दो महीने तक (वहां भी) अपने गाँवों का

दौरा करता रहा। प्रतिदिन जो कुछ देखता अपनी डायरी में लिख लेता। कृषकों की दशा का खूब अध्ययन किया। दोनों इलाकों के किसान उसके प्रजा-प्रेम, विनय और शिष्टता पर मुग्ध थे। उसने उनके दिलों में घर कर लिया। भय की जगह प्रेम का विकास हो गया। लोग उसे अपना सच्चा हितैषी समझने लगे। उसके पास आकर अपनी विपत्ति कथा सुनाते। उसे उनकी वास्तविक दशा का ऐसा परिचय किसी अन्य रीति से न मिल सकता था। वह जब से अपने इलाके का दौरा करके लौटा था, अकसर कृषकों की सुदशा के उपाय सोचा करता। अभिषेक के समय उसने जो विचार उपस्थित किये वे प्रेमचंद की मनोभूमि पर अच्छा प्रकाशन डालते हैं—"महोदय ने कहा है कि ताल्लुकेदार अपनी प्रजा का मित्र, गुरु और सहायक है। बड़ी विनय के साथ निवेदन करूंगा कि वह इतना ही नहीं, कुछ और भी है। वह अपनी प्रजा का सेवक भी है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है, अन्यथा संसार में उसकी कोई जरूरत ही न थी। उसके बिना समाज के संगठन में कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को विलास और विषय-भोग में उड़ाये, उनके टूटे फूटे झोंपड़ों के सामने अपना ऊँचा महल खड़ा करे, उनकी नम्रता को अपने रत्न जटित वस्त्रों से अपमानित करे, उनकी संतोषमय सरलता को अपने पार्थिव वैभव से लज्जित करे, अपनी स्वाद-लिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करे। अपने स्वत्वों पर जान देता हो, पर अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरंकुश प्राणियों से प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्द दूर हो उतना ही अच्छा हो।

भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की, या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा

देश की रक्षा करता है, इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप में ले, या कोई और कम आपत्ति-जनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्य पदार्थ बनाने की स्वच्छंदता दी जाती है, तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंक-चिह्न समझना चाहिये।

......मेरी धारणा है कि मुझे किसानों की गर्दन पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नहीं है।...मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज व्यवस्था ने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधन से मुक्त करता हूँ। वह न मेरे आसामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूँ। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं। आज से वह अपनी जोत के स्वयं जमींदार हैं। अब मेरे कारिन्दों के अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्ति की मंत्रणाएं न सहनी पड़ेंगी। वह इजाफे, नजराने, बेगार की विडम्बनाओं से निवृत्त हो गये। यह न समझिए कि मैंने किसी आवेग के वशीभूत होकर यह निश्चय किया है। नहीं, मैंने उसी समय यह संकल्प किया, जब अपने इलाकों का दौरा पूरा कर चुका। ××× मेरा अपने समस्त भाइओं से निवेदन है कि वह एक महीने के अंदर मेरे मुख्तार के पास जाकर अपने-अपने हिस्से का सरकारी लगान पूछ ले और वह खजाने में जमा कर दें। मैं श्रद्धेय डाक्टर इर्फान अली से प्रार्थना करता हूं कि वह इस विषय में मेरी सहायता करें और जाते और कानून की जटिल समस्याओं को तै करने की व्यवस्था करें। मुझे आशा है कि मेरे समस्त भ्रातृवर्ग आपस में

प्रेम से रहेंगे और जरा-जरा सी बातों के लिए अदालत की शरण न लेंगे।"

यह है प्रेमचंद का रामराज। इसमें संदेह नहीं कि यह रामराज का सपना गांधीजी की 'सर्वोदय' की भावना से प्रभावित है। यहाँ साम्यवाद का संघर्ष प्रधान रूप सामने नहीं आता, वरन् सहकारिता और सेवाभाव पर ही अधिक बल दिया गया है। जमींदार स्वेच्छा से अपने अधिकार छोड़ दें और किसान अपनी जोत के मालिक हो जायँ ——प्रेमचंद का यह सपना उस समय से कितना आगे था। आज यह सपना सच हो रहा है। जमींदारों ने स्वेच्छा से अपना अधिकार नहीं छोड़ा है, परन्तु नए भारतवर्ष के मानचित्र में जमींदार का निशान मिटा जा रहा है, और किसान अपनी जोत का मालिक बन रहा है। गाँधीजी ने भारतीय इतिहास में पहली बार घोषणा की—'गाँव की ओर लौटो।' उन्होंने किसान की सर्वबंधन-मुक्ति की आवाज उठाई प्रेमचंद ने उस आवाज को अपने निजी अनुभवों की दृढ़ भूमि दी और उसे उपन्यास का कलात्मक रूप देकर हमारे सामने उपस्थित किया। उनका 'प्रेमाश्रम' का सपना आज सच्चा हो रहा है, परन्तु उनके पात्रों के घात-प्रतिघातमय और कलापूर्ण चित्र आज भी उतने ही सुन्दर हैं। भारतभूमि पर गाँधीजी का सब से पहले महत्वपूर्ण भाषण ४ फरवरी १९१६ को काशी हिंदू विश्व-विद्यालय के उद्घाटन समारंभ के अवसर पर दिया गया था। इस समारंभ में महामना मालवीय ने हिन्दुस्तान के सभी नेताओं और राजा-महाराजाओं को निमन्त्रण दिया था। और लार्ड हार्डिंग आदि बड़े बड़े अधिकारी वहां आये थे। 'प्रेमाश्रम' के अंत में मायाशंकर के अभिषेक का जो चित्रण है वह इसी समारोह को हमारे सामने नये रूप में उपस्थित करता है। उस

भाषण में गांधीजी ने कहा था —'कल जो महाराज अध्यक्ष थे उन्होंने भारत की गरीबी के बारे में कहा था। अन्य वक्ताओं ने भी इसी बात पर काफी जोर दिया था, लेकिन जिस भव्य मंडप में वाइसराय ने उद्घाटन किया था, उसमें आपको कौन-सा दृश्य दिखाई दिया उसमे कितनी शान, कितनी तड़क-भड़क थी। पैरिस के किसी जौहरी की आँखों को लुभाने वाला जड़ जवाहरात का वह प्रदर्शन था। कीमती रत्नाभूषणों से सजे इन सरदारों और देश के करोड़ों गरीबों की स्थिति की मैंने तुलना की मुझे यह अनुभव होने लगा है कि इन सरदारों से कहना पड़ेगा कि जब तक आप इन जवाहरात को त्याग करके अपनी धन-दौलत को राष्ट्रकी थाती समझ कर न रखेंगे तब तक हिन्दुस्तान को मुक्ति नहीं मिलेगी। हमारे देश में ७० फी सदी किसान हैं और जैसा कि मि० हिगिनबोथम ने कल कहा था कि खेत में अन्न की एक बाल की जगह दो बोरी बालें पैदा करने की शक्ति इन्हीं किसानों में है लेकिन उनके परिश्रम का सारा फल यदि हम उनसे छीन ले या दूसरे को छीन लेने दे तो फिर यह नहीं कहा जा सकेगा कि हममें काफी स्वराज्य-भावना जाग्रत है। हमारी मुक्ति इन किसानों के, द्वारा ही हो, डाक्टरों व वकीलों अमीर-उमरावों के द्वारा नहीं। इस मुक्ति का कैसा भव्य चित्र प्रेमचन्द ने उपस्थित किया। 'प्रेमाश्रम' का किसान साधारण किसान नहीं है। वह धरती का वरदपुत्र है उसमें जीवन की सारी शक्ति पूर्णतः विकसित है। वह सतत जागरूक है। आत्मसम्मान पर चोट पड़ते ही वह फूत्कार कर उठता है। युगों-युगों तक कालचक्र के नीचे पिस कर भी उसका आत्मदर्प चूर नहीं हुआ है। भावी पीढ़ियों के लिए धरती के पुत्र के इस आत्म भाव को सुरक्षित रखना होगा। 'प्रेमाश्रम' का यही संदेश है।

'गोदान' (१९३६) में प्रेमचन्द ने गांव की समस्या को फिर उठाया है, परन्तु इन उपन्यास में गाँव की किसी परिस्थिति

विशेष का निरूपण नहीं है। 'प्रेमाश्रम' में गाँव की समस्या का बाहरी रूप हमें दिखलाई देता है। हाकिम और अमले किस प्रकार गाँव के जीवन में कड़वाहट भर रहे हैं: कैसे स्वयं किसानों की फूट के कारण गाँव चौपट हुए जा रहे हैं। परिस्थिति का निदान भी उन्होंने बताया। गाँव में फूट का साम्राज्य है। फूट जाये। गाँव संगठित बन और अपनी संगठित शक्ति से हाकिम और अमले से मोर्चा ले। उधर जमींदार के कर्तव्य पर भी प्रेमचन्द ने बहुत कुछ कहा है और अपने रामराज के चित्र में उसे अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। परन्तु, जान पड़ता है, धीरे धीरे यह निदान उन्हें अधूरा लगाने लगा। न तो गाँव वाले संगठित हो पाते हैं, न प्रेमशंकर और मायाशंकर जैसे ज़मींदार ही दिखलाई पड़ते हैं। सच तो यह है कि गाव का भीतरी बल ही कुंठित हो गया है। वह यों नहीं जागेगा। उसके लिए चोट करनी पड़ेगी। किसान के जीवन की भयानक ट्रेजड़ी को सामने लाना होगा। 'गोदान' में होरी के माध्यम से प्रेमचन्द ने इस ट्रेजड़ी का एक संपूर्ण चित्र हमारे समाने उपस्थित किया गया है। 'गोदान' लिखते समय तक उनकी उपन्यास-संबन्धी धारणा में भी अंतर हो गया है और कदाचित् इस लिए उपन्यास का रूप भी बदल गया है। वह कहते हैं—'भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छोटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों में किया जायगा जिन पर उसने विजय पाई है।' 'गोदान' एक साधारण किसान (होरी) का जीवन-चरित्र ही तो है। अंत में परिस्थितियों ने होरी को परास्त कर दिया, परंतु होरी की यह पराजय हमें कमजोर नहीं बनाती, वह हमें चुनौती देती है, दृढ़ता देती है। और होरी कोई आदर्श नायक नहीं है। आदर्श नायक तो न प्रताप है, न अमरकांत, न विजय, न सूरे, न चक्रधर,

प्रेमचन्द आदर्श से स्खलित न होने वाले पात्रों में विश्वास नहीं रखते' वे कहते हैं—'यह जरूरी नहीं कि हमारे चरित्र-नायक ऊँची श्रेणी के मनुष्य हों। हर्ष और शोक, प्रेम और अनुराग, ईर्ष्या और द्वेष मनुष्य मात्र में व्यापक हैं। होरी में ये सब पूर्ण मात्रा में विराजमान है। यह स्पष्ट है कि 'गोदान' 'प्रेमाश्रम' से भिन्न है। 'गोदान' सारी कथा को, गांव की सभी परंपराओं और दुर्बलताओं को होरी पर केन्द्रित कर देता है। होरी के चरित्र, उसकी मजबूरियों और उसके सुख-दुख में सारा गाँव बोल उठता है।

होरी एक साधारण किसान है। चार-पाँच बीघे जमीन जोतता है। सब कुछ करने पर भी वह कुछ कर नहीं पाता। कहने को तो महतो और पग-पग पर लाचार। परिस्थितियों के भयंकर चक्रों के बीच में वह पिस गया है। प्रेमचन्द लिखते हैं—'चाहे कितनी ही कतरब्योंत करो, कितना पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दांत से पकड़ो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है।' उसकी छः संतानों में से अब केवल तीन जिन्दा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियाँ सोना और रूपा बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन में मर गये। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवादारू होती तो वे बच जाते, पर वह (होरी की स्त्री धनिया) एक धेले की भी दवा नहीं कर सकी थी। छोटी सी उसकी एक लालसा है उसके द्वार पर एक दुधारू गऊ बँध जाये।—'गऊ से ही तो द्वार की सोभा है, सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी।'

हम जानते हैं कि होरी की यह अत्यन्त साधारण कृषक-सुलभ-लालसा पूरी नहीं हो पाती। परिस्थिति का चक्र ही कुछ ऐसा है।

परंतु ये परिस्थितियाँ कोई दैवी घटनायें नहीं हैं। इन्हें तो हमें होरी के अपने मन, उसके संबंधियों के ईर्ष्या-द्वेष या उसके किसान-जीवन की विडम्बनाओं मे ढूँढ़ना होगा। होरी साधारण किसान होते हुए भी ऐसा भोला नहीं है जो सरलता से परिस्थिति के छल में आ जाये। प्रेमचन्द ने उसे उस किसान का प्रतीक बनाया है जो पक्का स्वार्थी होता है, जिसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, जो भाव-ताव में भी चौकस रहता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए जो महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जो जब तक पक्का विश्वास न हो किसी के फुसलाने में नहीं आता। वह भोला को सगाई की उम्मीद दिला कर उससे गाय ले लेना चाहता है। सगाई न भी हुई तो होरी का क्या बिगड़ता है ? यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आयेगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा, लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म नहीं थी। इस व्यवहार का वह आदी था। इस तरह के छल तो वह दिन-रात करता था पर यह उसकी नीति का छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी, और यह कोई बुरी बात नहीं थी। घर में दो चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कस्में खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना, और रुई में कुछ बिनौले भर देना, उसकी नीति में जायज था। रसिकता और सहज हास्य की प्रवृत्ति भी उसमें कम नहीं है। वह सोचता है, भोला को भुलावा देने में थोड़ा मनोरंजन भी है। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय तो कुछ दोष नहीं है।

ऐसा, धूर्त दुनियादार, कर्मठ किसान जब परिस्थितियों से हार जाता है और ईर्ष्या-द्वेष का शिकार होकर अपनी छोटी-सी, अत्यन्त साधारण-सी, कृषक-सुलभ लालसा को पूरा नहीं कर पाता

तो यह साफ़ है कि 'प्रेमाश्रम' का स्वर्ग इतनी सरलता से संभव नहीं हो सकता। केवल किसानों के संगठन या जमींदार की सदिच्छा से किसान सुखी नहीं रह सकता। गाँव की धरती को आमूल बदलना होगा। गांव के लोगों के नैतिक स्वर को ऊंचा उठाना होगा। गाँव के तरुणों को मजदूर-जीवन के चमकीले आकर्षण से बचाना होगा और उन्हें भूमिनिष्ठ करना होगा। बड़ा भारी काम है। किसान का दुःख केवल-मात्र परिस्थितियों की विडंम्बना नहीं है। वह बहुत कुछ चरित्रनिष्ठ है। भूमिधर का बाहर-भीतर सब गल सड़ गया है। किसान अनेक निरोधों ओर नियंत्रणों का शिकार है। और वह अब धरती की तरह सीधा-सादा और सरल नहीं रह गया। वह बदल गया है। इन निरोधों और नियंत्रणों को हटाना होगा।

किसान के दुःख-सुख को देखने का यह एक नितांत नवीन दृष्टिकोण है और इसमें संदेह नहीं कि गोदान जब प्रकाशित हुआ तो प्रेमचंद के प्रशंसक और आलोचक उनके इस दृष्टिकोण को पूर्णतयः पकड़ नहीं सके। उनकी आँखों के आगे 'प्रेमाश्रम' नाचने लगा। जनार्दन झा ने कहा—'गोदान को प्रेमाश्रम का परिवर्तित और कुछ-कुछ परिष्कृत रूप समझना चाहिये क्योंकि उसमें कोई नवीन समस्या, कोई नूतन संदेश नहीं परिलक्षित होता।' 'श्रमजीवियों तथा सुखसेवियों के जीवनसंग्राम का वर्णन इसमें भी प्रायः उसी ढङ्ग पर किया जाय जो प्रेमाश्रम के आकर्षण-का केन्द्र है।' हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा—'गोदान मैंने उनकी कृति के योग्य आदर के साथ पढ़ा, पर मेरे हृदय को उसमें वह वस्तु न मिली जो रंगभूमि में मिली थी। रंगभूमि में गरीब अंधे भिखारी ने अपने त्याग और आत्मबल के द्वारा एक विलक्षण जागृति और आन्दोलन खड़ा किया था। आत्मबल

क्या कर सकता है, इसका वह नमूना था। गोदान में ऐसा कोई धीरोदात्त पात्र नहीं मिलता। उनके दूसरे उपन्यासों से वह जुदे प्रकार का है, वह यथार्थवादी है।' सच तो यह है कि लोगों की रुचि आदर्श पात्रों को पसंद करती है। वह वह देखना चाहते हैं जो इस जीवन में नहीं है। परंतु होरी सूरे से कम सत्य नहीं है। होरी भी असफल रह कर मृत्यु को प्राप्त होता है, सूरे भी, दोनों हमारे अंतर को दृढ़ ही करते हैं। परंतु होरी में सूरे-जैसा आत्म-बल का चमत्कार नहीं है तो इसमें निराश होने की क्या बात है। परिस्थितियों के बोझ से होरी टूट गया है, परंतु यह टूटना हमें कुछ सोचने पर मजबूर करता है, हमें चुनौती देता है। परंतु हरिभाऊ तो कहते हैं—'मुझे यथार्थवादी चित्रांकन से तृप्ति नहीं होती तो उन्हें क्या कहा जाये? सच बात यह है कि जीवन की इस संध्या में प्रेमचंद परिस्थितियों के छल से पूर्णतयः परिचित हो गये हैं। अब उन्हें किसी 'मायाशंकर' पर विश्वास नहीं हो सकता। 'प्रेमाश्रम' का सुख-सपना अब टूट गया है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने देहातियों का एक स्वर्ग कल्पित किया था। लखनपुर के विनाश और निर्माण में उनका आदर्श गांव का सपना ही सच हुआ है। तिलकोत्सव पर मायाशंकर ने जो भाषण दिया वह जमींदारों और अधिकारियों के लिए एक चुनौती रही। प्रेमचंद की भाँति माया का कोमल हृदय भी गाँवों-गाँवों में फैली दरिद्रता और दीनता को देख कर तड़प रहा था। उसने एक रास्ता निकाला और अपना कर्तव्य निबाहा। परंतु होरी की समस्या ऐसी समस्या ही नहीं है जिसे कोई मायाशंकर हल कर दे। यह बात प्रेमचंद की मौलिकता और प्रतिभा की ही परिचायक है कि उन्होंने 'प्रेमाश्रम' के अपने समाधान की अपूर्णता समझ ली और उसे बहुत पीछे छोड़ दिया।

'गोदान' के आलोचक प्रेमचंद की नई दृष्टि को पकड़ ही नहीं पाते। 'प्रेमाश्रम' का हल गांधीवादी हल है। 'गोदान' में प्रेमचंद गांधीवाद से आगे बढ़ गये हैं। 'गोदान' सेवा और त्याग की कथा नहीं है। उसमें प्राच्य और पाश्चात्य आदर्शों का संघर्ष भी नहीं है जैसा बाबूराव विष्णु पराड़कर कहते हैं--'प्राच्य त्याग और पाश्चात्य भोग, प्राच्य संयम और पाश्चात्य अनियम, ईश्वर पर अंधविश्वास और मानवत्व में ईश्वर की प्राप्त करने की लालसा, त्यागमय पारिवारिक जीवन और बाप-दादों के ऋण को अस्वीकार करने की कामना—इन विचारों का सम्मिश्रण गोदान में जगह-जगह दिखाई पड़ता है। प्राच्य-पाश्चात्य संघर्ष से जीवन का एक शास्त्र 'गोदान' में क्रमशः विकसित हो रहा है, पर दुर्भाग्यवश पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं हो पाता, और प्रेमचंदजी हमें मँझधार में छोड़ कर सहसा अन्तर्धान हो जाते हैं।' परंतु वास्तव में यह प्राच्य-पाश्चात्य-समन्वय की बात बहुत दूर तक नहीं जाती। 'गोदान' की भित्ति ही दूसरी है। 'गबन' जिस प्रकार मध्यवित्त के जीवन की व्यंगप्राण आलोचना है, 'गोदान' उसी प्रकार कृषक-जीवन की व्यंग-प्रतिमा है। होरी हमारे बिगड़े हुए कृषक-जीवन का सच्चा प्रतिनिधि है। वह किसी भी अंश में सीधा-साधा और आदर्श किसान नहीं है। उसमें कला की नई भंगिमा तो है ही, चरित्र-चित्रण की नई कला भी उसमें है और नई व्यंजना भी। 'गोदान' में पिछले उपन्यासों की भाँति सु-संपूर्णता और सुसम्बद्धता न हो, कोई ढँका-मुँदा नैतिक उद्देश्य न हो, इसमें संदेह नहीं कि वह होरी की जीवन का एक सफल चित्र है और वह चित्र से बढ़ कर है, एक आग है, एक चुनौती है। होरी की किसी भी समस्या का हल प्रेमचंद हमें नहीं सुझाते, परंतु होरी की समस्या का हल तो उसकी परिस्थितियों और

उनके चरित्र से स्वतः निःसृत है। यह दूसरी बात है कि इस हल को पहचानने के लिए अंतर्दृष्टि चाहिये। यह हल 'प्रेमचंद' के हल से नितांत भिन्न है। इसे थोड़ा गहरे जाकर समझना होगा।

'कायाकल्प' (१९२८) के रोमांसवाले भाग पर हम पहले विचार कर चुके हैं। यहाँ हमें उसके संबंध में कुछ कहना नहीं है। उसके सामाजिक-राजनीतिक भाग को ही हमें यहाँ लेना है। 'कायाकल्प' के देवप्रिया-वाले अंश को छोड़ दें तो शेष भाग समाज और राजनीति का अत्यंत सुन्दर और व्यंगप्राण चित्रण बन जाता है। सब से पहली बात जो हमारे सामने आती है वह है जमींदारी पद्धति का निरूपण। 'प्रेमाश्रम' में जमींदारों की दो श्रेणियाँ सामने आती हैं—एक ओर ज्ञानशंकर है, दूसरी ओर प्रेमशंकर-मायाशंकर ज्ञानशंकर पुरानी पद्धति का जमींदार है। प्रेमशंकर और मायाशंकर जमींदारों की नई, प्रगतिशील श्रेणी के प्रतीक हैं। अंत में प्रेमशंकर और मायाशंकर के आदर्शों की विजय होती है और ज्ञानशंकर आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार गाँव में रामराज की स्थापना होती है। 'सत्यं जयति नानृतं'। कुछ इसी तरह की परिणति इस उपन्यास की है। परंतु प्रेमचंद ने शीघ्र ही जान लिया कि यह आधा सत्य है और कदाचित् अधूरा सत्य है। इस तरह हृदय-परिवर्तन सचमुच इतना सरल नहीं है।

'कायाकल्प' में प्रेमचंद ने वर्ग-संघर्ष को कुछ अधिक सतर्कता से देखा है। अनेक वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग का अपना स्वार्थ है। एक वर्ग से दूसरे वर्ग में पहुँचने पर कोई बड़ी क्रांति नहीं हो जाती। इस दूसरे वर्ग के बंधन भी उतने ही सशक्त सिद्ध होते हैं। चक्रधर के रूप में एक निर्बल लोक-नायक को प्रेमचंद

ने हमारे सामने उपस्थित किया है जो प्रत्येक परिस्थिति में अपने वर्गों के स्वार्थों से आगे बढ़ ही नहीं सकता। 'चक्रधर' बेगार के विरुद्ध आवाज उठा कर जेल जाता है, जेल में कैदियों की ओर से अपने ढंग से लड़ता है, जेल में उसकी सजा बढ़ते-बढ़ते रह जाती है। बाहर आकर एकाएक वह अपने को ठाकुर विशालसिंह के दामाद के रूप में पाता है, क्योंकि इस बीच में पता लगा है कि उसकी स्त्री अहल्या राजा विशालसिंह की खोई हुई लड़की है। वह मोटर में सैर करने जाता है और उसकी मोटर एक जगह फँस जाती है। वह पासवाले गाँव में जाता है, वहाँ जो व्यक्ति पहले मिलता है उससे कहता है कि आकर मेरी मदद करो। जब वह मदद नहीं करता तो उसको मारता है, और उसका हाथ तोड़ देता है। वही व्यक्ति जो बेगार के विरुद्ध लड़ कर जेल गया था, आज स्वयं बेगार न पाने पर हाथ तोड़ देता है। यह पद्धति की महिमा है। चक्रधर आदि से अंत तक (Sudjectively) अर्थात् इष्टगत रूप से किसानों का हिमायती है, अहिंसावादी है, किन्तु पद्धति के फेर में पड़ते ही किसानों के ऊपर जुल्म करने वाला तथा हिंसावादी बन जाता है। क्या इस प्रकार लेखक ने यह इंगित नहीं किया है कि पद्धति को नष्ट करने की आवश्यकता है, क्योंकि इसमें अच्छे से अच्छे आदमी भी जाकर उसी पद्धति के बन जाते हैं। इस वर्णन से यह भी तो ज्ञान होता है कि जब एक व्यक्ति किसी कारण से अपने को दूसरे वर्ग में पाता है, तो उसके विचार भी उसी के अनुरूप हो जाते हैं। इसी उपन्यास में एक और व्यक्ति का अनुरूप परिवर्तन हमें देखने को मिलता है। राज्य के अधिकारी होने के पहले विशालसिंह प्रजावत्सल थे, उनके विचार बुर्जुआ ढंग के उदार थे, किन्तु राजा होते ही उनके विचार परिवर्तित हो जाते हैं। अवश्य यह परि-

वर्नन एकात्मक नहीं होता, इसमें कुछ अंतर्द्वन्द्व चलता है। प्रेमचंद जी इसे सफलतापूर्वक दिखलाते हैं। पद्धति की अप्रतिकार्यता और भी एक बात से स्पष्ट होती है। मनोरमा इसी कारण राजा विशालसिंह से विवाह करती है कि वह इस पद्धति के अंतर्गत होकर चक्रधर को उनके परोपकारी—विशेष कर किसान उन्नति-संबंधी कार्यों में सहायता देना चाहती है ( अभी तक चक्रधर राजा के दामाद नहीं हुए ) किन्तु क्या हुआ ? अंत में वह उस पद्धति के सामने हार कर बैठ गई। अवश्य उसने जो हार मानी, और वह जो बैठ गई, वह उस प्रकार बज्र-रेखा में घटित नहीं हुई, जिस प्रकार हमने बताया है, बल्कि सौतिया-डाह आदि बहुत से कारण तथा घटनायें इस बीच में उपस्थित होती हैं, और उसे यह रुख लेने के लिए विवश करती हैं। किन्तु प्रश्न तो यह है कि आखिरी नतीजा यही हुआ कि उसकी सदिच्छा के बावजूद उसे थक कर बैठ जाना पड़ा। यह पद्धति की ही महिमा है' ( कथाकार प्रेमचंद, ३६९-३७१ ) । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'कायाकल्प' में प्रेमचंद वर्ग-संघर्ष के रूप को अत्यंत विस्तारपूर्वक ढंग से सामने लाते हैं और चक्रधर के रूप में एक दुर्बल लोकनायक को हमारे सामने उपस्थित करते हैं। इन लोकनायकों के संबंध में ही चक्रधर कहता है—'हमारे नेताओं में यही तो बड़ा ऐब है कि वे स्वयं देहातों में न जाकर शहरों में पड़े रहते हैं, जिससे देहातों की सच्ची दशा उन्हें मालूम नहीं होती, न उन्हें वह शक्ति आती है, न जनता पर उनका वह प्रभाव पड़ता है जिसके बगैर राजनैतिक सफलता हो ही नहीं सकती।' परन्तु चक्रधर के चरित्र से यह पता चलता है कि मध्यवित्त लोकनायकों के लिए इतना ऊँचा उठना संभव नहीं है कि वे अपने वर्ग-स्वार्थों से मुक्त हो जायें। मनुष्य की वर्गगत और स्वार्थगत दुर्बलताओं का जैसा चित्र हमें

'कायाकल्प' में मिलता है वैसा चित्र अन्यत्र मिलना असंभव है। उसके रोमांस वाले भाग के कारण हम उसको प्रगतिशीलता की ओर दृष्टि नहीं कर पाते, परन्तु इसमे संदेह नहीं कि कायाकल्प 'प्रेमाश्रम' की अपेक्षा वस्तुस्थिति का कहीं अधिक सुन्दर चित्रण उपस्थित करता है। जमींदार-पद्धति ने जमींदारों, किसानों, हाकिम-अमला और कारिन्दों को समान रूप में पतित कर दिया है। चारों ओर खुशामद और आत्मप्रताड़ना का राज है। जैसे मनुष्य की मनुष्यता एकदम मर गई हो और उसने परिस्थितियों पूर्णतया समझौता कर लिया हो।

चक्रधर ने अपने मोटर के लिए बेगार माँगी। एक गाँव वाले को घूँसे-लातों से मार ही डाला। इस पर गाँव वाले आग-बबूला हो गये परन्तु जब उन्हें पता लगा कि यह व्यक्ति राजा का दामाद और मुंशी बज्रधर का पुत्र है, तो उनका रंग-ढंग बदल गया। घायल व्यक्ति का भाई कहने लगा—सरकार ही बाबू चक्रधर सिंह हैं। धन्य भाग्य थे कि सरकार के आज दर्शन हुए। यही नहीं घायल व्यक्ति कराहते हुए, परन्तु मुस्करा कर कहने लगा—'सरकार देखने में तो दुबले पतले हैं। परंतु आपके हाथ पाँव लोहे के हैं। मैंने सरकार से भिड़ना चाहा, पर आपने एक अंगों में मुझे दे पटका।' कुछ दिनों बाद जब घायल मर जाता है तो उसका भाई कहता है—'कजा आ गई। कोई क्या कर सकता है। बाबू जी के हाथ में कोई डंडा भी नहीं था। दो चार घूँसे मारे होंगे, और क्या? मगर उस दिन से वह बेचारा उठा नहीं।' इस प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाँव के मनुष्य का सारा आत्मबल ही मारा गया है इसके भीतर का मानव-भाव ही मर गया है। उसका अत्याचार का प्रतिकार एक ढोंग मात्र है।

'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने गाँव के किसानों और जमींदार-वर्ग को ही अपने व्यंग का लक्ष्य नहीं बनाया है। उन्होंने और भी अनेक संस्थाओं, वर्गों और समस्याओं की ओर दृष्टिपात किया है। उन्होंने उस्तादी पक्के गाने वालों और ज्योतिष के पंडितों का खाका उड़ाया है। एक पात्र के मुँह से प्रेमचन्द कहलाते हैं —'गाना ऐसा होना चाहिये कि दिल पर असर पड़े, यही नहीं कि तुम ताना का तार बाँध दो और सुनने वाला तुम्हारा मुँह ताकता रहे। जिस गाने से मन में भक्ति, वैराग्य, प्रेम और आनन्द की तरंगें न उठें, वह गाना नहीं है। हिन्दुओं के प्रचलित संस्कारों के कारण फलित ज्योतिष का बाजार खूब गर्म है। न जाने कितने लोग इस अंध-विश्वास के द्वारा अपनी रोटियाँ चला रहे हैं। 'कायाकल्प' के प्रेमचन्द अंधविश्वासों, रूढ़ियों, परम्पराओं और तथा-कथित देश-भक्ति एवं परोपकार की भावनाओं के प्रति खड्ग-हस्त दिखलाई देते हैं।

परंतु 'कायाकल्प' की समसामयिक कथा मुख्यतः हिन्दू मुसलिम-समस्या को सामने लाती है। आगरे के हिन्दू-मुसलमान दंगों का बड़ा विशद चित्रण हमें इस उपन्यास में मिलता है। एक तरफ हिन्दुओं के नेता यशोदानंदन हैं और दूसरी ओर ख्वाजा साहब जो मुसलमानों नेतृत्व करते हैं। इन दंगों ने राष्ट्रबल को कितना क्षीण कर दिया है— यह प्रेमचन्द दिखाना चाहते हैं। 'कायाकल्प' की पृष्ठभूमि 'प्रेमाश्रम' की पृष्ठभूमि से कहीं बड़ी है। उसमें समसामयिक जीवन को बड़ा व्यापक चित्रपट देकर उपस्थित किया गया है यद्यपि वह विस्तार नहीं मिल सका है जो बाद में 'रंगभूमि' को मिला है। देवप्रिया वाले अलौकिक प्रेम-रोमांस ने पुस्तक का बहुत बड़ा भाग ले डाला है। जो हो, यह निश्चित है कि 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द पहली बार व्यापक रूप में प्रयोग

करते हैं जो 'प्रेमाश्रम' में केवल कहीं कहीं झलक जाता है और जिसका पूर्ण विकास हमें 'गोदान' में मिलता है। परंतु कथा में जिस तरह अनेक प्रेम-प्रसंग गूँथे दिये गये हैं, वह 'बरदान' और 'प्रतिज्ञा' के प्रेमचन्द को ही सामने लाते हैं। वास्तव में 'कायाकल्प' प्रेमचन्द के विकास की संधिभूमि है। उसमें उन्होंने समसामयिक और अमर समस्याओं और यथार्थ जीवन तथा ऊहापोहात्मक कल्पना को एक सूत्र में गूँथ दिया है।

इन उपन्यासों के बाद प्रेमचंद के दो उपन्यास और रह जाते हैं। वे हैं 'रंगभूमि' (१९२४) और 'कर्मभूमि' (१९३४)। वास्तव में दोनों उपन्यासों का संबंध नगरों के आन्दोलनों से है—उनमें देहात बहुत कम आया है—और एक तरह से हम उन्हें एक दूसरे का पूरक समझ सकते हैं। 'रंगभूमि' की चित्रपटी अपेक्षाकृत विशाल है। जितनी बड़ी चित्रपटी पर प्रेमचंद ने इस उपन्यास में अपनी तूलिका चलाई है, उतनी बड़ी चित्रपटी का उपयोग करना सचमुच बड़े साहस का काम था। कम से कम अन्य किसी भी भारतीय उपन्यासकार में यह साहस दिखलाई नहीं पड़ता। पश्चिमी उपन्यासकारों में भी केवल रूसी उपन्यासकार इस श्रेणी की चीज हमें देते हैं। सामयिक जीवन के लगभग सभी अंगों को प्रेमचंद के ये दो उपन्यास अपने में समेट लेते हैं।

'रंगभूमि' में प्रेमचंद मुख्य रूप से दो समस्याओं को लेकर चले हैं। एक समस्या है औद्योगीकरण की और दूसरी है देशी राज्यों की, यद्यपि इन समस्याओं के भीतर और भी अनेक समस्यायें आ गई हैं और अभूतपूर्व चित्र उपस्थित हो गया है। परंतु इन समस्याओं के अतिरिक्त भी 'रंगभूमि' में ऐसा बहुत

कुछ है जो अपने आधार पर खड़ा हो सकता है। उदाहरण के लिए हम विनय-सूफी की प्रेम-कहानी या सूरो का चरित्र ले सकते हैं। 'रंगभूमि' में जो चीज पाठकों को सबसे अधिक आकर्षित करती है वह सूर और विनय का बलिदान है। प्रेमचंद स्वयं इस उपन्यास को अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे, ऐसा उन्होंने इन्द्रनाथ मदन को लिखे अपने एक पत्र में स्पष्ट किया है। उनके प्रशंसकों ने भी उनके आदर्शवाद के कारण ही उसकी प्रशंसा की है। कला और तत्त्वज्ञान की दृष्टि से 'रंगभूमि' प्रेमचंद का मास्टर-पीस है। वह मानवजीवन को एक व्यक्तित्व और एक सत्य प्रदान करता है। वह शरीर पर आत्मा की विजय का शंखनाद है। वह संपूर्ण जीवन का एक चित्र है और उस चित्र में चिरंतन तत्त्व भी कला का प्रस्फुरन है। पर पिछले वर्षों ने प्रेमचंद के जीवन पर जो प्रभाव डाला था उसका प्रतिनिधि चित्र 'गोदान' है। "इसमें 'रंगभूमि' की भाँति कोई निर्दिष्ट फिलासफी नहीं है, कर्मभूमि की भाँति समाज-क्षेत्र की कोई स्ट्रेटजी नहीं है और न 'सेवासदन' की भाँति समाज-सेवा का स्पष्ट कार्य-क्रम है। इसमें केवल चित्र हैं और समस्याएं हैं। होरी की पराजय में व्यक्ति की आत्मा की विजय का वह संदेश नहीं है जो रंगभूमि में है।" (रामनाथसुमन) "यों तो उनके (प्रेमचन्द के) सभी उपन्यास लोगों ने पसंद किये हैं, लेकिन 'रंगभूमि' मेरी राय में उन्हीं का नहीं, हिन्दुस्तान का सब से अच्छा उपन्यास है। 'रंगभूमि' कहानी है, काव्य है, फिलासफी है, मनोविज्ञान है और ढूँढने पर नीति, धर्म और सोशलिज्म का बहुत-सा मसाला मिल जायेगा। 'रंगभूमि' हमारी जिंदगी का खाका है जिस की जोड़की कल्पना थेकरे के वैनिटी फेयर में और मेरी कारेली के वेन्डेटा में भी जरा मिल जाय तो मिल जाय वरना दुनिया में और कहीं न मिलेगी।" (ऋषभ-

चरण जैन) 'रंगभूमि' का सूरदास मेरे हृदय में बैठ गया था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह हिन्दुस्तान के स्वराज्य की कुंजी लेकर आया है। उसे पाकर ऐसा बात होता था मानो कोई खोई हुई चीज मिल गई है। मैंने उनका 'कर्मभूमि' और 'गोदान' भी पढ़ा है परंतु दोनों 'रंगभूमि' की होड़ के नहीं जँचे। 'गोदान' मैंने उनकी अंतिम कृति के योग्य आदर के साथ पढ़ा पर मेरे हृदय को उसमें वह वस्तु नहीं मिली जो 'रंगभूमि' में मिली थी। 'रंगभूमि' में एक गरीब अंध भिखारी ने अपने त्याग और आत्मबल के द्वारा एक विलक्षण आन्दोलन खड़ा कर दिया था। आत्मबल क्या कर सकता है इसका वह एक नमूना था। गोदान में ऐसा कोई धीरोदात्त पात्र नहीं मिलता।" ( हरिभाऊ उपाध्याय ) प्रेमचन्द चाहते तो वे विनय और सूरे की कथाओं को दो अलग अलग उपन्यासों में रख सकते थे। परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया वे भारतीय जीवन का एक संपूर्ण—या जितना भी संपूर्ण हो सके—चित्र उपस्थित करना चाहते थे।

सूरे की कथा को हम धरती और मशीन या गाँव और उद्योग-धंधा प्रधान नगर के बीच की लड़ाई के रूप में भी देख सकते हैं। भारतीय उद्योगीकरण का युग १९०७-८ के निकट बंग-भंग और स्वदेशी आंदोलन के साथ-साथ आरंभ होता है, परंतु उसका विशेष विकास १९१४-१८ की लड़ाई के समय हुआ जब भारतवर्ष पूर्व में युद्ध का एक बड़ा केन्द्र बन गया था। धीरे २ स्वदेश प्रेम की आड़ में देशी व्यवसायी और पूँजीपति विदेशी व्यवसायियों और पूँजीपतियों का स्थान ग्रहण करने लगे। अनेक नये व्यवसाय खुले। तम्बाकू और शक्कर का व्यवसाय इनमें कदाचित् सब से अधिक महत्वपूर्ण थे। कपड़े की मिलें तो बंगभंग के समय से ही चल रही थीं। इन मिलों-

फेक्ट्रियों ने धीरे २ गाँव के जीवन का शोषण आरंभ कर दिया। किसान खेती को छोड़ कर मजदूर बन कर शहर बसाने लगा। 'गोदान' में होरी का लड़का गोबर अंत में गाँव छोड़ कर शहर में मजदूर बन जाता है और गाँव से उसे घृणा ही हो जाती है। गाँव सामंती सभ्यता की देन है। उद्योग-धंधे पूँजीवाद के अस्त्र हैं। मजदूर पूँजीवाद की ही उपज है। परंतु सामंती सभ्यता के गल सड़ जाने से किसानी-जीवन भी गल-सड़ गया है। पूँजीवाद बुरा नहीं, परंतु वर्तमान परिस्थिति में मजदूर का जीवन किसान के जीवन से कहीं अच्छा है। गोबर कहता है और वह ठीक कहता है कि किसान के जीवन से तो मजदूर का जीवन कहीं अच्छा। स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में सुनिये—'वह ( मजदूर ) गुलामी करता है, लेकिन भरपेट खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। यहाँ तो जिसे देखो वही रोब जमाता है। गुलामी है पर सूखी। मेहनत करके अनाज पैदा करो, और जो रुपये मिले, वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो। दादा ही का कलेजा है कि यह सब सहते हैं। मुझसे तो एक दिन न सहा जाय।' और यह दशा कुछ होरी को ही नहीं थी, सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं जिसकी रोनी सूरत न हो, मानों उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी, उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, मिलते थे, घुटते थे इसलिये कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा हो, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों, और सारी हरियाली मुरझा गई हो। जेठ के दिन है, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है, मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुल कर महाजनों और कारिन्दों

की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अंधकार की भाँति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनायें शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मनों कूड़ा जमा है, दुर्गंध उड़ रही है, मगर उनकी नाक में न गंध है, न आँखों में ज्योति। सरेशाम से द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं, मगर किसी को गम नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी-चोकर के बगैर नाद में मुँह नहीं डालते मगर उन्हें केवल पेट में डालने को कुछ चाहिये। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो चुका है। उनसे धेले-धेले के लिए बेई-मानी करवा लो, मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की यह वह इन्तहा है, जब आदमी शर्म और इज्जत को भी भूल जाता है।' यह है गाँव के जीवनकी यथार्थ-परिस्थिति। प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में गाँव के जीवन का एक स्वप्न भी देखा था परंतु अब उन्होंने समझ लिया कि यह स्वर्ग बहुत दूर है। 'गोदान' में वह वास्तविकता की भूमि पर उतर आये हैं, परन्तु 'रंगभूमि' के पाँडेपुर की अवस्था भी कुछ अधिक अच्छी नहीं है। आपस की फूट के कारण पाँडेपुर उजड़ जाता है। अपनी सारी शक्ति के साथ भी सूरे के सारे आत्मबल के सहारे भी गाँव शहर की अर्थलौलुपता को रोक नहीं सकता। स्वदेशी पूँजीवाद अपनी दिग्विजय को निकला हुआ है। वह पाँडेपुर पहुँचता है तो सूरे जैसे धरती की मूल प्रकृति के रूप में उसका विरोध करता है। नये संगठन में सूरदास-जैसों का स्थान ही कहाँ था? अतः सूरे के कुछ अपने भी स्वार्थ हैं। गाँव के अन्य लोगों के भी अपने स्वार्थ है। सूरदास इन स्वार्थों का नेतृत्व करता है। वह उठ कर

स्वदेशी पूँजीवाद से मोर्चा लेता है, परंतु सरकार की सारी शक्ति इस पूँजीवाद के साथ है। अंत मे वह असफल ही होता है। नैतिक दृष्टि से भले ही उसकी जय की दुंदभी बजाई जाय, वैसे वह असफल ही रहा, वह मशीन के पंजे से गाँव को बचा नहीं सका।

क्यों सूरदास ने मिल की स्थापना का विरोध किया, यह उसके शब्दों में ही सुनिये—'साहब किरस्तान है। धरमसाले में तम्बाकू के गोदाम बनायेंगे, मंदिर में उनके मजदूर सोयेंगे, कुंए पर उनके मजदूरों का अड्डा होगा, बहू-बेटियाँ पानी भरने न जा सकेंगी। ताड़ी-शराब का प्रचार बढ़ जायेगा। कसबियां भी तो आकर बस जायेंगी। परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को आ कर घूरेंगे। कितना अधरम होगा? दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी बुरी बात सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गाँवों में फैलायेंगे। दिहातों की लड़कियाँ-बहुएं मजदूरी करने आयेंगी, और यहाँ पैसे क लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी।' अंत तक वह विरोध करता और एक तरह से अपनी जान की बाजी ही लड़ा देता है परन्तु मिल की स्थापना हो ही जाती है। और जिन उपद्रवों का उसने उल्लेख किया है वह सब होने लगते हैं। 'रंगभूमि' के अंतिम अध्यायों में हम देखते हैं कि पाँडेपुर उजड़ गया है और जानसेवक की तम्बाकू की मिल उसकी छाती पर मूँग दल रही है।

यह सूरदास की पराजय हो न हो कम से कम गाँव की एक-निष्ठ पद्धति की पराजय तो है। परन्तु यही पराजय ऐतिहासिक सत्य है। जो यूरोप में हुआ जो संसार के सब देशों में हो रहा है, उसकी ओर से प्रेमचन्द आँखे कैसे बन्द कर सकते थे। आँखें

बन्द भी कर लेते तब भी देश की वस्तुस्थिति उनसे छिप नहीं सकती थी। गाँवों की ओर लौटने का स्वप्न प्रेमचन्द ने जीवन भर देखा परंतु वह एक व्यक्ति का मनोरम सपना था, परंतु न वह अपने अंतिम दिनों में लमही लौट सके न लमही स्वर्ग बन सका। 'रंग-भूमि' में पूँजीवाद साम्राज्यवाद की सारी शक्ति, सारे पशुबल सारे नीतिछल को लेकर पाँडेपुर के विरोध में पैशाची नृशंसता लेकर उठ खड़ा हुआ है। यही प्रेमचन्द के अपने युग का सत्य था। उनकी वस्तुवादी कला ने इस सत्य को ही ग्रहण किया यद्यपि उनकी सारी प्रवृत्तियाँ गांधीवाद के साथ थीं और वह हृदय से पाँडेपुर की विजय ही चाहते थे।

यह नहीं कि प्रेमचन्द ने सज्ञान रूप से पूँजीवाद की विजय घोषित की है। किन्हीं भी दामों पर वह ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे परन्तु हुआ ऐसा ही है। वस्तु-स्थिति के प्रति सच्चे रह कर अज्ञात रूप से प्रेमचन्द ने एक बड़े ऐतिहासिक सत्य का आविष्कार किया है। वैसे उनकी सारी सदा आकांक्षायें सूरे के साथ हैं। उसे वे शहीद के रूप में चित्रित करते हैं, प्रतिक्रिया-वादी लोकनेता के रूप में नहीं। सूरे का दर्शन प्रेमचन्द का जीवन दर्शन बन जाता है। मृत्यु-शय्या पर पड़ा सूरदास कहता है— 'तुम जीते मैं हारा। तुम मंजे हुए खिलाड़ी हो, दम नहीं उखड़ता, खिलाड़ियों को मिला कर खेलते हो और तुम्हारा उत्साह खूब है। हमारा दम उखड़ने लगता है, हांफने लगता है और हम खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं, गाली-गलौज मार पीट करते हैं। हम हारे तो क्या, मैदान में भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धांधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो। हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे, एक न एक दिन हमारी जीत होगी।' परन्तु इस जीत पर चाहे जैसा आदर्शवादी

नक़ाब चढ़ा दिया जाये, हार हार है और सूरे के बलिदान से वह जीत नहीं हो जाती। आत्मबल पूँजीवाद के लौह रथ-चक्रों को गति को रोकने में पूर्णतः असफल है। यही सत्य 'गोदान' में भी एक दूसरे ढंग से उपस्थित है। जीवन-भर धरती के मोह में डूबा हुआ होरी काल-चक्र से नीचे पिस गया। धरती से भाग कर मिल के हाथ बिका हुआ उसका लड़का गोबर जी उठा। प्रेमचन्द जैसे इंगित करते हैं कि भूमिधर के पास आज यही हल रह गया है—वह एकनिष्ठ रूप से धरती पर पैर जमा कर बैठा रह ही नहीं सकता।

'रंगभूमि' का एक दूसरा पक्ष देशी राज्यों से संबंधित है। प्रेमचन्द ने जिस प्रकार देशी राज्योंके संघर्ष को विस्तारपूर्वक कल्पित किया है, वह उनकी प्रतिभा की विजय ही सूचित करता है। १९२१ ई० के सत्याग्रह-संग्राम में देशी राज्यों को छुआ भी नहीं गया था परन्तु प्रेमचन्द जानते थे कि देशी राज्यों की समस्याये भारतवर्ष की आजादी की समस्या से जुड़ी हुई हैं और प्रतिक्रियावादियों के इस गढ़ को ढहाना ही ठीक होगा। इसी लिए उन्होंने विनय को जसवन्तनगर पहुंचा दिया और उसके द्वारा एक अत्यंत शक्तिशाली आन्दोलन का सूत्रपात कराया। यह आन्दोलन प्रेमचंद के अन्य आन्दोलनों की तरह पूर्णतः सफल नहीं हो सका, परंतु इससे प्रेमचंद की अंतर्दृष्टि किसी भी प्रकार लाँछित नहीं होती। उस युग में भी प्रेमचंद देशी राज्यों की विडंबना को अत्यत सतर्कता से उभार सके हैं, यह सचमुच श्रेय की बात है। राज्य में एकदल ऐसा भी है जो सत्ता के अत्याचारों का उत्तर ईंट-पत्थरों से देना चाहता है। वीरपालसिंह इस दल का नेता है। वह डाकू प्रसिद्ध है, परंतु वह विनय से कम देश-भक्त नहीं है। उसके मुँह से देशी राज्यों की विडंबना सुनिये। वह कहता

है—'इस राज्य के कर्मचारियों में न दया है न धर्म। हैं हमारे ही भाई-बंधु पर हमारी ही गर्दन पर छुरी चलाते हैं। किसी ने जरा साफ कपड़े पहने और ये लोग उसके सिर हुए। जिसे घूस न दीजिये, वही आपका दुश्मन है। चोरी कीजिये, डाका डालिये, घरों में आग लगाइये, गरीबों का गला काटिये, कोई आप से न बोलेगा। बस कर्मचारियों की मुट्ठियाँ गर्म करते रहिये। दिन-दहाड़े खून कीजिये, बेदाग छूट जायेंगे। आपके बदले कोई बेकसूर फाँसी पर लटका दिया जायगा। कोई फरियाद नहीं सुनता। यही समझ लीजिये कि यह हिंसक जंतुओं की एक गोल है। सब के सब मिलकर शिकार करते हैं, और मिल-जुल कर खाते हैं। राजा है वह काठ का उल्लू। उसे विलायत में जाकर विद्वानों में बड़े-बड़े व्याख्यान देने की धुन है। मैंने यह किया, वह किया बस डींगे मारना उसका काम है। या तो विलायत की सैर करेगा या तो यहां अँग्रेजों के साथ शिकार खेलेगा, सारे दिन उन्हीं की जूतियाँ सीधी, करेगा। इसके सिवा उसे कोई काम नहीं। प्रजा जिये या मरे, उसकी बला से। बस कुशल इसी में है कि कर्मचारी जिस कल बैठायें, उसी कल बैठिये, शिकायत न कीजिये, जबान न हिलाइये रोइये तो मुँह बँद कीजिये। + + विनय जब बुद्धि, न्याय और अहिंसा की बात उठाता है तो वीरपालसिंह ठीक ही कहता है—महाराज, हम आपसे तर्क नहीं कर सकते पर इतना जानते हैं कि विष विष ही से शांत होता है। जब मनुष्य दुष्टता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, उसमें दया और धर्म लुप्त हो जाता है, उसके लिए केवल एक ही उपाय शेष रहता है, वह है प्राण-दंड।' विनय देशी राज्य की इस भयंकर स्थिति को बदलने की चेष्टा करता है परंतु वह असमर्थ है। इस विषय मे जसवन्तनगर के दीवान साहब ने उससे जो कहा वह भी ध्यान देने योग्य है। बोले—

'रियासतों को आप ( विनय ) सरकार की हरमसरा समझिये, जहाँ सूर्य के प्रकाश की भी गुजर नहीं हो सकती। पोलटिकल रेजिडेन्ट ने आपके सहयोगियों के कृत्यों की गाथा लिख भेजी है। कोई कोटे में कृषकों की सभा बनाता फिरता है, कोई बीकानेर में बेगार की जड़ खोदने पर तत्पर हो रहा है, कोई मारवाड़ के उन करों का विरोध कर रहा है, जो परंपरा से वसूल होते चले आ रहे हैं। आप लोग साम्यवाद का डंका बजाते फिरते हैं। आपका कथन है—प्राणीमात्र को खाने-पहनने और शांति से जीवन व्यतीत करने का समान सत्व है। इस हरमसरा में इन सिद्धांतों और विचारों का प्रचार करके आप हमारी सरकार को बदगुमान कर देंगे, और यदि उसकी आँखें फिर गईं। तो हमारा संसार में कहीं ठिकाना नहीं है। हम आपको अपने प्रेमकुंज में आग लगाने न देंगे।

विनय पूछता है—आप रेजिडेन्ट के अनुचित हस्तक्षेप का विरोध क्यों नहीं करते ?

इस पर दीवान कहते हैं—इसलिए कि हम आपकी तरह निस्पृह और निःस्वार्थ नहीं हैं। सरकार की रक्षा से हम मनमाने कर वसूल करते हैं, मनमाने कानून बनवाते हैं, मनमाने दंड लेते हैं, कोई चूँ तक नहीं कर सकता इसी के उपलक्ष्य में हमें बड़ी उपाधियाँ मिलती हैं,पद की उन्नति होती है। ऐसी दशा में हम उनका विरोध क्यों करें ?

यह सच्ची वस्तु-स्थिति थी। विनय जैसे दुर्बल नायक से यह आशा नहीं थी कि वह इस वस्तुस्थिति से मोर्चा ले सकेगा। वह ऐसी विशेष परिस्थिति में पड़ जाता है जब उसका हृदय प्रेम की छलना से प्रताडित हो जाता है और वह राजसत्ता का दायाँ हाथ बन जाता है। धीरे-धीरे उस पर प्रमाद का रङ्ग छा जाता है।

सेवा और उपकार के भाव हृदय से संपूर्णतः मि जाते हैं। वह प्रवृत्तियों में बह जाता है। सोफिया उर लक्षित करती हुई ठीक ही व्यंग करती है—'वाह ! आपक आदर-सत्कार न करूँ ? मेरे कारण आपने रियासत अंधेर मचा रखा है, सैकड़ों निरपराधियों का खून कर दिया कितने ही घरों के चिराग गुल कर दिये, माताओं के पुत्र-शोक का मजा चखा दिया, रमणियों को वैधव्य दिया। अब आप एक तुच्छ सेवक नहीं, रियासत के दाहने हाथ है।'

परन्तु देशी राज्य की यह लड़ाई यहीं रुक जाती है। विनय जानता है कि रियासत के अधिकारी वर्ग उस पर विश्वास नहीं करते। उधर वह प्रजा का तो रह ही नहीं गया है। सच तो यह है कि वह पूर्णतः परिस्थितियों का शिकार है और अब उसके लिए पीछे लौटना असंभव है। अंत में वह घर लौट जाता है। यह शोक का विषय है कि प्रेमचंद की कल्पना यहाँ कुंठित हो गई, कदाचित् उनकी वस्तुवादी कला ने उन्हें और आगे बढ़ कर राज्यों का प्रगतिविरोधी गढ़ तोड़ने से रोक दिया। कदाचित् वह जानते थे कि देशी राज्य देश की आजादी से अलग कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है और इसीलिए उन्होंने विनय को वहाँ से हटा कर एक नये मोर्चे पर खड़ा कर दिया। परंतु इससे कला की थोड़ी हानि ही हुई है। देशी राज्य के युद्ध को जिस सजधज से साथ प्रेमचंद ने उठाया था, उसे उन्होंने बीच में ही छोड़ दिया।

कदाचित् प्रेमचंद ने विनय की कल्पना सूरे की कल्पना से भिन्न एक दुर्बल चरित्र, पेटी-बुर्जुआ ( मध्यवित्त ) के रूप में की थी और इसीकारण वह उसे क्रांति का अग्रदूत नहीं बना

सके। उसकी चारित्रिक सीमाओं ने उनके आदर्शवाद की गति कुंठित कर दी। विनय में इतनी भी दृढ़प्रतिज्ञा नहीं है जितनी 'कर्मभूमि' के अमर कांत में। वह परिस्थितियों और अपने हृदय की दुर्बल वृत्तियों से पूर्णतः परास्त हो जाता है। उसे रास्ता ही नहीं सूझता। एक क्षणिक उत्तेजना में आकर वह आत्महत्या कर लेता है और प्रेमचंद उसका जयघोष करने लगते हैं। रानी जाह्नवी कहती है-क्यों रोती हो बेटी ( सोफिया )? विनय के लिए? वीरों की मृत्यु पर आँसू नहीं बहाये जाते, उत्सव के राग गाये जाते हैं। मेरे पास हीरे और जवाहर होते तो उसे लाश पर लुटा देती। मुझे उसके मरने का दुःख नहीं है। दुःख होता, अगर वह प्राण बचा कर भागता। यह तो मेरी चिर संचित अभिलाषा थी। बहुत ही पुरानी जब मैं युवती थी। वीर राजपूत और राजपूतनियों के आत्मसमर्पण की कथायें पढ़ा करती थी, उसी समय मेरे मन में यह कामना अंकुरित हुई थी कि ईश्वर मुझे भी कोई ऐसा पुत्र देता जो उन्हीं वीरों की भाँति मृत्यु से खेलता, जो अपना जीवन देश और जातिहित के लिए अर्पण करता। परन्तु क्या क्षण भर की उत्तेजना से विनय वीर बन गया? यह तो रानी जाह्नवी की आदर्शवादिता है। विनय वही पहला विनय है। वह सूरे और होरी की श्रेणी का नायक नहीं है। उसे हम प्रतापचंद, चक्रधर, रमानाथ और अमरकांत की श्रेणी में रख सकते हैं। ये सभी नायक परिस्थितियों से लड़ नहीं पाते। उनके पैर उखड़ जाते हैं। वे भागते हैं। परंतु परिस्थितियाँ स्वयं अपना इंद्रजाल फैला कर उन्हें घेर लेती हैं। वे अंत तक दुर्बल ही सिद्ध होते हैं—प्रतापचंद साधु बाला जी बनकर यश की प्राप्ति अवश्य करते हैं और अमरकांत सकीना से भाग कर नेता बन जाता है, परंतु उनका मन अब भी दुर्बल है। भाग्य बली है। इसलिए अंतिम क्षण

उन्हें उतना पतनोन्मुख नहीं बनाता। परन्तु रमानाथ गिर कर संभल नहीं सका है। चक्रधर और विनय लगभग एक ही परिस्थितियों में पड़कर प्रगतिविरोधी शक्तियों का साथ देते लगते हैं। अंत में दोनों दुर्बल लोक-नायक सिद्ध होते हैं। दोनों संग्राम के बीच में भाग खड़े होते हैं। चक्रधर तो फिर कर्म-क्षेत्र में आते ही नहीं। विनय एकबार फिर कर्म-क्षेत्र में कूदता है और अपनी पहली लांछा और अपकीर्ति मिटाने के लिए एक व्यंग से मर्माहत होकर आत्महत्या कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगभूमि की कथा के दो विषय हैं, दो केन्द्र हैं और कथा के नायक भी दो हैं। पांडेपुर वाली कथा का नायक सूरे है, विनय नहीं। वह तो केवल अंत में पांडेपुर की समस्या में उलझ जाता है और उत्तेजना-वश आत्महत्या कर डालता है। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद की ऐंद्रजालिक औपन्यासिक प्रतिभा ने दो बृहद्काय उपन्यासों की कथावस्तु को एक में गुंफित कर दिया है। इसीलिए पाठक सूरे के अनुरोध से विनय को भी धीरोदात्त नायक समझ लेता है और उसके बलिदान पर प्रसन्न होता है। यह भी निर्विवाद है कि पांडेपुर वाली कथा में प्रेमचंद जसवंतपुर वाली कथा की अपेक्षा कहीं अधिक प्रगतिशील है। जसवंतपुर वाली कथा में विनय-सूफी की बहुत-कुछ रहस्यात्मक, बहुत कुछ रोमेंटिक प्रेमकथा भी ग्रथित हो गई है, परन्तु पांडेपुर के सूरदास की कथा औद्योगीकरण की विडंबना से संबंधित है। पांडेपुर उजड़ जाता है परन्तु जनसेवक की मिल वहां पर कुछ ही समय में एक भरे-पुरे उद्योग-धंधी नगर को ला बसायेगी यह निश्चित है। सूरे की दृष्टि से यह गाँव के लिए, धरती के लिए, जीवन के सात्विक विकास के लिए घातक सिद्ध होगा। इसी

विश्वास को लेकर वह मरा है। उसने अपनी आँखों गाँव का बिगड़ना देखा है। उसका अपना लड़का मिठुआ और बजरंगी का पुत्र घीसू उस सुभागी पर बलात्कार करने का प्रयत्न करते हैं जिसे सूरे की रक्षा मिलती रही है। जैसे गाँव-घर का विचार ही उठ गया है। परन्तु कथा का भाव बता रहा है कि पांडेपुर का उजड़ना ऐतिहासिक सत्य है। वह युग की माँग है और सूरे का आदर्शवाद यथार्थ-जीवन की अग्नि-परीक्षा में भस्म हो कर रहेगा। एक ओर प्रेमचंद हृदय से गाँव को स्वर्ग बनाने की बात सोचते हैं। दूसरी ओर गाँव धीरे-धीरे नरक बनते जाते हैं। पूँजीवाद की विजय होती है। धरती की धूल में लोटने वाले बालक मशीन के पेट में चले जाते हैं। एक ओर 'प्रेमाश्रम' का स्वर्ग ( लखनपुर ) है, दूसरी ओर 'रंगभूमि' का पांडेपुर है। 'प्रेमाश्रम' का स्वर्ग प्रेमचंद के मन का सत्य हमारे सामने उपस्थित करता है। 'रंगभूमि' का पांडेपुर युग की वास्तविकता को सामने लाता है। दोनों प्रेमचंद के चित्र हैं और दोनों सत्य हैं। प्रेमचंद का महत्व यही है कि उन्होंने अपने मन के सत्य को, मन के सपने को जीवन के सत्य पर छाने नहीं दिया। उन्होंने दोनों को अलग अलग रखा। जैसे-जैसे वह अनुभव के क्षेत्र में बढ़ते गये, जैसे-जैसे उनकी यथार्थवादी कला पुष्ट होती गई, वैसे-वैसे उन्होंने जीवन के सत्य को अधिक दृढ़ता से पकड़ा।

परन्तु इसमें संदेह नहीं कि 'रंगभूमि' में प्रेमचंद कला और कल्पना की अत्यंत उदात्त भूमि पर हैं। उन्होंने तोल्सताय, गोर्की और शोलाखफ की भाँति संपूर्ण जीवन का, उसकी अनेक भंगिमाओं का, अनेक आन्दोलनों का, समाज के सभी धर्मों और वर्गों का चित्रण देने का प्रयत्न किया है। 'रंगभूमि' सचमुच रंगभूमि है जिस पर न जाने कितनी परिस्थितियाँ खेल खेलती हैं। जितनी

बड़ी रंगभूमि इस उपन्यास की है उतनी बड़ी रंगभूमि और किसी भी उपन्यास की नहीं। इसमें भारतवर्ष के तीनों प्रधान धर्मों का समावेश है। लेखक ने समाज के किसी अंग को नहीं छोड़ा—ग्रामीण भी हैं, रईस भी हैं, पूँजीपति भी हैं, देशसेवक भी हैं सभी अपना-अपना खेल दिखा कर चले जाते हैं। विद्वान, धनी, अनुभवी, सभी श्रेणी के खिलाड़ी आपके सामने आते हैं और सभी सुखी जीवन का रहस्य न जानने के कारण असफल होते हैं सभी ठोकर खाते और गिर पड़ते हैं, कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं। केवल एक दीन हीन निर्बल अंधा, दरिद्र-प्राण अंत तक आपको अपनी लीलाओं से मुग्ध करता रहता है और जब उसकी लीला समाप्त हो जाती है, और वह रंगशाला से जाता है, तो आप मन में कह उठते हैं, यही सफल जीवन है, यही जीवन-मुक्त पुरुष है, यही निपुण खिलाड़ी है, यही जानता है कि जीवन लीला का रहस्य क्या है। अंधा सूरे प्रेमचंद की सबसे बड़ी कृति है, कदाचित् होरी से भी बड़ी। होरी भी हमें चुनौती देता है और सूरे भी दोनों असफल रहे, दोनों अंत तक लड़ते रहे, परन्तु सूरे की लड़ाई अधिक जीवन की लड़ाई है और वह हमें चकित कर देती है। उसमें जीवन की कविता अधिक है। परन्तु इससे होरी छोटा नहीं हो जाता। उसकी अपनी भित्ति दृढ़ है।

कर्मभूमि (१९३२) में प्रेमचंद ने रंगभूमि की कल्पना और कला को नई पृष्ठभूमि पर उतारना चाहा है। वैसे 'कर्मभूमि' की कहानी लाला समरकांत, उनके पुत्र अमरकांत अमरकांत की प्रेमिकाओं (सकीना और मुन्नी ), बहन नैना, [illegible] शांतिकुमार, पत्नी सुखदा और कुछ अन्य संबंधियों और इष्टमित्रों तक ही संबंधित है, परंतु यह परिवार तो एक प्रतीक-मात्र है। संबंध एक से एक जुड़े हुए हैं और किसी न किसी प्रेमसूत्र में बँधकर ही हम

कर्मभूमि में उतरते हैं, परंतु उनके पीछे सामाजिक और राष्ट्रीय शक्तियाँ भी अनिवार्य रूप से काम करती हैं, इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। कथा के अंत में प्रसंगवश प्रेमचंद इस सत्य को उभार देते हैं। सलीम जेल में जब अमरकांत से मिलता है तो अमरकांत पूछता है—तुम तो सरकार के खैरख्वाह नौकर थे, तुम जेल में कैसे आ गये ?

सलीम हँसा—तुम्हारे इश्क में।

—'दादा को किसका, इश्क था ?'

—'अपने बेटे का।'

—'और सुखदा को ?'

—'अपने शौहर का।'

—'और सकीना को ? और मुन्नो को ? और इन सैकड़ों आदमियों को जो तरह-तरह की सख्तियाँ झेल रहे हैं ?' बात जरा-सी है परंतु इससे एक बहुत बड़े तथ्य को प्रेमचंद प्रगट कर देते हैं। मनुष्य सामाजिक शक्तियों के हाथ का खिलौना है। सामाजिक शक्तियाँ उसके द्वारा ही विकास को प्राप्त होती हैं। 'दो-दो चार' के गणित से इन शक्तियों को समझना असम्भव है, परंतु ये शक्तियाँ है अत्यंत बलवती। भावुकता के वशीभूत हो मनुष्य बड़े-बड़े कांड कर जाता है, वह स्वयं अपने सामाजिक महत्व को नहीं समझता। विकास का ढंग कुछ ऐसा ही जटिल है। 'कर्मभूमि' के पात्र भी इस सत्य को नहीं समझते। वह केवल अपनी भावुकता के वशीभूत हो किसान या अछूत आन्दोलन में भाग लेते हैं, परंतु अंत में वह कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं। 'रंगभूमि' की कथा के तत्व दूसरे हैं। वहाँ परिस्थितियों का खेल अधिक है। अमरकांत के परिवार की तरह वहाँ भी विनय का परिवार है परंतु वह कथा के केन्द्र में प्रतिष्ठित नहीं है। परंतु हमें अंतःय

भी प्रेमचंद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि कथा का ध्येय अमरकांत और उसका परिवार नहीं है, उपन्यासकार का लक्ष्य सामाजिक शक्तियों का घात-प्रतिघात ही है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद एक नई समस्या को लेकर उपस्थित हुए हैं। यह समस्या है अछूतों (हरिजनों) के उद्धार की। उपन्यास में इस समस्या के दो रूप दिखलाये गये हैं। एक रूप मंदिर-प्रवेश और कथा सुनने के अधिकार से संबंधित है। नगर में अछूतों की समस्या का यही पहलू मुख्य है। परंतु गाँव में समस्या का एक दूसरा ही पहलू है। प्रेमचंद अमरकांत को चमारों के गाँव में पहुँचा देते हैं और वहाँ इस समस्या का एक नया रूप ही सामने आता है। यहाँ अछूत-समस्या का आर्थिक पहलू ही कुछ अधिक महत्वपूर्ण है। यह भी साफ है कि अछूतों की समस्या का हल बाहर से नहीं होगा, उसके लिए भीतर से प्रयत्न करना होगा। नगर में अछूत-समस्या का रूप कुछ इस तरह का है कि सवर्ण नेता उसे अपनी समस्या बना सकते हैं। मंदिर खोल दिये जायें, अछूतों के लिए कथा-वार्ता सुनने का पूरा अधिकार हो, सब में भाई-चारा रहे, खान-पान रहे। नगर वाले इतनी दूर जा सकते हैं। परंतु गाँव में अछूत समस्या उतनी मंदिर-प्रवेश की समस्या नहीं। यहाँ अछूतों के संस्कारों को ऊपर उठाना होगा। परंतु यह संस्कारों के तल को ऊँचा उठाने की बात तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक अछूतों की आर्थिक भित्ति डगमग है।

प्रेमचंद समाज के अर्थभेद की समस्या से पूर्णतः परिचित थे। जहाँ कल्पना भी नहीं होती, वहाँ भी यह धन-भेद घुस आता है और यही समस्या के मूल में बैठा व्यंग करता दिखलाई देता है। प्रताप विरजन से विवाह क्यों नहीं कर सका? पूर्णिमा और निर्मला की विडंबना क्या अर्थ की विडंबना नहीं है? सुमन क्यों वेश्या बनी?

गबन का तो सारा चक्र ही धन के कारण है—धन न रहते हुए धनी बनने, इज्जत के लिए चोरी करने की विडंबना ही 'गबन' का आधार है। 'प्रेमाश्रम' में हाकिम और अमले गांव के धन को ही तो चूसते हैं और बलराज उन्हें इसीलिए तो चुनौती देता है। होरी का लड़का गोबर इसीलिए तो गाँव छोड़ देता कि धरती सोना नहीं उगल पाती। मिल में दो जून की रोटी तो मिल जाती है और किसी की धौंस नहीं सहनी पड़ती। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने इस समस्या को भुला नहीं दिया है। आरम्भ में ही वे कहते हैं कि हमारे स्कूल-कालिज शिक्षालय नहीं जुरमानालय हो रहे हैं। बात २ पर जुरमाना। गैरहाजिर हो जुरमाना दो, फैल हो तो जुरमाना दो, खेल-कूद हो तो चंदा दो जो जुरमाने से किसी भी प्रकार कम नहीं है। जिस शिक्षा की नींव ही अर्थ पर पड़ी हो, उसको पाकर मनुष्य झूठ, छल, घूसखोरी और धनलिप्सा नहीं सीखे तो और क्या सीखे? 'कर्मभूमि' के पहले पृष्ठों में प्रेमचंद हमारी सारी शिक्षा-पद्धति को लेकर एक बहुत बड़ा व्यंग करते हैं। आधुनिक सभ्यता को उन्होंने सामंती सभ्यता के समकक्ष रखते हुए महाजनी सभ्यता कहा है। इस सभ्यता के लिए यह नाम बहुत ठीक भी पड़ता है। आधुनिक सभ्य समाज अर्थ-भेद पर ही आश्रित है। अछूतों की समस्या के साथ भी धन का सम्बंध जुड़ा हुआ है, प्रेमचंद यह भी नहीं भूले हैं। अमरकांत जब चमारों के गाँव में पहुँचता है तो अनेक व्यक्ति उसे अनेक काम करने को कहते हैं। एक खेती करने की सलाह देता है। इस पर पयाग सूजा चलाते हुए कहता है—खेती के झंझट में न पड़ना भैया। चाहे खेत में कुछ हो या न हो, लगान जरूर दो। कभी ओला-पाला, कभी सूखा-बूड़ा। उस पर कहीं बैल मर गया या खलिहान में आग लग गई तो सब कुछ स्वाहा। घास सबसे

अच्छी। न किसी के नौकर न चोकर, न किसी का लेना न देना, सबेरे खुरफी उठाई और दोपहर तक लौट आये।

काशी बोला--मजूरी मजूरी है, किसानी किसानी है। मजूर लाख हो तो मजूर ही कहलायेगा। सिर पर घास लिए जा रहे हैं......

पयाग का सूजा चलना बंद हो गया। बोला—मरजाद लेकर चाटो। इधर-उधर से कमा के लाओ, वह भी खेती में झोंक दो।

बातचीत के दौरान में चौधरी ने अमर से पूछा कि क्या सभी जगह इसी प्रकार नजर-नजराने लिये जाते हैं, सभी जगह गरीबों का लहू चूसा जाता है। अमर ने कहा—हाँ, ऐसा सर्वत्र होता है। चौधरी ने संदेह का सहारा लिया—भगवान ने छोटे-बड़े का भेद क्यों लगा दिया, इसका मरम समझ में नहीं आता। उनके तो सभी लड़के हैं। फिर सब को एक आँख से क्यों नहीं देखता?

पयाग ने शंका समाधान करते हुए कहा--पूरब जन्म का संस्कार है। जिसने जैसे कर्म किये, वैसे फल पा रहा है।

चौधरी ने खंडन किया--यह सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जिसमें गरीबों को अपनी दशा पर सन्तोष रहे, और अमीरों के रागरङ्ग में किसी तरह की बाधा न पड़े। लोग समझते रहें कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोष, पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल-बच्चे तक काम में लगे रहें, और पेट भर भोजन न मिले और एक-एक अफसर को दस हजार की तलब मिले। दस तोड़े रुपये हुये। गदहे से भी न उठें।

यह है 'कर्मभूमि' की भित्ति। वैसे समस्या अछूतों की है, परंतु प्रेमचंद समाज के अर्थभेद और महाजनी सभ्यता पर व्यंग कर रहे हैं। यह अछूतोद्धार की दो कथाएँ हैं और उनके केन्द्र भी दो हैं जो अमरकांत के व्यक्तित्व के द्वारा एक सूत्र में जोड़ दिये गये हैं।

दोनों केन्द्रों में सत्याग्रह होता है। एक सत्याग्रह के फल-स्वरूप बहुत बड़ा हत्याकांड हो जाता है। अमरकांत की बहन नैना गोली का शिकार बन जाती है और इस घटना से प्रभावित होकर लाला समरकांत और उनका सारा परिवार मैदान में उतर आता है। अंत में जेल में समझौता होता है और बंदी छुट आते हैं। अछूतों के लिए मंदिरों का द्वारा उन्मुक्त होता है। दूसरे केन्द्र में भी सत्याग्रह होता है, परंतु अंत में सरकार जाँच के लिए कमेटी बना देती है और सत्याग्रह स्थगित हो जाता है। यहाँ भी एक प्रकार का समझौता है। दूसरे सत्याग्रह की समस्या को भी मंदिरों और महंतों से जोड़ कर प्रेमचंद ने कथा को एकनिष्ठ कर दिया है और यह बता दिया है कि धर्म और सामंती समाज-व्यवस्था में अत्यंत गहरा गठबंधन है।

यह आश्चर्य का विषय है कि प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में 'रंगभूमि' के समान कोई व्यापक पृष्ठभूमि क्यों नहीं ली। यह उपन्यास १९२९-३१ के लगभग लिखा जाकर १९३२में प्रकाशित हुआ। यह सारा समय गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा संचालित एक बड़े जन-आन्दोलनका समय था। प्रेमचंद इस समय लखनऊमेंरह कर 'माधुरी' का संपादन कर रहे थे। 'प्रेमचंदः घर में' के अध्ययन से पता चलता है कि प्रेमचंद ने इस आंदोलन की प्रगति को बड़े ध्यान से देखा और व्यक्तिगत रूप से भी उससे उनका संबंध रहा। वे स्वयं देहातों में मोहनलाल सक्सेना के साथ दौरा करने जाते थे।

उनकी पत्नी महिलाश्रम में काम करती थी और कांग्रेस-संस्था के गैरकानून बन जाने के बाद यहां महिलाश्रम सत्याग्रह संग्राम का केन्द्र रहा। वे स्वयं भी कांग्रेस में काम करना चाहते थे और जेल जाने के लिए तैयार थे। वे शिवरानी देवी से बारबार यही कहते कि अब की बार मुझे जेल जाना है। बच्चे छोटे थे। और शिवरानी पहले ही जेल पहुंच गई थीं। वे दो बार जेल गई और एक प्रकार से लखनऊ के संग्राम में महिलाओं का नेतृत्व उनके ही हाथ में रहा। प्रेमचंद की मानसिक स्थिति क्या थी, वे क्यों जेल नहीं जा सके, उनके सत्याग्रह-संग्राम संबंधी अनुभव क्या थे, यह शिवरानी देवी के मुँह से सुनिये वे लिखती हैं—सन् १९३० की लखनऊ की बात है। महात्मा गांधी नमक कानून तोड़ने दाँडी गये थे। सब शहरों में महात्मा गांधी की जय की धूम मची हुई थी। उन दिनों हम लोग भी लखनऊ में थे। वह 'माधुरी' का संपादन करते थे। अप्रैल का महीना था। मेरे दरवाजे पर अमीनुद्दौला पार्क था। उसी जगह रोज स्वयं सेवक आकर नमक बनाते और ऐसा मालूम होता था कि सारा लखनऊ उसी जगह रोज उमड़ा आता था। उन्हीं के साथ-साथ पुलिस मय हथियार के पहुंच जाती थी। कई युवकों को अपने हाथ से कुरते और टोपियां पहना कर नमक बनाने को भेजते। उनको मैं अपने हाथों से हार पहनाती, और जब वह मेरे पैर छूने लगते तो बरबस मेरी आँखों से आँसू ढुलक जाते। मैं भी उसी उमंग में सीने से लगा कर आशीर्वाद देती—बेटा, विजयी हो।

इसी तरह तीन महीने तक यह काम चलता रहा। इसके बाद हममें और उनमें बातें होती थीं। वह बराबर कहते थे—रानी! मेरे जेल जाने का समय आ गया है। मैं उन्हें जेल नहीं जाने देना चाहती थी, क्योंकि उनकी सेहत ठीक नहीं थी। मैं सोचती

थी कि अगर यह यह जेल जायंगे तो इनकी क्या हालत होगी। उसका ख्याल ही मुझे सिहरा देता था। मगर उनके सामने उसका विरोध भी नहीं कर सकती थी; क्योंकि इसमें कायरता थी। सभी के पुत्र और भाई सब को प्यारे रहते हैं, तब सभी अपने-अपने को छिपा कर रखना चाहें, तब काम करने वाले कहाँ से आयेंगे, इसकी चिंता मुझे थी। अब मैं स्वयं सोचती कि बच्चे जेल जाने के काबिल थे ही नहीं और इनको जेल जाने देना चाहती नहीं थी। तब सवाल आता कि आखिर जेल जाये तो कौन! उसमें आगे बढ़ना मेरा काम था। प्रेमचंद देखते ही रह गये और जेल जाने का श्रेय उनकी पत्नी ने ले लिया। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपने ग्रंथ 'कथाकार प्रेमचंद' में इस विषय में अनेक तर्क-वितर्क उठाये हैं, परंतु इसमें संदेह नहीं कि जेल न जाने से प्रेमचंद छोटे नहीं हो जाते। उन्होंने अपनी पत्नी को सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में उतरने को तैयार किया, प्रत्येक कदम पर उन्हें प्रेरणा दी। लगभग दो वर्ष तक वह बड़ी सजगता और भावुकता से सत्याग्रह आन्दोलन की प्रगति देखते रहे। जेल जाने पर प्रेमचंद ने उनसे भेंट की। देखते ही उनकी आँखें भर आईं।—'अच्छा तुम जेल में आ गईं!'

मैंने कहा—'हाँ मैं तो आ गई हूँ। कहिए आप तो अच्छे थे? आप बोले — हाँ, मैं अच्छा हूँ, तुम अपनी कहो, तुम कैसी हो!

कुछ बातों के बाद वे अपनी स्वाभाविक हँसी हँसते हुए बोले—तुम तो इधर कैद हुईं; उधर मुझे भी बंदी बना लिया।

जेल से जब शिवरानी देवी लौटीं तब तक प्रेमचंद का वजन १४ पौंड घट चुका था। शिकायत करने पर उन्होंने

कहा — 'चाहे मैंने न्याय किया, चाहे अन्याय, मगर इन्सान तो इन्सान ही रहेगा ? मैं तुम्हारी बातों में आ जाता था... ।' इस प्रसंग से प्रेमचंद की भावुकता और उनकी राष्ट्रीय भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगे शिवरानी देवी ने लिखा है—'नमक कानून तोड़ा जा रहा था। कइओं को आप ने अपने पैसों से खादी का कुर्ता,टोपी, धोती पहना कर मेरे हाथ से उसके गले में हार पहनवा कर, लखनऊ के गूँगे नवाब के पार्क में भेजा। भेजते हुए कहते थे—जाओ बहादुरो, नमक कानून तोड़ो। मैं भी जल्दी पहुँचता हूँ। उन लोगों को हार पहनाते हुए मेरी आँसू आ जाते। कभी-कभी वहाँ मार भी पड़ जाती। उस समय का वह दृश्य आज भी आँखों में आंसू ला देता है। आप भी कई बार चलने को तैयार हुए। पर मेरे अनुरोध को वे टालते न थे। जब-जब भी जेल जाने का प्रस्ताव आता, मैं स्वीकार न करती। उनकी तन्दुरुस्ती सालों से गिरी हुई थी। फिर भी उनका दिल बिल्कुल युवा का-सा था। मुझे यही लगता कि जेल में उनकी तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो जायगी। उनकी यह बातें सुनकर मैं निकली उन्हें जेल में मैं नहीं देख सकती थी। ऐसे अनेक प्रसंग प्रेमचंद की उदात्त राष्ट्रीय भावना के ही द्योतक हैं। प्रेमचंद जेल नहीं गए, परन्तु १९३०-३२ में उन्होंने 'कर्मभूमि' के पृष्ठों और 'समरयात्रा' की कहानियों में देश की लड़ाई ही लड़ी। उन्हीं दिनों लखनऊ म्यूनिसिपलटी में रंडियों के चौक से निकाले जाने का प्रस्ताव हो रहा था। प्रेमचंद ने 'सेवा-सदन' (१९१६) में यह सुझाव उपस्थित किया था और १५ वर्ष बाद भी अधिकारी और समाज उस सुझाव से आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं थे। उस समय उन्होंने शिवरानी देवी की एक उलाहना का उत्तर देते हुए कहा था —'लिखने के मामले में तो मैं

कभी पीछे नहीं रहा हूं। ......सचमुच प्रेमचंद कभी पीछे नहीं रहे। १९२१ वाले आन्दोलन में ऐसी क्या बात थी जिसे लेकर किसी भी कम प्रतिभाशाली कलाकार के लिए 'रंगभूमि' (१९२४) लिखना संभव होता। वैसी देशव्यापी भूमि, वैसी देशी राज्यों और औद्योगीकरण की समस्याएं, वैसे पात्र क्या साधारण कल्पना की उपज थे? क्या उस समय के संग्राम में सूरे ऐसे व्यक्तियों का मिलाना इतनी साधारण बात थी? 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद 'रंगभूमि' जैसे बड़े क्षेत्र को अपना नहीं सके। जान पड़ता है, उनकी पत्नी ने जेल जाकर उनकी भावुकता का बहुत बड़ा भाग साहित्य-क्षेत्र से हटा दिया। वे अस्वस्थ थे। वे स्वयं अपने ढंग पर आंदोलन में भाग ले रहे थे। फलतः वे साहित्य-क्षेत्र में उतनी ऊँची उड़ान नहीं उड़ सके। उन्होंने 'कर्मभूमि' लिखी। नगर की म्यूनिसपिलटी और चमारों के एक गाँव तक ही 'कर्मभूमि' सीमित रही। परंतु इसमें संदेह नहीं कि यहाँ भी प्रेमचंद समय से आगे चल रहे थे। अभी 'हरिजन' समस्या उतनी उग्रता से आगे ही नहीं आई थी शिवरानी देवी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि वे सी-क्लास के कैदियों से किये गए दुर्व्यवहार को लेकर एक व्यापक आंदोलन उठाना चाहते थे। कर्मभूमि' में इस समस्या को उन्होंने लिया और काले खाँ जैसा तेजवान पात्र हमें दिया।

'कर्मभूमि' पर १९२९ के संयुक्त-प्रांत के लगान-बंदी आंदोलन का भी प्रभाव है। उससे कुछ पहले (१९२८ में) बारदोली सत्याग्रह-संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त हो चुका था। प्रेमचंद जैसे राष्ट्रवादी उपन्यासकार की दृष्टि से ये जनता के बड़े कारनामे एकदम आँखों से ओझल नहीं हो सकते थे। १९२९ में तो उन्होंने

किसानों के संघर्ष को अपने प्रांत में ही अपने आसपास देख लिया था। इस वर्ष अनाज की उपज कम हुई थी और मंदी के कारण किसान सारी फसल बेच कर भी लगान देने में असमर्थ थे। जमींदारों ने लगान में कोई भी छूट नहीं करना चाही। फलस्वरूप जगह-जगह पर किसानों ने गुट बना लिये और लगान देने से साफ इंकार कर दिया। विदेश सरकार और नौकरशाही की सारी शक्तियाँ जमींदारों के साथ थीं। उन दिनों यू० पी० के पूर्वी जिलों में आत्मानंद नाम के एक किसान-नेता का बड़ा नाम था। उसने किसानों को अपूर्व कोशल से संगठित किया और उनके हृदय से जमींदार और नौकरशाही का भय भगाया। अधिकारियों ने आन्दोलन की शक्ति को पूर्णतयः समझा नहीं। उन्होंने किसान-नेताओं के प्रयत्नों को ठुकरा दिया। दोनों पक्षों में कोई समझौता नहीं हो सका और फल-स्वरूप सत्याग्रह छिड़ गया। अधिकारियों ने भी गाँवों को उजाड़ देने में कोई बात उठा नहीं रखी। परंतु अंत में वे असफल रहे। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि किसानों-जमीदारों के इस संघर्ष ने न जाने कितने गाँव उजाड़ दिये। उपन्यास में आत्मानंद का स्थान अमरकांत ने ले लिया है।

परन्तु इसमें संदेह नहीं कि अमरकांत और उसके परिवार में प्रेमचंद ने नेहरू-परिवार से भी प्रेरणा ली है। अमरकांत-समरकांत का लगभग सारा संबंध जवाहरलाल और मोतीलाल की जीवन-कथाओं को उभार देता है। नैना, प्रो० शांतिकुमार, सुखदा और रेणुका में विजयलक्ष्मी पंडित, रनजीत पंडित, कमला और स्वरूपरानी नेहरू की झलक दिखाई दे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अमरकांत का सारा विकास और उसका पारिवारिक संघर्ष इसी भित्ति पर आश्रित है। हड़ताल और नैना की हत्या

के प्रसंगों में गोर्की की 'मा' की भी याद आती है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद कथा और चरित्रों के उपकरण अनेक स्रोतों से इकट्ठे करके भी मौलिक बने रहते हैं और उनके चित्र जीवित व्यक्तियों के समान होते हुए भी उनसे भिन्न, उनसे बड़े और अत्यंत कलात्मक होते हैं। वह स्वयं लिखते हैं कि उन्होंने अपने चरित्रों को जीवित व्यक्तियों के आधार पर खड़ा किया है। परन्तु उन्हें इस प्रकार छिपा दिया है कि उनका व्यक्तित्व अलग और स्वतंत्र मालूम होता है। इसमें किसी भी कलाकार के छोटा होने की बात नहीं है। कलाकार जीवन की मिट्टी से ही महान ताजमहल उठाता है। उसकी नींव की ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता, परन्तु नींव वहाँ है जरूर और देखना यह है कि कलाकार ने इस नींव को कितनी मजबूती दी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद ने समसामयिक सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन का एक अत्यंत पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है। 'निर्मला,' 'सेवासदन' और 'गबन' की पृष्ठभूमि शुद्ध सामाजिक पृष्ठभूमि है और इन उपन्यासों में प्रेमचंद मध्यवित्त जीवन के चित्रकार के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। इस क्षेत्र में भी वह सर्वश्रेष्ठ स्थान पाने के योग्य हैं और उनकी गिनती गेल्सवर्दी, डिकेन्स, थेकरे, मोपांसा और चेखव के साथ की जा सकती है। मध्यवित्तों के द्वन्द्वों उनकी आकांक्षाएँ, उनके सुख-दुख, उनकी आशा-निराशा इन उपन्यासों और कहानियों में पूर्णतयः प्रतिबिंबित हैं। परन्तु राष्ट्रीय जीवन के चित्रकार के रूप में प्रेमचंद और भी महान हैं। इस क्षेत्र में वे तोल्सताय, गोर्की, शोलोखव और पर्ल बक की पंक्ति में रखे जा सकते हैं। इस प्रकार वह एक ही साथ दो भिन्न श्रेणी के कथाकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु ऊपर के किस

उपन्यासकार में भी राष्ट्रीय जीवन इतनी विविधता और विशदता के साथ निरूपित नहीं हुआ है। तोलसताय का 'वार एंड पीस' उपन्यास 'रंगभूमि' जैसा या उससे भी बड़ी चित्रपटी लेकर चलता है परन्तु उसका संबंध तोलसताय के समय के रूस से नहीं है, वरन् नेपोलियन के समय के रूस से है। गोर्की की 'मदर' शोलोखव की 'एंड क्वाइट फलोज द डान' और पर्लबक की 'गुड अर्थ' जैसी रचनायें अवश्य सामयिक जीवन और राष्ट्रीय युद्धों का वर्णन करती हैं। परन्तु प्रेमचंद केवल राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का चित्रण नहीं करते। वे धरती तक जाते हैं और धरती के पुत्र किसान की छोटी सी छोटी आशाकांक्षा को अपनी आवाज का सारा बल देकर संसार के सामने उपस्थित करना चाहते हैं। 'प्रेमाश्रम' (१९२२), रंगभूमि (१९२४), कायाकल्प (१९२८), कर्मभूमि (१९३२) और गोदान (१९३६) में प्रेमचंद ने १९२१--३६ तक का सारा सामयिक इतिहास कला और चरित्रों के माध्यम से कागज पर उतार दिया है। ये उपन्यास जीवन से ओतप्रोत हैं और इनमें सामयिक समाज और राष्ट्र अपनी चौदह कलाओं के साथ अवतीर्ण हुआ है। 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प' और 'गोदान' में प्रेमचंद मुख्यतः भारतीय गाँव को लेकर चले हैं यद्यपि 'कयाकल्प' में हिन्दू-मुसलिम समस्या भी है। गांव भारतीय राष्ट्र-जीवन की इकाई है। उसका अपना संसार है। इस संसार के अपने सुख-दुख हैं, अपनी समस्यायें हैं। किसान जमींदारी, सामंतशाही, महाजनी दाँव-पेंच और नौकरशाही धड़-पकड़ के बीच में पिस गया है। वह इस इंद्रजाल से छुटकारा पाने में पूर्णतः असमर्थ है। परिस्थिति कैसी है, इसका चित्रण प्रेमचंद ने अत्यंत विशदता और मार्मिकता से किया है। गाँव की नई पीढ़ी चुप नहीं बैठेगी। बलराज प्रमाण है। उधर यह भी संभव है कि

जमींदारों की नई पीढ़ी अधिक प्रगतिशील सिद्ध हो और प्रेमशंकर-मायाशंकर की तरह वह गांवों को स्वर्ग बना देने का स्वप्न देखे । नौकरशाही की समस्या का हल तो देश की स्वतंत्रता में ही है । जब अधिकारी सेवाभाव से गाँव की ओर मुड़ेंगे, तब नौकरशाही स्वतः समाप्त हो जायगी । यह स्पष्ट कि प्रेमचंद का कोई भी हल क्रांतिकारी और चुनौती देने वाला नहीं है । परन्तु उनकी कला ने गांव की नई-पुरानी पीढ़ी के चित्रण में सचमुच कमाल कर दिया है । वर्ग-संघर्ष की बात न उठाते हुए भी प्रेमचंद ने वर्ग-संघर्ष का बड़ा वस्तुवादी चित्र हमारे सामने रखा है । चेतन कलाकार की हैसियत से वे चुप कैसे बैठे रह सकते थे । अंत में कदाचित् उन्होंने अपनी सुधारवादी योजनाओं की सीमा को भी समझ लिया है । 'गोदान' में वे गांव वालों के आंतरिक द्वन्दों और उनके युग-पुराचीन निरोधों और स्वप्नों की झलक दिखाते हैं । शरतचन्द के 'पल्लीसमाज' में इसी प्रकार के वातावरण उपस्थित किया गया है । परन्तु 'पल्लीसमाज' का क्षेत्र उपेक्षाकृत बहुत छोटा है । उसमें गाँव पूरा नहीं आया है । फिर होरी-जैसा चरित्र तो 'पल्ली-समाज' के लिए सपना ही है । प्रेमचन्द के ये उपन्यास गांव के महाकाव्य हैं । इनमें हमें सैकड़ों चरित्र मिलते हैं परन्तु बलराज और होरी जैसे तेजस्वी चरित्र हमारी आंखों के सामने दीपशिखा की भांति जलते रहते हैं ।

'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द नगर में बैठ गये हैं । गाँव यहाँ भी घुस आया है । पांडेपुर गांव या कहिये कस्बा ही है । परंतु गांव का चित्रण इस उपन्यास में प्रेमचन्द का ध्येय नहीं है । कर्मभूमि में भी चमारों का गांव है । परन्तु दोनों उपन्यासों में नगरों की उथल-पुथल का ही विशेष चित्रण मिलता है । जहां जमींदारों और नौकर शाही के जुल्मों ने गांव को बदल दिया है और वह तलवार की तरह

चुनौती देने के लिए उठ खड़े हुए हैं वैसे ही नगर भी जनांदोलनों के कारण बदल गये हैं। इन जनांदोलनों का मुख भी जनता की ओर है। यहाँ मध्यवित्त नेता के रूप में सामने आता है। उसके अपने वर्गगत स्वार्थ और उसका दुर्बल चरित्र उसे बहुत आगे नहीं बढने देते। परंतु फिर भी जहां तक हो सकता है वह निःस्वार्थ भाव से ईमानदारी से नेतागिरी करता है। यह मध्य वित्त नेतागिरी अधिक क्रांतिकारी नहीं है। उसका अंत समझौते में है, ध्वंस और पुनर्निर्माण में नहीं। जो नेता मध्यवर्ग से आये हैं वे अपनी दुर्बलताओं के भी शिकार हैं। विनय और अमरकांत मध्य-वित्ती नेता के सब से सुन्दर उदाहरण हैं। वह हमारी चिरप्रिय धीरो-दात्त नायक की कल्पना से नितांत भिन्न हैं। रंगभूमि' में औद्योगीकरण और देशी राज्यों की समस्या और 'कर्मभूमि' में मंदिर-प्रवेश और म्यूनिसपिलटी द्वारा अछूतों-सम्बन्धी सुधार जैसी कुछ समस्याएं सामने आती हैं। संक्षेप में, सामयिक नगर-ग्राम के सारे जीवन को प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी की नोक पर उतारा है। काल-चक्र से प्रताड़ित नगर और ग्राम बड़ी शीघ्रता से बदल रहे हैं और नई-पुरानी पीढ़ियां अलग-अलग रास्तों पर चलने पर मजबूर हैं। प्रेम चंद अत्यंत सहानुभूति के साथ पुरानी पीढ़ी का चित्रण करते हैं परन्तु अन्त में वह बतला देते हैं कि शक्ति नई पीढ़ी के हाथ में है। यह नई पीढ़ी ही भारत-राष्ट्र की अग्र-ध्वजा है।

यह सब लिख देने पर भी हम प्रेमचंद के इन सामयिक सामाजिक राष्ट्रीय उपन्यासों का महत्व नहीं बता सके। ये उपन्यास कथा-मात्र, समस्या-मात्र या चरित्र-मात्र नहीं हैं। इनसे बड़ी चीज अभी हमारे पास नहीं आई है और इनमें हम युग की चेतना को सबसे अधिक जागे-हुए रूप में देखते हैं। सैकड़ों परिस्थितियाँ बीसियों समस्यायें और अनगिनती छोटे-

बड़े पात्र, नवाबों से लेकर इक्केवालों और मिल-मजदूरों और प्राइमरी स्कूलों के शिक्षकों तक। एक बहुत बड़ी अनदेखी, अनजानी दुनिया जो प्रेमचन्द से पहले भारतीय साहित्य के चित्र में कहीं भी नहीं थी प्रेमचन्द के जादू से जैसे जाग गई है और चहल-पहल की जिंदगी जीने लगी है। प्रेमचन्द में यह नहीं, वह नहीं; मनोविज्ञान कम है, घटना-वैचित्र्य ज्यादा है; वे नीतिमूलक साहित्य की रचना करते थे, वे कहाँ-कहाँ से उधार लेते हैं—ये कुछ ऐसी बातें हैं जो उपन्यास-कला की दृष्टि से व्यर्थ हैं। प्रेमचन्द ने जिस दुनिया को हमारे लिये अपने साहित्य के पृष्ठों में पुनर्जीवित किया है, वह अपूर्व है, अद्‌भुत है। उसमें जहाँ एक ओर उत्पीड़न, अनाचार और जाति-वर्ण-भेद के कर्ण कटु स्वर उठ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर उगते हुए प्रभात-सूर्य की वंदना भी है। यह दूसरी बात सचमुच बहुत बड़ी बात है।

प्रेमचन्द के सभी सामाजिक उपन्यास परिवार-निष्ठ हैं। उनमें एक दो व्यक्तियों की कथा न कह कर एक या दो परिवारों की कथा कही गई है जो विवाह के द्वारा या किसी और प्रकार से पास-पास आ जाते हैं। इस प्रकार की कहानी में एकसूत्रता उतनी नहीं रहती जितनी व्यक्तिनिष्ठ कहानी में, परन्तु अनेक परिस्थितियाँ और अनेक पात्र हमारे सामने आते हैं और जीवन के एक अंग का यथातथ्य चित्रण हमारे सामने उपस्थित होता है। शरच्चन्द्र के उपन्यासों में यह बात नहीं है। उनके परिवार एक दो व्यक्तियों या दो चार मित्रों को लेकर चलते हैं और उन चरित्रों के मानसिक घात-प्रतिघात और परिस्थतियों के द्वन्द्व में कथा समाप्त हो जाती है। शरच्चन्द्र के उपन्यास 'चौखेरवाली' और हार्डी की परंपरा को विकसित करते हैं। उनकी भित्ति मूलतः प्रेम-रोमांस पर आश्रित है। प्रेमचन्द के उपन्यासों और उनकी

अनेक कहानियों की भित्ति स्पष्टतः सामाजिक है। 'निर्मला'-जैसे छोटे उपन्यास में प्रेमचन्द तीन परिवारों के दुःखान्त को एक सूत्र में गूँथ देते हैं और वह भी अत्यन्त स्वाभाविक रीति से निर्मला के दुखांत द्वारा। इन सभी उपन्यासों ने प्रेमचन्द ने परिस्थिति को प्रधानता दी है। सामाजिक रूढ़िवादिता और दैवी परिस्थितियों से मनुष्य की जीवन कुंठित हो गया है। वह जीवन के ऋजु पथ पर चल ही नहीं सकता। इन उपन्यासों में नारी-जीवन का सर्वाङ्ग पूर्ण चित्र मिलता है। नारी की बन्धन-मुक्ति इस युग में सामान्य मानव-मुक्ति का प्रतीक बन गई है। शरच्चन्द के उपन्यासों में भी नारी-मुक्ति की ओर से एक जबरदस्त अपील पेश की गई है, परंतु वह प्रेमचन्द की अपील की अपेक्षा कहीं अधिक सांकेतिक है। केवल प्रेम के माध्यम से नारीविद्रोह का संकेत वहाँ मिलता है यद्यपि अंतिम उपन्यास 'शेष प्रश्न' में शरच्चन्द ने कुछ व्यापक पृष्ठभूमि अपनाई है।

अगले सामाजिक-राजनैतिक उपन्यासों में प्रेमचन्द ने अपने कथा-संगठन और अपनी कला को नया रूप दिया है। इस नये रूप की आवश्यकता उन्हें इस लिए पड़ी है कि वह एक विशाल चित्रपटी लेकर चलना चाहते हैं। अधिकांश उपन्यासों में प्रेमचन्द गाँव और नगर की कथा एक साथ कह देना चाहते हैं। परिस्थिति भी कुछ ऐसी है कि गाँव-नगर अविच्छिन्न रूप से राष्ट्र की एक इकाई बन रहे हैं। कायाकल्प में तो उन्होंने एक अलौकिक कथा भी गूँथ दी है। उसे छोड़ दें तो वहाँ भी गाँव और नगर के दो अलग-अलग चित्र सामने आते हैं। 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। प्रत्येक स्थान पर वह एक परिवार को प्रधान बना कर उसी की कथा कहते हैं। वहाँ के राजनैतिक चक्र के कारण परिवार का कोई व्यक्ति

राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़ता है और राष्ट्रीय संग्राम के चित्र में अनेक व्यक्ति सामने आते हैं। जो पहले परिवार की कथा थी, वह सारे नगर या सारे राष्ट्र की कथा बन जाती है। अंत में जब यह अति-विस्तृत कथा किसी प्रकार समाप्त होती है (बहुधा यह समझौते के रूप में भी समाप्त होती है) तो पारिवारिक कथा की परिणिति भी समझौते मे कर दी जाती है। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द का आदर्श रूसी कलाकार हैं, मुख्यतः तोल्सताय जो देश-व्यापक समस्याओं के लेकर बृहद्काय कथा की रचना करते हैं और उसमें सारे सामायिक जीवन को बड़ी कुशलता से गूँथ देते हैं।

'प्रेमाश्रम' (१९२२) को हम पहले लेंगे। रचना-काल को देखते हुए यह उपन्यास काफी प्रगतिशील है। प्रेमशंकर कहते हैं—मेरा सिद्धांत है कि मनुष्य को अपनी मेहनत की कमाई खानी चाहिये। यही प्राकृतिक नियम है। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन-वृत्ति का आधार बनाये।

ज्वालासिंह—तो यह कहिये कि आप जमींदारी के पेशों को ही बुरा समझते हैं।

प्रेमशंकर—'हाँ, मै इसका भक्त नहीं हूँ। भूमि उसकी है जो उसे जोते।' आगे प्रेमशंकर इस सिद्धांत की व्याख्या यों करते हैं—'शासक को उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश में शांति और रक्षा की व्याख्या करता है, जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है। पुस्तक के अंत में जमींदारी छोड़ते हुए मायाशंकर भी यह सिद्धांत दुहराता है। वह कहता है—भूमि या

तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की है, या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार उसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है। इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप में ले या उससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को हिस्सा, मिलकियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्य-पदार्थ मानने की स्वच्छंदता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंक ही समझना चाहिये...

मेरी धारणा है कि मुझे किसानों की गर्दनों पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नहीं है।...मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज-व्यवस्था ने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधन से मुक्त करता हूं, वे न मेरे आसामी हैं, न मैं उनका तालुकदार हूँ। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं, आज से वे अपनी जोत के स्वयं जमींदार हैं।' यह स्पष्ट है कि इस रूप में प्रेमाश्रम जमींदार-प्रथा और नौकरशाही के विरुद्ध एक जबरदस्त अपील है। प्रेमचन्द सरकारी नौकरी छोड़ कर गाँव की ओर लौटे थे और यह उपन्यास उन्होंने अपने निवास-स्थान लमही ग्राम में लिखा। अतः इसमें गाँव की सबसे महत्वपूर्ण समस्या को केन्द्र बनाना उनके लिए स्वाभाविक ही था।

'प्रेमाश्रम' की केन्द्रीय कथा लखनपुर ग्राम के जमींदारी और नौकरीशाही अत्याचार के कारण बिगड़ने और प्रेमशंकर और मायाशंकर द्वारा फिर बसाये जाने की कथा है। मनोहर और उसका तेजस्वी पुत्र बलराज लखनपुर की कथा के केन्द्र हैं। गाँव के और व्यक्ति हैं दुखरन भगत, सुक्खू कुर्मी, विलासी, कादिर

मियां, डपटसिंह, रंगी चमार, विसेसर साह, भोला इत्यादि। बिलासी मनोहर की पत्नी है और रंगी चमार मनोहर का हलवाहा। कादिरमियां का गाँव में बड़ा सम्मान है। मनोहर उन्हें बड़ा भाई मानता है। छोटा सा गांव है और भारतवर्ष के सात लाख गांवों की तरह उसका जीवन भी स्रोत की तरह प्रवहमान चला जा रहा है। परन्तु तभी एक घटना ऐसी घटती है जो गांव के जीवन को ही बदल देती है। वैसे यह घटना साधारण है। डिप्टी ज्वालासिंह गाँव का दौरा करने आये हैं। परन्तु डिप्टी साहब नौकरशाही के प्रतीक हैं और उनके साथ जमींदार के चपरासी गिरधर महाराज, कारिन्दे गौस खाँ, अहलमद साहब, ईजाद हुसेन और न जाने कौन-कौन हैं जो जमींदार और नौकरशाही के स्वत्वों की रक्षा कर अपनी कारगुजारी की दुहाई देते फिरते हैं। बलराज तरुण किसानवर्ग का प्रतीक है। वह इस अत्याचार का पग-पग पर विरोध करता है। उसका पिता मनोहर खाता-पीता किसान है परंतु पुरानी चाल का आदमी है। वह गाँव के सभी बड़े-बूढ़ों की तरह सबसे झुककर रहना चाहता है, परंतु परिस्थितियाँ उसके विरुद्ध हैं और वह बलराज को साथ ले कर गौस खाँ की हत्या कर डालता है। उपन्यास के पहले अध्याय में ही परिस्थितियों और चरित्रों का द्वन्द्व साफ सामने आता है। गाँव के जमींदार के यहाँ बरसी है। उसके लिए घी इकट्ठा किया जा रहा है। प्रत्येक आसामी को रुपये सेर के भाव से कुछ घी देना पड़ेगा और हैसियत के अनुसार देना पड़ेगा। गिरिधर सबको रुपये बाँटता है। सुक्खू और दुखरन भगत तो तैयार हो जाते हैं, परंतु मनोहर अपनी परिस्थितियों से मजबूर है। उसके घर तो एक ही भैंस लगती है, उसका दूध बाल-बच्चों में उठ जाता है, घी होता नहीं। वह रुपये ले तो उसे बाजार से दस छुंटाक का मोल ले कर देना

पड़े। गिरिधर जब दूसरे लोगों की बात करता हुआ कहता है कि उसे इन-गाँवों में इतने इतने रुपये देना पड़ रहे हैं और इन गाँवों में किसी ने भी चूँ-चपड़ नहीं की है तो मनोहर कहता है— भैंस न होगी तो पास रुपये होंगे। यहाँ तो गांठ में कौड़ी भी नहीं है। इस पर बलराज और गिरिधर में कहा-सुनी हो जाती है।

गिरिधर—जब जमींदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुक्म से बाहर नहीं जा सकते।

मनोहर--जमीन कोई खैरात जोतते हैं। उसका लगान देते हैं। एक किस्त भी बाकी पड़ जाय तो नालिस होती है।

गिरधर--मनोहर, घी तो तुम दोगे दौड़ते हुए, पर चार बातें सुनकर। जमींदार के गाँव में रह कर उससे हेकड़ी नहीं चल सकती। अभी कारिन्दा साहेब बुलायेंगे तो रुपये भी दोगे, हाथ-पैर भी पड़ोगे मैं सीधे-सीधे कहता हूँ तो तेवर बदलते हो।

मनोहर ने गर्म होकर कहा,— न कारिन्दा कोई काटू है, न जमींदार कोई हौवा है। यहाँ कोई दबैल नहीं है। जब कौड़ी-कौड़ी लगान चुकाते हैं तो धौंस क्यों सहें ?

गिरिधर—सरकार को अभी जानते नहीं हो। बड़े सरकार का जमाना अब नहीं है। इनके चंगुल में एक बार आ जाओगे तो निकलते न बनेगा।

मनोहर की क्रोधाग्नि और भी प्रचण्ड हुई। बोला, 'अच्छा जाओ, तोप पर उड़वा देना।' बलराज को इस घटना का विवरण मालूम हुआ तो वह और तड़पा—'कोई हमसे क्यों घी माँगे ? किसी का दिया खाते हैं या किसी के घर माँगने जाते हैं ? अपना

तो एक पैसा नहीं छोड़ते, तो हम क्यों धौंस सहें ? न हुआ मैं, नहीं तो दिखा देता।' मा जब समझाती है—'जब सारा गाँव घी दे रहा है तब हम क्या गाँव से बाहर हैं ! जैसे बन पड़ेगा देंगे। इसमें कोई अपनो हेठी थोड़े ही हुई जाती है ? हेठा तो नारायण ने हा बना दिया है तो क्या अकड़ने से ऊँचे हो जायेंगे। थोड़ा सा घी हाँडो में है, दो-चार दिन में और बटोर लूंगी, जाकर तौल आना ! तो बलराज का स्वाभाविक तेज जाग्रत हो जाता है। वह कहता है—क्यों दें आये ? किसी के दबैल हैं।

विलासी वस्तुस्थिति जानती है। वह जानती है पति-पुत्र का यह तेज उसे ले डूबेगा। वह उनसे कहीं अधिक व्यावहारिक है। वह कादिर मियां के साथ चौपाल में जाकर कारिन्दे गौस खाँ से क्षमा-प्रार्थना करती है परन्तु गौसखाँ एक काइयाँ है। वह साफ कह देता है—तुम्हें वकालत करने की जरूरत नहीं। मैं अपना काम खूब जानता हूँ। इस तरह दबने लगा तब तो मुझसे कारिन्दा-गिरी हो चुकी। आज एक ने तेवर बदले हैं, कल उसके दूसरे भाई शेर हो जायेंगे। फिर जमींदार को कौन पूछता है ! अगर पलटन में किसी ने ऐसी शरारत की होती तो गोली मार दी जाती। जमींदार से आँखें बदलना खालाजी का घर नहीं है।' कादिरमियां अब मनोहर को लेकर जमींदार ज्ञानशंकर के पास गया परंतु ज्ञानशंकर उसे दुत्कार दिया। गौसखाँ ने उन्हें पहले ही पढ़ा रखा था। इजाफ़ा लगान का दावा है और जोत की जमीन जो भी सिकमी खेत हैं वह निकाल लिये जायें। मनोहर को कादिर खाँ का अपमान असह्य था। तेवर बदल कर बोला, दादा, इस दरबार से अब दया-धर्म उठ गया। चलो, भगवान की इच्छा होगी, वह होगा। जिसने मुँह चीरा है वह खाने को भी देगा। भीख नहीं तो परदेश तो कहीं नहीं गया है। यह कह कर वह कादिर का हाथ पकड़

कर उसे जबरदस्ती खींचता हुआ दिवानखाने से बाहर निकल गया।

उधर इलाके पर गौस खाँ का अत्याचार बढ़ने लगा। उसने बड़ी निर्दयता से लगान वसूल किया। एक कौड़ी भी बाकी न छोड़ी। जिसने रुपये न दिये या न दे सका, उस पर नालिश की, कुर्की कराई और एक का डेढ़ वसूल किया। शिकमी आसामियों की को समूल उखाड दिया और उनकी भूमि पर लगान बढ़ा कर दूसरे आदमियों को सौंप दिया। सारे इलाका में हाहाकार मच गया। प्रभात से संध्या तक खाँ साहेब का दरबार लगा रहता। वह स्वयं मसनद लगा कर विराजमान होते। मुंशी मौजीलाल पटवारी उनके दाहिनी ओर बैठते और सुक्खू चौधरी बायीं ओर। मनोहर और बलराज को परास्त करने की योजनायें बनाई जातीं। कादिरमियां की ओर से भी गौस खां का दिल साफ नहीं था। उधर बलराज लाठी कन्धे पर रख कर गाँव भर में घूमता और कहता फिरता, कौन इजाफा करेगा, सिर तोड़ कर रख दूँगा। मनोहर उसे चुप रहने को कहता तो वह कहता—'क्यों न बोलूँ, तुम तो दो चार दिन के मेहमान हो, जो कुछ पड़ेगी वह तो हमारे ही सिर पड़ेगी। जमींदार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुँह न खोलें।' डपटसिंह और कादिरमियां ने ज्यादा दुनिया देखी थी। उन्हें हँसते देख कर वह कहता—'तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो, मानों कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है, लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों ही का राज है, वह जो चाहते हैं, करते हैं ..।'

उन्हीं दिनों डिप्टी ज्वालासिंह का दौरा होता है। गाँव पर आतंक छा जाता है। प्रेमचंद लिखते हैं—इसमें संदेह नहीं कि अधिकारियों के ये दौरे सदिच्छाओं से प्रेरित होकर होते हैं। उनका अभिप्राय है कि जनता की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना, न्यायप्रार्थी के द्वार तक पहुँचना, प्रजा के दुःखों को सुनना, उनकी आवश्यकताओं को देखना, उनके कष्टों का अनुमान करना, उनके विचारों से परिचित होना। यदि यह अर्थ सिद्ध होते तो यह दौरे बसतंकाल से भी अधिक प्राणपोषक होते लोग वीणा और पखावज से, ढोल-मजीरे से उनका अभिवादन करते। किंतु जिस प्रकार प्रकाश की रश्मियाँ पानी में वक्रगामी हो जाती हैं, उसी भाँति सदिच्छायें भी बहुधा मानवी दुर्बलताओं के संपर्क से विषम हो जाती हैं। सत्य और न्याय पैरों के नीचे आ जाता है, लोभ और स्वार्थ की विजय होती है। अधिकारी वर्ग और उसके कर्मचारी विरहिणी का भाँति इस सुख-काल के दिन गिना करते हैं। शहरों में तो उनकी दाल नहीं गलती, या गलती है तो कम। वहाँ प्रत्येक वस्तु के लिए उन्हें जेब में हाथ डालना पड़ता है, किन्तु देहातों में उनका हाथ अपने सोंटे पर होता है या किसी दीन किसान की गर्दन पर। जिस घी, दूध, शाकभाजी, मांस-मछली आदि के लिये शहर में तरसते थे, उसका पदार्थों की यहाँ केवल जिह्वा और बाहु के बल से रेल-पेल हो जाती है। जितना खा सकते हैं; बार-बार खाते हैं, और जो नहीं खा सकते, वह घर भेजते हैं। घी से भरे कनस्तर, दूध से भरे हुए मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारे से लदी हुई गाड़ियाँ शहरों में आने लगती हैं। देहातवालों के लिए यह बड़े संकट के दिन होते हैं। उनकी शामत आ जाती है, मार खाते हैं, बेगार में पकड़े जाते हैं, दासत्व के दारुण निर्दय

अघातों से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है। ज्वालासिंह के दौरे के सिलसिले में भी कम अंधेर नहीं मचा। गौस खाँ की बन आई। उन्होंने जिले के हाकिम की धाक की आड़ में गाँव पर मनमाना अत्याचार शुरू किया। गाँव भर के पल्ले दूध-घी की बेगार पड़ती है। बलराज बीच में पड़ता है तो गौस खां उबल पड़ता है—इस गाँव की कुछ हवा ही बिगड़ी है। मैं खूब समझता हूँ। यह लोग जो भीगी बिल्ली बने बैठे हुए हैं, इन्हीं के सह देने से इस लौंडे को इतनी जरअत हुई है, नहीं तो इसकी मजाल था टर्राता। बछड़ा खूँटे के ही बल कूदता है। खैर, अगर मेरा नाम गौस खां है तो एक एक से समझूँगा। मनोहर डर कर बेगार में दूध देता है, परन्तु इस बात को लकर घर में कलह मच जाता है। वह पहलवानी करता है। उसके लिए घर में छँटाक भर दूध नहीं। सब बेगार में दे दिया। इतने दबैल? रूस-बलगारिया के किसानों के सुख ने उसके मन को सपनों से भर दिया है। दूसरे दिन सुबह ही बलराज डिपुटी ज्वालासिंह के पास पहुंच कर दो टूक बात कर आता है—'हजूर यहां धर्म के आसन पर बैठे हैं। और चपरासी लोग परजा को लूटते फिरते हैं। मुझे आप से यह विनती करने का हौसला हुआ, तो इसलिये कि मैं समझता था आप दोनों की रच्छा करेंगे। अब मालूम हो गया कि हम अभागों का सहायक परमात्मा के सिवा और कोई नहीं।' परन्तु बलराज के निडरपने का ज्वालासिंह पर भी काफी असर हुआ। उन्होंने कर्मचारियों से बेगार न लेने की ताकीद कर दी। इस पर गौस खाँ और ईजादहुसेन और बिगड़े। उन्होंने बलराज की ओर से उभारना शुरू किया। गौस खाँ ने पुलिस के दरोगा से मिलकर बलराज को फँसाने के लिए बड़े बड़े मंसूबे बांधे, परन्तु बलराज के खिलाफ कोई गवाही ही नहीं मिली। परंतु पुलिस भी

कब छोड़ने वाली थी। उसने कुछ गवाह फोड़ लिये और उनके बयान बदल दिये। गांव में फूट के बीज बोये जाने लगे। कादिर खाँ के अथक प्रयत्नों से किसी तरह यह बला भी टली। उन्हीं दिनों जमींदार ज्ञानशंकर के चचेरे भाई प्रेमशंकर विलायत से लौटे थे। वह जनसेवा के भाव से गांव में दवा-दारू करने लगे। गांव को नया बल मिला। परंतु गांव में महामारी फैलती है और कई अच्छे पट्ठे तरुण चले जाते हैं। कादिर, सुक्खू और डपटसिंह इस चोट के शिकार होते हैं। दैवी-प्रकोप है जिसके आगे मनुष्य का जरा भी चारा नहीं है। डपटसिंह के लड़के की मृत्यु तो ज्वाला सिंह और प्रेमशंकर के सामने ही होती है। परंतु ज्ञानशंकर ने अब भी इजाफे बढ़ाने की कार्यवाही जारी रखी। बड़ी कोशिश की। गाँववालों ने अपील की। प्रेमशंकर तन-मन-धन से गाँव के सेवा करते और उन्हें अधिकार का पाठ पढ़ाते। धीरे-धीरे इस बात को लेकर ज्ञानशंकर को उनकी सूरत से घृणा हो गई। वह कहते हैं--उन्होंने (प्रेमशंकर ने) असामियों का पक्ष लिया है तो मैं भी दिखा दूंगा कि मैं क्या कर सकता हूं? जमींदार के बावन हाथ होते हैं। लखनपुर वालों को ऐसा कुचलूँगा कि उनकी हड्डियों का पता न लगेगा। ++ अंत में गांव वालों पर पहाड़ टूट पड़ता है, उनकी अपील खारिज हो जाती है।

लखनपुर यों ही उजड़ रहा था। गर्मी के दिन थे। जून का महीना। कुओं का पानी पाताल तक चला गया था। आस-पास के सब गढ़े और तालाब सूख गये थे। केवल एक बड़े तालाब में जो जमींदार की जमीन पर था पानी रह गया था। ठीक उसी समय गौस खां ने तालाब का पानी रोक दिया। दो चपरासी किनारे आकर डट गये और पशुओं को मार-मार कर भगाने लगे। उस तालाब को लेकर बड़ा झगड़ा मचा। गौस खाँ ने पकड़-धकड़,

मार-पीट में कोई बात उठा नहीं रखी। बात अदालत तक गई। गाँव वालों को इस तालाब से पानी लेने का पुश्तैनी हक था। अंत में पटवारी के कागज देखे गये और गांववालों की जीत हुई। अब गौस खां ने दूसरी चाल चली। उसने सुक्खू चौधरी के घर में से कोकीन बरामद करा कर उसे पूरे दो साल की सज़ा दिलवा दी। पुलिस का पड़ाव गाँव में पड़ा तो भगत, कादिर और मनोहर को बेगार में घास छीलनी पड़ी। बलराज उन दिनों सुसराल था नहीं तो खून-खराबी हो जाती। परन्तु धीरे धीरे परिस्थिति हाथ से निकल जाती है। प्रेमशंकर भी सत्य और प्रेम के पाठ को कहां तक पढ़ाते। गाँव भर में निराशा और प्रताड़ना का राज है। तहसील दार के आदमी ज़रा सी बात के पीछे दुखरन भगत के जूते लगा आते हैं। इस पर दुखरन नास्तिक बन जाता है। ईश्वर के न्याय की ओर से उसका मन फिर जाता है। वह अपनी शालिग्राम की मूर्तियों की पिटारी निकाल लाता है और उन्हें हवा में उछल देता है। कहता है—'यह सब मन को समझाने का ढकोसला है। कादिर मियां, यह पत्थर का ढेला है, निरा मिट्टी-का पिन्डा। मैं अबतक भूल में पड़ा हुआ समझता था, इसकी उपासना करने से मेरे लोक-परलोक दोनों बन जाते है। आज आंखों के सामने से वह परदा हट गया, यह निरा मिट्टी का ढ़ेला है। यह लो, महा-राज, जाओ जहाँ तुम्हारा जी चाहे, तुम्हारी यही पूजा है। ३६ साल की भगती का तुमने मुझे जो बदला दिया है, मैं भी तुम्हें उसी का बदला देता हूँ।' यह मनुष्य की निराशा की सीमा है।

परन्तु गौस खां का अत्याचार नहीं रुकता। वर्षा की समाप्ति पर वह चरावर रोक देता है। बिन्दा महाराज और कर्तार सिंह लाठी बाँधे चरावर पर तैनात हैं। विलासी मवेशी लेकर उधर से निकलती है तो इन दोनों से उसकी कहा-सुनी हो जाती

है। विलासी कहती है--'कैसा सरकारी हुक्म ? सरकार की जमीन नहीं है......'। इतने में गौस खां और फैजू भी वहाँ पहुँच जाते हैं और उनके हुक्म से मवेशी हाँक दिये जाते हैं। परन्तु विलासी इस्पात की तरह कठोर बन जाती है। वह सिपाहियों और मवेशियों के बीच मे आ खड़ी होती है।

'विलासी रास्ते में खड़ी हो गई और बोला-ले कैसे जाओगे ? दिल्लगी है।

गौस खाँ—न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो।

विलासी—कहे देती हूं, इन जानवरों के पीछे लोहू की नदी बह जायगी। माथे गिर जायँगे।

फैजू—हटती है या नहीं, चुड़ैल ?

विलासी--तू हट जा, दाढ़ीजार !

इतना उसके मुँह से निकलना था कि फैजू ने आगे बढ़ कर बिलासी की गर्दन पकड़ी और उसे इतनी जोर से झोंका दिया कि वह दो कदम पर जा गिरी। उसकी आँखे तिलमिला गई मूर्च्छा सी आ गई। एक क्षण वह वहीं अचेत पड़ी थी। तब उठी और लँगड़ाती हुई उन पुरुषों से अपनी अपमान-कथा कहने चली जो उसके मान और मर्यादा के रक्षक थे।

इस प्रकार एक भयंकर हत्याकांड का सूत्रपात हुआ। गौस खाँ के पापों का घड़ा भर चुका था। उसी रात मनोहर और बलराज ने उसकी हत्या कर डाली। अदालत में उसने इकबाल किया कि सारा दोष उसका है, बलराज या और कोई उसके साथ नहीं था। परन्तु इस मामले में ज्ञानशंकर ने सारे गाँव को बाँध लिया। महीनों मुकदमा चलता रहा और इसी बीच में बलराज और गाँव वालों के बचाने के निमित्त मनोहर ने आत्महत्या कर ली। प्रेमशंकर

और उनके मित्रों की अनवरत दौड़धूप के कारण बलराज और अन्य सभी गाँव वाले इस हत्याकांड के अभियोग से मुक्त हुए। इस बीच में प्रेमशंकर के प्रयत्न से गांव की कायापलट गई है। दो साल के बाद जब हम लखनपुर में प्रवेश करते हैं तो वहां उदार-हृदय मायाशंकर का राज्य है। लखनपुर सब स्वर्ग बन गया है। बलराज अब जिला-सभा का सदस्य है। लखनपुर के सारे पात्र ही जैसे जादू की छड़ी से बदल गये हैं। यह जादू की छड़ी प्रेमचन्द की सद्वृत्ति है। उन्होंने गाँव के जिस स्वर्ग की कल्पना नौकरी छोड़ते हुए की थी, वही लखनपुर के नये रूप में साकार हो उठी है।

यह स्पष्ट है कि लखनपुर की इस कहानी में काफी उतार-चढ़ाव है। गौसखाँ की हत्या और मनोहर की आत्महत्या तक प्रेमचंद वस्तुवादी शैली और कथासूत्र को पूर्णतः निभाते हैं। परन्तु कदाचित् आगे वह मार्ग नहीं देख पाते। कलाकार प्रेमचंद पर गाँव के स्वर्ग के सपने देखने वाले प्रेमचन्द की जय होती है। गाँव बदल जाता है परन्तु वह गाँववालों के त्याग और तप से नहीं बदलता। वास्तव में गाँव के जीवन की भीतरी कहानी 'प्रेमाश्रम' में कही ही नहीं गई है। वह तो 'गोदान' का विषय है। जमींदार, अहलकार, नौकरशाही और उसके आमले गाँव पर क्या कहर ढ़ाते हैं और गांव में इस अत्याचार के प्रतिकार का क्या रूप हो सकता है, यह प्रेमचन्द हमारे सामने उपस्थित करते हैं। यह परिस्थिति कैसे बदले ? प्रेमचंद प्रेमशंकर और मायाशंकर के रूप में लोकसेवी उदारमनः जमींदार को सामने लाते हैं और कदाचित् यह दिखाते हैं कि उनके सद्प्रयत्न से गांव में राम-राज आ सकता है। यह उनका सपना है। बाद को उन्हें स्वयं इस समाधान की अपूर्णता का पता लग गया था, परन्तु

गाँव की कहानी पहली बार प्रेमचन्द ने ही लिखी और विलासी, मनोहर और बलराज के रूप में उन्होंने नई किसान-पीढ़ी को समर-क्षेत्र में उतारा यह कोई कम श्रेय की बात नहीं है। प्रेमचन्द यदि कथा को लखनपुर तक ही सीमित करते तो कदाचित् वह कलाकार के रूप में और भी सुन्दर होते। परंतु उन्होंने 'प्रेमाश्रम' में गांव के इस चित्र को नगर के चित्र से संतुलित किया है।

"'प्रेमाश्रम' की दूसरी कहानी काशी के उस कायस्थ-परिवार से संबंधित है जिसकी लखनपुर गाँव में अमलदारी थी। यह परिवार औरंगाबाद मुहल्ले में रहता था। इसे एक छोटा-मोटा सामंती परिवार कहना चाहिये। किसी समय यह परिवार नगर में बहुत प्रतिष्ठित था, किंतु ऐश्वर्य के अभिमान और कुलमर्याद-पालन ने उसे धीरे २ इतना गिरा दिया कि अब मोहल्ले का बनिया पैसे-धेले की चीज भी उसके नाम पर उधार न देता था। लाला जटाशंकर मरते-मरते मर गये, पर जब घर से निकले तो पालकी पर। लड़के-लड़कियों के विवाह किये तो हौसले से। कोई उत्सव आता तो हृदय सरिता की भाँति उमड़ जाता था। कोई मेहमान आ जाता तो उसे सर आँखों पर बैठाते। साधु-सत्कार और अतिथि-सेवा से उन्हें हार्दिक आनंद होता था। मर्यादा-रक्षा में जायदाद का बड़ा भाग कुछ रहन हो गया, कुछ बिक गया और अब लखनपुर के सिवाय चार और छोटे-छोटे गाँव रह गये थे जिनमें कोई चार हजार का वार्षिक लाभ होता। इस बिगडे हुए परिवार में थे स्वर्गीय लाला जटाशंकर के छोटे भाई प्रभाशंकर। जटाशंकर के दो पुत्र थे। प्रेमशंकर और ज्ञानशंकर। ज्ञानशंकर के एक पुत्र भी था मायाशंकर। लाला प्रभाशंकर की स्त्री जीवित थी। उनके तीन बेटे थे और दो बेटियाँ। बड़े बेटे दयाशंकर सब-इन्सपेक्टर थे। विवाह हो चुका था। बाकी दोनों लड़के पद्मशंकर और तेजशंकर

मदरसे में अंग्रेजी पढ़ते थे दो कुमारी पुत्रियाँ भी थीं। प्रेमशंकर की पत्नी का नाम विद्या था। यह था इस परिवार का ढांचा।

विद्या और गायत्री राय कमलानंद की लड़कियां थीं। गायित्री विधवा हो गई थी और राय साहब के साथ रहती थी। रामानंद नाम का एक भाई भी था।

प्रेमशंकर कई साल से ला-पता हैं। कदाचित् विदेश चले गये हैं। प्रभाशंकर उनकी गृहस्थी को भी समेट कर बैठे। दयाशंकर बाहर रहता है। उसकी गृहस्थी भी वही देखते हैं। बात के धनी और दयावान पुरुष हैं। आसामियों के सुख-दुख का बराबर विचार करते हैं। परंतु ज्ञानशंकर को यह सब अच्छा नहीं लगता। जमींदारी में उनका आधा हिस्सा है, परंतु प्राणी कुल तीन हैं। उन्हें ईर्ष्या यह है कि इसी जमींदारी पर प्रभाशंकर के परिवार के आठ व्यक्ति मजा करते हैं और उनके पास खाने वाले तीन ही आदमी हैं। डाह के मारे वह अनेक प्रकार के झगड़े उठाने को तैयार हैं। एक नौकर चाचा का काम करता तो दूसरे को वह स्वयं किसी न किसी व्यर्थ के काम में उलझाये रखते। वह इसी फेर में पड़ा रहते कि जितना चाचा के आठ प्राणियों पर खर्च होता है उतना मेरे तीन प्राणियों पर हो। भोजन करने बैठते तो बहुत-सा जूठा छोड़ कर उठ आते। फिर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ तो दो कुत्ते पाल लिये। यहाँ तक कि प्रभाशंकर डाक्टर के यहाँ से कोई दवा लाते तो आप भी उतने ही मूल्य की औषधि अवश्य लाते, चाहे उसे फेंक ही क्यों न दें।

ज्ञानशंकर के मित्र ज्वालासिंह इस इलाके के मजिस्टेट हो कर सामने आते हैं। दयाशंकर की बाछें खुल जाती हैं। वह पहले ही अंधेर मचा रहे थे। अब उन्हें रोकनेवाला कोई नहीं। समझते

हैं, ज्ञानशंकर के मित्र हैं, उनका लिहाज करेंगे। अंत में एक दिन उनकी कलई खुल जाती है। ज्वालासिंह को तहकीकात करनी पड़ती है और दयाशंकर हरासत में ले लिये जाते हैं। प्रभाशंकर परिवार की इज्जत पर मरते हैं। वह ज्ञानशंकर से कह देते हैं कि तुम जाकर ज्वालासिंह से सिफारिश करो किंतु ज्ञानशंकर चाचा को जिक देना चाहते हैं और टाल देते हैं। वे एक बात से खुश हैं कि दयाशंकर गिरफ्तार हो गये। विद्या आग्रह करती है तो वे किसी तरह ज्वालासिंह के पास जाने को तैयार होते हैं परंतु वहाँ जाकर डींग की लेते हैं—'मैं मनुष्यत्व की भ्रातृप्रेम से उच्चतर समझता हूँ। मैं इन आदमियों में हूं कि यदि ऐसी दशा में आपको सहृदयता की ओर झुका हुआ देखूँ। आपको उससे बाज रखूँ।' परंतु ज्वालासिंह ताड़ जाते हैं कि इस मनुष्यत्व-भाव के पीछे विद्वेष के स्वर बोल रहे हैं। वह बातचीत के दौरान में कहते हैं—'मैं अपने फैसले में दयाशंकर को पहले ही निरपराध लिख चुका हूँ और सबको भली भाँति मालूम है कि मैं किसी की नहीं सुनता।'

इस तरह ज्ञानशंकर बाजी हार जाते हैं। अब उन्हें यह जिद हो जाती है कि प्रभाशंकर रियासत लुटाये दे रहे हैं। जल्दी से जल्दी बटवारा हो जाना चाहिये। अंत में बंटवारा हो जाता है। विद्या इस बात से खुश नहीं। परंतु ज्ञानशंकर हो विद्या से कहाँ खुश है? राय कमलानंद इतने बड़े आदमी हैं, उन्होंने विद्या के नाम कोई जायदाद क्यों नहीं लिख दी। इस बात को ले कर पति-पत्नी में बराबर तकरार बनी रहती है। इसी समय एक तार से उन्हें सूचित होता है कि विद्या के एकमात्र भाई का स्वर्गवास हो गया। ज्ञानशंकर का इतना पतन हो चुका है कि वह इस पर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वे फौरन एक बैरिस्टर के यहाँ यह जानने के लिए पहुँचते हैं कि कानून के अनुसार विद्या को यह सम्पत्ति

मिलेगी या नहीं। इसके बाद वह विद्या को लेकर ससुराल पहुंचते हैं। वहाँ साली गायत्री से उनका परिचय होता है। गायत्री भोली-भाली लड़की है। वह ज्ञानशंकर के छल-छंदों में आ जाती है। एक दिन एकांत पाकर चलती हुई गाड़ी में गायत्री की वह वस्तु लुट जाती है जो उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। ज्ञानशंकर के हृदय में भी अपने प्रति तीव्र घृणा का संचार होता है, परन्तु यह जाग्रति अधिक दिनों बनी नहीं रहती। गायत्री इस घटना के बाद अपनी जमींदारी गोरखपुर में चली जाती है।

अब ज्ञानशंकर को यह फिक्र लगती है कि कहीं राय कमलानंद दूसरा विवाह नहीं कर लें। एकदिन उन्हें इतना साहस होता है वह राय साहब से खुल्लम-खुल्ला इस संबंध में पूछताछ कर लेते हैं। राय साहब बड़े अनुभवी और दुनियासाज व्यक्ति हैं। वह साफ-साफ बता देते हैं कि यह अफवाह निस्सार है। परन्तु फिर भी ज्ञानशंकर को डर लगा ही रहता है। उन्हें भय लगा ही रहता है कि कहीं कहीं ससुरसाहब सारी सम्पत्ति खर्च ही न कर डालें। राय साहब की अधिकारियों में बड़ी धाक है। वह ज्ञान॰ शंकर से दो लेख लिखवाते हैं एक बजट के संबंध में, एक गायत्री के संबंध में। यह दोनों लेख छपते हैं तो धूम मच जाती है। दूसरे लेख के कारण गायत्री को रानी का खिताब मिलता है। वह ज्ञान-शंकर से इतनी प्रसन्न होती है कि उन्हें अपनी स्टेट का मेनेजर बना लेती है।

स्टेट के प्रबंध करने में ज्ञानशंकर को बड़ी सफलता मिली। जिस अवसर पर गवर्नर साहब ने गायत्री के यहाँ दरबार किया और उन्हें रानी उपाधि से विभूषित किया, उस अवसर पर ज्ञान-शंकर ने अपनी प्रबंधपटुता के कारण खूब नाम कमाया। अंग्रेजों में भी उनकी खूब तारीफ हुई। ज्ञानशंकर, विद्या और उनके पुत्र

मायाशंकर को भी उपहार मिले। इसके बाद उन्होंने कृष्णभक्त का जामा पहन लिया और गायत्री को लेकर राधाकृष्ण के नाटक खेलने लगे।

कुछ दिनों के लिए ज्ञानशंकर लखनऊ आते हैं। यहाँ उन्हें मालूम होता है कि रायसाहब ने एक अंतर्राष्ट्रीय संगीत-सम्मेलन का आयोजन किया है जिसमें साढ़े पाँच लाख रुपये खर्च होंगे। उन्होंने इस पर राय साहब से तर्क-वितर्क करना शुरू किया और उन्हें बहुत बुरा-भला कहा यहाँ तक कहा कि वे अपने वारिसों का हित-अहित नहीं सोचते—जली-कटी भी सुनाई। रायसाहब ज्ञानशंकर के चरित्र से पूर्णतयः परिचित थे। वह जानते थे कि उसने गायत्री की सम्पत्ति और उसके प्रेम की प्राप्ति की एक योजना बना रखी है। उन्होंने ज्ञानशंकर से यह बातें कबूल करा लीं और उन्हें इतना धिक्कारा कि वे रोने लगे। आत्म-प्रताड़ित हो वह गोमती में डूबने चले परन्तु दुर्बल-हृदय व्यक्ति के लिए आत्महत्या करना भी बड़ा कठिन काम है। लौट कर उन्होंने एक दिन रायसाहब को खाने में जहर दे दिया। रायसाहब पहला कौर रखते ही ताड़ गये, परन्तु रायसाहब को अपने योग पर पूरा भरोसा था। वे कौर पर कौर खाये गये जब तक स्वयं ज्ञानशंकर ने उनके आगे से थाली हटा कर भूमि पर पटक न दी। रायसाहब की योगसिद्धि ने उन्हें परास्त कर दिया था। ससुर से दुत्कारें पा कर ज्ञानशंकर ने गायत्री का हृदय टटोला। उन्होंने एक पत्र में उसे लिखा—'मरने लगूँ तो उसी मुरली वाले की मूरत आँखों के सामने हो और यह सिर राधिका की गोद में हो। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई इच्छा और लालसा नहीं है। राधिका की एक तिरछी चितवन, एक मृदु मुस्कान, एक मीठी चुटकी, एक अनोखी छटा पर मैं समस्त संसार की सम्पदा को न्योछावर

कर सकता हूं'। उधर जिस दिन से ज्ञानशंकर गये हैं, उन दिन से गायत्री की हालत भी अच्छी नहीं है। वह विरहिणी गोपी की तरह आकुल घूमती है। पत्र पाकर उसने ज्ञानशंकर को तार दिया कि मैं आ रही हूँ और शाम की गाड़ी से मायाशंकर को लेकर वह काशी पहुंची। यहां कृष्णलीला की रचना हुई। ज्ञान शंकर कृष्ण बने और गायत्री राधा। अंत में गायत्री ( राधा ) ने ज्ञानशंकर ( कृष्ण ) के चरणों पर गिर कर आत्मसमर्पण किया। अकस्मात कमरे का द्वार खुलता है और विद्या अन्दर कदम रखती है। वह गायत्री को बुरा-भला कहती है ज्ञानशंकर विद्या के सामने ही गायत्री को बहकाने की चेष्टा करते हैं परंतु असफल रहते हैं। गायत्री ग्लानि से भर जाती है। वह मायाशंकर को गोद ले लेती है और अपनी जायदाद उसके नाम लिख देती है। विद्या समझती है, यह कोई नया छल है। वह विष खाकर आत्महत्या कर लेती है। कुछ दिनों बाद गायत्री और ज्ञानशंकर के बीच मनमुटाव हो जाता है। वे गायत्री की चिट्ठियां तक पढ़ते हैं। अंत में गायत्री जान लेती है कि वह अपने मन की छलना को भुलावा दे रही थी। उसका हृदय ग्लानि से भर जाता है। वह सोचती —'मैंने अपनी आत्मा की, कर्म की, नियमों की हत्या की और एक सती साध्वी स्त्री के खून से अपने हाथों को रंगा, पर प्रारब्ध पर विजय न पा सकी।' अंत में वह आत्म-हत्या कर लेती है। इधर ज्ञानशंकर पर कौंसिल का भूत भी सवार होता है। बड़ी दौड़-धूप के बाद वह चुनाव में सफल भी होते हैं। परंतु इधर प्रेमशंकर के सुधारवादी विचारों का माया-शंकर पर प्रभाव बढ़ता जाता है। वह यूरोप से लौट कर लखनपुरवालों के अपने बन गये हैं। मायाशंकर के अट्ठारहवें वर्ष की पूर्ति पर जब वह रियासत का अधिकार प्राप्त करता है तो

बड़ा उत्सव होता है। इस अवसर पर मायाशंकर त्याग की मूर्ति बन जाता है। वह गाँव और इलाकों की नई व्यवस्था करता है और जमीन काश्तकारों को दे देता है। ज्ञानशंकर के इस त्याग सेबहुत दुख पहुंचता है। जो तिमंजला भवन उन्होंने एक युग में अविश्रांत उद्योग से खड़ा किया, वह क्षण मात्र में इस भाँति भूमिस्थ हो गया, मानों उसका अस्तित्व ही नहीं था, उनके जीवन में अब क्या रह गया। अंत में वे गंगा में कूद कर अपने प्राण दे देते हैं। शीतल जल उनके हृदयदाह को शांत कर देता है।

बीच में प्रभाशंकर के दो पुत्रों ( पद्म और तेज ) के बलिदान और ज्वालासिंह, डा०-इर्फान अली इत्यादि के असहयोगी बन कर प्रेमशंकर के साथ प्रेमाश्रम स्थापित करने की कथायें आती हैं। परंतु उन कथाओं की स्वतंत्र स्थिति नहीं है। वे 'प्रेमाश्रम' की इन दो कथाओं में रंग भरने के लिये अवतरित हुई हैं। ये दो कथायें ज्ञानशंकर ( और उनके कारिंदे गौस खां ) के व्यक्तित्व के माध्यम से ही जुड़कर एक बनी हैं।

'रंगभूमि' (१९२४) के कथानक में प्रेमचंद ने तीन परिवारों को गूँथ दिया है और प्रासंगिक रूप से एक चौथा परिवार भी उपस्थित किया है। तीन परिवार हिंदू हैं, एक मुसलमान, एक ईसाई। हिन्दू परिवारों में एक ओर विनय है, दूसरी ओर सूरदास। वस्तुतः सूरदास को लेकर कोई एक परिवार नहीं बनता। सारा पांडेपुर गाँव ही सूरदास का परिवार बन गया है। स्वयं उसके अपने जीवन-संघर्ष और घृणा-प्रेम की भी एक कहानी है परंतु वह पांडेपुर की कथा से पूर्णतयः घुल-मिल गई है। विनय का एक भरा-पूरा परिवार है। उसके पिता हैं राजा भरतसिंह, माता जाह्नवी, बहन इंदु, बहनोई राजा महेन्द्रसिंह। इन्हीं को लेकर उपन्यास की प्रधान कथा चलती है। विनय और सोफिया में

प्रेम है। सोफिया के खानदान में ईश्वर सेवक (पितामह), जानसेवक (पिता), मिसेज सेवक ( माता ) और प्रभुसेवक ( भाई ) हैं। मुसलमान परिवार की कथा के नायक हैं ताहिरअली जो पहले जानसेवक के चमड़े के गोदाम के मैनेजर ( दरोगा ) हैं, फिर मिल के। उनके परिवार में उनकी स्त्री कुलजुम, लड़का साबिर और लड़की नसीमा हैं। सौतेली माँओं से तीन भाई हैं—माहिर, जाहिद और जाबिर। इस प्रकार इन चार पाँच परिवारों का ताना-बाना कथा में बुना गया है। परिवारों के गुंफन की यह कला प्रेमचंद ने तोलसताय के 'अन्ना-करीना' और 'वार ऐंड पीस' ( युद्ध और शांति ) उपन्यासों से सीखी है और उसे सुन्दर ढंग से निबाहा है। कलान्तर में इन परिवारों की कथा परिवारों तक ही सीमित नहीं रहती। विजय राष्ट्रीय युद्ध के क्षेत्र में उतरता है। वह जसवंतपुर पहुँच कर लोकनायक बन जाता है और बाद में पांडेपुर के संघर्ष में भाग लेता है। सोफिया इन संघर्षों में उसके साथ है। पांडेपुर का संघर्ष जनसेवक को चमड़े की मिल और सिगरेट की फैक्टरी खोलने की योजना से शुरू होता है। गोदाम के दरोगा के नाते ताहिर अली और उसका परिवार पांडेपुर की समस्या से अनन्य रूप से संबंधित हो जाता है। यदि प्रेमचन्द जसवंतपुर की कथा को हटा देते और विनय के कर्म-क्षेत्र को काशी और पांडेपुर तक ही सीमित रखते तो कथा में कुछ अधिक केन्द्रीयता आ जाती। ऐसा न होने के कारण उपन्यास के क्षेत्र को देशकाल का विस्तार तो मिल गया है और राष्ट्रीय जीवन के एक नये पहलू का उद्घाटन भी हो गया है परंतु कथा कुछ विश्रृंखल और असंगठित हो गई है।

पहले हम पांडेपुर के सूरदास की कथा को लेंगे। पहले वाक्य में ही हम प्रेमचंद के क्रांतिकारी दृष्टिकोण से परिचित होते

है--'शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है। उसके मध्य भाग में उनके लड़कों की पाठशालायें हैं और उनके मुकदमें बाजी के अखाड़े हैं; जहाँ न्याय के नाम पर गरीबों का गला घोंटा जाता है। शहर के आस पास गरीबों की बस्तियां होती हैं। बनारस में पांडेपुर ऐसी ही बस्ती है। सूरदास इसी पांडेपुर मे रहता है।' पांडेपुर कोई कल्पित गाँव नहीं है। लमही पांडेपुर मौजे में ही बसा था। प्रेमचंद ने अपने एक निबंध में लिखा है—'रंगभूमि' का बीजांकुर हमें एक अंधे भिखारी से मिला जो हमारे गाँव में रहता था।' इस बीज को लेकर प्रेमचंद ने अपनी उदात्त प्रतिमा के बल पर कला का जो ताजमहल खड़ा किया है, वह अपूर्व है।

पांडेपुर के इस अंधे सूरदास के पास एक ज़मीन का टुकड़ा है। जानसेवक चाहते है कि इस टुकड़े को सूरदास से ले लिया जाये और उसपर एक सिगरेट का कारखाना खोल दिया जाय। ज़मीन देखने के लिए वह बनारस से पांडेपुर आते हैं। यहाँ सूरदास भीख माँगता हुआ उनकी फिटन के पीछे दौड़ता है, परन्तु जानसेवक उसे एक भी धेला नहीं देते। वह उनके लिए एक साधारण भिखारी है। परन्तु बाद में जब उन्हें मालूम होता है कि यह ज़मीन सूरे की है, तो उनका रुख बदल जाता है। वह सूरदास को समझाते हैं कि वह ज़मीन उनके हाथ बेच दे परन्तु सूरदास किसी भी तरह अपने बाप-दादों की ज़मीन को बेचने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस ज़मीन पर ही गाँव भर का चरावर था। ज़मीन बेच देगा तो पाप न होगा। गाँव के पशु कहाँ चरने जायेंगे। उसने भीख माँग कर पाँच सौ रुपये जोड़ लिये हैं जिससे वह शीघ्र ही इस जमीन पर एक धर्मशाला और एक

कुआँ बनाने का स्वप्न देखता है। यह ईसाई-परिवार जब घर लौटा तो सूरदास को लेकर उसमें बड़ा मतभेद हो गया और सोफिया को कुछ आँसू भी बहाना पड़े।

सूरदास का एक छोटा-सा झोपड़ा था। इसमें वह इकेला रहता। उसका आठ दस वर्ष का भतीजा मिट्ठु उसके साथ रहता था। मा-बाप प्लेग से मर गये थे और इस बच्चे का पालन-पोषण सूरदास ने ही किया* था। इसी लड़के पर उसका सारा प्रेम केन्द्रीभूत था। मिठुआ रूठ जाता तो सूरदास उसे घंटों मनाता अपने हाथ से रोटी बनाकर खिलाता। भीख माँग कर इस लड़के का पालन-पोषण करता, अपने लिए और मिठुआ के लिए खाना पकाना और शाम को मंदिर के चबूतरे पर बैठ कर और लोगों के साथ भजन गाना, यही उसका काम था।

इधर एक दुर्घटना के कारण सोफिया का परिचय कुँवर विनयसिंह से होता है। एक दिन सोफिया कुछ अनमनी होकर एक हवेली के सामने भजन सुनने के लिए खड़ी थी। इतने में उसी हवेली के हाते के भीतर एक खपरैल के मकान में आग लग गई। चारों ओर से सैकड़ों आदमी दौड़ पड़े। इस रेले में एक स्वयंसेवक आग की लपटों में बीच में फँस गया। उसका पैर फिसल गया था। यह विनय था। सोफिया ने उसे गिरते हुए देख लिया। वह विद्युतगति से आग की लपटों में घुस गई और विनय को खींच कर बाहर निकाल लाई। परन्तु स्वयं उसका कोमल गात लपटों में झुलस गया और वह बाहर आते ही अचेत होकर गिर पड़ी। तीन दिन तक उसने आखें नहीं खोलीं। आँख खोली तो पता लगा कि वह कुँवर विनयसिंह के पिता कुँवर भरतसिंह की कोठी में है। कुछ दिन तक वह वहीं रही। विनय की बहिन इंदु से उसकी मित्रता हो गई।

जानसेवक को यह खबर मिली तो वह उसे आकर लिवा लाये। कुँवर भरतसिंह से उनकी जान-पहचान हो गई। जानसेवक जानते थे वह उन्हें प्रभावित कर लेगा और वह उसकी सिगरेट की कंपनी के कुछ शेयर खरीद लेंगे। कुँवर साहब के दामाद महेन्द्रसिंह म्युनिसिपिलिटी के सर्वेसर्वा थे। उनसे भी आशा थी कि उनके द्वारा सूरे की ज़मीन आसानी से मिल जायेगी। आखिर विनय पर सौफिया का ऋण भी तो है। वह अपने दाँव-पेंच चलने लगे। सूरदास एक बार मुहल्ले वालों के झगडों और गाली-गलौच से परेशान होकर चमड़े के गोदान में जानसेवक ने एजेन्ट ताहिरअली के पास भी पहुँचा परन्तु दैवेच्छा से वहाँ पहुँच कर उसका इरादा बदल गया। कहने लगा—'मियां साहिब, वह ज़मीन तो बाप-दादों की निशानी है, भला मैं उसे बेच या पट्टा कैसे कर सकता हूँ। मैंने उसे धर्मकाज के लिए संकल्प कर दिया।' उधर कुँवर भरतसिंह ने जानसेवक के कारखाने में पचास हजार के शेयर खरीद लिये। उनके दामाद राजा महेन्द्रकुमार भी उसके हाथ में आ गये। एक बार वह अवकाश देखकर अपने फिटन में पांडेपुर भी पहुंचे। वहाँ उन्होंने सूरदास को जमीन बेच देने के लिए कहा। वह सूरे की परोपकार-वृत्ति की उकसाना चाहते थे। बोले—'ज़रा यह भी तो सोचो कि इसकारखाने से लोगों का क्या फायदा होगा। हज़ारों मजदूर, मिस्त्री, बाबू, मुंशी, लोहार, बढ़ई आकर आबाद हो जायेंगे, एक अच्छी बस्ती हो जायेगी। बनियों की नई-नई दुकानें खुल जायेंगे, आसपास के किसानों को अपनी शाक-भाजी लेकर शहर न जाना पड़ेगा यहीं खेर दाम मिल जायेंगे। कुंजड़े खटिक, ग्वाले, धोबी, दर्जी, सभी को लाभ होगा। क्या तुम इस पुण्य के भागी न बनोगे?' परन्तु सूरदास-कच्ची गोलियाँ नहीं

खेला था। उसने औद्योगीकरण के नरक का भी एक भी चित्र उपस्थितकिया बोला—'सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्लों की रौनक बढ़ेगी। वहाँ ताड़ी शराब का भी तो प्रचार बढ़ जायेगा। कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी। परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे। कितना अधरम होगा। देहात के किसान अपना काम छोड़ कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहां बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण गाँवों में फैलायेंगे। देहातों की लड़कियां-बहुएँ मजूरी करने आयेंगी और यहां पैसे के लोभ से अपना धरम बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। भगवान न करे यहां वह रौनक हो। सरकार मुझे इस कुकरम और अधरम से बचायें। यह सारा पाप मेरे सिर पड़ेगा।' कैसे अकाट्य तर्क हैं। राजा साहब को वहां से हताश होकर लौटना पड़ता है।

भैरों पासी पांडेपुर में ही रहता था। वह अपनी स्त्री सुभागी पर ताड़ी के नशे में बहुत अत्याचार करता। उसकी मां जीवित थी। वह दिन रात बहू के सिर रहती। एक दिन भैरों ताड़ी के नशे में था। वह सुभागी को मारने लगा तो सुभागी घर से निकल गई। वह कई घरो में गई, परन्तु भैरों के डर से कोई भी रात भर के लिए आश्रय देने को तैयार नहीं था। वह आफत की मारी सूरदास के यहां पहुंची तो सूरे ने उसे तुरन्त शरण दे दी। जब भैरों को अगले दिन इस बात का पता लगा तो उसने सूरदास को बहुत बुरा-भला कहा। उस दिन से सुभागी अपना सुख दुख रोने सूरे के पास चली आती। गांव भर में यही अंधा था जो उसे सहानुभूति दे सकता था। भैरों के मित्र जगधर ने कई बार सुभागी को सूरे की झोपड़ी से निकलते देख लिया। उसने भैरों से कहा और भैरों सूरदास से खार खाने लगा। उसने यह

प्रसिद्ध करना शुरू किया कि सूरदास कुचरित्र है। बढ़ते-बढ़ते उसकी ईर्ष्या-भावना यहाँ तक पहुँची कि एक दिन भैरों ने रात के समय सूरदास की झोंपड़ी में आग लगा दी। यही नहीं, उसने सूरे की पांच सौ की गठरी उड़ा ली। यही उसकी सारे जीवन की कमाई थी। भैरों ने जगधर का साझा नहीं किया, कदाचित् इसीलिए उसका धर्म-भाव जागा और उसने सूरे के पास जाकर उससे सब बातें कह दीं। परन्तु सूरदास त्याग और सद्भावना की मूर्ति बना हुआ था बोला —'मेरे पास थैली-वैली कहां। होगी किसी की। होती तो भीख माँगता।

एक दिन प्रभुसेवक और बजरंगी में कुछ कहा-सुनी हो गई नायकराम ने बीच-बचाव किया तो प्रभुसेवक उससे उलझ गया। प्रभुसेवक ने जूते की दो तीन ठोकरें मारी थीं कि नायकराम जांघ में चोट खाकर गिर पड़ा। इसके बाद दोनों में बीच-बचाव हो गया। प्रभुसेवक चला गया परंतु नायकराम में प्रतिहिंसा जाग उठी थी। सूरदास ने झगड़े को समाप्त करना चाहा। सूरदास ने इसे समझाया कि बदले की भावना ठीक नहीं है, परन्तु नायकराम कब सुनने वाला था। सूरदास ने सोचा, नायकराम न जाने क्या आफत ढहाये, परंतु उस समय वह मौन रहा। गांववाले भी कुछ नायकराम के बहकाने से, कुछ स्वार्थवश सूरे की जमीन बेचने की सलाह देते हैं परंतु सूरे अब भी अधरम और अविचार के बढ़ने की दुहाई देता है। लोग उसका साथ दें या नहीं, वह जमीन नहीं बेचेगा। अगर जमीन गई तो साथ उसकी जान भी जायेगी।

इंदु इस पक्ष में थी कि सूरदास की जमीन नहीं ली जाये वह सत्य और न्याय को सब से बड़ा मानती थी। आखिर वह विनय की बहिन तो थी ही। परन्तु राजा साहब इस विषय

में उससे सहमत नहीं थे। वह हुक्कामों की निगाह देखते थे। उन्हें मालूम था कि जिला के अधिकारी क्लार्क मिस सोफिया पर आसक्त हैं और उनसे लाभ उठा कर जानसेवक सूरदास की जमीन ले ही लेगा। अब विरोध बेकार जायगा और वह व्यर्थ में बदनाम होंगे। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने अपनी सम्मति दे दी। जमीन सूरदास के हाथ से निकल गई।

सूरदास का कोई बस नहीं चला तो उसने जनता से अपील शुरू की। वह दिन-रात शहर में दुहाइयाँ देता फिरता। शहर में काफी हलचल मची। लोग राजा महेन्द्रसिंह से घृणा करने लगे। इंदु लाचार थी। परंतु जब सोफिया राजा साहब की शिकायत लेकर आई तो इंदु पति का साथ देने लगी। वह कहती, अब जमीन वापिस करने में राजा साहब का अपमान है। सोफिया ने कहा—अपमान न्याय से अच्छा है। इंदु ने ताना मारा—यह सब काम क्लार्क साहब का है जिनकी सोफिया मँगीतर है। अंत में सोफिया ने मि० क्लार्क को मजबूर किया कि वह जमीन-संबंधी प्रस्ताव को मन्सूख कर दें। ऐसा ही हुआ। राजा साहब ने सुना तो उस पर वज्र गिर पड़ा। इससे वह जनता की आँखों में सदा के लिए गिर जाते थे। परंतु उन्होंने सारी उम्र अधिकारियों के मुख की ओर देखा था और कुछ भी करना उनके लिए असंभव था। परन्तु इन्दु और जानसेवक ने उन्हें जोश दिलाया और उन्होंने बड़े जोर से अखबारों में मजिस्टेट की मनमानी के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया।

सूरदास जीत गया। हारा तो सारा गाँव उसके साथ था। सब को उस पर करुणा आती थी। अब सब विरोधी बन गये। मुहल्ले वाले तक राह चलते उसे छेड़ते, आवाजे कसते, ताने मारते

परंतु सूरदास सब सहता। दिन भर सिर झुकाये भीख माँगता और रात को चुपके से अपनी झोंपड़ी में आकर पड़ रहता। उसी बीच सुभागी ने उसे वह पांच सौ रुपये लाकर दिये जो नायकराम ने चुरा लिये थे। परंतु सूरदास उन रुपयों को लेने के लिए तैयार ही नहीं होता था। उसने स्वयं थैला ले जा कर भैरों को दे दां, परंतु नायकराम जान गया कि यह काम सुभागी का है। सुभागी के लिए मुँह दिखाने की भी जगह कहीं नहीं रही।

अंत में भैरों ने सुभागी को घर से निकाल दिया। सुभागी सूरे के पास आई कि उसके यहाँ रहे। इस गाँव में उसके लिए और ठिकाना ही कहाँ था! पहले तो सूरे ने यह बला मोल नहीं लेनी चाही, परंतु अंत में वह ऊपर उठा। लोग लांछन लगाते हैं, तो क्या वह यह धर्म का काम भी नहीं करे। उधर भैरों ने जब यह देखा कि सुभागी को जगह मिल गई, तो उसे सूरे पर बड़ा क्रोध आया और वह उसे बदनाम करने लगा। मुहल्ले वालों ने उसका साथ दिया। गाँव वालों को मालूम था कि राजा साहब सूरे से नाराज हैं। वे उनके पास चले। शहर वाले जानें तो कि सूरा कैसा पाजी है। राजा साहब ने सुझाया कि भैरों उनकी अदालत में नालिश कर दे कि सूरे ने उसकी ब्याही स्त्री घर बैठा ली है। परंतु गवाह मिलना कठिन था। मुकदमे में सूरदास तथा सुभागी को सजा हो गई। परन्तु अंत में सूरे ने ऐसी दुहाई मचाई कि लोग समझ गये कि मुकदमा झूठा है। उन्होंने चंदा कर सूरे और सुभागी का जुर्माना अदा कर दिया और सूरे का जलूस निकालना चाहा। परन्तु राजा साहब ने उसे पहले ही मोटर पर गाँव पहुँचा दिया था। जुलूस के लिए लोगों ने तीन सौ रुपये इकट्ठे किए थे, वे बच गये। वह सूरे को दे दिये गये। लौट कर सूरदास ने देखा कि किसी ने भैरों की दुकान में आग लगा दी है। उसने

यह तीन सौ रुपये उसे दे दिये। इससे भैरों के मन का मैल कट गया और वह सुभागी को फिर घर में लेने को तैयार हो गया।

कुछ कोशिशों के बाद जानसेवक को पांडेपुरवाला पूरा गाँव ही मिल गया। इसमें मजदूरों के लिए रहने लायक घर बनाये जाने लगे। गाँव वालों को उचित दाम दे दिये गये। किसी की सुनवाई नहीं थी। जिन्होंने मुट्ठी गरम की उन्हें काफी मिला, न गरम की तो सब कुछ मिट्टी के दाम चला गया। इस प्रसंग में एक बार गोली चलने तक की नौबत आई और विनय का एक मित्र इन्द्रदत्त मारा भी गया। परन्तु अंत में सूरदास अड़ गया। वह तोपों से भी डरने वाला नहीं था। वह अपनी झोपड़ी नहीं छोड़ेगा। एक दिन जनता और फौजी गोरखा दस्ते में रस्साकशी चल रही थी कि किसी के व्यंग से मर्माहत होकर विनय ने आत्महत्या कर ली। उस दिन सूरदास को भी गोली लगी थी परन्तु वह बच गया। परन्तु वह बचा भी कहाँ! उस गोली ने ही तो उसकी जान ली। मरते समय उसके मन में कोई मैल नहीं था। उसने मिठुआ, भैरों, जान सेवक और महेन्द्रसिंह सब को क्षमा कर दिया था। वह जीवन भर खेल खेला। खेल में जीत होगी या हार। फिर रोना-हँसना कैसा? इसी विचार से सूरे को संतोष था और इसी विचार को लिए हुए वह शांति से मरा। परन्तु पांडेपुर उजड़ गया। वहाँ मजदूरों की बस्ती बस गई।

इस कहानी के साथ विनय की कथा भी गूँथी गई है परंतु विनय की कथा का एक बहुत बड़ा भाग इस पांडेपुर की कथा से बाहर पड़ता है और उसका संबंध जसवंतनगर से है। इस कथा को प्रेमचंद ने स्वच्छंदतावादी ढंग पर विकसित किया है। देशी राज्यों के आतंकवाद और उच्छृंखलतापूर्ण शासन की

कहानी के साथ जाग्रत जनता की आकांक्षाओं की कहानी भी इस कथा में गुंफित है। प्रेमचंद ने इस कथा को परिणिति तक नहीं पहुँचाया। विनय संघर्ष को बीच में ही चलता छोड़ कर काशी आ जाता है और पांडेपुर के झगड़े में उसकी मृत्यु हो जाती है। परंतु देशी राज्यों का कोई समाधान उस समय लोकनेताओं के सामने था भी नहीं। इस कथा में हम विनय-सोफ़िया के प्रेम और बलिदान की अनेक भंगिमाएं भी पाते हैं। रानी जाह्नवी (विनय की माता) पुत्र को लोकसेवी के रूप में देखना चाहती है और वह विनय को सोफी से बहुत दूर जसवंतनगर भेज देती है, परंतु सोफ़ी वहाँ भी पहुँच जाती है और विनय को आतंकवादियों के कारागृह से छुड़ाती है। जसवंतनगर से भाग कर भी विनय और सोफ़ी पास नहीं आ पाते। वे रेल से उतर कर एक छोटे से ग्राम में रहने लगते हैं परंतु उनमें जरा भी दैहिक संबंध नहीं हो पाता। न जाने किस दैवी प्रताड़ना के कारण अंत तक विनय और सोफ़ी मिल नहीं पाते।

इन कथाओं के साथ ताहिरअली और उसके परिवार की भी एक छोटी-सी कथा है। ताहिरअली को अपने बड़े कुटुम्ब को तीस रुपये पर पालना होता है। विमाता जैनब और छोटी रकिया उसकी जान लिये डालती हैं। अंत में एक दिन वह रोकड़ के रुपये निकाल लेते हैं और जेल चले जाते हैं। बेचारी कुलजुम बड़ी तपस्या के साथ तीन बच्चों का पालन करती है। परंतु जब भाई का बड़ा लड़का माहिरअली पुलिस का दारोगा हो जाता है तो वह चचा के इन बच्चों की पूछता भी नहीं। ताहिरअली जेल काट कर आते हैं तो घर की दशा देख कर रो देते हैं। जिस लौंडे को पढ़ाने के लिए उन्होंने गबन किया, जेल की यातनायें सहीं, वही उसके बच्चों को निकाल दे। परंतु कुलजुम शुद्ध हृदय से सबको

क्षमा कर देती है। वह सचमुच देवी है। अंत में ताहिरअली जिल्दसाज़ी का काम करके जीवन-यापन करने लगते हैं।

कायाकल्प (१६२८) के रोमांस-भाग (देवप्रिया-प्रसंग) पर हम पहले ही लिख चुके हैं। अलौकिक प्रेम और जन्मांतर बाद की यह कथाधारा उपन्यास की मुख्य कथा-धारा से कुछ अलग पड़ती है और उसे बड़ी सरलता से अलग किया जा सकता है। उसके शेष भाग कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है और आलोच्य विषय के लिए वह और भी महत्वपूर्ण है। इस भाग का कथा-संगठन प्रेमचंद के अब तक के कथा-संगठनों के समान ही है। केवल अलौकिक कथा और प्रासंगिक घटनाओं के कारण उसमें थोड़ी विश्रृंखलता आ गई है।

परन्तु जान पड़ता है, 'कायाकल्प' की कहानी को प्रेमचंद न उतना परिवार-निष्ठ कर सके, न उतना चरित्र-निष्ठ। वह अलौकिक भाग की प्रेम-रोमांस की कहानी की तरह स्वच्छंदतावादी ढंग पर चलती है। एक ओर वज्रधर और उनका परिवार है, दूसरी ओर अहल्या का परिवार और बीच में ठाकुर (राजा) विशालसिंह का परिवार। वज्रधर सिंह राजपूत हैं, किंतु अपने को मुंशी कहते हैं। वह तहसीलदार होकर रिटायर्ड हुए हैं। इस बीच में उनके पुत्र चक्रधर ने एम० ए० पास कर लिया है। पिता चाहते हैं कि कहीं ऊँची नौकरी करे, परन्तु चक्रधर की रुचि समाज-सेवा की ओर थी। वह अभी विवाह नहीं करना चाहता था, किंतु उसी समय आगरे से एक सज्जन (यशोदानन्दन) आये और उसे लड़की देखने के लिए आगरा लिवा लाये। यह उनकी पालित लड़की अहल्या है। किसी मेले के अवसर पर यह लड़की खोई मिली थी, तब से वही इसके पिता हैं। यशोदानन्दन की पत्नी वागीश्वरी उसे कन्या की तरह मानती है।

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया है। वह निःसंतान है। चक्रधर उनके दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह की लड़की मनोरमा का गृह-शिक्षक है। इस सम्बंध से लाभ उठा कर चक्रधर के पिता मुंशी वज्रधर ने मनोरमा के पिता से परिचय प्राप्त कर लिया। और उनके जरिये रानी साहिबा से भी परिचय कर लिया। कुछ दिनों में पचीस रुपये की तहसीलदारी उन्हें मिल गई। देखने को तनख्वाह पचीस की थी, किंतु आमदनी पचासों की थी। अब मुंशी जी के भाग्य खुल गये और रोज घर पर महफिल जमने लगी। शराब की नदी बहने लगी।

एक तीसरा परिवार भी सामने आता है। यह ठाकुर विशाल-सिंह का परिवार है। वह रानी देवप्रिया के वारिस होते थे। ठाकुर साहब को तीन पत्नियां थीं जो आपस में बहुत लड़ा करतीं। बड़ी पत्नी है वसुमती, मंझली देवप्रिया की बहन रामप्रिया और रोहिणी। परन्तु फिर भी वे निःसंतान हैं। मनोरमा के परिवार में उसके पिता हरिसेवक, भाई सेवक और पिता की रखेली लौंगी है। उसके माता का देहांत हो चुका है।

इतने परिवारों से सम्बन्धित होने के कारण कथा कुछ बिखर जाती है। चक्रधर यशोदानन्दन के साथ आगरे पहुँचते हैं तो वहाँ हिन्दू-मुसलिम दंगा चल रहा है। चक्रधर अपने प्राणों को संकट में डाल कर ही दोनों पक्षों को रोकते हैं। गुंडों ने अहल्या को उड़ाना चाहा है परतु यशोदानन्दन के मित्र और मुसलमानों के नेता ख्वाजा महमूद ने उसे बचा लिया। अहल्या ने अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए ख्वाजा साहिब के बेटे की हत्या कर डाली है, परन्तु उनके लिए अब अहल्या अपनी बेटी से कम नहीं है। अहल्या चक्रधर से विवाह करने पर राजी हो जाती है। चक्रधर भी वचन-

बद्ध होकर लौटते हैं। उधर वे लौट कर मनोरमा को उसी तरह पढ़ाने लगे। मनोरमा भाँति-भाँति से चक्रधर के प्रति अपना प्रेम-भाव व्यक्त करती।

इसी बीच में रानी देवप्रिया राजा विशालसिंह के हाथ में राज-काज छोड़ कर तीर्थयात्रा को चल दी। उधर राजा साहब के तिलक की तैयारियाँ होने लगीं। पाँच लाख रुपये का प्रश्न था। खजाने में कानी कौड़ी नहीं थी। मुंशीजी और दीवान साहब ने राय दी कि असामियों के पीछे प्रति हल दस रुपया चंदा लगा दिया जाये। जब चंदा वसूल होने लगा तो चारों ओर लूट-खसोट शुरू हो गई। गाँव वालों पर अत्याचार ढाया जाने लगा। चक्रधर मैदान में उतरे। उन्होंने राजा साहब से शिकायतें की तो राजा साहब झल्ला गये। उत्सव के केवल तीन दिन बाकी थे। सब इंतजाम ठीक था, परन्तु किसी कैम्प में घास नहीं थी। ठाकुर हरिसेवक ने बलपूर्वक काम निकालना चाहा। वह हन्टर लेकर चमारों पर डट गये। चक्रधर बीच में पड़ा, तो गजब हो गया। बात-बात में बात बढ़ाई और चक्रधर राजा साहब के हाथ से कुन्दा खाकर मूर्छित हो गये। परन्तु चार पाँच हजार आदमियों के रहते हुए भी चक्रधर के बीच में पड़ जाने के कारण राजा साहब बच गये, परन्तु इसके बाद में राजा साहब चक्रधर के पीछे पड़ गये। वह चाहते थे कि चक्रधर यह प्रतिज्ञा लिख कर दे दे कि वह और उसके सहकारी गांव में न रहेंगे, परन्तु चक्रधर राजी नहीं हुए। फलस्वरूप वे गिरफ्तार कर लिये गये। जेल में वज्रधर चक्रधर से मिले। उन्होंने बहुत चाहा कि चक्रधर माफीनामा लिख कर जेल के बाहर आ जाय, परन्तु चक्रधर अपने व्रत पर अटल थे। इस सिलसिले में मनोरमा भी कई बार राजा विशालसिंह से मिली राजा साहब ने तीन विवाह किये थे, परन्तु विवाह का सच्चा

सुख नहीं पाया। प्रेम के लिए उनका हृदय अब भी तड़प रहा था। मनोरमा के आगे उनकी रानियां गँवारी लगती थीं। मनोरमा को देखकर उनके हृदय में आशा और उत्साह के नये-नये अंकुर फूटने लगे। उन्होंने मुंशी हरि-सेवक के द्वारा विवाह का प्रस्ताव कराया। विवाह तय हो गया। मनोरमा राजी हो गई। क्या सोच कर, यह ईश्वर जाने।

चक्रधर जेल चले गये। परन्तु जेल जाकर भी वे शांत नहीं बैठे रहे। एक दिन जेल के कैदियों और दारोगा में झगड़ा हो गया। उसके प्राण संकट में पड़ गये। चक्रधर ने देखा खून हुआ चाहता है तो वह झपट कर कैदियों के बीच में पहुंचे। परन्तु कैदी उनकी बात सुनने के लिये तैयार नहीं थे। दारोगा ने कुरान की कसम खाई तो उसकी जान छूटी। परन्तु इसके कुछ ही देर बाद पूरा गारद वहाँ पहुंचा और कैदियों और फौजियों में अच्छी खासी लड़ाई छिड़ गई। चक्रधर के बड़ी चोट आई और यह दंगा बड़ी कठिनता से शांत हुआ। मनोरमा ने जब सुना कि चक्रधर को बहुत चोट आई है तो उसने राजा साहब को पोलिटिकल एजेन्ट जिमसाहब के पास दौड़ाया कि या तो चक्रधर रिहा कर दिया जाये, या यही हो कि किसी बाहर के अस्पताल में उसका इलाज हो। परन्तु जिमसाहब और राजा साहब की कहा-सुनी हो गई। राजा साहब के सम्मान पर चोट पड़ी तो उनसे सहा नहीं गया। उन्होंने अंग्रेज साहब का ऐसी पटकी दी कि वह चारों खाने चित गिर पड़ा। राजा साहब उसकी छाती पर सवार। खैर, साहब के गिड़गिड़ाने पर राजा ने उन्हें छोड़ दिया परन्तु इसका नतीजा यह हुआ कि चक्रधर को शहर के अस्पताल में रहकर इलाज कराने की छूट मिल गई। इस घटना के फलस्वरूप मनोरमा भी राजा साहब से प्रेम करने लगी।

परन्तु चक्रधर ने इकेले बाहर निकलने से इंकार कर दिया। वह वहीं रहकर अच्छे होने लगे। उनपर जेल में दंगा करने का मुकदमा भी चलाया गया। यह मुकदमा मनोरमा के भाई गुरुसेवकसिंह के इजलास में ही पेश हुआ और मनोरमा की कोशिशों से चक्रधर छूट गये। वे जब जगदीशपुर आये तो स्टेशन पर मनोरमा के कारण राज्य की ओर से उनका जोरदार स्वागत हुआ। मनोरमा चक्रधर से मिली तो उसने कहा कि वह देहातों में जाकर काम करना चाहता है। मनोरमा भी उसके साथ लोकसेवा के इस काम में शरीक होना चाहती था। इस पर चक्रधर ने मना किया परंतु मनोरमा तो चक्रधर के प्रेम की भूखी थी। प्रेमचंद ने उसके मन के द्वन्दों का बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है। जब चक्रधर ने मनोरमा से कहा कि इतनी हा कहो कि राज्य में प्रजा को सुखी और संतुष्ट रखे तो वह बोली '—मैं इकेली कुछ न कर सकूंगी। कम से कम आप इतना तो कर सकते हैं कि अपने कामों में मुझ से धन की सहायता लेते रहें। ज्यादा तो नहीं पांच हजार रुपये प्रतिमास आपको भेंट कर सकती हूं। आप जैसे चाहें, इसका उपयोग करें। मेरे संतोष के लिए इतना ही काफी है कि वे आपके हाथों खर्च हों। मैं कीर्ति की भूखो नहीं। केवल आपकी सेवा करनी चाहती हूँ।' परन्तु यह सेवा की बात आत्म-प्रताड़ना है यह उसी के इस कथन से स्पष्ट है—'आप मुझे दिल में जो चाहें समझें, मैं इस समय आपसे सब कुछ कह दूँगी। मैं हृदय से आपकी उपासना करती हूँ। मेरा मन क्या चाहता है, यह मैं स्वयं नहीं जानती। अगर कुछ कुछ जानती भी हूँ तो कह नहीं सकती। हाँ इतना कह सकती हूँ कि जब मैंने देखा कि परोपकार कामनायें धन के बिना निष्फल हुई जाती हैं, यही आपके मार्ग में

सबसे बड़ी बाधा है तो मैंने उसी बाधा को हटाने के लिए यह बेड़ी अपने पैरों में डाली। मैं जो कुछ कह रही हूँ वह अक्षर-अक्षर सत्य है। मैं यह नहीं कहती कि धन से मुझे घृणा है। नहीं मैं दरिद्रता को संसार की विपत्तियों में सबसे दुखदाई समझती हूँ लेकिन मेरी सुख-लालसा किसी भले घर में शांति हो सकती थी। उसके लिए मुझे जगदीशपुर की रानी बनने की आवश्यकता नहीं थी। मैंने केवल आपकी इच्छा के सामने सिर, झुकाया है, और मेरे जीवन को सफल बनाना आपके हाथ में है।'

यहाँ रह कर चक्रधर को पता लगा कि आगरे में फिर दंगा हो गया है, यशोदानंदन इस दंगे में मारे गये हैं और अहल्या गायब है। चक्रधर आगरा पहुँचा। ख्वाजा महमूद के यहाँ अहल्या उन्हें मिल गई। बेचारे ख्वाजा अहल्या को सारे शहर में खोजते थे और वह स्वयं उसके घर में बंद थी। अपने लड़के को खो कर भी वह आज रो नहीं रहे थे। लड़के को अपनी करतूत का सिला मिला। अब तो अहल्या ही उनकी लड़की है। यशोदानंदन का क्रिया-कर्म हुआ। तीसरे दिन चक्रधर और अहल्या का विवाह हो गया। कुछ दिन बाद चक्रधर अहल्या को लेकर अपने घर पहुँचा। उसकी मा निर्मला बहू को पूर्णतयः ग्रहण नहीं कर सकी। रोज चौका छूत होता। अंत में तंग आकर चक्रधर इलाहाबाद चला आया। कुछ समय बाद बनारस से एक तार आया कि मनोरमा सख्त बीमार है। तार पाकर मनोरमा और चक्रधर अपने नवजात शिशु को लेकर काशी पहुँचे। चक्रधर के आते ही मनोरमा अच्छी होने लगी। वहीं यह भेद खुला कि अहल्या बीस साल पहले खोई राजा की ही लड़की है। राजा विशालसिंह उसके पिता हैं। इस नई खोज ने चक्रधर की परिस्थिति ही बदल दी। अहल्या आमोद-प्रमोद में अपने पहले दिन भूल गई। शंखधर

( उनका पुत्र ) मनोरमा के लाड़-प्यार की छाया में बढ़ने लगा। चक्रधर इस इंद्रजाल से निकलना चाहता, परन्तु निकल नहीं पाता। अंत में एक दिन रात में चक्रधर सबको छोड़ कर चुपके से चल दिये।

कई साल बीत गये। अहल्या ऐश्वर्य से ऊब कर यशोदा-नंदन के खंडहर में चली आई। वहीं रहने लगी। शंखधर भी एक दिन जगदीशपुर छोड़ कर पिता को ढूंढने निकल गया। अब वह बीस वर्ष का तरुण था। उधर विशालसिंह की हिंसावृत्ति जागी। बीस साल बाद मिली हुई लड़की, नाती और दामाद को खो कर वह हिंसक हो उठे। प्रजा पर अत्याचार होने लगे। उधर मनोरमा ने भी राज का काम देखना छोड़ दिया। राजा साहब पाँचवीं शादी की फिक्र में थे कि शंखधर आ गया। परन्तु वह अधिक दिन जीवित नहीं रहा। भाग्यचक्र की विडंबना के कारण वह दैवी दुर्घटना का शिकार हो गया। अंत में चक्रधर भी आये। पुत्र-शोक से उनका हृदय विदीर्ण हो गया था। कुछ दिन बाद अहल्या, वज्रधर और निर्मला का देहांत हो गया। मनोरमा और चक्रधर टूटे हुए खंडहरों की तरह शेष रह गये।

यह स्पष्ट है कि 'कायाकल्प' की यह कथा भी बहुत उलझी हुई है। एक घटना पर दूसरी घटना, दूसरी घटना पर तीसरी घटना, इस प्रकार एक घटना का दूसरी घटना पर रंग चढ़ता चला जाता है। कदाचित् प्रेमचंद इस उपन्यास में अपनी 'रंगभूमि' की विजय-यात्रा को दुहराना चाहते हैं, परन्तु इस दृष्टि से वे असफल ही हुए हैं। उन्होंने एक अलौकिक प्रेम-रोमांस और एक दुर्बल लोकनायक के चरित्र को एक सूत्र में ग्रथित कर

दिया है, जो निःसंदेह अच्छा नहीं हुआ। कथाओं का सङ्गठन भी कुछ इस प्रकार है कि प्रेम-सूत्रों पर ही हमारी दृष्टि अधिक केन्द्रित होती है। वैसे कथा स्वच्छंदतावादी ढंग से आगे बढ़ती है। वह चरित्रों या मनोविज्ञान में प्रतिष्ठित नहीं है। परन्तु अंत में तो वह एकदम अस्वाभाविक हो जाती है। चक्रधर अपनी दुर्बलताओं से सजग होकर अहल्या को छोड़कर चला जाता है परन्तु इसके बाद उनकी कर्मण्यता क्यों कुंठित हो जाती है? प्रेमचंद इस विषय में मौन हैं। अंत में उसका लोकनायकत्व एकदम गायब हो जाता है और वह पुराने मजनूं के रूप में हमारे सामने आता है। प्रेमचन्द के उसके जीवन में दुःखांत को उभारना चाहा है, परन्तु वह ऐसा केवल काव्य-शैली के प्रयोग से सम्भव कर सके हैं। जान पड़ता है, इस रचना में प्रेमचन्द सामयिक घटनाओं से अधिक प्रभावित हुए हैं और वह कलात्मक संयम का निर्वाह नहीं कर सके हैं। १९२४ से १९२८ तक का समय हिन्दू-मुसलिम दंगों और देशी राज्यों की हलचलों का युग था। देशी राज्यों के संघर्ष को प्रेमचन्द 'रङ्गभूमि' (१९२४) में चित्रित कर चुके थे। परन्तु वह चित्र उन्हें अधूरा जान पड़ा। यह नया चित्र उतना शक्तिशाली नहीं है। उस पर अलौकिक प्रेम-रहस्य और घटना-वैचित्र्य का रङ्ग ही अधिक चढ़ा है। जान पड़ता है, उपन्यास के अंत में प्रेमचन्द स्वयं रास्ता भूल गये हैं और इस इन्द्रजाल को उन्होंने किसी प्रकार समाप्त कर दिया है।

'कर्मभूमि' (१९३२) में प्रेमचंद एक बार फिर अपनी प्रकृत भूमि पर दिखलाई देते हैं। उसके नायक अमरकांत 'कायाकल्प' के चक्रधर की छाप अवश्य है, परन्तु कथा-सङ्गठन में प्रेमचन्द कहीं अधिक संयत हैं। उन्होंने 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' की भाँति इस कथा को भी परिवार-निष्ठ किया है। कथा का क्षेत्र

'रंगभूमि' से कहीं छोटा है और वह अमरकांत के व्यक्तित्व के माध्यम से एक स्थान पर केन्द्रित भी हुई है। इस उपन्यास में उन्होंने सामयिक जीवन की एक दूसरी महत्वपूर्ण समस्या (अछूत-समस्या) को लिया है और उसके कई पहलुओं को हमारे सामने उपस्थित किया है। 'रङ्गभूमि' के विजय की भाँति अमरकांत भी एक दुर्बल लोकनायक है जो विजातीय नारी के प्रेम को पूर्ण रूप से अपना न सकने के कारण भाग खड़ा होता है और बहुत दूर अपने लिए एक कर्मक्षेत्र तैयार करता है। 'रङ्गभूमि' में सोफिया और क्लार्क हैं और यहाँ सकीना और सलीम। वहाँ विजय क कर्मक्षेत्र जसवंतनगर है, यहाँ 'चमारों का गाँव'। सत्याग्रह-संग्राम का संचालन जिस प्रकार हुआ है वह पांडेपुर की स्मृति ताजा कर देता है।

'प्रेमाश्रम', 'रङ्गभूमि' और 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द कई परिवारों को लेकर चलते हैं, परंतु कर्मभूमि में समरकांत का परिवार ही प्रमुख है। अमरकांत के पिता समरकांत काशी के धनी-मानी नागरिक हैं। उन्होंने दो विवाह किये। पहले विवाह से अमरकांत था, दूसरे विवाह से नैना। दोनों पत्नियों का देहांत हो चुका था। नैना और अमरकांत में बड़ा स्नेह था। कौन कह सकता था कि ये दो बच्चे सौतेले भाई-बहन हैं। अमरकांत पढ़ने में चतुर नहीं था। पर आठवें दरजे में पहुँचा ही था कि लाला समरकांत ने उसकी शादी सुखदा से कर दी। सुखदा के आते ही घर में संघर्ष शुरू हुआ और फलतः अपनी डाँवाडोल स्थिति को दृढ़ करने के लिए अमरकांत को व्यवहार के क्षेत्र में कूदना पड़ा।

प्रारम्भ में ही हम देखते हैं कि अमरकांत और उसके परिवार में विरोध है। अमरकांत चरखा चलाता है। समरकांत को यह जरा भी पसन्द नहीं। वह अकसर जलसों में भी जाया करता है। समरकांत

उस पर व्यंग करते हैं कि वह इस तरह मिट्टी में मिल जायेगा, पढ़े-लिखेगा कुछ नहीं। यह बात अमरकांत को लग जाती है और वह यह देता है कि वह किसी से कम नहीं है। मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में वह प्रांत में सर्वप्रथम आता है। परन्तु सुखदा चाहती है कि वह इन पचड़ों में अधिक नहीं पड़े, दूकान जा कर अपने पिता के धंधे में हाथ बटाये। नैना की मां रेणुका कुछ दिनों के लिए काशी-वास करने आती है, वह भी यही सलाह देती है। परन्तु अमरकांत अपने मित्र सलीम और डाक्टर शांतिकुमार के साथ गांव के दौरे करता है। एक बार वह अपनी टोली के साथ एक गाँव में पहुँचता है तो देखता है कि दो गोरे एक देहाती औरत पर बलात्कार कर रहे हैं और गाँव वाले जड़ चित्रों की भाँति बेबस हैं। ये लोग गोरों को काबू में लाते हैं और शहर लाकर पुलिस के हवाले करते हैं परन्तु वह औरत नाम-धाम बताये बिना चली जाती है। इस घटना ने अमरकांत और उसके साथियों को और भी दृढ़ कर दिया। उन्होंने सोचा—'इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई? जो गोरे सिपाही इंगलैंड के निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं, उनको इतना साहस कैसे हुआ। इसी लिये कि भारत पराधीन है। ये लोग जानते हैं कि यहाँ के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है, जो वह अनर्थ चाहें करें। कोई चूँ नहीं कर सकता। यह आतंक दूर करना होगा। इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा।' दो चार दिन बाद इन तरुण देशभक्तों को सार्वजनिक जीवन में उतरने का मौका भी मिल जाता है। एक दिन दो गोरे लाला समरकांत की दुकान से कुछ खरीद रहे थे कि इतने में एकाएक एक भिखारिन आई, और उसने छुरी निकाल कर दोनों गोरों पर वार किया और उनकी हत्या कर डाली। थोड़ी देर में पुलिस आई और उसने उस

औरत को गिरफ़्तार किया। यह औरत 'पगली' के नाम से प्रसिद्ध थी परन्तु यह वही थी जिस पर छः महीने पहले दो गोरों ने बलात्कार किया था। अमरकांत, डा० शांतिकुमार और सलीम पगली की ओर से मुकदमा लड़ते हैं। सुखदा और रेणुका भी इसमें भाग लेती हैं। सारे नगर में हलचल मच जाती है। अंत में जज उस पगली (मुन्नी) को छोड़ देता है। उसका पति उसके पुत्र को लेकर उसे अपने साथ गाँव लिया ले जाने आया है परंतु मुन्नो की भावुकता इस बात को स्वीकार नहीं करती कि वह भ्रष्ट होकर भी पति-पुत्र से चिपटी रहे। वह उनसे मिले बिना ही न जाने कहाँ चली जाती है।

इस बीच में फुरसत के समय अमरकांत पिता की दूकान पर बैठता। वहाँ उसे मालूम हुआ कि पिता ने किस छल-फरेब और किन हथकंडों से रुपया जोड़ा है। उसे व्यवसाय से ही घृणा हो गई। घर में उसकी नैना को छोड़ कर किसी से नहीं बनती। इस बीच में दो ऐसे चरित्रों से उसका संबंध हो गया जो बाद में उसके जीवन-सूत्र में ग्रथित हो गये। पहला काले खाँ नाम का गुण्डा था। उसके पास दस तोला चोरी का सोना बेचने आया था। अमरकांत ने चोरी का माल लेना अस्वीकार कर दिया और इसके लिये उसे अपने पिता का उलाहना सुनना पड़ा। दूसरा व्यक्ति पठानिन थी। उसका पति इसी दुकान पर पर नौकर था और उसकी मृत्यु पर उसे दुकान पर वसीका मिला करता। घर पर उसके एक लड़की सकीना थी जो विवाह योग्य थी। एक दिन जब समरकांत दुकान पर नहीं थे तब अमरकांत का सकीना की मा से परिचय हुआ और धीरे-धीरे वह सकीना के घर जाने लगा। दोनों परस्पर प्रेम करने लगे यद्यपि बूढ़ी पठानिन इन बातों से अभिज्ञ थी। अंत में एक दिन बूढ़ी पठानिन ने सकीना और अमर

को आलिंगन करते हुए देख लिया और उसने सीधे समरकांत तक यह बात पहुंचाई। समरकांत बहुत बिगड़े। जब उन्होंने अमरकांत कैफियत तलब की तो उसने सब कुछ स्वीकार कर लिया। परंतु समरकांत इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि अमर सकीना को उनके घर लाये। इधर अमरकांत और सुखदा के बीच में भी वह सद्भाव नहीं रहा था जो पति-पत्नी के बीचमें रहना चाहिये। अमरकांत अपने जीवन में कहीं भी मिठास नहीं पाता तो सकीना के पास दौड़ता। अंत में वह बाप से अलग होकर स्वतंत्र जीवन-यापन करता है। सुखदा भी उसके साथ थी और एक स्कूल में पढ़ाती थी, परंतु यह सब दोनों के मानसिक अलगाव को हटा नहीं सकता था। इसीलिए जब सकीना ने उससे कहा—'मुझे यकीन न आता था कि तुम अपने अब्बा जान से अलग हो गये। फिर यह भी सुना तुम सिर पर खद्दर लाद कर बेचते हो। मैं तो तुम्हें कभी सिर पर बोझ लादने न देती। मैं वह गठरी अपने सिर पर रख लेती, और तुम्हारे पीछे पीछे चलती तो अमरकांत को ये शब्द बड़े प्यारे लगे। उसने तड़प कर कहा—'चलो, कहीं छोटी सी कुटी बना लें, खुदगर्जी की दुनिया से अलग मेहनत-मज़ूरी करके जिंदगी बसर करें। तुम्हारे साथ रह कर फिर मुझे किसी चीज की आरजू नहीं रहेगी। मेरी जान मुहब्बत के लिए तड़प रही है, उस मुहब्बत के लिए नहीं, जिसकी जुदाई में भी विसाल है, बल्कि जिसकी विसाल में भी जुदाई है। मैं वह मुहब्बत चाहता हूँ जिसमें ख्वाहिश लज्जत है। मैं बोतल की सुर्ख शराब पीना चाहता हूं, शायरों की ख्याली शराब नहीं।'—परन्तु यह सुख-स्वप्न क्षण भर में ढ़ह गया और अमरकांत को काशी छोड़ कर दूर—बहुत दूर—पर्वतों के अंचल में बसे एक देहात में चला जाना पड़ा।

अमरकांत के चले जाने के बाद नगर में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उठ खड़ी हुईं कि समरकांत और उनके परिवार को मैदान में उतरना पड़ा। और कोई चारा था ही नहीं। बात इस तरह शुरू हुई। लाला समरकांत अपने ठाकुरद्वारे में कथा करा रहे थे। बड़ी भीड़ जमती। एकदिन भक्तजनो ने बताया कि कुछ अछूत कथा सुनने आते हैं और पीछे की कतार में बैठे रहते हैं। इस बात को लेकर बड़ी बमचख मची। लाला समरकांत ने ब्रह्मचारी जी का साथ दिया और शांतिकुमार ने अछूतों का। फलस्वरूप, मंदिर-प्रवेश आंदोलन शुरू हो गया। एक तरफ शांतिकुमार के नेतृत्व में अछूत थे, दूसरी तरफ ब्रह्मचारी जी। उनके पास कई पुजारी और पंडे थे। नैना ने भी अछूतों का साथ दिया। उसने ब्रह्मचारी से स्पष्ट कह दिया—तुम आधी रात तक इसी मंदिर में जुआ खेलते हो, पैसे-पैसे पर ईमान बेचते हो, झूठी गवाहियाँ देते हो, द्वार-द्वारे भीख माँगते हो, तुम्हारे तो स्पर्श से ही देवता को कलंक लगता है।

एक दिन दोनों दलों में झगड़ा हो गया। शांतिकुमार घायल हुए। अछूत और उनके नेता मार खा गये। गोलियाँ भी चलीं। अब सुखदा को भी जोश आ गया। वह भीड़ के आगे डट कर खड़ी हो गई और उसका नेतृत्व करने लगी। बन्दूकें छूटीं, कुछ लोग जख्मी होकर गिरे। भीषण दृश्य था। लोग जान देने पर उतारू थे। परन्तु इस दृश्य से प्रभावित होकर पुलिसवालों ने संगीनें उतार लीं। उधर लाला समरकांत भी कम प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने सुखदा को भीड़ का नेतृत्व करते हुए देखा तो घोषणा करने लगे—'मंदिर खुल गया है, जिसका जी चाहे दर्शन कर सकता है, किसी के लिए रोक-टोक नहीं है।' मंदिर खुल गया और अर्थियों को श्मशान पहुँचाया गया। इधर गंगा के तट पर

चितायें जल रही थीं, मंदिर उस उत्सव के आनंद में दीपकों
के प्रकाश से जगमगा रहा था। मानों वीरों की आत्मायें चमक
रही हैं।

इस बीच में सलीम डिपटी कलेक्टर बन गया और शहर के
प्रसिद्ध रईस सेठ धनीराम के पुत्र मनीराम से नैना का विवाह हो
गया। सुखदा का तो जीवन ही बदल गया था। उसका एक २
क्षण लोक-सेवा में बीतता। शांतिकुमार इस काम में उसके साथ
थे। उन्हें यह धुन लगी कि गरीबों के लिए सस्ते मकानों का प्रबंध
किया जाये। चंदे से यह काम नहीं हो सकता था। इस काम को
नगर की म्युनिसिपिलटी ही कर सकती थी। उन दिनों सलीम के
पिता हाफिज हलीम म्युनिसपिलिटी के प्रधान तथा लाला धनीराम
उपप्रधान थे। प्रस्ताव रखा गया परन्तु कुछ वोटों से गिर गया।
कुछ मेम्बरों के अपने बड़े-बड़े मकान थे। गरीब किरायेदारों की
लूट-खसोट पर ही उनकी रईसी चल रही थी। म्युनिसिपिलटी क
इस फैसले के विरुद्ध आंदोलन शुरू हुआ और नगर में हड़ताल
की घोषणा हुई। अगले दिन इस सिलसिले में सुखदा जेल चली
गई। परंतु आंदोलन फिर भी जारी रहा। शहर भर में हथियार-
बंद पुलिस का पहरा था। न कोई भाषण दे सकता था, न कोई
जलसा हो सकता था। एक दिन डा० शांतिकुमार भाषण देते हुए
गिरफ्तार हो गये। दूसरे दिन जलूस का नेतृत्व नैना के हाथ
था। वह भाषण दे रही थी कि मनीराम आ गये। उन्होंने उसे
बुरा-भला कहा। नैना नहीं मानी तो मनीराम ने उसे अपने
पिस्तौल का निशाना बना लिया। उस समय म्यूनिसिपिलटी
में सभा हो रही थी। टेलीफोन से खबर पाकर हाफिज साहब ने
मेम्बरों को खबर दी। सारे बोर्ड में सनसनी फैल गई। अंत में

जनता को जमीनें मिल गईं। सकीना, सुखदा, पठानिन, रेणुका सभी सत्याग्रह की सिलसिले में जेल जा चुके थे। कुछ दिन बाद इनकी रिहाई हो गई।

परन्तु अमरकांत भी कर्म-क्षेत्र से भाग नहीं गया है। भागना संभव भी नहीं है। यह संसार ही कर्मभूमि है। हम जितना भागते हैं, कर्म उतना हमें घेरता है। अमरकांत जिस गाँव में पहुँचा वह 'चमारों का गांव' था। मुन्नी वही रहने लगी थी। परन्तु अमरकांत को यह बात बहुत बाद में ज्ञात हुई। वहाँ जाकर अमरकांत उन्हीं का बन गया। उसने यह अथक चेष्टा की कि किसी प्रकार चमारों के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में सुधार हो। गाँव वाले मरी गाय का माँस बड़े चाव से खाते थे, परन्तु मुन्नी और अमर के प्रयत्नों से उन्होंने यह आदत छोड़ दी और कसम खाई। कुछ दिनों बाद सलीम इसी जिले का अफसर बन कर आया। अब वह सकीना का पुजारी था, पहला आवारा शायर सलीम नहीं था। इस इलाके के जमींदार एक महंत थे। उन्हें के चेले-चाटे कारकुन और मुखतार थे। ठाकुर-द्वारे में नित कोई न कोई उत्सव होता और आसामी देते-देते हार जाते। महंतजी कई वर्षों से बराबर लगान बढ़ा रहे थे और अब लगान इतना बढ़ गया था कि सारी उपज लगान के बराबर भी नहीं पहुंचती थी। लोग गाँव छोड़ने लगे। उस साल तो हाल और भी खराब था। गंगा के तट पर सभा हुई। अमरकांत गाँव वालों की ओर से महंत जी से मिला। उन्होंने बात टाल दी और सरकार से पत्र-व्यवहार करने की आशा बँधा कर मौन हो गये। इसी समय एक गर्म किसान नेता ( स्वामी जी ) सामने आये। अमर भी काम में लगा हुआ था। उसने लगानबंदी की सलाह देनी शुरू की। जिला के

हाकिम मि० गजनवी ने सलीम को हुक्म दिया कि वह जाकर अमरकांत को गिरफ्तार करे। अमरकांत की गिरफ़ारी और जेलयात्रा की बात सुनकर समरकांत भी उस इलाके में पहुंचते हैं। वे किसानों के बीच में घूम कर उनकी दशा देखना चाहते हैं। यहीं सलीम से उनकी भेंट होती है। स्वयं सलीम इस परिवार के बलिदान से प्रभावित होता है। वह मि० गजनवी के पास किसानों का सच्चा हाल लिख कर भेजता है और उसी रिपोर्ट की बिना कर वह सरकारी नौकरी से अलग कर दिया जाता है। सलीम की जगह मि० घोष आते हैं। लगानबंदी का आन्दोलन चलता रहता है। अब की नेतृत्व सलीम के हाथ में है और वह शीघ्र ही गिरफ्तार हो जाता है। समरकांत भी जेल में आते हैं। एक तरह से सारा परिवार ही जेल में इकट्ठा हो जाता है। काशी के सत्याग्रह में जो लोग गिरफ्तार थे वे भी आ जाते हैं। अंत में सरकार ने यह फैसला किया कि इस इलाके के प्रबंध के संबंध में एक कमेटी बनेगी। इस कमेटी में सलीम और अमरकांत चुन लिये गये। इस प्रकार समझौता होता है। सलीम और सकीना का विवाह हो जाता है और अमरकांत अपने परिवार में फिर सम्मान-पूर्वक प्रतिष्ठित हो जाता है। परन्तु अब यह सारा परिवार लोक-सेवी बन गया है।

अब रहा 'गोदान' (१९३६)। इस रचना को हम 'प्रेमाश्रम' (१९२२) के समकक्ष रख सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' गाँव पर पड़ने वाले बाहरी दबावों की कहानी है तो 'गोदान' भीतरी संघर्षों की। इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें 'प्रेमचंद' ने कथा-संगठन की एक ही धारा बहाई है। नगर-जीवन की कथा इसमें स्वतंत्र रूप नहीं चलती। वह प्रासंगिक कथा है—उसे कथा भी क्यों कहें, वह तो सभ्य नागरिक समाज का एक खाका, एक व्यंगचित्र

मात्र है। यह कहानी भी हटाई जा सकती थी और प्रेमचंद 'गोदान' को होरी की जीवन-कथा तक सीमित रख सकते थे, परन्तु कदाचित् विरोधी वातावरण उपस्थित करने के लिए प्रेमचंद ने नागरिकों की कहानी को भी थोड़ा-बहुत स्थान देना ही उचित समझा। 'प्रेमाश्रम' में शहर की कथा गाँव की कथा पर छा जाती है, परन्तु यहां गाँव की कथा के आगे शहर की कथा कुछ भी महत्व नहीं रखती। गाँव की कथा भी सांकेतिक रूप में चलती है। वास्तव में इस उपन्यास में प्रेमचंद ने केवल होरी और उसके परिवार को सामने रखा है। होरी के आंतरिक जीवन और उसके द्वन्दों के चित्रों के ऊपर ही सारा उपन्यास खड़ा है। कथा की यह एकसूत्रता उपन्यासको प्रभावशाली बना देती है। स्वयं प्रेमचंद ने लिखा है—"भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छोटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायेगा जिनपर उसने विजय पाई है।" जान पड़ता है, 'गोदान' को लिखते समय उपन्यास की यह परिभाषा प्रेमचंद के सामने थी। 'गोदान' होरी का जीवन-चरित्र है। वह न बड़ा आदमी था न छोटा आदमी। वस्तुतः आदमी बड़ा-छोटा होता ही नहीं। वह अपनी परिस्थितियों और अपने अंतर्द्वन्दों पर जिस मात्रा में विजय पाता है, उस मात्रा में वह बड़ा होता है। ऊपर की परिभाषा में कठिनाइयों पर विजय पाने की बात कही गई है। परन्तु विजय पाना उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी बड़ी बात ढंग से लड़ना है। सूरदास अंत में पराजित होता है। पाँडेपुर में मिलें चलती हैं। उसकी अपनी जमीन भी बच नहीं पाती। जान सेवक की सिगरेट की फेक्टरी सब को निगल जाती है। परन्तु क्या सूरे की पराजय पराजय है? क्या जीते-जो उसने हार मानी? होरी ही क्या

हार गया? वह जीवन-पर्यंत अपनी मान-मर्यादा निभाता रहा। उसके संगी-संबंधी अलग हो गये, परंतु उसकी भौहों पर बल भी नहीं पड़ा। उसकी एक अत्यंत तुच्छ—छोटी-सी किसानी इच्छा भी पूर्ण नहीं हुई। इतने बीघे खेत जोतने वाला सम्मानित किसान प्रयत्न करने पर भी अपने दरवाजे पर एक दुधारू गाय नहीं बाँध सका, मरा तो गोदान तो क्या इतने पैसे भी नहीं थे कि 'गोदान' के रूप में दिये जा सकें। परंतु क्या सचमुच होरी हारा? वह तो सारे समाज और सारे राष्ट्र को चुनौती दे गया।

होरी का परिवार सम्मिलित ढंग से रहता है। वह है, पत्नी धनिया, बेटा गोबर, दो लड़कियां रूपा और सोना, छोटे भाई हीरा और शोभा और हीरा की पत्नी पुनिया। यह छोटी सी गृहस्थी है जिसे जोड़ कर होरी अपना कर्तव्य निभाता चला जाता है। जिस गाँव में होरी रहता है, उसके जमींदार हैं राय-साहब अमरनाथ। गाँव में और भी आदमी हैं जो अपने-अपने वर्गों के प्रतीक हैं और होरी की जीवन-कथा में गुँथ गये हैं -भोला ग्वाला और उसकी लड़की झुनिया जिसे गोबर घर ले आया, साहूकार मगरू साह, कारिंदा नोखेराम, धर्मव्रती पंडित मातादीन जो चमार की लड़की सिलिया पर डोरे डालते हैं और ठाकुरदीन तथा झिंगुरी सिंह। गाँव की एक पूरी छोटी-सी दुनिया होरी के साथ संबंधित है।

होरी बिहारी गाँव का एक मामूली किसान है जो चार-पाँच बीघे जमीन जोतता है। उसकी छः संतानों मे अब केवल तीन जिन्दा हैं गोबर लड़का और दो लड़कियाँ सोना और रूपा। गाँव में उसका बड़ा मान है। लोग उसे महतो कहते हैं। वह कभी जमींदार राय साहब को भी सलाम कर आता है। उसके मन में एक गाय अपने दरवाजे पर बाँधने का बड़ा शौक है।

सोचता है—गऊ से ही तो द्वार की सोभा है, सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ तो क्या कहना। न जाने कब यह साध पूरी होगी। एक दिन होरी जब राय साहब के यहाँ जा रहा था तो भोला ग्वाले से उसकी भेंट हो गई। भोला विधुर था। होरी ने उसका मन टटोला। उसने सोचा, क्यों न भोला का झांसा दूँ, कह दूँ तुम्हारा विवाह ठीक करा दूँगा और एक दूध देने वाली गाय उससे उधार ले लूँ। उसने बिना कुछ सोचे भोला को सगाई की उम्मीद दिलाई। वह उसे मुफ्त भूसा देने के लिए भी तैयार हो जाता है। परंतु यहाँ भी एकदम मुफ्त नहीं, गाय की बात उसके मन में है। गोबर भूसा का टोकरा सिर पर रख कर भोला के यहाँ पहुँचाने जाता है तो उसकी चंचल लड़की झुनिया से उसका परिचय होता है। दोनों प्रेम-सूत्र में बँध जाते हैं। वह उसे अपने पुरवे के अंत तक पहुँचाने आती है।

अंत में भोला ने होरी को एक गाय उधार दे दी। होरी ने श्रद्धा-विह्वल नेत्रों से गाय को देखा, मानो साक्षात् देवी ने घर में पदार्पण किया हो। 'आज भगवान ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। यह सौभाग्य! न जाने किसके पुण्य प्रताप से।' परंतु घरेलू ईर्ष्या-द्वेष से होरी कैसे बचता? गाँव के सब लोग उसकी गाय देखने आये, केवल शोभा और हीरा नहीं आये। होरी तो कुटुम्बनिष्ठ । वह चाहता है कि वे एक बार आकर गाय को देख लेते, और प्रसन्न हो जाते। वह भी धन्य हो जाता। तीनों भाई अभी कुछ दिन हुए एक छत के नीचे रहते थे। तीनों अलग-अलग हो गये थे, परंतु होरी सबको लेकर चलना चाहता था। वह जो बड़ा थी, इसीलिए न होरी ने चुपके से अपनी छोटी लड़की रूपा को भाइयों के यहाँ भेज कर बुलाना चाहा, परन्तु धनिया ने देख लिया। वह बिगड़ कर

बोली—'बड़ा परेम है तो आप क्यों नहीं जाते ? अभी पेट नहीं भरा जान पड़ता है।' असफल रह कर होरी खुद हीरा के घर चला, परंतु उसने दोनों भाइयों में अपने विषय में जो बातें होती सुनीं, उन्हें सुन कर उलटे पैर लौट आया। भाई कह रहा था—बेइमानी का धन जैसे आता है, वैसे ही जाता है। भगवान चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर न रहेगी।' होरी ने लौट कर यह बात धनिया से कह दी। धनिया ने उसे लेकर एक बहुत झंझट खड़ा कर दिया।

परंतु एक दिन हुआ वही जो हीरा ने कहा था। भीतर बहुत उमस हा रही थी, हवा बंद थी। एक पत्ती भी न हिलती थी। होरी ने गाय को बाहर बाँध दिया। शोभा बीमार था। वह उसे देखने चला गया। आधी रात गये जब वह लौट रहा था, तो उसने हीरा को गाय के पास खड़े देखा। पूछने पर उसने कहा—'मैं हूँ दादा, तुम्हारे कौडे से आग लेने आया था।" होरी इतना सरल था कि उसने इसे अहो-भाग्य समझ लिया। दोनों भाइयों ने साथ २ तम्बाकू पी। हीरा के जाने के कुछ देर बाद गोबर घबड़ाया हुआ आया और उसने सूचना दी कि सुन्दरी (गाय) को कुछ हो गया है। देखने पर यह स्पष्ट हो गया कि किसी ने गाय को माहुर (विस) दे दिया है। परन्तु हीरा उसी समय लापता हो गया। खबर थाने तक पहुँची और उस पर गिरफ्तारी का वारंट कट गया। घर की तलाशी का भी हुक्म हुआ। परन्तु अब होरी के परिवारिक संस्कार जागे। हीरा के घर की तलाशी होगी तो नाक उसी की कटेगी। उसके पास रुपये होते तो इसी वक्त पचास रुपए लाकर दारोगा जी के चरणों पर रख देता। कहने-सुनने से गाँव के कुछ लोग रुपया देने को तैयार हो गये। तीस पर मामला तय

हुआ। होरी ने उसी दिन कागज लिखने का वादा किया। परन्तु जब वह दारोगा को रुपये दे रहा था तो धनिया बीच में पड़ गई। वह झूठी इज्जत की भावना के पीछे कर्जदार क्यों बने! नागिन की तरह फुफकार कर वह बोली—'...ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत, जिसके घर में चूहे लोटें वह भी इज्जत वाला है! दारोगा तलाशी ही तो लेगा। ले ले जहाँ चाहे तलाशी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन। वाह री तेरी इज्जत!' दारोगा भी उनके तेज को कुंठित नहीं कर पाता। —हीरा के लापता हो जाने के बाद होरी उसके खेत पर खेती करने लगा। वह अपने खेतों में धान न रोप सका, किंतु उसने हीरा की पत्नी पुनिया के खेत में रात-रात भर काम करके धान रोपे। उसके घर में इस बात को लेकर कलह मचा हुआ था, परन्तु होरी पुरानी चाल को निभाना चाहता था। धनिया और गोबर भी उससे फिर गये परन्तु उसने परवाह न की।

उसी समय एक नई घटना हुई जिसने होरी की जिम्मेदारियाँ बढ़ा दी। झुनिया के गर्भ रह गया और गोबर की सलाह से वह होरी के यहाँ आ खड़ी हुई। स्वयं गोबर डर कर भाग गया, परन्तु होरी ने गोबर की करतूत अपने सिर ली। पहले तो कुछ बिगड़ा भी, परन्तु जब झुनिया ने उसके पैर पकड़ कर कहा—'दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है, मुझे दुरा-दुराओ मत' तो होरी का दिल पसीज गया। इसके बाद झुनिया होरी के यहाँ ही रही। इस पर होरी को पंचायत का तावान के सौ रुपये भी देने पड़े। धनिया इस जुर्माने को अदा करने को तैयार नहीं थी, परन्तु होरी ने सब अनाज उठा कर दे दिया। धीरे-धीरे उसकी आर्थिक दशा बिगड़ती गई। ईमानदार और सच्चे आदमी के लिए इस संसार में कहीं भी जगह नहीं है। होरी

वैसे ही शोषित था, उसके आदर्शवाद ने उसे और भी नीचे गिरा दिया। अंत में वह मजदूर बन गया। किसान के जीवन की सब से बड़ी बिडंबना यही है कि वह मजदूर बन जाये। परन्तु होरी के लिए कोई रास्ता ही नहीं रह गया था। वह अपने को संतोष ता है--कि मजूरी करना कोई पाप नहीं है। मजूर बन जाय तो किसान हो जाता है। किसान बिगड़ जाय तो मजूर हो जाता है। मजूरी करना भाग्य में न होता तो यह सब विपत क्यों आती? क्यों गाय मारती? क्यों लड़का नालायक निकल जाता?

होरी इसी तरह तिल-तिल जल कर निबाहे चला जाता है, परन्तु इस प्रक्रिया में वह पिस जाता है। उसका बेटा गोबर मिल में नौकर हो गया है, वह उससे खीज कर अपनी पत्नी और बच्चे को अपने साथ ले जाता है। गाँव की धरती ही जैसे उसके विरुद्ध हो जाती है। अपने पराये बन जाते हैं। उसे कर्ज लेकर बेटी का विवाह बूढ़े के साथ कर देना होता है। सारा विरोध सहते हुए भी वह सिलिया चमारी को अपने यहाँ आश्रय देता है। अंत में हीरा लौट आता है। उसने इन कई वर्षों गऊ मारने का प्रायश्चित किया है। दोनों भाइओं में खूब मिलन हुआ।

परन्तु होरी का पिसना जारी रहा और एक दिन पिसा करते-करते उसे लू लग गई। धनिया पहुँची तो होरी बस क सका--'मेरा कहा सुना माफ करना धनिया। अब जाता हूँ गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपए क्रिया-कर्म में लग जायेंगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिला येगी? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।' होरी को उठा क घर लाया जाय लोग इकट्ठे हुए। चारों तरफ से आवाज

रही थी-'गोदान करा दो, अब यही समय है।' धनिया यंत्र की तरह उठी, आज जो सुतली बेच कर बीस आने पैसे इकट्ठे किये है उन्हें उठा लाई और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली--'महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।'-और वह पछाड़ खा कर गिर गई।

होरी की इस कथा के साथ नगर की कथा भी जुड़ी हुई है, परन्तु होरी के जीवन की यह उदात्त गाथा ही क्या 'गोदान' को अमर बनाने के लिए कम है?

ऊपर हमने वृहद् चित्रपटी लेकर चलने वाले सामाजिक राजनैतिक उपन्यासों पर विचार किया। वस्तुतः इन्हें राष्ट्रीय आन्दोलनों के चित्र कहा जा सकता है। उनमें समाज बहुत ही थोड़ा आया है। 'कायाकल्प' में हिन्दू-मुसलमानों के सहयोग और विद्वेष की समस्या है और एक तरह का सेवाश्रम भी संगठित हो गया है। हिन्दू-मुसलमान अनाथ-बालकों की समस्या को भी उसमें उठाया गया है। 'प्रेमाश्रम' में तेजशंकर और पद्मशंकर के बलिदान से हमें हिन्दू समाज के धार्मिक ढकोसलों के प्रति विद्रोह की भी प्रेरणा मिलती है। 'कर्मभूमि' को अछूत समस्या को हम बहुत कुछ सामाजिक समस्या भी कह सकते हैं यद्यपि प्रेमचन्द ने इस समस्या के राष्ट्रीय रूप का ही अधिक चित्रण किया है और उसे जनता में राष्ट्रीय जाग्रति की पूर्व पीठिका बनाया है। 'रंगभूमि' और 'गोदान' में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे हम सामाजिक कह सकें। सच तो यह है कि प्रेमचंद सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं को अलग-अलग लेकर चले हैं। 'प्रेमाश्रम' (१६२२) के साथ वे राजनैतिक आन्दोलनों के क्षेत्र में आये और उन्होंने ग्रामीण समाज की एक वृहद् चित्रपटी हमारे

हमारे सामने रखी। संयुक्त प्रांत के समसामयिक किसान आन्दोलनों से उन्हें यह प्रेरणा मिली, ऐसा स्पष्ट है, परन्तु गांव के उजड़ने और अधिकारियों और जमींदारों के अत्याचारों की कथा के साथ-साथ उन्होंने एक जमींदार परिवार के विघटन की कथा भी चलाई और ज्ञानशङ्कर के रूप में एक शक्ति-शाली पतनोन्मुख चरित्र का प्रभावशाली चित्र भी हमारे सामने उपस्थित किया। लखनपुर ने कथा ने ज्ञानशङ्कर के चारित्रिक पतन की कथा को लगभग ढ़क लिया। ध्यानपूर्वक देखने के यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सेवासदन' की भाँति 'प्रेमाश्रम' का यह भाग भी चारित्रनिष्ठ है। 'रङ्गभूमि' (१९२४), 'कायाकल्प' (१९२८) और 'कर्मभूमि' (१९३१) में हमें यह चरित्रनिष्ठता नहीं मिलती। इन रचनाओं में प्रेमचंद राष्ट्रीय समस्याओं और आन्दोलनों एवं घटनाओं के प्रवाह में बह गये हैं। श्रेष्ठ उपन्यास में घटनाएँ चरित्रों के भीतर से विकसित होती हैं। इन उपन्यासों में ऐसी बात नहीं है। इसके विपरित इनमें चरित्र घटनाओं द्वारा निर्मित एवं विकसित होते हैं और घटनाएँ हो सब कुछ हो जाती हैं। फलतः चरित्र की रूपरेखाएँ उतनी स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण नहीं हो पातीं। राष्ट्रीय समस्याओं, आन्दोलनों और कथाओं ने चरित्रों (पात्रों) को एकदम दबा दिया है। इसमें संदेह नहीं कि सूरदास, विजय, रानी जाह्नवी, ठाकुर विशालसिंह, अमरकांत, सुखदा और अन्य बीसियों चरित्र व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ सामने आते हैं और हमारे हृदय में अपना स्थान बना लेते हैं परन्तु कथा के विस्तार और आन्दोलनों के सर्वाङ्गपूर्ण चित्रण पर बल होने के कारण उनमें प्रेमचंद की वह कलम दिखलाई नहीं देती जो हमें 'सेवासदन' और कुछ सीमा तक 'प्रेमाश्रम' के गायत्री-ज्ञानशङ्कर प्रसंग में मिलती है। इसीलिए आलोचकों का

एक वर्ग इन राजनैतिक आन्दोलन-प्रधान-उपन्यासों से उतना आश्वस्त नहीं है और उनके आधार पर प्रेमचंद को उपन्यास-लेखन कला की पहली कोटि नहीं देना चाहता। परन्तु अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' (१९३६) में प्रेमचन्द चरित्रनिष्ठ उपन्यास की ओर फिर लौटे हैं और उनके विरोधी भी उनकी कला, उनके संयम और सन्तुलन और उनकी चारित्रिक अंतर्दृष्टि पर मुग्ध हो गये हैं।

परन्तु 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' का प्रेमचन्द की उपन्यास-कला और हिन्दी के उपन्यास-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। यही चार उपन्यास तो हमारे पिछले पन्द्रह वर्षों के ऐतिहासिक आलेखन हैं। हिन्दी साहित्य से यदि इन्हें हटा लिया जाये तो हम १९२०-२१ से लेकर १९३६ तक के राष्ट्रीय जागरण, सामयिक समस्याओं और प्रगतिशील विचारधाराओं से किस प्रकार परिचित हो सकेंगे! समसामयिक नगर-गांव और समाज के अनेक वर्गों और अनेक संस्थाओं का जो जीवित-जाग्रत चित्र हमें प्रेमचंद के इन बृहद् उपन्यासों में मिलता है, वह न शरतचद में मिलता है, न रवीन्द्रनाथ में, न कन्हैयालाल मुंशी में, न और किसी अर्वाचीन भारतीय कथाकार में। इन उपन्यासों में जहाँ हमें लगानबंदी के आंदोलनों, जमींदारों, कानूनगोओं, अधिकारियों और पुलिस के अत्याचारों, गाँव और नगर पर प्रकृति के अनेक प्रकोपों, जनता के अंधविश्वासों, नगर-म्यूनिसपिलटियों का सुधार-सम्बन्धी हलचलों, औद्योगीकरण की समस्याओं, अछूतों की सामाजिक और राष्ट्रीय मजबूरियों और सुधारवादियों की तत्सम्बन्धी हलचलों, देशी राजाओं की निरंकुशता और प्रजा के विद्रोहों हिन्दू-मुसलमान दंगों और तज्जन्य कठिन परिस्थितियों, मध्यवित्त की आपदाओं और सम्मिलित परिवार की गिरती हुई

दीवारों का विस्तृत चित्र मिलता है, वहाँ रोचक और धाराप्रवाहिक कथा के साथ सैकड़ों चरित्र भी हमारे सामने आते हैं। प्रेमचंद के इन उपन्यासों के नायक तो महत्वपूर्ण हैं ही, परन्तु उपनायक, खलनायक, सामान्य नर-नारी और किसान-मजदूर तक कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। सामान्य जीवन और सामान्य मानवों की इतनी युग-विशाल चित्रपटी पहली बार प्रेमचंद के इन उपन्यासों के द्वारा ही हिन्दी में आई है। यह अवश्य है कि उसकी कोई सशक्त परंपरा हिन्दी में नहीं चल सकी। कदाचित् पचासियों चरित्रों को लेकर देश के विशाल जन-जीवन को चित्रित करने की क्षमता परवर्ती कथाकारों में नहीं थी। धर्मवादी ढोंगियों, बेईमान पुलिसवालों, लुटेरे ज़मींदारों, बदकार कारिन्दों से ये रचनायें भरी पड़ी हैं। व्यंग के भीतर से प्रेमचंद ने समाज और राष्ट्र को जो अंतर्दृष्टि, जो क्रांति-चेतना दी है, वह सचमुच बहुत बड़ी चीज है यद्यपि हम अभी तक उसके महत्व को पूर्णतयः समझ नहीं सके हैं। समाज के गिरते हुए स्तंभों के चित्रण में प्रेमचंद की व्यंगपूर्ण कला इतनी खिलती है कि हम सहसा चमत्कृत हो जाते हैं। अभी तक हमने उनके आदर्शवादी, हिमशिखर जैसे उत्तुंग और समुद्र जैसे गहरे महानायकों को ही अपना हृदय दिया है, उन्होंने समसामयिक जीवन की जिस क्षुद्रता, जिस छल-कपट, जिस जर्जरता का चित्रण किया, वह हमारी आंखों से ओझल रहा है। परन्तु वही उनकी शक्ति है और वही इन उपन्यासों को ऐतिहासिक महत्व प्रदान करती है। पुरानी पीढ़ी की गली-सड़ी मान्यताओं, प्रतिक्रियावादी मनोवृत्तियों, सांस्कृतिक दुर्बलताओं और अपने को छलने वाली द्वन्द्वात्मक स्थितियों को उन्होंने पहचाना है तो नई पीढ़ी की स्तब्ध मनोवृत्ति, नये खून के उबाल, नये देवताओं और नये आदर्शों को भी उन्होंने वाणी दी है।

आज देश स्वतंत्र है और कदाचित् कुछ दिनों बाद वे समस्यायें नहीं रहेंगी जिन्हें प्रेमचंद ने इन राष्ट्रीय जागरण के बृहद् महाकाव्यों में सहृदयता से उभारा है परन्तु उनके वे महान् आदर्श तो मिट नहीं सकेंगे जिन्हें उन्होंने प्रेमशंकर, चक्रधर, विजय, सूरे, अमरकांत और होरी में विजड़ित किया है। उनके 'कायाकल्प' की सती रखेल लौंगी, उनके 'प्रेमाश्रम' का नये खून का किसान बलराम, उनकी 'रंगभूमि' की तेजोमयी मातृमूर्ति जाह्नवी और प्रेममयी सोफिया, उनकी 'कर्मभूमि' की आंतरिक द्वन्द्वों से पीड़ित भोली-भाली नैना और अत्याचार पर मर मिटने वाला कालेखां और 'गोदान' के होरी और धनिया—ये और इन जैसे बीसियों पात्र तो हमें सदैव अनुप्राणित करते ही रहेंगे। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद के उपन्यास हमारी इस पीढ़ी को दुर्बलता और शक्ति को आनेवाली सभी पीढ़ियों के लिए चिंता और प्रेरणा का विषय बना देते हैं।

———

६

# प्रेमचंद की उपन्यास-कला

प्रेमचंद की उपन्यास-कला पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी रचनाओं पर सामूहिक रूप से विचार करें और साथ ही उनके रचनाकाल और प्रेमचंद की कला के विकास-क्रम पर भी ध्यान रखें। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद जैनेन्द्र या अज्ञेय की भांति प्रयोगवादी नहीं हैं। उन्होंने भाषा-शैली, टेकनिक और कथा-संगठन के संबंध में अधिक प्रयोग नहीं किये हैं। एक जगह उन्होंने लिखा है कि उन्हें नई कला सीखना नहीं आता। अतः स्पष्टतयः उनकी प्रतिभा निर्मात्री है, प्रयोगशील नहीं। परन्तु इससे हम यह नहीं कह सकते कि उनकी कला का कोई रूप है ही नहीं या उसके क्रमविकास का कोई ढांचा खड़ा नहीं किया जा सकता। प्रेमचंद जैसे जागरूक कलाकार से हम इस बात की आशा ही नहीं कर सकते।

परंतु उनकी कला पर विचार करने से पहले उसके संबन्ध में कुछ प्रारंभिक बातें जानना आवश्यक हैं। उपन्यास के पश्चिमी शास्त्र के आधार पर हम उनकी रचनाओं की परीक्षा करें तो हमें पता लगता है कि उनके उपन्यासों में कला-संबन्धी अनेक त्रुटियाँ है। कहीं टेकनिक कमजोर रहता है, कहीं अंत अतिशयोक्तिपूर्ण (Melodramatic) और नाटकीय बन जाता है, चरित्रों के विकास के द्वारा स्वाभाविक रूप से उसका निर्माण नहीं होता। असंभाव्य परिस्थितियाँ, आश्चर्य-जनक घटना-संगठन, उबा डालने वाले लंबे वाद-

विवाद और वार्तालाप, निरर्थक वर्णन और भद्द हँसी-मजाक— ये कुछ ऐसी बातें हैं जो प्रेमचंद की रचनाओं में बड़ी मात्रा में मिल जाती है और प्रेमचंद-साहित्य के पारखियों के सामने लांछा के रूप में उपस्थित की जाती हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद के उपन्यासों की विस्तृति कुछ अधिक है। उसका कला-रूप उतना संगठित नहीं है। और कदाचित् उनके बड़े उपन्यास संक्षिप्त होकर अधिक कलात्मक बन जायँगे। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के कलाकार कला के उस रूप में विश्वास नहीं करते थे जो आज हमारा आदर्श बन रहा है। डिकेन्स, थेकरे, गेल्सवर्दी, अनातोले फ्रांस, रोमां रोलां, टाल्सटाय और अन्य अनेक कलाकारों में वे सब दुर्गुण पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं जिनको हम प्रेमचंद की लांछा के रूप में उपस्थित करते हैं। यही कलाकार प्रेमचंद के आदर्श थे। प्रेमचंद ने उपन्यास की कला इन्हीं से सीखी, उन्होंने शास्त्र के माध्यम से उसे ग्रहण नहीं किया। फलतः जहाँ उनकी शक्ति उन्नीसवीं शताब्दी के इन महान कलाकारों की शक्ति है, वहाँ इनकी दुर्बलताएँ भी उनमें पर्याप्त मात्रा में आ गई हैं। पश्चिमी उपन्यासकारों में कला का ऐसा रूप क्यों था, यह भी जान लेना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि उस समय साहित्य के प्रति वैसा वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित नहीं हुआ था जैसा आज है। दूसरी बात यह कि उस समय साहित्यकार का पहला ध्येय मनोरंजन था और सारी उन्नीसवीं शताब्दी में जासूसी, ऐयारी, तिलिस्म, राजकीय रहस्य, भय और वितृष्णा को लेकर चलने वाले उपन्यासों की धूम मची रही और इनमें आश्चर्य-जनक कथा-गुंफ और असंख्य घटनाओं की प्रधानता रहती। गंभीर कथाकारों को भी अपनी कला को जनापेक्षित बनाना पड़ता। जनता कथा-वैचित्र्य और असंभाव्य घटनाओं में विश्वास करती थी।

फिर कथाकार उन्हें कैसे छोड़ देता? उसे जनरुचि को भी देखना था और निम्नकोटि के घटनापूर्ण और चमत्कार-प्रधान उपन्यासों से होड़ लेनी थी। तीसरी बात यह है कि उस समय तक उपन्यास-लेखन प्रारंभिक सीढ़ियाँ ही पार कर रहा था और उसमें कला की वह परिपूर्णता नहीं आई थी जो बाद में आई। डिकेन्स की रचनायें प्रेमचंद को अधिक प्रिय जान पड़ती हैं और इन रचनाओं मे अतिशयोक्तिपूर्ण कला (Melodramatic art) और असंभाव्य की प्रधानता है। आलोचक इस बात में एकमत हैं कि डिकेन्स अपने उपन्यासों का प्रारम्भ जिस कुशलता से करते हैं और जिस प्रकार कथा के सूत्र फैलाते हैं वह तो प्रशंसनीय हैं परन्तु वे अंत तक पहुँचते-पहुँचते अपने आदर्शवाद के कारण अस्वाभाविक बन जाते हैं और कथा के सूत्र कलापूर्ण ढंग से सिमट नहीं पाते। हार्डी लगभग प्रेमचंद के समसामयिक हैं। उनकी रचनाओं में भी यही सब विशेषताएं पूर्ण रूप से मिलती हैं। अंत के उपन्यासों में हार्डी की कला अधिक प्रौढ़ हो गई है और उसमें विल्की कोलिन्स का प्रभाव भी समाप्त-प्राय है, परन्तु प्रारंभिक उपन्यास शिथिल, विशृंखल, चमत्कार-प्रधान और असंभाव्य घटना पूर्ण हैं। प्रेमचंद की अंतिम कृति 'गोदान' भी उनकी रचनाओं की सामान्य त्रुटियों से मुक्त है।

प्रेमचंद ने अपने किशोर-जीवन में जिस कथा-साहित्य को पढ़ा था उसने उनके कथा-संबंधी दृष्टिकोण को अवश्य प्रभावित किया होगा। तिलिस्मे होशरुबा और देवकीनंदन खत्री एवं रेनाल्ड के उपन्यासों से परिचित पाठक जानते होंगे कि इन रचनाओं में वे सब चीजें प्रचुर मात्रा में उपस्थित हैं जिन्हें हम प्रेमचंद की कला के लिए दूषण मानते हैं। इस वीथिका को जान कर यह आश्चर्य नहीं होता कि प्रेमचंद अपने पूर्ववर्ती लेखकों

की भद्दी और अनगढ़ प्रवृत्तियों से पूर्णतयः बच नहीं सके। परंतु इसमें संदेह नहीं कि जैसे-जैसे वह प्रौढ़ता प्राप्त करते गये वैसे-वैसे वह इन निम्न कोटि की कला-प्रवृत्तियों से ऊपर उठते गये। 'कर्मभूमि' (१९३२) में वे एक संयत कलाकार के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास का क्षेत्र 'रंगभूमि' (१९२४) से बहुत छोटा है। परंतु फिर भी कथा की रूपरेखा सुनिश्चित बनाये रखने के लिए प्रेमचंद ने उपन्यास को कई भागों में विभाजित कर दिया है। यह स्पष्ट है कि यहाँ प्रेमचंद जागरूक कलाकार हैं। वह कथा प्रवाह में बह नहीं रहे। उन्होंने सज्ञान रूप से अत्यंत सतर्कता से कथा की अनेक रूपरेखाएं उभारी हैं। 'गोदान' (१९३६) में वह कला के क्षेत्र में एक कदम और आगे बढ़े हैं। मृत्यु ने उनका साथ नहीं दिया, दिया होता तो 'मंगलसूत्र' में उन्हें पूर्णरूप से कलाकार पाते। 'गोदान' में ही वे कलात्मक सौष्ठव और रचनात्मक प्रौढ़ता के ऊँचे शिखर पर पहुँच गये हैं। अपनी अगली रचना में वह निःसंदेह एक महान कलाकार के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते। अभी उनकी संभावनाओं का अंत नहीं हुआ था। 'गोदान' में इन संभावनाओं की एक झलक पाकर आज भी हम प्रेमचंद के कलात्मक विकास के संबंध में पूर्णतयः आश्वस्त हैं।

कथासंगठन, वर्णन और पात्रनिरूपण (चरित्रचित्रण) उपन्यास के तीन महत्वपूर्ण अंग हैं। प्रेमचंद ने उपन्यास लिखकर उपन्यास लिखना सीखा था। पूर्व और पश्चिम के सभी प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कथाकारों की रचनाओं से वे परिचित थे। इन रचनाओं को पढ़ कर उन्होंने उपन्यास की टेकनिक और उसकी कला पर बहुत कुछ सोचा जान पड़ता है। उपन्यास और कहानी उनकी अभिव्यंजना के सबसे महत्वपूर्ण माध्यम थे और

इनके संगठन के संबंध में प्रेमचंद अत्यंत सचेष्ट रहे। समाज-सुधार और राष्ट्रीय जागरण उनके विषय थे और उन्होंने बड़े उत्साह से इन विषयों पर कलम चलाई और बहुधा कलापक्ष की अपेक्षा विचार-पक्ष की प्रधानता रखी। कला उनके लिए स्वयं-साध्य नहीं थी। वह प्रगतिशील विचारों और नई राष्ट्रीयता का संदेशवाहक थी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद मूलतः कथाकार थे। कहानी उन्हें इसलिए प्रिय थी कि वह कहानी थी। कथाकार से हम पहले तो यही आशा करते हैं कि वह सुन्दर और मनोरंजक कहानी दे। शेष बातें बाद में आती हैं। प्रेमचंद ने इस पहली बात को पहली बात ही रखा। इसीलिए उनके उपन्यासों और उनकी लगभग सभी कहानियों में कथारस अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित है। प्रारंभिक रचनाओं में वह कलाकार की दृष्टि से असफल रहे हों, तो आश्चर्य की बात नहीं, परंतु धीरे धीरे उन्होंने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली और उनकी अंतिम रचनायें संसार की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के समकक्ष रखी जा सकती हैं।

### कथा-संगठन

कथा-संगठन की दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यासों की दो श्रेणियाँ की जा सकती हैं। प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यास प्रधानतयः एक ही प्रमुख कथा को लेकर आगे बढ़ते हैं। वरदान, निर्मला, प्रतिज्ञा, सेवासदन और गबन की यही स्थिति है। राजनैतिक उपन्यासों में दो या अधिक कथा-सूत्र गुंफित मिलते हैं। यह गुंफन किस प्रकार का है इस पर हम आगे विचार करेंगे। प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान इस श्रेणी में आते हैं। कथासंगठन की दृष्टि से ये दो भिन्न वर्ग हैं। परंतु जहाँ एक ही कथा प्रधान है, वहाँ भी कथा में अवांतर प्रसंग रखे

गये हैं। प्रेमचंद एक संपूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित करना चाहते हैं। वह शरतचंद की तरह दो या तीन या चार व्यक्तियों की कहानियाँ लेकर नहीं चलते। शरतचंद के उपन्यास मनोवैज्ञानिक हलचलों और घात-प्रतिघातों के कारण दीर्घसूत्री हैं। वैसे उनमें कथा-वस्तु की अधिक विस्तृति नहीं मिलती। प्रेमचंद ने ( 'वरदान' को छोड़ कर ) कहीं भी केवल प्रेम को अपना विषय नहीं बनाया है और 'वरदान' में भी उन्होंने पात्रों का वह त्रिकोण स्थापित नहीं किया है जो शरतचंद और हार्डी के उपन्यासों का प्राण है। वह एक संपूर्ण सामाजिक चित्र को लेकर आगे बढ़े हैं। इन सामाजिक उपन्यासों में प्रेमचंद एक परिवार की कहानी या एक से अधिक परिवारों की कहानी लेकर चले हैं और इसीलिए जहाँ मुख्य पात्रों की कथा उनमें है, वहाँ गौण रूप से अन्य पात्रों की कथायें भी आ जाती हैं। राजनैतिक उपन्यासों में भी परिवारों की कथा ही कही गई है। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर की पारिवारिक कथा है, 'रंगभूमि' में जानसेवक, विनय और ताहिर अली के परिवार हैं, 'कायाकल्प' में चक्रधर और राजा विशालसिंह और 'कर्मभूमि' में लाला समरकांत के परिवार प्रमुख कथाओं से संबंधित हैं। 'गोदान' में होरी का परिवार है। इस प्रकार प्रेमचंद कहीं भी केवल नायक-नायिका और उनके इष्ट-मित्रों मात्र की कथा नहीं कहते। यह परिवारिक पृष्ठभूमि प्रेमचंद के उपन्यासों की अपनी विशेषता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रेमचंद के उपन्यास व्यक्तिनिष्ठ नहीं, परिवार-निष्ठ हैं। परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें व्यक्ति महत्वपूर्ण नहीं है।

'सेवासदन' की कथावस्तु का संगठन करते हुए प्रेमचंद ने अपनी दृष्टि सुमन पर केन्द्रित कर रखी है और फलस्वरूप वही

उपन्यास को एकसूत्रता प्रदान करती है। 'सेवासदन' को चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा गया है और इसमें संदेह नहीं कि उपन्यास के पहले पृष्ठों में लेखक सुमन के चारित्रिक पतन के लिए बड़ी सतर्कता से भूमि तैयार करता है। परंतु जब सुमन वेश्या बन जाती है तो सुमन का चारित्रिक विकास भी समाप्त हो जाता है और वह वेश्या-समस्या की प्रतीक बन जाती है। परवर्ती कथा में प्रेमचंद ने अनेक घटनाओं और चरित्रों को अत्यंत आकर्षक ढंग से गूँथ दिया है परंतु उनका सामाजिक स्वर और उनका नैतिक उद्देश्य छिप नहीं सका है। सुमन का परिवर्तन उसके पिता कृष्णचंद, उसकी बहन और अन्य अनेक पात्रों के भाग्य में क्या उलझनें उपस्थित कर देता है, यह उपन्यास में विस्तारपूर्वक दिखलाया है। परंतु कदाचित् प्रेमचंद का सामाजिक दृष्टिकोण इस बात से अधिक स्पष्ट है कि उन्होंने चौक से वेश्याओं को हटाने की समस्या को इतना बड़ा विस्तार दे दिया है कि पाठक ऊब जाता है। इस प्रसंग में उन्हें समाज के नेताओं के खोखलेपन पर व्यंग करने का भी अवसर मिल जाता है। हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और। हमारी मध्यवित्ती नेतागिरी अनेक द्विविधाओं में फँसी हुई है। उसकी 'कथनी' और 'करनी' में बड़ा अंतर रहा है। उपन्यासकार के लिए यह परिस्थिति अत्यंत आकर्षक है। प्रेमचंद इस क्षेत्र में अपनी औपन्यासिक प्रतिभा का पूरा-पूरा प्रयोग करते हैं। परंतु 'सेवासदन' से यह साफ दिखलाई देता है कि प्रेमचंद जीवन के द्रष्टा अधिक हैं, जीवन के व्याख्याता कम। वह समाज को सुधारवादी की आँखों से देखते हैं और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभा कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। 'सेवासदन' के आरंभ में प्रेमचंद सुमन के चरित्र की विकास-भूमि को लेकर जिस प्रकार

आगे चले थे उसी प्रकार यदि वह चलते रहते तो उपन्यास का रूप कुछ और ही होता। 'निर्मला' में निर्मला कथा के केन्द्र में प्रतिष्ठित है, ठीक उसी तरह जिस प्रकार 'सेवासदन' में सुमन। इसमें घटनाओं का संगठन कुछ इस प्रकार से हुआ है कि हम धीरे-धीरे निर्मला के चरित्र के नये पक्षों से परिचित होते हैं। 'दोहाजू' की समस्या समस्या के रूप में केवल अंत में हमारे सामने खुल कर आती है। अंत में निर्मला परिस्थितियों के चक्र के नीचे पिस जाती है और उसका जीवन निरर्थक और महाशून्य बन जाता है। एक दिन वह सब ओर से लांछित होकर यह संसार छोड़ देती है। यह स्पष्ट है कि 'निर्मला' की कथा सुमन की कथा से कहीं अधिक मार्मिक बन पड़ी है। वह अधिक केन्द्रित भी है। प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों में 'निर्मला' का कथा-संगठन सबसे श्रेष्ठ है। वस्तुतः कथासंगठन है ही नहीं, चरित्रों के घात-प्रतिघात में कथा स्वयं खुलती चली जाती है। 'प्रतिज्ञा' में कथा की यह केन्द्रीयता है तो परंतु उतनी नहीं। कथा का लक्ष्य विधवा-विवाह का समर्थन है, परंतु कथा का यह लक्ष्य केवल प्रारंभ में ही हमारे सामने उपस्थित कर दिया जाता है। वैसे सारी कथा-विधवा पूर्णा के भाग्य की विडंबना है—जिस समाज में नारी केवल रूप जीवी होकर जी कसती है उस समाज में विधवा पुरुष के छल प्रपंचों और उसकी वासना का लक्ष्य बनती रहे तो आश्चर्य की बात ही क्या है?

'गबन' की परिस्थिति कुछ दूसरी है। उपन्यास का प्रारम्भ एक साधारण पारिवारिक समस्या से होता है, परंतु वह समस्या अत्यन्त शीघ्र भयावह रूप धारण कर लेती है। मध्यवित्ती समाज में धन और आभूषण की मान्यता के कारण कैसी-कैसी घटनायें

घटित हो जाती हैं, 'गबन' इसका उदाहरण है। परन्तु प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में परिस्थितियों की विडम्बना और चरित्र की दुर्बलताओं के घात-प्रतिघात पर ही अधिक बल दिया है। यहाँ प्रेमचन्द समाज-सुधारक की अपेक्षा कलाकार के रूप में ही हमारे सामने अधिक आते हैं। कथा-संगठन में भी परिस्थितियों पर ही अधिक बल है। सारा कथानक एक महान जलप्रवाह की भाँति उमड़ता, बहता चलता है। दुर्बल-चरित्र रमानाथ इस प्रवाह के विरुद्ध बहने में असमर्थ है। अंत में जालपा के महान त्याग के कारण उसका उद्धार होता है। जो हो, यह स्पष्ट है कि 'गबन' में कथा-संगठन उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना चरित्र-चित्रण, यद्यपि गेल्सवर्दी से प्रभावित होकर प्रेमचन्द सामाजिक शक्तियों को पात्र के भाग्य-निर्माण में महत्वपूर्ण सिद्ध करने का भी बराबर प्रयत्न करते रहे हैं। मध्यवित्ती रमानाथ अपनी पत्नी जालपा और अपने सब परिचितों से छल करने पर भी महावित्ती नहीं बना पाता। वह उपन्यास के अंत में भी मध्यवित्ती अल्प-साधन सम्पन्न व्यक्ति ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों में 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा' में अपेक्षाकृत अधिक सङ्गठित कथावस्तु है और उसे लेखक ने कला के हाथों से सँवारा भी है। ये छोटे उपन्यास हैं और इन्हें हम लम्बी कहानी भी कह सकते हैं। इन उपन्यासों में सामाजिक स्वर कुछ दबा-दबा है। 'सेवासदन' में प्रेमचन्द चारित्रिक उपन्यास लिखते-लिखते सुधारवादी उपन्यास लिख गये हैं और इसलिये उनका कथा-संगठन भी चरित्र-निष्ठ न होकर परिस्थिति-निष्ठ है। 'गबन' की कथा पूर्णतः चरित्र-निष्ठ है। वस्तुतः उसे परिस्थितिनिष्ठ भी कहा जा सकता है। दुर्बल चरित्र रमानाथ परिस्थितियों की बाढ़ को रोक ही नहीं पाता।

कथा-संगठन की दृष्टि से 'निर्मला' और 'गबन' शेष दोनों उपन्यासों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और दोनों में प्रेमचन्द कथा को जीवन-प्रवाह के रूप में देखते हैं। वह कोई बँधी-सधी योजना लेकर नहीं चलते और उनके उपन्यास जीवन-चरित्र बन जाते हैं।

राजनैतिक उपन्यासों में प्रेमचन्द ने दो या अधिक कथानक साथ-साथ रखे हैं। ये दो या अधिक कथाएं साथ-साथ समानांतर चलती रहती हैं। 'प्रेमाश्रम' में पहली बार प्रेमचन्द ने इस दिशा में प्रयोग किया है। एक ओर जमींदार परिवार है और दूसरी ओर लखनपुर के किसान-कर्मकर। ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर, कमलानन्द, गायत्री इत्यादि पहली कहानी से सम्बन्धित हैं। मनोहर, बलराज, कादिर आदि दूसरी कहानी से। पहली कहानी के नायक ज्ञानशङ्कर हैं और उनके चारित्रिक पतन की कहानी पुस्तक के पहले पृष्ठ से आरम्भ होकर अंतिम पृष्ठ तक बराबर चली जाती है। दूसरी कहानी में 'लखनपुर' ने व्यक्तित्व प्राप्त कर लिया है। लखनपुर के अनेक पात्र हमारे सामने आते हैं। गाँव के पीड़न और शोषण के सारे चित्र हमारी आँखों के सामने फिर जाते हैं परन्तु कोई परम्परागत नायक हमारे सामने नहीं आता। थोड़ी देर के लिए मनोहर और उसका तेजस्वी पुत्र बलराज अवश्य नायकत्व के सिंहासन तक उठ जाते हैं परन्तु गाँव की कथा में प्रेमचन्द गाँव के जीवन के चित्र को प्रतीक स्वरूप में ही उपस्थित कर सके हैं। दोनों कथाएँ लगभग अलग-अलग चलती हैं। यह गाँव ज्ञानशंकर की अमलदारी में है और गाँव का उत्पीड़क गौस खाँ उसी का कारिन्दा है। दोनों कहानियों की बांच की यह शृंखला इसीलिए कमजोर है। प्रेमचंद ने अभी तक पारिवारिक कहानियाँ ही लिखी हैं। उनके सामाजिक उपन्यासों के इस रूप से हम परिचित हैं और इसी से 'प्रेमाश्रम' में भी उन्होंने ज्ञानशंकर-गायत्री-

कमलानन्द की कहानी को प्रधानता दे दी है जो पारिवारिक गुत्थियों को लेकर चलती है। सामाजिक कहानियों में प्रेमचन्द परिवार के ही चित्रकार हैं और अपनी इस कला को उन्होंने 'प्रेमाश्रम' में भी प्रदर्शित किया है। वस्तुतः 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द मध्यवित्तों तक ही सीमित नहीं रह सके हैं। उन्होंने किसानों के जीवन की दुःख-गाथा उपन्यास के पृष्ठों पर उतारनी चाही है और विवादी स्वर के रूप में उन्हें जमींदारों के ऐश्वर्यपूर्ण परंतु असंयमित, अतिचारी जीवन की कहानी भी कहनी पड़ी है। जहाँ कहानीकार वर्ग-संघर्ष को अपना विषय बनाता है वहाँ दोनों वर्गों के संपूर्ण चित्र देना उसके लिए अनिवार्य-सा हो जाता है। जमींदार को अपने असंयमित और अतिचारी जीवन के लिये अधिक-अधिक रुपया चाहिये और किसान उसकी थैली भरते-भरते थक कर अंत में एक दिन विद्रोह कर देता है। जमींदार के साथ सरकार की सारी शक्तियाँ हैं और वह उसे पीस डालना चाहता है। परंतु गाँव फिर भी जीता रहता है। ज्ञानशंकर के चारित्रिक पतन को विस्तारपूर्वक कह कर प्रेमचंद ने गाँव के विद्रोह के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार कर दी है, परंतु यह कहना भी गलत नहीं होगा कि वह कथा के प्रवाह में बह गये हैं।

'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने अपनी कथा के लिए और भी बड़ा क्षेत्र चुना है। इसी से उसमें कई कथानक हैं। जिस कथानक पर उपन्यास का नाम करण हुआ है वह सूरे और जानसेवक के संघर्ष से संबंध रखता है। वस्तुतः वह खेती और उद्योगधंधों का संघर्ष है। विनय इस कथा में केवल अंत में आता है और अपनी उच्छृंखलता के कारण आत्महत्या कर लेता है। विनय की कथा बहुत कुछ स्वतंत्र, सब से अलग चलती है। प्रेमचंद चाहते तो

उसे अलग स भी लिख सकते थे। वह मुख्यतः सोफिया-विनय की रोमांचक प्रेमकथा है, परंतु उसमें देशी राज्यों के आंतकवाद और प्रजाविद्रोह की कहानी भी गूंथ दी गई है। ताहिरअली और उनके परिवार की कथा एक तीसरी कथा है। ताहिरअली जान-सेवक का गुमाश्ता और मुहर्रिर है। उसके परिवार में हम एक शोषित, अर्थपीड़ित मध्यवित्ती दीनदार मुसलमान परिवार की प्रतिक्रिया देखते हैं। सूरे और जानसेवक के बीच में ताहिरअली श्रृंखला का काम देता है। जानसेवक के ईसाई परिवार का भी एक विस्तृत चित्र देना प्रेमचंद नहीं भूले हैं। यदि हम विनय की कथा को अलग कर दें तो शेष कथा उद्योगीकरण की शक्तियों और गाँव का पुराने रूढ़िवादी जीवन की प्रतिद्वन्दता उपस्थित करती है। 'प्रेमाश्रम' में गाँव अपनी प्रकृत रूप में है। 'रंगभूमि' में नगर के उद्योगधंधों ने गाँव को हड़पना चाहा है और गाँव की धरती बोल उठी है। उद्योगपति के पीछे जमींदार, अफसर, पुलिस, महाजन सभी हैं। प्रेमचंद यह जानते हैं कि सुविधा रहने पर जमींदार ही उद्योगपति बन जाते हैं। किसान न जमींदार से मोर्चा ले सकता है, न उसके भाई उद्योगपति से। वह धीरे-धीरे सब कुछ खोकर मजदूर बन जाता है। यह परिस्थिति की विडंबना है। समाज और राष्ट्र इसके लिए जिम्मेवार है। सूरे गाँव की मूल प्रकृति का प्रतीक है परंतु वह मर कर भी गाँव को बचा नहीं पाता। उपन्यास के अंत में सूरे को खेल में हरा कर प्रेमचंद ने विरोधी शक्तियों के संगठित रूप की ओर इंगित किया है। तीन-चार कथानकों को एक साथ लेकर, उन्हें परस्पर गुंफित कर लगभग एक हजार पृष्ठों के विस्तार तक चलाना सहज कार्य नहीं है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचंद इस कला में पूरी तरह सफल हुए हैं। यदि प्रेमचंद उद्योगीकरण की समस्या तक

ही सीमित रहते तो भी उनकी रचना अभूतपूर्व होती। अपनी रचना को देशव्यापक चित्रपटी देकर उन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा समसामयिक कलाकारों को चकित कर दिया तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

'कर्मभूमि' का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा है। उसमें दो कथानक हैं। एक कथानक का संबंध नगर की मंदिरप्रदेश और अछूत-समस्या से है और दूसरे का लगानबंदी के आंदोलन से। दोनों कथासूत्र दो सुदूर देशों से संबंधित हैं और केवल अमरकांत के व्यक्तित्व के माध्यम से जुड़े हुए हैं। अमरकांत नगर से भाग कर गाँव की शरण लेता है और यहाँ वह धीरे-धीरे नए कथासूत्रों का सूत्रधार बन जाता है। जहाँ तक कथासंगठन का विचार है, इस प्रकार की योजना उपन्यास को शिथिल बना देती है। कदाचित् प्रेमचंद इससे परिचित हैं और इसी से उन्होंने उपन्यास को कई खण्डों में विभाजित कर दिया है। युग-सूत्री कथानक को लेकर प्रेमचंद का यह नया प्रयोग हमारे सामने आता है। यह स्पष्ट है कि यहाँ भी प्रेमचंद चरित्रचित्रण पर सामाजिक और राजनैतिक लक्ष्य को प्रधानता दे देते हैं। वे एक नई सामाजिक और राजनैतिक समस्या को सामने लाना चाहते हैं और इसी लिए वह चमारों के गाँव की अवतारणा करते हैं और मुन्नी और अमरकांत को वहाँ पहुँचा देते हैं। फिर १९२८-२९ के लगानबंद आंदोलन की ओर उनका ध्यान जाता है और फलस्वरूप अमरकांत चमारों की समस्या को सुलझाता २ लगानबंदी आंदोलन का नायक बन जाता है। पाठक को यह सब परिवर्तन अमरकांत के चारित्रिक बीज-तत्त्वों के माध्यम से नहीं मिलता। फलतः उसे प्रेमचंद की प्रतिभा में संदेह होने लगता है। इसमें संदेह नहीं कि 'गोदान' को छोड़ कर अन्य अनेक रचनाओं में प्रेमचंद कला की आवश्-

यकताओं की अपेक्षा सामयिक आंदोलनों से अधिक प्रभावित हुए हैं। उनके उपन्यासों के कथा-संगठन की व्याख्या केवल इसी दृष्टि से की जा सकती है।

'गोदान' में प्रेमचंद की दृष्टि वर्ग-संघर्ष या किसी सामाजिक अथवा राजनैतिक आन्दोलन पर नहीं है। इसलिये 'गोदान' के कथा-संगठन की आवश्यकताएँ भी बदल जाती हैं और इन बदली हुए आवश्यकताओं के अनुरूप 'गोदान' का ढाँचा भी बदल गया है। 'प्रेमाश्रम' से 'गोदान' की तुलना करने पर यह परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है। 'गोदान' में न किसी लखनपुर की कथा है, न कोई पांडेपुर का संघर्ष है। वह व्यक्ति होरी के आंतरिक जीवन की कहानी है, परन्तु होरी का आंतरिक संघर्ष उसके बाह्य सघर्ष को समेट कर चलता है। 'प्रेमाश्रम' में जमींदार है, 'रंगभूमि' में उद्योगपति है, परंतु 'गोदान' में ये दोनों महत्त्वपूर्ण नहीं। वैसे गोदान के राय साहब जमींदार भी हैं और उद्योगपतियों के मित्र भी हैं। ऊपर से वह कांग्रेसी हैं और इसलिए किसान होरी के लिये परिस्थिति और भी विषम हो जाती है। परन्तु यहाँ महाजन दातादीन कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वह तिल-तिल करके होरी की अंतः स्फूर्ति का शोषण कर लेता है। अंत में जब होरी मृत्यु-शय्या पर पड़ा है तो यही दातादीन पुरोहित के रूप में उपस्थित होता है और धनिया से गोदान की आशा करता है। धनिया रो कर कहती है कि उसके पास पिछले दिन की कमाई के बीस आने पैसे हैं और उन्हीं पैसों को वह गोदान के रूप में उपस्थित करती है। दातादीन ने उन पैसों को लौटाया नहीं, यह हम संदर्भ से जानते हैं। इस प्रकार महाजन की अत्यंत भयावह मूर्ति के साथ 'गोदान' का पटाक्षेप होता है। वैसे 'गोदान' होरी के किसानी संस्कारों और उसके कर्तव्याकर्तव्यों

की कहानी है परन्तु उसमें होरी के बाह्य संघर्षों का भी एक पक्ष है।

परंतु 'गोदान' में भी प्रेमचन्द नागरिक जीवन का एक चित्र या स्केच उपस्थित कर देते हैं। उसे हम एक अलग कथानक नहीं कह सकते। रायसाहब, मालती, खन्ना और मेहता को लेकर प्रेमचन्द ने कांग्रेसी जमींदार, धनपति, मिल-मालिक, नई नारी, प्रोफेसर और सम्पादक के रूप में कुछ ऐसे टाइप उपस्थित किये हैं जो किसी भी बड़े नगर में मिल सकते हैं। भारतीय सामयिक जीवन का यह भी एक पहलू है। और किसान होरी की कथा कहते हुए प्रेमचन्द इसे भूल नहीं पाते। कुछ आलोचकों का दृष्टि में यह कथा एकदम प्रासंगिक है और होरी की जीवन-गाथा से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में यह बात ठीक भी है। गोदान का जो संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें रायसाहब और उसके मित्रों की कहानी हटा दी गई है, परन्तु उससे 'गोदान की मार्मिकता में वृद्धि ही हुई है। अपने पिछले उपन्यासों में प्रेमचन्द ग्राम और नगर की कहानी साथ-साथ ले कर चले थे और इस नये उपन्यास में भी वह अपने दृष्टिकोण को पूर्णतयः छोड़ नहीं सके। कदाचित् उनका अगला उपन्यास 'मंगलसूत्र' हमें इस दशा में नई और अधिक सुव्यवस्थित चीज देता। 'गोदान' में प्रेमचन्द कला की अत्यन्त उच्च भूमि पर उठ गये हैं। उनके विवरण कहीं अधिक संयमित हैं और उनका कथानक कहीं अधिक केन्द्रित और सङ्गठित है। 'गोदान' में प्रेमचन्द की कला घटना-प्रधान या चमत्कार-प्रधान नहीं है। उनकी प्रवृत्ति घटनाओं की नाटकीयता की ओर भी नहीं है। सच तो यह है कि प्रेमचन्द की यह अंतिम रचना कला की दृष्टि से उनकी शेष सभी रचनाओं से भिन्न है और ऊँची है। उसमें कोई

भी ऐसा प्रसंग नहीं कल्पित है जो पाठक को असंभव और अयथथार्थ जान पड़े। 'गोदान' को हम हिंदी के यथार्थवादी धारा की सर्वश्रेष्ठ कृतियों के समकक्ष रख सकते हैं।

संक्षेप में, प्रेमचन्द के कथानकों के सम्बन्ध में यह परिस्थिति है। उनके प्रारम्भिक उपन्यास ऐसे हैं जो एक ही कथानक लेकर चलते हैं, परन्तु यह कथानक एक पूरे परिवार से सम्बन्धित रहता है और केवल दो-तीन पात्रों की द्वन्दात्मक स्थिति उपस्थित करके समाप्त नहीं हो जाता। उनके सारे सामाजिक उपन्यासों में एक ही कथा-सूत्र चल रहा है। और जहाँ अन्य प्रसंग आते हैं वहाँ वे प्रसंग-मात्र हैं, वे एक पूरे कथानक का गौरव नहीं ग्रहण करते।' उनके अंतिम उपन्यास 'गोदान' की परिस्थिति इससे भिन्न नहीं है। परन्तु 'गोदान' की पूर्णता 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' या 'गबन' ही की पूर्णता से भिन्न है। इन उपन्यासों में कथानक मुख्यतः घटना-प्रधान है, वह चरित्रनिष्ठ नहीं बन सका है। 'गोदान' में सारे कथानक में एक मात्र होरी का ही प्रसार है। शेष उपन्यासों में प्रेम चंद दो तीन या कई कथासूत्र लेकर चलते हैं। 'प्रेमाश्रम','कायाकल्प', और 'कर्मभूमि' में दो कथासूत्र हैं और 'रंगभूमि' में तीन या कई। दो-सूत्री उपन्यासों में कथानक की तीन स्थितियाँ है। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर और लखनपुर की दो अलग-अलग कथायें समानान्तर चल रही हैं। 'कायाकल्प' में चक्रधर और रानी देवप्रिया की कथाओं को विचित्र ढंग से उलझा दिया गया है। रानी देव प्रिया की कथा रहस्यमय प्रेमरोमांस-मात्र है परन्तु उसमें से चक्रधर को निकालना लगभग असंभव है। उस कथा को हटा देने पर शेष कथा सामयिक आन्दोलनों का चित्र बन जाती है। परन्तु इस शेष कथा में भी एकसूत्रता नहीं है। चक्रधर के साथ कथा भी बहती चलती है। 'कर्मभूमि' में दो नितांत भिन्न

कथाओं को अमरकांत के व्यक्तित्व के माध्यम से एक सूत्र में ग्रथित कर दिया गया है। दो कथाओं को लेकर चलने वाले उपन्यासों के लिए यह आदर्श स्थिति है। 'रंगभूमि' की परिस्थिति इन सब रचनाओं से भिन्न है। उसमें तीन चार कथानक अत्यंत सूक्ष्म और निर्बल सूत्रों से बंध हुए चल रहे हैं। इन कथा-सूत्रों में सूरे की कथा ही उपन्यास के पहले पृष्ठ से अंतिम पृष्ठ तक बराबर चलती रहती है। विनय और सोफिया की प्रेम-कथा और विनय के राजनैतिक जीवन की कहानी को भी बड़ा विस्तार मिला है। परन्तु अन्य कथाएं उतनी विस्तृत नहीं हैं। उदाहरण-स्वरूप, ताहिरअली की कथा 'रंगभूमि' के महासमुद्र में एक द्वीप की भाँति है। संपूर्ण उपन्यास में उसकी व्याप्ति नहीं है। इसी प्रकार ईसाई परिवार की कथा चित्रण-मात्र है। अंत में सोफिया और क्लार्क का परिणय भी दिखाया गया है परन्तु उसे स्केच मात्र कह सकते है। दो लंबी समानान्तर कथाओं को लेकर बीच में छोटे बड़े स्केच या छोटे कथानक भर देना यह 'रंगभूमि' की कथानक-संबंधी कला की व्याख्या है। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद बहुत व्यापक क्षेत्र को लेकर चले हैं परन्तु फिर भी उनकी रचना विश्रृंखल नहीं जान पड़ती। इससे उनकी कथासंगठन-संबंधी अद्भुत प्रतिमा का ही पता चलता है। इन सभी बड़े उपन्यासों में प्रेमचंद ने राष्ट्र के उन महान आन्दोलनों को अपना विषय बनाया है जो नगर और ग्राम में भिन्न २ वात्याचक्र उठा रहे थे और कदाचित् इस द्वन्द्वात्मक स्थिति और वर्ग-संघर्ष को स्पष्ट करने के लिए उन्हें दो कथानकों को साथ-साथ चलाना पड़ा। जब वे उन्होंने पात्र के जीवन के भीतर बैठ कर उसके आंतरिक घात-प्रतिघातों की कथा कहनी चाही तब वे फिर एक मात्र कथानक लेकर उतरे।

इन सभी बड़े उपन्यासों के प्रधान पात्र दुर्बल हैं। रमानाथ ('गबन') चक्रधर ('काया-कल्प') विनय ('रंगभूमि') अमरकांत ('रंग-भूमि') और होरी ('गोदान') सभी मूलतः दुर्बल-चरित्र हैं। परन्तु होरी दुर्बल-चरित्र होकर भी परिस्थितियों से भागता नहीं, उनसे जम कर लड़ता है और इस जम कर लड़ी हुई लड़ाई की कहानी प्रेमचंद ने 'गोदान' में अत्यंत विस्तार पूर्वक कही है। इस लड़ाई में होरी हार जाता है परन्तु उसकी मृत्यु हमें चुनौती देती है, हमें परिस्थितियों से युद्ध करने के लिए ललकारती है। 'रंगभूमि' का सूरदास भी उसी मिट्टी का बना है जिस मिट्टी का होरी बना है, परन्तु वह प्रेमचंद का सबसे अधिक आदर्श-वादी पात्र है। उसमें मानवीय दुर्बलताएं हैं, परन्तु वह दुर्बल-चरित्र नहीं है। वह परिस्थितियों से जूझता है और हारता है तो इस लिए नहीं कि वह दुर्बल-चरित्र है। समाज का ऐतिहासिक विकास ही कुछ इस प्रकार हो रहा है कि वह जीत ही नहीं सकता। परन्तु उसके लिए जीवन सचमुच एक क्रीड़ाभूमि या रंगभूमि—है। होरी एक बड़े कुटुम्ब को लेकर किसी आदर्श के लिए नहीं, अपनी जिम्मेवारियों को पूरा करने लिए लड़ रहा है। उसकी मनोभूमि धरती के अधिक पास है। अन्य दुर्बल-चरित्र प्रधान पात्र कथानक को अपने साथ खींचते चलते हैं। वे मध्यवित्ती पात्र हैं और उनका मन द्वन्दों से पूर्ण है। वे बराबर अपने कर्मक्षेत्र में पराजित होते हैं और भागते हैं। अंत में वे सफल भी हो जाते हैं परन्तु उनकी सफलता उनके चरित्र के भीतर से नहीं आती। इन सभी पात्रों में प्रेमचंद ने प्रेम और देशनिष्ठा का अंतर्द्वन्द्व दिखलाया है। अपने प्रेमपात्र से भाग कर वे पात्र दूर प्रदेशों में चले जाते हैं और वहाँ जनता के बीच में अपना कार्यक्षेत्र ढूंढ़ते हैं। इस प्रकार कथानक का रूप

बहुत कुछ स्वतः निश्चित हो जाता है। अपने पहले उपन्यास 'वरदान' में ही प्रेमचंद प्रताप के रूप में इस प्रकार के नायक की सृष्टि कर चुके थे। चक्रधर, विनय और अमरकांत प्रताप के ही नवीन, परिवर्द्धित और परिमार्जित संस्करण हैं। प्रताप विधवा वृजरानी को स्वीकार करने का साहस नहीं कर पाता और भाग कर कर्मयोगी सन्यासी बन जाता है। चक्रधर, विनय और अमरकांत भी क्रमशः मनोरमा, सोफिया और सकीना को स्वीकार नहीं कर पाते और भाग कर देशसेवक और महान आन्दोलनों के सूत्रधार बन जाते हैं, परन्तु या तो नेतृत्व की पूर्ण क्षमता न होने से क्षेत्र से हट जाते हैं या केवल उपन्यासकार की कल्पना के बल पर आकस्मिक रूप में सफलता प्राप्त करते हैं। कथासंगठन की दृष्टि से इन उपन्यासों की स्थिति समान है। इसी प्रकार कथानक की दृष्टि से 'निर्मला' और 'प्रेमाश्रम' की लखनपुर वाली कथा की परिस्थिति में कोई अंतर नहीं है, यद्यपि उनके विषयों में आकाश-पाताल का अंतर है। 'प्रेमाश्रम' के ज्ञान शंकर और 'गबन' के रमानाथ के पतन की कहानी में भी साम्य ढूंढ़ा जा सकता है।

परन्तु सब कुछ कह देने के बाद यह भी कह देना पड़ेगा कि कथासंगठन की दृष्टि से प्रेमचंद असफल नहीं हैं। जिन उन्नीसवीं शताब्दी के महान कलाकारों को उन्होंने अपना आदर्श माना है, उनसे कम सुगठित कथानक उन्होंने हमें नहीं दिये। उनके उपन्यासों के पाठक कथाप्रवाह में बह जाते हैं और दो या तीन या कई कथानकों की बात उन्हें स्मरण ही नहीं रह जाती। अपने कथानकों में प्रेमचंद ने क्या-क्या गूँथ दिया है, जीवन, प्रकृति और मानव-स्वभाव की क्या-क्या झाँकियाँ दिखाई हैं, यह कहना कठिन ही नहीं असंभव है। वह बहुत बड़ी चित्रपटी लेकर चले और उन्होंने उसे दूर तक निभाया है। कई कथासूत्र चलाने से वे

छोटे नहीं हो जाते। वह केवल प्रेम की कहानी नहीं कह रहे और उनके उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष और गाँव-नगर की द्वन्द्वात्मक स्थिति के कारण उनके लिए एक ही कथानक तक सीमित रहना लगभग असंभव था।

## चरित्र-चित्रण

कथा-संगठन प्रेमचन्द के उपन्यासों की सब से बड़ी शक्ति नहीं है। उसकी सबसे बड़ी शक्ति उनके चरित्र हैं। प्रेमचंद के आलोचकों ने उनकी इस शक्ति को या तो पहचाना नहीं है या इस क्षेत्र में वे रविबाबू और शरच्चंद की प्रतिभा से इतने आतंकित हैं कि प्रेमचंद की महत्ता किस दिशा में है, वे यह समझ ही नहीं पाते। रविबाबू की 'चोखेर बाली' या 'गोरा' अथवा शरच्चंद के 'गृहदाह' या 'चरित्रहीन' में चरित्र-चित्रण की जिस कला के दर्शन होते हैं, वह प्रेमचंद की कला से नितांत भिन्न है। हम पहले कह चुके हैं कि शरच्चंद के उपन्यास रवि बाबू की 'चोखेरबाली' या 'गोरा' की उपन्यासकला के ही विकास हैं। मन के घात-प्रतिघात का जैसा क्षण-क्षण का लेखा 'चोखेरबाली' में मिलता है, या 'गोरा' में दर्शन, काव्य, कला और देशविदेश-संबंधी अनेक पांडित्य-पूर्ण वाद-विवाद कथानक में गूँथ दिये जाते हैं और पात्र के चरित्र के अनिवार्य अंग बन जाते हैं, वैसी चीजें प्रेमचंद में नहीं मिलतीं। परन्तु हमें प्रेमचंद की सीमाओं और उनके क्षेत्र को भी देख लेना होगा। प्रेमचंद का कोई भी संपूर्ण उपन्यास ऐसा नहीं है जिसमें सभी पृष्ठों में अवैध प्रेम का प्रसार हो। गृहदाह जैसी कुछ परिस्थितियाँ रंगभूमि के सोफिया और विनय के संबंध में मिलती हैं जब वे दोनों पास रह कर भी मन के बंधनों के कारण दैहिक बंधन में बँध नहीं पाते। परन्तु सोफी और विनय अविवाहित हैं। वह समाज-भय

से प्रताड़ित नहीं हैं। उनके मन के निरोध दूसरे हैं। रविबाबू और शरच्चंद्र के पात्र उच्चवर्गीय हैं या उनमें मध्यवर्गीय संस्कार पूर्ण रूप से प्रस्फुटित नहीं होते। उनके चरित्र पर या तो रवि बाबू के उच्च साहित्यिक और कलात्मक संस्कारों, कवि-सुलभ कल्पनारंजिता और दार्शनिकता की छाप है या शरच्चंद्र के आवारागर्दी प्रेम-व्यवसायी जीवन की जिसकी लोक-सेवा केवल होम्योपेथी की पुड़ियों तक ही सीमित है। यह कहना रवि बाबू और शरच्चंद्र को छोटा करना नहीं है, उनकी सीमायें बताना है। उनके मापदंड प्रेमचंद को ठीक-ठीक नापने में असमर्थ हैं। वैसे शरतचंद्र ने नारी पात्रों के सूक्ष्म मनोभावों और उनके तपस्या-त्याग के जो चित्र हमें दिये हैं, वे अपूर्व हैं। और रवि बाबू के संबंध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। उनकी प्रतिभा स्वतः भास्वर है।

प्रेमचंद के उपन्यासों को पढ़ कर जो चीज हमारे आकर्षण का विषय बनती है, वह पहले तो चरित्रों की विविधता और विभिन्नता है और फिर उनकी मध्यवित्ती स्थिति। उनके सामाजिक उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है, परंतु राजनैतिक उपन्यासों में सैकड़ों पात्र हमारे सामने आते हैं और अनेक परिस्थितियों में आते हैं। यह स्पष्ट है कि इनमें अनेक पात्र अपने वर्ग के प्रतीक-मात्र होंगे; क्योंकि इतनी संख्या में पात्रों को लेकर उनमें विभिन्नता और व्यक्तित्व की रेखाएं स्थापित करना कुछ कठिन काम है, परंतु इसमें संदेह नहीं कि ऐसे वर्गगत पात्रों के अतिरिक्त बीसियों पात्र ऐसे हैं जिनमें व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास हुआ है। प्रेमचंद के विषय में एक भ्रांत धारणा यह फैली हुई है कि वह चरित्र-चित्रण में [illegible]

हैं। इंद्रनाथ मदन का कहना है*: प्रेमचंद ने बहुत से पात्रों का निर्माण किया है, परंतु चरित्रों का निर्माण उन्होंने नहीं किया। चरित्र-चित्रण उनका मूल ध्येय नहीं है, उनका लक्ष्य है चरित्र-सुधार। वे किसी नैतिक अथवा सामाजिक समस्या को लेकर चलते हैं। मनोविज्ञान की सूक्ष्म उधेड़-बुन और मानव-मन के निरोध उनके विषय नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं कि उनका क्षेत्र बड़ा व्यापक है, परंतु मध्यवर्ग की उच्च श्रेणी के चरित्रांकन में वे कभी भी सफल नहीं हुए हैं। प्रतिभा होने पर भी वे उच्च श्रेणी के चरित्रों का निर्माण नहीं कर सके जिसका कारण

---

*Premchand Portrays Characters not Character. ......He has created Several Characters, but hardly a character. His fundamental aim is not characterisation, but essentially reformation. His interest is centered in a moral or a social problem, not in the subtleties and contradictions of Psychology. The range is undoubtedly wide; but he is rarely successful with his upper middle classes. The main reason why he could not, inspite of his undoubted talents create immortal characters, lies in his wrong conception of the function of art. The streak of idealism in him led him into making a hero who is deeply, too deeply, inspired by ideals to be genuinely human; and he has created other secondary characters around him to bring about his idealism. His heroes are more angelic than human.

(Premchand : An interpretation. P. 121—2)

यह है कि कला के कर्तृत्व के संबंध में उनकी मान्यता ही भ्रामक थी। उनके भीतर-भीतर आदर्शवाद की जो अंतःधारा बह रही थी, वह उनके नायकों को आदर्शों द्वारा इतना प्रभावित कर देती थी कि वे मनुष्य रह ही नहीं जाते थे। अपने आदर्शवाद की स्थापना के लिए ही वे अनेक छोटे २ पात्रों को उपस्थित कर देते हैं जिससे उनका आदर्श नायक चमक उठे। उनके पात्र मनुष्य की अपेक्षा देवता कहीं अधिक हैं।' यह आश्चर्य की बात हैं कि प्रेमचंद की चारित्रिक प्रतिभा को लेखक ने पहचाना नहीं। प्रेमचंद की रचनाओं में देव-पुरुष कितने हैं? और सूरे जैसा देवता भी क्या बराबर देवता है? क्या प्रेमचंद ने उसकी दुर्बलताएं, उसके मन के निरोध, उसके अंतर्द्वन्द्व को अंकित नहीं किया है? फिर उन पर यह लांछा क्यों लगाई जाये कि वह दैवचरित्रों की सृष्टि करना जानते हैं, मानवों की नहीं। प्रेमचंद के आदर्श पात्रों की लोकप्रियता के कारण हमारी दृष्टि उन्हीं तक जा पाती है। हम ज्ञानशंकर और उनकी परंपरा में आने वाले दुर्बल-चरित्र मध्यवित्तों की ओर देख ही नहीं पाये! इसमें संदेह नहीं कि उनके मध्यवित्त पात्र अपने वर्ग के प्रतीक हैं—और वे हो ही क्या सकते थे? परन्तु उनमें अपनी निजी प्रवृत्तियां भी पूर्ण रूप से विकसित हुई हैं। वे किस प्रकार पग-पग पर स्खलित हो जाते हैं, वे किस प्रकार जीवन से भाग कर बार-बार परिस्थितियों से प्रताड़ित होकर फिर जीवन की ओर दौड़ते हैं, वे अपनी मन की छलनाओं से कैसे अविराम युद्ध करते हैं—यह सब देखते ही बनता है।

प्रेमचंद का पहला चरित्रनिष्ठ उपन्यास 'सेवासदन' है जिसमें उन्होंने कृष्णाचंद्र, सुमन, पद्मसिंह और गजाधर के रूप

में दुर्बल-हृदय, भीरु, अपने अंतर्द्वन्द्वों के प्रति सजग और अपने से भागने वाले पात्रों की सृष्टि की है। कृष्णचंद में उन्होंने व्यंग का भी आश्रय लिया है और मध्यवित्त के मन के छल को भी ऊपर उभारा है। परिस्थितियों में पड़ कर एक सदाशयी गृहस्थ किस प्रकार जेल चला जाता है और वहाँ विकृत बन जाता है यह उनके चरित्र से पता चलता है। सुमन के चरित्र को भी प्रेमचंद ने बड़ी सावधानी से खड़ा किया है और अनेक मनोवैज्ञानिक प्रसंगों की अवतारणा से उसके पतन के लिये मार्ग खोला है। उपन्यास का आधे से अधिक भाग मनोविज्ञान पर आधारित है, परन्तु जहाँ अंत में प्रेमचंद सुधारक बन जाते हैं वहाँ कथा का सूत्र आदर्शवाद के हाथ में चला जाता है और वह एक छोटी-सी सामजिक समस्या पर ही केन्द्रित हो जाती है। 'प्रेमाश्रम' की भी यही दशा है। उसके प्रारंभिक पृष्ठों में प्रेमचंद ने एक अभिजात्यवर्गी कायस्थ ज़मींदार परिवार की मनोवृत्तियों का बड़ा सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है। परन्तु जिस विदग्धता से उन्होंने ज्ञानशंकर के पतन का चित्र खींचा है, उसके अवचेतन को जिस प्रकार उन्होंने पग-पग पर उभारा है है, वह देखने की चीज़ है। लखनपुर की कहानी कथानिष्ठ है। उसमें सामयिक किसान-आन्दोलन की प्रतिमूर्त्ति खड़ी की गई है, परन्तु वह उतनी कलापूर्ण नहीं है जितनी इस कायस्थ-परिवार की कहानी।

'रंगभूमि' अनेक पात्रों की चित्रपटी है। इनमें सोफ़िया और विनय का प्रणय-चरित्र कुछ उलझा हुआ है और चेतन मनस्तत्त्व के द्वारा उसकी व्याख्या करना कठिन है। 'गृहदाह' में महिम और अचला को लेकर शरत्चंद्र ने भी एक इसी प्रकार की दुरूहमय चारित्रिकता की सृष्टि की है। परन्तु शेष चरित्र प्रकाश

की तरह भासमान हैं और उनमें किसी प्रकार की उलझनें नहीं हैं। रानी जाह्नवी, इंदु और कुलजुम के रूप में प्रेमचंद ने रंगभूमि में तीन ऐसे विशिष्ट नारी-पात्र हमें दिये हैं जो हमें एकदम मुग्ध कर लेते हैं। रानी जाह्नवी की तेजस्विता इतनी बढ़ी हुई है कि वह विजय के बलिदान पर भी आँसू बहाने के लिये तैयार नहीं है। ऐसी माताएं ही किसी देश का गौरव हैं। इंदु में मा की इस तेजस्विता का बहुत-सा अंश आ गया है। उचित पात्र के हाथ में वह सौंपी नहीं गई परन्तु महेन्द्रसिंह को उसने अपना क्या कुछ नहीं दिया! पति-पत्नी में इतना चरित्र-वैषम्य होते हुए भी हम उसके हृदय में कहीं भी कोई गांठ नहीं देखते। कुलजुम हिंदू नारी नहीं है, परन्तु नारी सब जगह समान रूप से मातृभावा और सेवाप्राणा है। इस करुणामयी मातृमूर्ति, विवेकशीला पत्नी और धर्मभीरु नारी ने कुटुम्ब के बीच में ही अपनी सारी आयु काट दी। अपने लिए उसने कुछ नहीं बटोरा परन्तु दूसरों को अपने हृदय का श्रेष्ठतम दान दिया। सूरे तो प्रेमचंद के पात्रों में सुमेरु ही है, वह सब तरह से दुर्बल मनुष्य अपने चारित्रिक बल से ही सारी बाधाओं को परास्त करता है और मर कर भी वह विजयी होता है। परंतु इस उपन्यास में गाँव के अन्य पात्रों का चित्रण भी अत्यंत सफलता से अंकित हुआ है।

'कायाकल्प' में प्रेमचंद एक तिलिस्मी कथा के चक्कर में पड़ गये हैं और उपन्यास का अधिकांश विस्तार इस कथा ने ले लिया है। कदाचित् इसी कारण उसमें चरित्र उतने मांसल और पुष्ट होकर नहीं आते। विजय और अमरकांत की तरह इस उपन्यास का नायक चक्रधर भी भीरु आत्मा है। वह समाज के अपवाद के भय से बार-बार कर्तव्यच्युत होता है। अलौकिक

प्रेमकथा से बँध जाने के कारण उसकी प्रारंभिक तेजस्विता कुंठित हो जाती है। स्त्री-पात्रों में लौंगी ही हमें आकर्षित करती है। वह विवाहिता नहीं है, वह ठाकुर हरिसेवक सिंह की रखेली है परन्तु वह आत्मदान में किस विवाहिता से कम है? 'रंगभूमि' की भाँति इस उपन्यास की चित्रपटी भी बड़ी है, परंतु ६-७ प्रेमकथाओं के विस्तार के कारण चरित्रांकन सफल नहीं हो सका है। अतृप्त प्रेम की जन्म-जन्मांतर चलने वाली कथा ने सारे पात्रों पर जैसे दुःख, प्रताड़ना और आशंका की छाया डाल दी है।

'ग़बन' में प्रेमचंद ने एक बार फिर एक चारित्रिक उपन्यास देने का प्रयत्न किया है। पात्र अधिक नहीं हैं और कथा-वस्तु का प्रसार भी अधिक नहीं है। फलतः चरित्र-चित्रण के लिए काफी बड़ी भूमि मिलती है। उपन्यास का पूर्वार्द्ध चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ प्रेमचंद यथार्थवाद की भूमि पर खड़े हैं। इस भाग में जिन चरित्रों का विश्लेषण हमें मिलता है उनमें रमानाथ और जालपा प्रमुख है। जहां प्रेमचंद परिस्थितियों की विडंबनाओं और मध्यवर्ती स्त्री-पुरुष के नैतिक अधःपतन को सामने लाते हैं वहाँ पति-पत्नी के चारित्रिक द्वन्द्व को भी नहीं भूलते। बाद में वह घटना-प्रवाह में बह गये और उन्होंने ज़ोहरा के रूप में एक सदाशयी वेश्या की सृष्टि कर डाली।

'कर्मभूमि' की चित्रपटी भी छोटी है और इसीलिये चरित्रों का रूप बहुत कुछ सुस्पष्ट है। समरकांत, अमरकांत, नैना, सलीम सक़ीना, मुन्नी और काले ख़ां को लेकर लेखक ने चरित्रांकन का बड़ा सफल प्रयत्न किया है। समरकांत-अमरकांत पिता-पुत्र हैं। दोनों में चारित्रिक विरोध है। उसके कारण भी हैं।

फलस्वरूप, संघर्ष का जन्म हो जाता है और अंत में अमरकांत पिता के विरुद्ध अपना अलग रास्ता निकाल लेता है। वह एक बड़े आन्दोलन का केन्द्र-बिन्दु बन जाता है और अंत में स्नेह-वश पिता को भी पुत्र के आपदाओं से भरे हुए पथ को ग्रहण करना होता है। उत्तरार्ध में मुन्नी अमरकांत को लेकर कुछ प्रणय का खेल जैसा करने लगती है। यह बात समझ मे नहीं आती। उसके चरित्र में लेखक ने समाजभीरु, स्वयंभीरु चुहल और स्नेह से भरी, मंगलमयी ग्रामीण नारी का अंकन किया है। नैना का चरित्र और उसका बलिदान हमें 'रंगभूमि' की इंदु की याद दिलाता है। और भी अन्य चरित्र हैं जो प्रेमचंद की प्रतिभा के साक्षी हैं।

'गोदान' में प्रेमचंद अपनी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर पर हैं। यहाँ कथा, कथासंगठन, वर्णनकला, संवाद और चरित्र-चित्रण में ऐसा संतुलन है कि हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। सूरदास की तरह होरी भी अपनी आत्मा का संबल लेकर ही संसार के युद्ध क्षेत्र में उतर जाता है। होरी भी सूरे की भाँति दुर्बल-चरित्र है, धनिया उससे कहीं चतुर, कहीं व्यावहारिक, कहीं दृढ़-चरित्र है। अंत को मानप्रतिष्ठा और लोक-मर्यादा पर सब कुछ बलि करके वह भी हार जाता है। चरित्रों की रूपरेखायें भी अत्यंत प्रौढ़ कलम से सँवारी गई हैं।

संक्षेप में, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचंद के साहित्य की यह परिस्थिति है। वैसे उनके उपन्यासों-कहानियों में सैकड़ों चरित्र मिलेंगे, परंतु उन सबको एक केन्द्र पर लाना कुछ कठिन ही है। अधिकांश चरित्र अपने वर्ग के प्रतीक हैं, परंतु कहीं-कहीं अपने वर्ग के प्रतीक होते हुए भी वे कुछ चारित्रिक विशेषता से युक्त रहते हैं। जहाँ तक प्रधान पात्रों और पात्रियों की बात है,

बहुत कुछ आदान-प्रदान चला है। 'कायाकल्प' का चक्रधर, प्रेमाश्रम का प्रेमशंकर, कर्मभूमि का अमरकांत और 'रंगभूमि' का विजय लगभग एक ही विशिष्ट व्यक्ति के चार रूप लगते हैं। चारों समाजभय से ग्रस्त, नैतिक दृष्टि से दुर्बल और सदाशयों के भांडार हैं। कमलाकांत, कमलाशंकर और रमानाथ के रूप में दुर्बल-चरित्र नायकों की परंपरा भी प्रेमचंद के साहित्य में चलती है। ये अपनी ही दुष्प्रवृत्तियों में उलझे हुए हैं। देश और समाज के हित के लिये योजित आन्दोलनों में वे भाग ही नहीं लेते। समय-समय वे भाग खड़े होते हैं परंतु स्वयं उनके मन की छाया उनका पीछा नहीं छोड़ती। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि पुरुष पात्रों में वज्रधर, कृष्णचंद्र, पद्मसिंह, विट्ठलदास, ज्ञानशंकर, मनोहर, बलराज, मायाशंकर, राजा बिशालसिंह, होरी, ओंकारनाथ आदि और स्त्री पात्रों में सुमन, लौंगी, मनोरमा, मुन्नी आदि अनेक श्रेष्ठ चारित्रिक मूर्त्तियां हमें मिलती हैं। वैसे कहानियों में और भी सैकड़ों खंड-चरित्र हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रेमचंद के साहित्य के विभिन्न अंगों —जैसे उनके पात्र-पात्रियों का अध्ययन उपस्थित कर दिया जाय। यह क्षोभ का विषय है कि अभी हम इस ओर नहीं जा सके।

परन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रेमचन्द की उपन्यास-कला चरित्रनिष्ठ है। मदन को एक पत्र लिखकर उन्होंने इस विषय में अपना स्पष्ट मत दे दिया है। * वे लिखते हैं—'मैं कथानक का

---

* Plots I always weave with a view to bring out what is beautiful and manly in human Characters. It is a complicated process, sometimes inspired by a person, or by an accident, or by a dream; but I must have some Psychological, basis for my story.

संगठन इस तरह करता हूँ कि उसके द्वारा मानवीय चरित्र के सुन्दर और स्वस्थ अंगों की अभिव्यंजना हो सके। यह प्रक्रिया बड़ी उलझी हुई होती है। इसमें मुझे कभी किसी व्यक्ति से प्रेरणा मिलती है, कभी किसी घटना से, कभी किसी स्वप्न से, परन्तु मैं अपनी कथा को कोई न कोई वैज्ञानिक आधार अवश्य देता हूं। मैं मित्रों के सुझाव को बराबर महत्व देने को तैयार रहता हूं। मेरे बहुत से चरित्र सीधे जीवन से ग्रहीत हैं यद्यपि मैंने उन्हें काफी छिपा दिया है जिससे वे पहचाने नहीं जा सकें। जब तक किसी चरित्र का वास्तविक आधार नहीं रहता तब तक वह छायामय, अनिश्चित और अस्पष्ट रहता है।' सूरे का चरित्र, उन्होंने अपने पांडेपुर गाँव के एक अन्धे भिखारी से ही लिया है, ऐसा भी उन्होंने कहा है। 'ढपोरसंख' और अन्य कितनी ही कहानियाँ तो निज-बीती ही हैं। मोटेराम शास्त्री को केन्द्र बनाकर कई परिहासपूर्ण कहानियाँ उन्होंने लिखी थीं और लखनऊ के एक प्रसिद्ध वैद्यशास्त्री ने उन्हें लेकर मानहानि का मुकदमा चलाया था। 'प्रेमचन्द: घर में' में इस मुकदमे का विस्तार-पूर्ण विवरण मिलेगा। प्रेमचन्द उस मुकदमे से बरी तो हो गये, परन्तु जो जानते हैं उनका कहना है कि प्रेमचन्द की लेखनी ने ठीक ही चोट की थी। सभी महान लेखक हाड़-मांस के व्यक्तियों पर ही अपने स्वप्नों का इन्द्रजाल बुनते हैं।

---

I am always open to suggestion by friends. The majority of my Characters are drawn from real life, through they are sufficiently veiled. Unless a character has some basis in reality, it is shadowy, uncertain, and unconvincing." (opt. cit, P. 123-4)

इसमें संदेह नहीं कि दुर्बल-चरित्रों को अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भी प्रेमचन्द सबल चरित्रों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हैं और उन्होंने उसके निर्माण में अपनी प्रतिभा का सारा बल लगा दिया है। अच्छे चरित्रों की ओर उनका स्वाभाविक रुझान है उनके पात्र कुछ बड़ा काम करना चाहते हैं। जनसेवा का महत् आदर्श लेकर वे चलते हैं। पात्रों को कठोर परिस्थितियों की आग में तपा कर प्रेमचन्द उन्हें सोना बना देते हैं। इसी से उन्होंने दुर्बल चरित्र-नायकों के सृष्टाओं की निंदा की है। यदि उपन्यासकार के चरित्र सद्वृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं देते अथवा पाठक को परिस्थितियों से विमुख होकर भाग जाने की प्रेरणा देते हैं तो ऐसा उपन्यास जीवन के संग्राम में हमारी क्या सहायता करेगा ? हिंसा-प्रतिहिंसा, रक्तपात, ऐयारी और जासूसी के उपन्यास क्षण भर हमारे मन को आन्दोलित भले ही कर दें, उनमें हमें ऐसा क्या मिलेगा जो वस्तुतः महान होगा ? परन्तु प्रेमचन्द जानते हैं कि पात्रों में अपनी अंतर्हित शक्ति होनी चाहिये जिससे वह उसी तरह धीरे-धीरे विकसित होते जायें जैसे अपने चारों ओर की वायु और मिट्टी के भीतर के जल-खाद्य को खींच कर पेड़ विकास को प्राप्त होता है। 'कर्मभूमि' में अमर का विकास इसी ढंग पर हुआ है। वस्तुतः प्रेमचन्द ने कहीं-कहीं विशेषतयः 'कर्मभूमि' और 'गोदान' जैसे परवर्ती उपन्यासों में नायक का एक संपूर्ण आद्यांत चरित्र ही खड़ा कर दिया है। उन्होंने उपन्यास की विवेचना करते हुए एक स्थान पर कहा भी है कि 'भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छोटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायगा जिनपर उसने विजय पाई है।' ये अन्तिम उपन्यास इसी श्रेणी के उपन्यास हैं। उनमें प्रथम पृष्ठ से

अन्तिम पृष्ठ तक अमरकांत और होरी ही व्याप्त हैं। अन्य पात्र इसीलिए लाये गये हैं कि उनके द्वारा इन पात्रों के चरित्र के किसी अङ्ग का विकास होता है। जहाँ चरित्र के सम्बन्ध में यह धारणा है वहाँ उसमें विशिष्टता क्यों नहीं आयेगी ? प्रेमचन्द के कलागत दृष्टिकोण को न समझ कर हम उनको कब तक छोटा करते रहेंगे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया है—'मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'

## संवाद

प्रेमचंद के संवादों के विषय में भी आलोचक कुछ कठोर रहे हैं। उनका कहना है कि प्रेमचंद उच्चवर्गीय जनता से बहुत कम परिचित थे और इसलिए उच्चवर्गीय पात्रों के संवाद अप्राकृतिक से लगते हैं। परन्तु वे मध्यवित्त पात्रों के संवादों से भी संतुष्ट नहीं हैं। इन पात्रों से प्रेमचंद पूर्णतयः परिचित थे। अतः इन पात्रों के संवाद का असंतोषजनक होना प्रेमचंद की कला पर बहुत बड़ा आक्षेप होगा। इस विषय में हम इंद्रनाथमदन के वक्तव्य पर ही विचार करेंगे * : 'मध्यवित्त पात्रों के

---

* The dialogue of middle class characters is not individual and characteristic of them. Its real nature is sometimes destroyed by its many-paged length. It is occasionally clogged by explanatory purpose and there is little wit, humour, or brightness in it. The ninteenth century technique of the novel is sometimes employed by him in which the talk is

संवादों में न वैयक्तिकता है, न अपने वर्ग की विशेषता। कई पृष्ठों की लंबाई के कारण कहीं-कहीं उनकी प्रकृति ही नष्ट हो गई है। कभी-कभी तर्क-वितर्कों से उनकी प्रवाहमयता को आघात पहुँचता है, और कभी तो उनमें व्यंग, परिहास और तेज जरा भी नहीं रहता। कभी-कभी वे उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासों की कला को प्रयोग में लाते हैं। ऐसे स्थलों पर संवाद सतर्क, सुश्रृंखलित और परिश्रम-साध्य रहता है, परन्तु वह शीघ्र ही तर्कों और उपदेशों से भरने लगता है।'

जान पड़ता है, आलोचक रवींद्रनाथ और शरच्चंद्र के उपन्यासों के संवादों से प्रभावित हैं जिनमें अनेक महत्वपूर्ण परन्तु अनर्गल विषयों पर विदग्धतापूर्ण तर्क-वितर्क उपस्थित किये गये हैं। रवीन्द्रनाथ के 'गोरा' में कहानी कितनी है, पात्र के चरित्रनिरूपण का कितना महत्व है? ब्रह्म-समाज और सनातन धर्म के अनेक प्रश्नों को लेखक उठाता है और उन्हें लगभग प्रबंधात्मक रूप से चलाता रहता है। इस बीच में कथा की धारा रुक जाती है। 'चार अध्याय' और 'मालंच' जैसे उनके परवर्ती उपन्यास को तो विदग्ध संवाद-मात्र ही कहा जा सकता है। प्रारम्भिक उपन्यासों में कवि-दृष्टि का भी समावेश है। फलतः वे थोड़े-बहुत रोचक भी हैं परन्तु ये परवर्ती उपन्यास विशुद्ध उपन्यास-रस या कथा-रस को एकदम पीछे छोड़ देते हैं। समस्यामूलक उपन्यासों में भी यही बात मिलती है। परन्तु रवीन्द्रनाथ और शरच्चंद्र के उपन्यास मूलतः समस्यामूलक उपन्यास नहीं है। उनकी गंभीरता, उनका वाग्वैदग्ध्य, उनका भाव-विन्यास वस्तुतः कथा के ऊपर लादी गई बाहरी चीज

---

careful, strained and laborious. It is then given to arguments and sermonette.

है। इसमें संदेह नहीं कि मध्यवित्त
लिया है। वह बुद्धिवादी बनकर सट
उसका बुद्धिवाद निरर्थक और नि
और शरद के उपन्यासकारों के म
और विद्रोह के संबंध में बड़ी-बड़ा बा
जीवन में चरितार्थ होती है। उनका स
उनका सारा व्यक्तित्व प्रणय के सूक्ष्म
चंद ने यदि यह दृष्टिकोण स्वीकार
लांछित नहीं किये जा सकते। वह
चाहते हैं जो कथा के ढाँचे से निकट
तरह से उसमें मिलकर उसका आ
व्यर्थ के वितंडावाद नहीं उठाते।

परंतु देहातियों और किसानों
आलोचक पूर्ण रूप से आश्वस्त
उनकी प्रशंसा की है।*इसका बहुत कु
समाज के लिए इन संवादों की भ
और गाँव के वातावरण में एक विशे
नहीं कि निम्न श्रेणी के लोगों, किसा
के अनेक छोटे वर्गों के पात्र प्रेमचंद
सुषमा लेकर हमारे सामने उपस्थि
जाते हैं। प्रेमचंद की पकड़ अपूर्व है
के सारे संस्कार नागरिक हैं और वह
से परिचित हैं, न उनके मनोविज्ञान व
उन्होंने किया है। यह प्रेमचंद का अ
साहित्य में लमही की मिट्टी बोल उठी

*Opt. Cit. P. 128

यह स्पष्ट है कि हमारे अपने संस्कार प्रेमचंद की प्रतिभा के मूल्यांकन में बाधक हैं। गाँव-शहर के प्राकृतिक जीवन और सामयिक जनांदोलनों के कलाकार प्रेमचंद से हम हाथीदांत के मीनार पर बैठ कर 'कमल-चर्वण करते हुए बुद्धविलासी कलाकारों की तर्क-वितर्क पूर्ण विदग्ध संवाद-शैली की आशा कैसे कर सकते हैं? वह अपने विषय में ऐसे डूब गये हैं कि वे उससे बाहर जाते ही नहीं, प्रत्येक कलाकार की अपनी निर्दिष्ट सीमाएं होती हैं। इन सीमाओं का स्वयं उन्हें ज्ञान है। यदि उनके संवादों का कोई दोष है तो वह यह कि वे कहीं-कहीं बहुत लंबे हो गये हैं और कहीं-कहीं उपदेशात्मक और काव्यात्मक बन गये हैं। धीरे-धीरे वह वाक्संयम की ओर बढ़ रहे थे। 'गोदान' में हमें न 'सेवासदन से लंबे भाषण मिलेंगे, न कई-कई पृष्ठों के वर्णन। प्रारंभिक-उपन्यासों में प्रेमचंद कलाकार से अधिक उपयोगितावादी हैं। वे कहते हैं कि जो दलित हैं, पीड़ित हैं, वंचित हैं—चाहे वह व्यक्ति हों या समूह, उनकी हिमायत और वकालत करना उसका (साहित्यकार का) फर्ज है। कला की यही धारणा कहीं-कहीं उनसे बड़े लंबे संवाद लिखवा लेती है। परन्तु प्रेमचंद का भीतर का कलाकार सचेत है, विशेषतयः छोटी कहानियों में और 'निर्मला' जैसे छोटे उपन्यास में। वहां वे थोड़े में बहुत कहना भी जानते हैं, और उनकी लेखनी व्यंगात्मक एवं सांकेतिक भी बन सकती है। लगभग ३०० छोटी कहानियों में जिस कलाकार ने संवादों और वर्णनों में वाक्संयम की साधना की है, उसके लिए बड़े उपन्यासों में भी उसी कला का प्रयोग करना असंभव बात नहीं थी, परन्तु उपन्यासों में प्रेमचंद बुतशकन (Crusador) होकर सामने आते हैं और उन्हें बहुत कुछ कहना होता है। वह भीतर-भीतर भरे बैठे रहते हैं और जहां उन्हें कुछ कहना होता

है वहाँ पूरी शक्ति से विस्तार पूर्वक अपनी बात कहते हैं। कदाचित् उपन्यास के संबन्ध में उनकी धारणा ही ऐसी थी कि उसमें जो कुछ हो वह बड़े पैमाने पर हो। उपन्यास में वार्तालाप ( संवाद ) को उन्होंने कदाचित् आवश्यकता से अधिक महत्व दे रखा है। वह कहते हैं—'उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना भी कम लिखा जाय, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। कदाचित् इसीलिए उनके उपन्यासों में संवाद का अंश अधिक और विस्तृत है। परन्तु यह नहीं कि वह संवाद के मूल तत्व से परिचित नहीं हों। 'उपन्यास का विषय' शीर्षक निबंध में उन्होंने स्पष्ट लिखा है—'वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिये। प्रत्येक वाक्य को जो किसी चरित्र के मुँह से निकले उसके पात्र के मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिये। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल और सरल होना जरूरी है।'

## भाषा-शैली और वर्णन-कला

प्रेमचंद हिंदी के सबसे अधिक लोकप्रिय कहानीकार और उपन्यासकार हैं, परन्तु भाषाशैली की दृष्टि से भी प्रेमचंद महत्वपूर्ण हैं। उनकी भाषा उनकी इतनी अपनी है कि उसका नाम ही प्रेमचंदी भाषा पड़ गया है। उनकी भाषा चुस्त, मुहावरों से सजी और परुष है। उसमें उर्दू-फारसी के चलते हुए शब्दों का प्रयोग होता है। पात्रों के अनुसार वे भाषा बदल देते हैं। उनके मुसलमान पात्र कहीं ठेठ उर्दू, कहीं फारसी-मिश्रित हिंदी बोलते हैं। उनके पंडित संस्कृत-गर्भित भाषा का प्रयोग करते हैं। गाँव का वातावरण उपस्थित करने के लिये वह प्रांतीय और प्रादेशिक शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा में लोच

है, प्रवाह है और प्रसाद गुण है। प्रेमचंद की देन यही भाषा है जिसे हिंदू भी समझ सकता है और मुसलमान भी। आज जिस हिंदुस्तानी की बातचीत हो रही है वह यही प्रेमचंद की भाषा है। नाटक, उपन्यास और कहानी के लिये यह भाषा बहुत उपयुक्त रही है।

परन्तु स्वयं प्रेमचंद की समस्त रचनाओं में भाषा का रूप एक-सा नहीं है। वह उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती गई है। उनके 'वरदान' (१६०६) और 'गोदान' (१६३६) की भाषाशैलियों की तुलना से यह बात सिद्ध हो जायेगी। 'वरदान' की भाषा में प्रवाह की मात्रा अधिक नहीं है और उसमें ठेठ मुहावरे संस्कृत शब्दों से सटा कर रखे हुए मिलते हैं। उर्दू के शब्दों का अधिक प्रयोग भी नहीं है। यह लेखक की प्रारंभिक रचना है—प्रयास स्पष्ट है। प्रेमचंद वर्षों से उर्दू में लिख रहे थे। अब हिंदी में आ रहे हैं तो सतर्क हैं। इसी से उनकी प्रारंभिक रचनाओं में उस उत्कृष्ट 'हिन्दुस्तानी' का रूप नहीं मिलता जिसके वे आविष्कर्ता हैं। 'गोदान' में हिंदी की जातीय शैली का बहुत परिष्कृत और विकसित रूप मिलेगा। यह जातीय शैली १६०६-०७ के आसपास 'सरस्वती' के माध्यम से पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा उपस्थित की गई थी। उनकी प्रौढ़ प्रतिनिधि शैली के लिए 'गोदान' का यह उदाहरण काफी होगा—

—"होरी लाठी कंधे पर रखकर घर से निकला तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंक, भय, कंपन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण भय और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी। उसके अंतःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपने

अन्दर छिपाये लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंयत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर तो मानों झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लिया। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदनाशक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले को हो सकता है?" वैसे प्रेमचंद के उपन्यासों और उनकी कहानियों में और-और शैलियाँ भी मिल जाती हैं, परन्तु यह शैली प्रेमचंद की सबसे प्रौढ़ शैली है और हिंदी की जातीय शैली के सबसे अधिक निकट है।

प्रेमचंद की भाषाशैली का सबसे अधिक चमत्कार उनके वर्णनों में मिलता है। भाषा का प्रवाह, भाषा की चित्रांकन-शक्ति, भाषा का अलंकार-निर्वाह—ये सब देखने योग्य हैं। वर्णन करते समय प्रेमचंद अपने संयम को भूल जाते हैं और स्वाभाविकता-अस्वाभाविकता का ध्यान रखे बिना दूर तक बहे चले जाते हैं। परन्तु उनकी शैली इतनी आकर्षक होती है कि एक पंक्ति को भी छोड़ा नहीं जा सकता। उनके उपन्यासों के अध्ययन से पता चलता है कि यह वर्णन बराबर छोटे और संश्लिष्ट होते हैं। परन्तु 'सेवासदन' से 'गोदान' तक हमें वर्णनों की ऐसी अद्‌भुत चित्रपटी मिल जाती है कि हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

प्रेमचंद की भाषाशैली की दूसरी बड़ी विशेषता उसकी मनोवैज्ञानिकता है। प्रेमचंद मनोविज्ञान के पंडित हैं। उनका मनोविज्ञान भाषा के द्वारा बड़े सुन्दर रूप में विकसित हुआ है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में ही वैज्ञानिक पकड़ हमें मिलने

लगती है। 'वरदान' में माधवी का मनः-संघर्ष देखिये—"माधवी उठी, परन्तु उसका मन बैठा जाता था। जैसे मेघों की काली घटायें उठती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि सब जल-थल एक हो जायगा परन्तु पछुवा वायु चलने के कारण सारी घटा काई की भांति कट जाती है, उसी प्रकार इस समय माधवी की गति हो रही थी।" यदि इसी बात को सीधी अनलंकृत भाषा में कहना पड़ता तो निस्संदेह कई वाक्य लिखने पड़ते। परन्तु कहीं-कहीं यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बहुत बड़ा हो जाता है और उसमें नैतिक तत्व, हृदयोद्गार, प्रलाप, चिंता—इतनी बहुत प्रवृत्तियाँ उलझी-उलझी चलती है कि पाठक इस विस्तृत मनोविश्लेषण से ऊब कर आगे बढ़ना चाहता है। 'प्रेमाश्रम' और 'कायाकल्प' में ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे, परन्तु 'गोदान' में प्रेमचंद प्रकृतिस्थ हो गये हैं और उनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ और भाषाशैली में अद्भुत संतुलन दिखलाई पड़ता है।

प्रेमचंद के वर्णन भाषा के जगमगाते हुए हीरे हैं। ये हीरे उनके उपन्यासों और उनकी कहानियों में बिखरे हुए मिलेंगे। उपयोगितावादी प्रेमचंद बिना मतलब प्रकृति-चित्र उपस्थित नहीं करते जैसी परिस्थिति हम 'हृदयेश' के उपन्यासों में पाते हैं। जहाँ पिछले खेवे के उपन्यासकार प्रकृति को 'कादम्बरी' के भीतर से देखते थे या बँगला उपन्यासों के ढंग पर उस पर नायक-नायिका के सुख-दुख का आरोपण कर उसे विकृत बना देते थे, वहाँ प्रकृति के प्रेमी प्रेमचंद ने प्रकृति को लेकर न शब्द बर्बाद किये हैं न व्यर्थ के बतंगड़ खड़े किये हैं। ऊहात्मक प्रकृति-वर्णन से उन्हें चिढ़ थी। वे 'प्रसाद' की भाँति प्रकृति को रोमांस के भीतर से नहीं देखते थे। परन्तु उनका प्रकृति-प्रेम उनके प्रत्येक वर्णन में फूटा पड़ता है। गाँव की प्रकृति का ऐसा सुन्दर वर्णन

तो उनके सिवा और कहीं मिलेगा ही नहीं। अन्य उपन्यासकारों की दृष्टि शहर की चहारदीवारी के बाहर ही नहीं जा पाती। 'रंगभूमि' का यह चित्र किसी महान चित्रकार की तूलिका से सहज ही स्पर्धा कर सकता है—"अरावली की हरी-भरी झूमती हुई पहाड़ियों के दामन में जसवंतनगर यों सो रहा है जैसे बालक माता की गोद में। माता के स्तन से जैसे दूध की धारें प्रमोद्गार से विकल, उबलती, मोठे स्वरों में गाती निकलती हैं और बालक के नन्हें मुख में न समा कर नीचे बह जाती हैं। प्रभात की स्वर्ण-किरणों में नहाकर माता का स्नेह सुन्दर मुख निखर गया है और बालक भी अंचल से मुख निकाल कर, माता के स्नेह-पुलकित मुख की ओर देखता है, हुमुकता है और मुसकाता है, पर माता उसे अंचल से ढक लेती है कि कहीं उसे नजर न लग जाये।" इस वर्णन में रूपक का आश्रय लेकर एक अत्यन्त सुन्दर काव्य-चित्र उपस्थित किया जा रहा है। हमारे सारे पिछले काव्य में प्रकृति को अलंकारों और रूढ़ि-विधानों के भीतर से देखा गया है, परन्तु जसवंतनगर का यह चित्र मा-शिशु के सहज सम्बन्ध की तरह ही चिर पुरातन, चिर नूतन है। इसके जोड़ की चीज हमारे पास थी ही नहीं। प्रकृति को लेकर अनेक संश्लिष्ट चित्र भी प्रेमचंद के साहित्य में मिलेंगे।

प्रेमचंद के उपन्यासों में पात्रों की भाषा भी कम आकर्षक नहीं है। इस क्षेत्र में प्रेमचंद के सामने दो प्रकार की समस्यायें थीं। एक तो यह कि वे उन नये पात्रों की भाषा को क्या रूप दें जिनका सम्बन्ध खड़ी बोली हिन्दी से स्थापित न हो पाया था। दूसरे कि वे अपनी भाषा के उर्दू वाले प्रवाह को बनाए रखते हुए संस्कृत शब्दों का कहाँ तक प्रयोग करें। प्रेमचंद की रचनाओं में इन समस्याओं का उत्तर भली भाँति मिल जाता है। प्रेमचंद ने पात्रानुकूल

बड़ी स्वाभाविक भाषा-शैली का प्रयोग किया है। मुसलमानों और ग्रामीणों की भाषा के सम्बन्ध में भी प्रेमचन्द सदैव सतर्क रहे हैं। इनके मुसलमान फारसी-मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं। और उनके ग्रामीण खड़ी बोली में बराबर ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करते चलते हैं। प्रेमचन्द ने पूर्णतयः ग्रामीण भाषा का प्रयोग कहीं भी नहीं किया है। करते तो वे पाठकों के लिये दुरूह हो जाते। परन्तु फिर भी क्या 'प्रेमाश्रम' के देहाती पात्रों की भाषा वही है जो शहरी पात्रों की है ? क्या प्रेमचन्द ने देहाती भाषा में प्रयोग में आने वाले सैकड़ों शब्दों को अपने उपन्यासों और अपनी कहानियों में स्थान नहीं दिया है ? क्या उनके गोबर, मनोहर, सुजान और कादिर सभी ग्रामीण पात्रों की भाषा सामान्य देहाती भाषा के पास नहीं पड़ती।

प्रेमचन्द की भाषा की एक खास खूबी उनका मुहावरों का प्रयोग है। उनके सिवा किसी भी अन्य साहित्यकार की भाषा में मुहावरों का इतना अधिक, इतना सार्थक प्रयोग नहीं हुआ है। उनके सारे साहित्य में कई हजार से कम मुहावरे न आये होंगे। भावों की गहनता और तीव्रता के प्रगट करने में इन मुहावरों के सिवा कहावतों और सूक्तियों का एक बड़ा ढेर उनके साहित्य में इकट्ठा है। सूक्तियां प्रेमचंद की विशेषता हैं। कहीं तो ये सूक्तियाँ दो-चार पंक्तियों की हैं। कहीं वे ग्रंथकार के आत्म-चिंतन का रूप धारण कर अधिक विस्तार पा जाती हैं। परंतु प्रेमचंद की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी काव्यात्मकता। उपमा, उदाहरण, उत्प्रेक्षा—कितने ही अलंकारों से भीतर से बहकर आनेवाला कल्पना-सौन्दर्य हमें आकर्षित ही नहीं कर लेता, महत्वपूर्ण तथ्यों का भी उद्घाटन करता है। प्रेमचन्द के साहित्य में उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं की फुलझड़ी बराबर छूटती रहती है। वे

उपमायें, उत्प्रेक्षाओं और उदाहरण बहुत संक्षिप्त होते हैं, परंतु मानव-प्रकृति का गहन अध्ययन उनमें छिपा रहता है। उनकी भाषा सरल और सर्वसुगम होती है और वह आध्यात्मिक, वैयक्तिक एवं सामाजिक सच्चाई को अत्यंत स्पष्ट शब्दों में हमारे सामने रखते हैं। उनसे लेखक की तीक्ष्ण पर्यवेक्षण-शक्ति का पता चलता है।

संक्षेप में, प्रेमचंद भाषाशैली के भी बड़े कलाकार हैं। उनकी अपनी वैयक्तिक शैली है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं से लेकर उनकी अंतिम रचनाओं तक शैली में विशेष अंतर नहीं आया है, हाँ, उसके भिन्न-भिन्न रूप प्रकाश में आते रहे हैं और वह बराबर पुष्ट होती रही है। 'कायाकल्प' तक शैली धीरे-धीरे तत्समता और काव्यात्मकता से हट कर संयम और मितव्ययता की ओर जा रही है। 'गोदान' में हम उसके सबसे सुन्दर, सुष्ठु और संयमित रूपों से परिचित होते हैं। भाषा तत्सम-प्रधान है। शैली गीतिकाव्य की शैली की भांति संगठित, संयोजित और और स्वस्थ। प्रेमचंद जो कहना चाहते हैं वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक प्रभाव के साथ कह देते हैं। सचमुच, वे हमारी भाषा के श्रेष्ठतम कलाकार हैं। उनकी भाषाशैली निर्द्वन्द्व, स्वच्छंद, उनकी अपनी छाप से पुष्ट है, परंतु उसमें सच्चे अर्थों में हमारी भाषा की जातीय शैली होने की क्षमता है।

परंतु कहीं २ वर्णन इतने लंबे, तथ्य-प्रधान और वस्तुनिरूपक हो जाते हैं कि वे हमें उकता देते हैं। 'कर्मभूमि' में एक स्थान पर प्रेमचंद महंतों के ऐश्चर्य का वर्णन कर रहे हैं। यह वर्णन आठ-दस पृष्ठों तक चलता है और ठाकुर जी की पूजा के लिये तैयार होने वाली एक-एक चीज का वर्णन इतनी विशदता से हुआ है कि इस प्रसंग की सारी रोचकता ही जाती रही है। जहाँ

कोई मनोवैज्ञानिक उलझन है जैसे 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर की आत्मप्रताड़ना और आत्महत्या वहाँ वर्णन की विशदता क्षम्य ही नहीं, उपादेय भी है। परंतु निरर्थक वर्णन कथा पर भार ही सिद्ध होते हैं और वे कथाकार की उस शक्ति का रस क्षीण कर देते हैं जो चरित्रों की रेखाएं पुष्ट करने में लगती। प्रेमचंद की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे धीरे-धीरे कलागत संयम का महत्व जान रहे थे। 'गोदान' में सब कुछ जैसे कला के हाथों से सँवारा गया है, सब कुछ जैसे कटा-छँटा है। यदि वे जीवित रहते तो उनकी रचनाओं में हम वही संयम देखते जो पलबक की रचनाओं की विशेषता है। बात यह है कि प्रेमचंद उन्नीसवीं शताब्दी के ड्यूमा बंधु और डिकेन्स जैसे कलाकारों से प्रभावित थे और ये कलाकार वर्णन-कला में अप्रतिम थे। जिन उर्दू उपन्यासकारों के चरणों में बैठ कर उन्होंने लिखने की कला सीखी वे कलाकार की अपेक्षा किस्सः-गो ही अधिक थे। प्रेमचंद के मन पर उनका प्रभाव बना रहा तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि जहां उनके कलागत असंयम से उनकी रचनाओं में सौष्ठव की हानि हुई है वहां वह सृजन-शक्ति से ओतप्रोत हैं और पाठक को अपने साथ बहा ले जाने में समर्थ हैं। उनकी उपन्यास की कल्पना भी कुछ इस प्रकार की है कि उसमें विशद वर्णनों को महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। वह कहते हैं—'उपन्यासकार का प्रधान गुण उसकी सृजनशक्ति है। अगर उसमें इसका अभाव है, तो वह अपने काम में भी सफल नहीं हो सकता। उसमें और चाहे जितने अभाव हों, पर कल्पना-शक्ति की प्रखरता अनिवार्य है। अगर उसमें वह शक्ति मौजूद है, तो वह कितने ही दृश्यों, दशाओं और मनोभावों का चित्रण कर सकता है जिसका उसे प्रत्यक्ष अनुभव

नहीं है।' वह यह भी मानते हैं कि उपन्यास की रचना-शैली सजीव और प्रभावोत्पादक होनी चाहिये।' वर्णन का एक अंग भावनाओं के चित्रण से संबंध रखता है। प्रेमचंद भावनाओं के घात-प्रतिघात को उपन्यास का आवश्यक अंग समझते हैं। उन्होंने यह खेद प्रगट किया है कि आजकल के उपन्यासों में गहरे भावों के स्पर्श करने का बहुत कम मसाला रहता है। अधिकांश उपन्यास गहरे और प्रचंड भावों का प्रदर्शन नहीं करते। हम आये दिन की साधारण बातों में उलझ कर रह जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वे उपन्यास को मनोवैज्ञानिक की बुद्धि-प्रधान उधेड़-बुन नहीं मानते। वह उनके लिये विधाता की सृष्टि की भांति सजीव, प्रभावपूर्ण, भावनाओं और कल्पनाओं से ओत-प्रोत, जीवन के अनेकानेक अनुभवों से पुष्ट एक ऐसा संसार है जिसके रचने में उपन्यासकार की निर्मात्री प्रतिभा विशेष रूप से अनेक उपकरण जुटाती है और स्वयं उसका व्यक्तित्व उसे जीवन-रस से अभिसिक्त करता है। वह जीवित, स्पंदित, अनुप्राणित वस्तु है।

यह सब है, परंतु प्रेमचंद उपन्यास में ऐसे बौद्धिक तर्क-वितर्क उपस्थित नहीं करते जो चिरंतन तथ्यों से संबंध रखते हों। भारतीय उपन्यास में इस प्रकार के संवादों और वर्णनों का आरंभ रवीन्द्रनाथ के 'गोरा' से हुआ और बाद को शरतचंद और अन्य आधुनिक कलाकारों ने उसे ग्रहण एवं विकसित किया प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' में इसी परंपरा को निभाया गया है। प्रेमचंद कथा से बाहर नहीं जाना चाहते। वाग्विलास उनको प्रिय भी नहीं है। उन्होंने लिखा भी है कि 'जब लेखक अपने मुख्य विषय से हट कर किसी दूसरे प्रश्न पर बहस करने लगता है तो वह पाठक के उस आनंद में बाधक हो जाता है जो उसे कथा में

आ रहा था। उपन्यास में वही घटनायें, वही विचार लाना चाहिये जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाय, जो प्लाट में सहायक हों अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन कर सकें।' वह न 'कला कला के लिये' सिद्धांत के समर्थक हैं न 'कला विचारों के लिये' सिद्धांत ही उन्हें माननीय है। उनका कहना है—"कला के लिये कला का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भांति-भांति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुःख-दारिद्र्य के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील व्यक्ति का हृदय न दहल उठे। हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि उसके विचार परोक्ष रूप में व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।" ('उपन्यास')

यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद की कला असाधारण को लेकर नहीं चलती। वह सहज प्राकृतिक और चिरपरिचित वातावरण में विकसित होती है। वे नवीनता और मौलिकता के फेर में पड़ने वाले कलाकार नहीं हैं। उन्हें कुछ कहना है। समाज और व्यक्ति के जीवन के किसी अंग ने उन्हें प्रभावित किया है, कुछ पात्र और कुछ परिस्थितियाँ उनके भीतर भर गये हैं और तभी उन्होंने लेखनी उठाई है। उनकी मानवता, उनकी सृजन-शक्ति, उनकी प्रौढ़ कल्पना, उनका विशाल हृदय, उनकी अपनी वैयक्तिकता और सरलता उनकी उपन्यास और कहानी कला में पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित है। उनकी कला उनके भीतर से, उनके जीवन और उनके व्यक्तित्व से निःसृत हुई है। इसीलिये वह कला-संबंधी शास्त्र-सम्मत

विचारों पर पूरी नहीं उतरती। वे जीवन की विविधता, पवित्रता, शक्तिमयता और सतत प्रगतिशीलता के कलाकार हैं। उनकी कला की परीक्षा के लिए हमें शास्त्रों का सहारा नहीं लेना होगा। उनकी रचनाओं के सहारे ही हम जनोपयोगी कला की रूपरेखायें तैयार कर सकेंगे। पश्चिम से बहुत कुछ उधार लेते हुए भी प्रेमचंद बहुत कुछ पूर्व के हैं। कला की पश्चिमी मान्यताएँ उनके नापने के लिए छोटी पड़ती हैं, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

---

# कहानियां

पिछले पृष्ठों में हमने प्रेमचंद के उपन्यासों की विस्तृत विवेचना उपस्थित की है, परन्तु प्रेमचंद केवल उपन्यासकार ही नहीं हैं। उन्होंने २५० के लगभग कहानियाँ भी लिखी हैं और कुछ समालोचकों ने उन्हें उपन्यासकार की अपेक्षा कहीं बड़ा कहानीकार बताया है। उनकी कहानियाँ उनके उपन्यासों से कहीं अधिक लोकप्रिय रही हैं। जितनी कहानियाँ उन्होंने लिखी है, उतनी कहानियाँ भारतवर्ष के किसी भी कहानीकार ने नहीं लिखीं, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी नहीं। शरतचंद की कहानियों की संख्या बहुत थोड़ी है और सच तो यह है कि कहानी की अपनी कला इन थोड़ी सी कहानियों में भी विकसित नहीं हुई है। उनकी 'महेश' कहानी तो अद्वितीय है परन्तु अन्य कहानियों के सम्बन्ध में यह बात कहना कठिन है। शरतचंद कहानी के कथानक को उपन्यास का रूप दे देते हैं और कहानी में उपन्यास भर देते हैं। कला की दृष्टि से कदाचित् रवि बाबू की कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं, परन्तु उनके बाद प्रेमचंद का ही नाम आता है।

प्रेमचंद ने कहानी की कला रवीन्द्रनाथ ठाकुर से सीखी। ऐसा उन्होंने लिखा भी है। उन्होंने लिखा है कि १९०७ ई० से पहले उन्होंने कोई कहानी नहीं लिखी। १९०७ ई० में उन्होंने उर्दू में कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। १९१४ में दूसरों द्वारा अनुवा-

हित होकर उनकी कुछ कहानियाँ हिंदी पत्रों में प्रकाशित हुईं। इसी समय के लगभग प्रेमचन्द ने 'सरस्वती' में अपनी सब से पहली रचना भेजी जिसे पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'पंच-परमेश्वर' शीर्षक देकर प्रकाशित किया। इसके वे बाद 'सरस्वती' में बराबर लिखते रहे। कहानी का पहला संग्रह 'सोजे-वतन' (१९०९) था जिसमें पांच देशभक्तिपूर्ण कहानियाँ थीं। पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रत्न'। यह कहानी 'जमाना' में प्रकाशित हुई थी। इन्द्रनाथ मदन को लिखे अपने २६ दिसम्बर १९३४ के पत्र में उन्होंने बताया है कि कहानी की प्रेरणा उन्हें रवीन्द्रनाथ ठाकुर से मिली, परंतु बाद में उन्होंने अपनी शैली विकसित कर ली थी। कहानी के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ को छोड़ कर कुछ अन्य कलाकारों से भी प्रेमचंद ने प्रेरणा ली लगती है। इनमें से गेल्सवर्दी, मोपासां, तोल्सताय और चेखव मुख्य है। वास्तव में कहानी के क्षेत्र में यही सब से बड़े नाम हैं। प्रारम्भिक साहित्य पर मोपांसा और तोल्सताय का प्रभाव ही अधिक है। 'कफन' और अन्य कहानियाँ शीर्षक संग्रह में वे अलबत्ता चेखव की कला से रस-रूप ग्रहण करते हुए जान पड़ते हैं। उन्होंने लोकमंगल और तोल्सताय के चेहरे उतार डाले हैं और उनकी कला यथार्थ की उपासिका बन गई है।

## हिन्दी-कहानी का विकास

कहानी का मूलरूप शायद वृत्त-वर्णन है और उसकी उत्पत्ति संवाद से हुई है। ऋग्वेद में ही हम भारतीय कहानी का मूल रूप पाते हैं। इन्द्र और सोमरस-सम्बन्धी अनेक वर्णन वास्तव में कहानियाँ ही हैं। उनमें वार्तालाप है, चरित्र है, कथानक है— संक्षेप में, कहानी के सभी तत्त्व हैं। शुनःशेप की कथा, सरमा

पणि के संवाद और इसी तरह की अन्य सामग्री वैदिक कहानी को हमारे सामने उपस्थित करती है। उपनिषदों में भी अनेक दार्शनिक गुत्थियों के सुलझने के लिए उन्हें कहानी के रूप में उपस्थित किया गया है। छांदोग्य उपनिषद में सत्यकाम की कथा और कठोपनिषद में नचिकेता की प्रसिद्ध कथा है। कहानी-साहित्य की दृष्टि से ऋग्वेद की अपाला की कथा, ब्राह्मण की वामदेव और रोहित की कथायें और उपनिषदों के जाबालि और नचिकेता के उपाख्यान अत्यंत प्राचीन हैं। कहानी-कला के विकास की दृष्टि से महाभारत और पुराणों के उपाख्यान भी महत्वपूर्ण हैं। इनमें हमें हिंदू संस्कृति के सारभूत तत्वों का दर्शन होता है और शताब्दियों तक इन्होंने हिंदू-धर्मनिष्ठा को प्रभावित किया है।

लौकिक कहानी के रूप में हितोपदेश की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। विद्वानों का कहना है कि ये कहानियाँ लोक-कहानियों का साहित्यिक रूप हैं। कहा जाता है कि बुद्ध के जन्म से पहले जनता में इस प्रकार की कहानियाँ प्रचलित थीं और उन्हीं के आधार पर ब्राह्मणों ने हितोपदेश और बौद्धों ने जातक कथाओं की रचना की। बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा ये कहानियाँ पश्चिम में पहुँचीं और उन्होंने ईरान, मिश्र और यूनान के साहित्य को प्रभावित किया। ये कहानियाँ ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में रची गई होंगी। 'पंचतंत्र' की कथायें भी इसी श्रेणी की हैं। लेकिन कहानी का दूसरा विकास हमें मध्ययुग में मिलता है। सातवीं शताब्दी में गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में 'वृहद् कथा' की रचना की। १०३७ ई० में क्षेमेन्द्र ने 'वृहद् कथामंजरी' नाम से इस ग्रंथ का संस्कृत में

अनुवाद किया। इसका दूसरा संस्कृत अनुवाद कथा-सरितसागर (१०६७-१०८१ ई०) के नाम से प्रसिद्ध है। बैताल-पच्चीसी, सिंहासन-बत्तीसी और शुक-बहत्तरी भी इसी समय का रचनायें हैं। इस प्रकार की कुछ अन्य रचनायें हैं दंडी का दशकुमार चरित, सुबंधु की वासवदत्ता, बाण का हर्षचरित और कादम्बरी, सुढ्ल की उदयसुन्दरी और धनपाल की तिलकमंजरी। इन आख्यायिकाओं और कथाओं की परंपरा अट्ठारहवीं शताब्दी तक चली आती है। ब्रजभाषा में भी वार्ता के रूप में कथासाहित्य की सृष्टि हुई परंतु यह साहित्य जावनी-साहित्य के अंतर्गत आता है। राजस्थान की ख्यालों और बातों में भी इसी प्रकार की एक परंपरा मिलती है।

अंग्रेजी साहित्य के परिचय से पहले कहानी-उपन्यास जैसी दो विभिन्न चीजें भारतीय साहित्य में नहीं थीं। कहानी और आख्यायिका का भेद केवल परिधान का भेद था जिसमें केवल यह देखकर कि कोई वृत्त-वर्णन उच्छ्वासों में विभक्त है या नहीं अथवा वह नायक-कथित है या अन्य कथित, उसे आख्यायिका का नाम दे दिया जाता था। इसी से दंडी ने कहा है— कथा और आख्यायिका दो विभिन्न नामों वाली एक ही वस्तु है। इसी में दूसरे कथाप्रकारों, कथा, उपकथा आदि का भी समावेश है।

१६ वीं शताब्दी में हिंदी में गद्यलेखन का आरंभ हुआ और आख्यायिका के ढंग की कुछ रचनायें सामने आईं। उनका उद्देश्य प्रधानतयः मनोरंजन था। लल्लूलाल का 'प्रेमसागर', सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान और इंशाअल्लाखाँ की

'रानी केतकी की कहानी' हिंदी के पहले मौलिक आख्यान हैं। इनमें पहले दो का रूप पौराणिक है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आप-बीती, जगत-बीती और सपनों के रूप में ऐसी बहुत सी सामग्री हमारे सामने आई जो कहानी की श्रेणी में रखी जा सकती है। इनमें 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु की 'आपबीती और जगबीती' महत्वपूर्ण रचनायें हैं। इस समय बँगला में आधुनिक ढंग की कहानियों का जन्म हो चुका था और हमारे साहित्यकार अंग्रेजी और यूरोपीय ढंग की कहानी से भी भली भाँति परिचित थे परंतु आधुनिक कहानी के ढंग की कोई चीज बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक हमारे यहाँ नहीं आई। कदाचित् बंगला कहानियों को देखकर ही हिन्दी के लेखक आधुनिक ढंग की कहानी लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। परंतु लगभग एक दशक तक इस क्षेत्र में कोई मौलिक और महत्त्वपूर्ण रचना दे न दे सके।

हिन्दी की कहानी के विकास को दृष्टि में रखते हुए हम उसके विकास-काल को कई कालों में विभाजित कर सकते हैं। पहला काल १९०० ई० से १९१० ई० तक ठहरता है। यह नैतिक और उपदेशात्मक आख्यायिकाओं और गल्पों का युग है जो कला की दृष्टि से नितांत दुर्बल रचनायें हैं। इस काल की अधिकांश श्रेष्ठ कहानियाँ सुदर्शन और सरस्वती के पृष्ठों के प्रकाशित हुईं। पंडित माधवप्रसाद मिश्र, किशोरीलाल गोस्वामी, छबीलेलाल गोस्वामी, गिरिजाकुमार घोष, ज्वालादत्त शर्मा आदि इस काल के प्रमुख लेखक हैं। उस समय की अधिकांश कहानियां प्रसिद्ध उपन्यासों, नाटकों अथवा कथा-काव्यों का संक्षेप या सार-मात्र हैं। आज के मापदंड पर ये कहानियाँ

पूरी नहीं उतरतीं। उनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक है। इन प्रारंभिक कहानी-लेखकों को रोचक ढंग से कथानक उपस्थित करना भर आता था और कदाचित् उनकी कहानी-कला यहीं समाप्त हो जाती थी। कथानक यथार्थ और स्वाभाविक हो, इसकी भी वे अधिक चिंता नहीं करते थे। काव्य-न्याय और उपदेश पर उनकी दृष्टि लगी रहती थी। उस युग के कहनियों के शीर्षक देखने पर वे उनके विषय का पता चल जाता था जैसे दान का फल, सत्य का परिणाम, दया से लाभ, आदि। कला की दृष्टि से इन प्रारंभिक कहानी-लेखकों में गिरजाप्रसाद घोष की कहानियाँ सर्वोत्तम हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी की सर्व-प्रथम मौलिक कहानी 'इंदुमती' ( जून, १९०० ) है जिसके लेखक किशोरीलाल गोस्वामी हैं। यह कहानी सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। कदाचित् शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक को राजपूत-वातावरण देकर इस कहानी की रचना की गई। परन्तु यह दशक इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें सैकड़ों कहानियों के अनुवाद और रूपान्तर प्रकाशित हुए और उन्होंने हिंदी कहानियों के लिए उपयुक्त क्षेत्र का निर्माण किया। बंगला कहानियों के रूपान्तरकारों में पार्वतीनन्दन और बंगमहिला प्रमुख हैं।

१९११ई०से १९२८ई०तक कहानी का दूसरा काल माना जा सकता है। इस युग का आरंभ जयशंकर प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' से हुआ जो 'इन्दु' पत्रिका में १९११ ई० में प्रकाशित हुई था। प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ इसी युग से संबंधित हैं। अधिकांश का विषय प्रेम है और वे प्राचीन आख्यान-गीतियों, प्रेमाख्यानक काव्यों और खंड-काव्यों की परंपरा से प्रभावित हैं। उनमें भावुकता और काव्यात्मकता का मणि-कांचन संयोग हुआ है।

उन्हें हम भाव-प्रधान कहानी की श्रेणी में ले सकते हैं। चंडीप्रसाद हृदयेश और राधिकारमणसिंह इस श्रेणी के अन्य लेखक हैं। अधिकांश मौलिक कहानीकार इसी काल में हिंदी में आये। इन मौलिक कहानीकारों में जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। १९१२ में विश्म्भरनाथ जिज्जा, १९१३ में राधिकारमण और विश्म्भरनाथ कौशिक, १९१४ में चतुरसेन शास्त्री और १९१५ में पंडित चन्द्रधरशर्मा गुलेरी ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। १९१६ में प्रेमचंद के अवतरण के साथ हिंदी कहानी में एक नया युग आ गया। हिंदी कहानी का स्वर्णयुग प्रेमचंद के साथ ही शुरू होता है। १९१७ में रायकृष्णदास ने कहानियों की रचना आरम्भ की, १९१९ में चंडीप्रसाद हृदयेश और पंडित गोविन्द वल्लभ पंत और १९२० में सुदर्शन इस क्षेत्र में आये। बीसवीं शताब्दी के इस दूसरे दशाब्द के अंत में इन लेखकों के अतिरिक्त हमें कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानी-लेखक भी मिलते हैं जैसे पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी, बाबू शिवपूजनसहाय, मन्नन द्विवेदी और गंगाप्रसाद श्रीवास्तव। इसके बाद प्रत्येक वर्ष हमें नये-नये कलाकारों के दर्शन होते हैं। इनमें मोहनलाल नेहरू, रघुपतिसहाय, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उग्र, विनोदशंकर व्यास, राजेश्वर प्रसाद सिंह, जनार्दन झा द्विज, वाचस्पति पाठक, जैनेन्द्रकुमार, ऋषभचरण और इलाचंद जोशी महत्वपूर्ण हैं। कहानी की संख्या और कला की दृष्टि से इस काल के लेखकों में प्रेमचंद का स्थान सर्वोपरि है और उनके बाद प्रसाद आते हैं। नये लेखकों में उग्र, जैनेन्द्र, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा और रांगेय राघव सबसे महत्वपूर्ण हैं। १९२९ से १९३६ तक हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक नया युग आता है और ये नये लेखक धीरे-धीरे अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। स्वयं प्रेमचंद का अधिकांश श्रेष्ठ

कहानी-साहित्य इन्हीं वर्षों में सामने आया है और उन्होंने ही नई प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व किया है। उनका अंतिम संग्रह 'कफन' ( १९३६ ) हिंदी कहानी को एक नई दिशा देता है। इस संग्रह की अनेक कहानियाँ शोषितों, पीड़ितों, लांछितों और स्नेह-वंचितों से सम्बन्धित हैं। यहाँ प्रेमचंद की कला इतनी व्यंगप्राण हो गई है कि पाठक पंक्ति-पंक्ति पर खिलखिला उठता है। ऊपर के विवेचन में यह स्पष्ट है कि हिंदी कहानी को शुद्ध कला के क्षेत्र में प्रतिष्ठा करने वालों में प्रेमचंद ही अग्रगण्य हैं और जब तक वह जीवित रहे तब तक इस क्षेत्र में उनका ही एकाधिपत्य रहा।

## प्रेमचंद के कहानी-संबंधी आदर्श

कहानी के कला-रूप के संबंध में प्रेमचंद के क्या विचार हैं, यह जानना भी उपादेय है। प्रेमचन्द ने अपने कुछ निबंधों में इस विषय पर काफी लिखा है और उसके आधार पर हम प्रेमचंद की कहानी-विषयक धारणा से परिचित हो सकते हैं। प्रेमचंद कहानी में जीवन का प्रतिबिम्ब देखना चाहते है। उसमें अस्वाभाविक बातों को वे स्थान देना नहीं चाहते। वे कहते हैं—आजकल के उपन्यासों और आख्यायिकाओं में अस्वाभाविक बातों के लिए गुंजाइश नहीं है। इनमें हम अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं। उसके एक-एक वाक्य को, एक-एक पात्र को यथार्थ के रूप में देखना चाहते हैं। उनमें जो कुछ भी हो, वह इस तरह लिखा जाय कि साधारण बुद्धि उसे यथार्थ समझे। घटना वर्तमान कहानी या उपन्यास का मुख्य अंश नहीं है। उपन्यासों में पात्रों का केवल बाह्य रूप देखकर हम संतुष्ट नहीं होते। हम उनके मनोगत भावों तक पहुँचना चाहते हैं। यह

स्पष्ट है कि प्रेमचंद यथार्थ जीवन के कलाकार हैं और उनकी कहानी की श्रेष्ठता घटना या कथा-संगठन पर नहीं, उसके मनोवैज्ञानिक तथ्य या मनः-निरूपण पर है। घटना के संबंध में तो वह केवल यह कह कर छुट्टी पा जाते हैं कि आख्यायिका केवल एक घटना है। अन्य सब घटनाएं उसी घटना के अंतर्गत होती हैं।

यह एक घटना ऐसी हो जो किसी मानसिक द्वन्द को प्रगट करती हो। "मानसिक द्वन्द वर्तमान उपन्यास या गल्प का खास अंग है।" वे स्पष्ट कहते हैं—"वर्तमान आख्यायिका...... का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनायें और पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लाये जाते हैं। उनका स्थान बिलकुल गौण है।" "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है। इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना में अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है। सब से उत्तम कहानी वह है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।"

कहानी का एक वर्ग समस्या-प्रधान कहानी है। प्रेमचन्द इस श्रेणी की कहानी को भी उपादेय मानते हैं। वह कहते हैं-'किसी समस्या का समावेश कहानी को आकर्षक बनाने के लिए सब से उत्तम साधन है। जीवन में ऐसी समस्यायें नित्य ही उपस्थित रहती हैं और उनसे पैदा होने वाला द्वन्द आख्यायिका को चमका देता है। परन्तु प्रेमचंद जानते हैं कि समस्या के साथ-साथ कहानीकार की दृष्टि मनोरंजकता पर भी होनी चाहिये।

परन्तु इस मनोरंजनता की व्याख्या उन्होंने अपने ढंग से की है। वह कहते हैं—"यह तो सभी मानते हैं कि आख्यायिका का प्रधान धर्म मनोरंजन है, पर साहित्यिक मनोरंजन वह है जिससे हमारी कोमल और पवित्र भावनाओं को प्रोत्साहन मिले—इससे सत्य, निस्स्वार्थ सेवा, न्याय आदि देवत्व के जो अंश हैं, वे जाग्रत हों।' केवल मात्र कहानी, तत्त्वहीन कहानी से प्रेमचंद को चिढ़ है। तत्त्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाय, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि "हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन में सुन्दर भावों को जाग्रत करने के लिए, कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद कलावादी वर्ग से अलग हैं। वह कला के लिए कला की आवाज नहीं उठाते। वे लिखते हैं-"कला के लिए कला का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, दुःख-दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे। हां, उपन्यासकार (कहानीकार) को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि उसके विचार परोक्ष रूप में व्यक्त हों उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायेगा।'

ऊपर प्रेमचंद के कहानी के अंतरंग के संबंध में जो कहा है, उसके आधार पर हम उनका कहानी-संबंधी दृष्टिकोण इस प्रकार स्थापित कर सकते हैं :-

१- कहानी कल्पना- व्योम में विचरण नहीं करे। वह यथार्थ जीवन, हाड़-माँस के मनुष्यों के सुख-दुःख से संबंधित हो।

२- घटना या कथा-संगठन ही कहानी का सब कुछ नहीं है। परंतु घटना केवल एक हो और अन्य सब घटनाएँ उसके अंतर्गत आती हों, कहानी के सौष्ठव के लिए यह आवश्यक है। यह घटना भी निर्मूल नहीं है। वह किसी मानसिक द्वन्द्व को प्रगट करती है।

३- घटना का संबंध कहानी की मनोरंजकता से है। प्रेमचंद कहानी में मनोरंजन के तत्व की पूर्णतः स्थापना चाहते हैं, परंतु यह मनोरंजन निरर्थक नहीं है। वह हमारी मूलतः नृशंस वृत्तियों को कोमल बनाये या पवित्र भावनाओं को प्रोत्साहन दे।

४- प्रेमचंद के दृष्टिकोण से कहानियों के कुछ निश्चित वर्ग हो जाते हैं :—

(क) वह कहानी जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो। प्रेमचंद की दृष्टि में ऐसी कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं।

(ख) वह कहानी जो किसी समस्या को लेकर चलती हो।

(ग) वह कहानी जो आदर्शवाद से अनुप्राणित है और विचारों को उत्तेजित करती है एवं मन में सुन्दर भाव जाग्रत करती है।

इस प्रकार प्रेमचंद मनोवैज्ञानिक समस्यामूलक और आदर्शवादी कहानियों को ही लेकर चलते हैं। वह यथार्थ जीवन के चित्रकार हैं, परंतु नग्न यथार्थ या निरर्थक यथार्थ उन्हें अप्रिय है। फलतः वह यथार्थ को आदर्श से अनुप्राणित कर हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

कहानी के बाह्यांगों पर भी प्रेमचंद को कुछ कहना है। वे कहते हैं—"आजकल कथा भिन्न-भिन्न रूप से आरंभ की

जाती है। कहीं दो मित्रों की बातचीत से कथा आरंभ हो जाती है, कहीं पुलिसकोर्ट के दृश्य से परिचय पीछे आता है। यह अंग्रेजी आख्यायिकाओं की नकल है। इससे कहानी अनायास ही जटिल और दुर्बोध हो जाती है। योरुप वालों की द्वारा, डायरी या टिप्पणियों द्वारा भी कहानियाँ लिखी जाती हैं। मैंने स्वयं इन सब शैलियों पर रचनायें की हैं पर वास्तव में इससे कहानी की सरलता में बाधा पड़ती है। योरुप के विद्वान समालोचक कहानियों के लिये किसी अंत की भी जरूरत नहीं समझते × × ×।" इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद प्रयोगवादी नहीं हैं। वह निरर्थक प्रयोग नहीं करते। उनके लिए कहानी के बहिरंग की अपेक्षा अंतरंग कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। कथा-संगठन के संबंध में वह इन्द्रनाथ मदन को लिखे अपने पत्र (७-६-१९३५) में लिखते हैं—मैं प्लाट (कथानक) इस प्रकार गढ़ता हूं कि मानव-चरित्र में जो भी सुन्दर और स्वस्थ हो वह उभर कर सामने आये। कैसे गढ़ता हूं, यह समझाना कुछ इतनी सुलझी बात नहीं है। कभी-कभी मुझे किसी व्यक्ति से प्रेरणा मिलती है। कभी किसी घटना से, कभी स्वप्न मात्र से, परंतु मैं यह आवश्यक मानता हूं कि मेरी कहानी को कोई न कोई मनोवैज्ञानिक आधार अवश्य मिलना चाहिये।' चरित्रों के संबंध में उसी पत्र में वे कहते हैं—'मेरे अधिकांश चरित्र यथार्थ जीवन से लिए गए हैं परंतु मैंने उन्हें अच्छी तरह ढक दिया है। उन्हें पहचानना कुछ कठिन ही है। परंतु जब तक यथार्थ-जीवन में चरित्र का कोई मूल तत्व या आधार नहीं होता, तब तक वह छाया-मात्र, अनिश्चित और अविश्वसनीय रहता है।'

यह हैं प्रेमचंद के कहानी-संबंधी वे आदर्श जिनकी नींव पर उन्होंने अपनी कला को अंकित किया है और जिनको ध्यान में रखते हुए उन्होंने २००-२५० कहानियों की रचना की है। ये उनके प्रौढ़ विचार हैं और यह संभव नहीं कि आरंभिक कहानियों भी इन पर संपूर्णतयः पूरी उतरें। परंतु उनकी अधिकांश रचनाओं के लिए ये विचार भूमिका रूप में उपस्थित किये जा सकते हैं।

वैसे कहानी-लेखन प्रेमचंद ने १९०७ ई० में शुरू किया जब उनकी आयु २७ वर्ष की थी और लगभग ३० वर्षों तब वे बराबर लिखते रहे, परन्तु १९०७ से पहले भी उन्होंने इस क्षेत्र में थोड़ा बहुत काम किया था। उनकी पहली रचना 'जमाना' में १९०१ में प्रकाशित हुई। यह एक लेख था। इसके बाद उनके लेखों का क्रम बराबर जारी रहा। फिर उन्होंने समसामयिक घटनाओं पर भी लिखा और नये-पुराने नेताओं के चरित्र भी लिखे। १९०७ ई० तक वह इस प्रकार की बहुत बड़ी और साधारण ढंग से अच्छी सामग्री उपस्थित कर चुके थे। सामयिक घटनाओं के संबंध में उन्होंने जो लिखा वह 'जमाना' की फाइलों में ही सुरक्षित है, परंतु उनका चरित्र संबंधी साहित्य 'कलम, तलवार और त्याग' नाम से हिंदी में प्रकाशित हो चुका है। प्रकाशित करते समय प्रेमचंद ने इस साहित्य को संभाल भी दिया है। इस बीच में उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियाँ भी पढ़ीं और कुछ कहानियों का अनुवाद भी किया।

प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन करते समय उन्हें सामूहिक रूप से लेना कुछ सरल होगा। अभी तक विभिन्न कहानियों की रचना-तिथि के सम्बन्ध में हम निश्चित नहीं हो सके हैं, इसलिए उनकी कहानी-कला के विकास क्रम को स्थापित करना

कुछ कठिन है। अतः संपूर्ण सामग्री एक साथ लेनी होगी। यह सामग्री लगभग ३० संग्रहों में बिखरी पड़ी है। हिंदी के संग्रह हैं: सप्तसरोज, अग्नि-समाधि, नवनिधि, प्रेरणा, प्रेमपच्चीसी, प्रेम-पूर्णिमा, प्रेम प्रसून, प्रेमलोक, प्रेमप्रतिमा, प्रेम प्रमोद, प्रेमद्वादशी, प्रेमपंचमी, प्रेमचतुर्थी, पंच-फूल, कफन, समर-यात्रा और मान-सरोवर (१—७)। 'मानसरोवर' में प्रेमचंद की लगभग सब कहानियाँ सुसंपादित रूप से सामने आ गई हैं और अलग-अलग संग्रहों पर विचार करना व्यर्थ हो गया है। उर्दू के संग्रह हैं प्रेम-पचमी, प्रेम-बत्तीसी, प्रेम-चालीसी, सोजे-वतन, फिरदौसे ख्याल, जादेराह, दुख की कीमत, वारदात, आखिरी तोहफा, ख़वाबो-ख्याल, खाके-परवाना। प्रेमचंद ने इन्द्रनाथ मदन को लिखे अपने एक पत्र में बतलाया है कि कोई भी कहानी अप्रकाशित रूप में उपस्थित नहीं है। फिर भी यह आवश्यकता है कि समसाम-यिक पत्रों को उलट-पुलट कर देखा जाय और कम से कम कहानियों की प्रकाशन-तिथि से उनके रचना-क्रम को उपस्थित किया जाये। इस तरह हम प्रेमचंद की कहानी-कला सम्बन्धी साधना का रूप स्पष्ट कर सकेंगे।

इन २५० से ऊपर कहानियों को एक साथ लेना असम्भव है और सुविधा के लिए विषय की दृष्टि से उन्हें कई श्रेणियों में बाँट देना होता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रेमचंद मूलतः कलाकार हैं और उनकी कहानियाँ एक साथ कई श्रेणियों को छू सकती हैं। कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जो किसी भी वर्गी-करण में नहीं आतीं। जो हो, यह निश्चित है कि इस बड़ी सामग्री को एक निश्चित रूप देना ठीक होगा और तब हम प्रेमचंद की कहानी-कला के सम्बन्ध में कोई मत निश्चित कर सकेंगे।

## प्रेमचंद की कहानियों का वर्गीकरण

विषय और शैली की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियों के कई वर्ग किये जा सकतेःहैं। अभी तक हमने प्रेमचंद की कहानियों को सामूहिक रूप में ही देखा है। उनके वैज्ञानिक विश्लेषण की ओर हमारा ध्यान नहीं गया है। यह आश्चर्य और क्षोभ का विषय है। प्र मचंद हिंदी के सबसे बड़े कहानीकार हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों के बाद सबसे सुन्दर और सबसे प्रौढ़ कहानियाँ उन्होंने ही हमें दी हैं। परन्तु रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ मूलतः कवि की कहानियां हैं। वह हमारे दैनिक जीवन को छूते हैं तो उसे अपनी कविप्रतिभा के द्वारा नई महिमा, नए ऐश्वर्य, नई भंगिमा से मंडित कर देते हैं; फलतः उनकी कहानियों में जीवन के यथार्थ स्वर दब गये हैं। तटस्थ भाव से कवि मध्यवित्त और सामान्य जनता के संघर्षों और अंतर्द्वन्दों को देखता है। परंतु वह निःस्पृह भाव से उनका काव्यचित्र ही उपस्थित करके अलग हट जाता है। वह परिस्थितियों को चुनौती नहीं देता और उसके पात्र काव्य, कल्पना और रसधर्मी वातावरण को छोड़ कर अकेले खड़े ही नहीं रह सकते। उनकी कहानियों में कलाकार की विदग्धता और मर्मज्ञता है, परन्तु उनमें सामाजिक, राष्ट्रीय या किसी भी युगचेतना का अभाव है। जहाँ तक प्रेरणा और कलाविदग्धता का संबन्ध है, ये कहानियां महत्वपूर्ण रही हैं। इन्होंने अन्य भारतीय भाषाओं के कथाकारों को प्रभावित किया है और आधुनिक कहानी के मुँदे स्रोत को अनेक प्रकार से उन्मुक्त किया है। परन्तु प्रेमचंद की कहानियाँ रवीन्द्रनाथ की कला से बहुत कुछ सीखती हुई भी उनसे आगे की चीजें हैं। हिन्दी कहानी में यदि हमें रवीन्द्रनाथ की कवि-अंतर्दृष्टि और आदर्शोन्मुख भावुक कला

देखना है तो हमें प्रसाद और जैनेद्रकुमार के साहित्य को देखना होगा। प्रेमचंद की कहानियों की श्रेणी नितांत भिन्न है।

साधारणतः कहानियों में प्रेम के त्रिकोण को अपना विषय बनाया जाता है और जनता में कदाचित् प्रेम-सम्बन्धी कहानियाँ सब से अधिक लोकप्रिय रहती हैं। प्रेमचंद ने 'प्रेम' को लेकर लगभग तीन दर्जन कहानियां हमें दी हैं और इन कहानियों में प्रेम जैसे व्यापक भाव का सारा उतार-चढ़ाव आ गया है। ये कहानियां हैं ज्योति, दिल की रानी, कायर, शिकार, घासवाली, वेश्या, कैदी, मिस पद्मा, विद्रोही, उन्माद, जादू, विश्वास, लैला, सौभाग्य के कोड़े, विनोद, अभिलाषा, आगा-पीछा, प्रेम का उदय, सती, रहस्य, स्मृति का पुजारी, दो सखियाँ, संकट, सेवा-मार्ग, कामना-तरु, मर्यादा की वेदी, सती (२), तथ्य, आहुति, रानी सारन्धा, विस्मृति, हार की जीत, पाप का अग्निकुंड और धोखा। परन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि इन कहानियों में या तो प्रतिनायक (प्रतिस्पर्धी) है ही नहीं, या वह लगभग तटस्थ रहता है। इस प्रकार इन प्रेम-कहानियों की 'टेकनिक' ही भिन्न है। वे कहानी कम हैं, काव्य अधिक। वस्तुतः उन्हें मध्य-युगीन रोमांस-काव्यों के साथ रखा जा सकता है। परन्तु रोमांस-काव्यों में प्रतिस्पर्धी भी रहता है और वह सचेष्ट भी रहता है। इन कहानियों में प्रेम के विशुद्ध आत्म समर्पण पूर्ण, सात्विक रूप को ही स्थान मिला है। त्रिकोणात्मक प्रेम में जो ईर्ष्या होती है, जो अंतर्दाह रहता है, वासना का जो प्रवाह रहता है वह इन कहानियों में कहीं भी नहीं मिलेगा। प्रेमचन्द ने इंद्रनाथ मदन को लिखे अपने पत्र में लिखा है कि उन्होंने कभी 'प्रेम' नहीं किया। कुछ साधारण से प्रसंग उनके जीवन में अवश्य आये परन्तु उन्हें प्रेमप्रसङ्ग

नहीं कहा जा सकता। शिवरानी देवी के संस्मरणों से एक प्रेम-प्रसंग का पता तो अवश्य ही चलता है और यह कहा जा सकत है कि प्रेमचन्द प्रेम के उत्ताप से पूर्णतयः अपरिचित नहीं थे कदाचित् कायाकल्प की लौंगी में प्रेमचन्द ने प्रेम की जिस पूर्णता का अनुभव किया है, वह उनकी अनुभव-जन्यवस्तु था। उनकी इन प्रेम कहानियों में प्रेम प्रतिदान और समर्पण के रूप में ही सामने आता है। वह हड्डियों का उन्माद नहीं है,न वह आधुनिक नर-नारियों के प्रेम की तरह लेनदेन ही है। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने प्रेम की अनेक स्थितियों की कल्पना की है, या इन स्थितियों के वर्णन पढ़े-सुने हैं, और इन के आधार पर उन्होंने प्रेम की मंदाकिनी बहाई है। वासना की उद्दीप्ति और विकलता इन प्रेमकहानियों में नहीं है। फलतः न कोई मनोवैज्ञानिक उलझन है, न यौन समस्यायें हैं, न प्रतिस्पर्द्धियों की चालें हैं। शरतचंद के उपन्यासों और कहानियों से प्रेमचंद की रचनायें इस दृष्टि से बहुत भिन्न हो जाती हैं। प्रेम शरतचंद का मुख्य विषय है। परन्तु वहां प्रेम का आदर्श, महामहिम, आत्मसमर्पण रूप, गीतिकाव्य रूप हमें नहीं मिलता। दो प्रेमियों के बीच में एक तीसरा पात्र अवश्य आ जाता है। नारी दो पुरुषों के बीच में आकर्षण-विकर्षण के झूले पर झूलने लगती है। इस द्वन्द में या तो स्वयं वह टूट जाती है या उसका कोई प्रेमी। साधारणतः जहां विवाहिता स्त्रियां प्रेम के क्षेत्र में उतरती हैं, वहाँ कहानी के अंत में या तो उनकी मृत्यु हो जाती है, या जो प्रेमी दम्पति के बीच में आता है, वह चला जाता है। यह मृत्यु बहुधा आत्महत्या का रूप धारण कर लेती है और यह लांछना लगाई जाती है कि प्रेमचंद मनोविज्ञान के पारखी नहीं हैं और जहाँ उनके पात्र उलझ जाते हैं, वहाँ वे आत्महत्या द्वारा उनसे छुटकारा पा लेते हैं। परंतु प्रेमचंद

हिन्दू समाज की सीमाएँ समझते हैं और वही दिखाते हैं जो इन सीमाओं के भीतर सम्भव है। शरतचन्द की प्रेम-कहानियों की भी यही सीमाएँ हैं। प्रेमचन्द प्रेमसंघर्ष को व्यक्तियों पर आधारित नहीं करते। 'क' 'ख' से प्रेम करे या 'ग' से, यह समस्या उनके लिये महत्वपूर्ण नहीं है। 'क' को 'ख' से प्रेम है परंतु जाति, कुलगर्व, परिस्थितियाँ या समाज या दैवीय दुर्घटना 'क' और 'ख' के बीच में आ जाती है और दोनों में से एक व्यक्ति चला जाता है। जो रह गया है, उसकी वेदना का अंत नहीं है। शरतचन्द के 'देवदास' उपन्यास में प्रेम का यही रूप है। प्रेम के क्षेत्र में प्रताड़ित होकर देवदास अपने जीवन को नष्ट करने पर तुल जाता है। यह भी आत्महत्या का ही एक ढंग है। अंत में वह क्षय में मर जाता है और उसकी मृत्यु हममें अपार क्षोभ भर देती है। प्रेम का आत्म समर्पण वाला रूप 'देवदास' में प्रधानता नहीं पाता, वहाँ उसका आत्मघाती रूप ही मुख्य है। प्रेमचंद की प्रेम-कहानियाँ प्रेम की उज्ज्वलता, महानता और आत्मबलि के सर्वोच्च स्तर को छूती हैं। उनमें कहीं भी अवसाद, पीड़ा और क्षोभ के दर्शन नहीं होते। वह संसार की सब से सुन्दर प्रेम-कहानियों में स्थान पाने योग्य हैं।

इन प्रेम-कहानियों में से कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिन्हें इतिहास की पृष्ठभूमि दे दी गई है जैसे लैला, रानी सारन्धा, दिल की रानी, कामना-तरु। इन कहानियों में प्रेमचन्द कवि बन गये हैं। उनकी भाषा-शैली की सबसे ऊँची, काव्यमय उड़ान यहीं मिलेगी। उदाहरण-स्वरूप, 'लैला' कहानी को लीजिये। कहानी को शुरू करते हुए प्रेमचंद कहते हैं—'लैला के रूप-लालित्य की कल्पना करनी हो तो ऊषा की प्रफुल्ल लालिमा की कल्पना

कीजिये, जब नीला गगन स्वर्ण-प्रकाश से रंजित हो जाता है, 'बहार की कल्पना कीजिये, जब बाग में रंग-रंग के फूल खिलते हैं और बुलबुलें गाती हैं।' यह हुआ रूप। अब स्वर का वर्णन देखिये—'लैला के स्वर-लालित्य की कल्पना करनी हो तो उस घंटी की अनवरत ध्वनि की कल्पना कीजिये जो निशा की निस्तब्धता में ऊँटों की गरदनों में बजती हुई सुनाई देती है, या उस बाँसुरी की ध्वनि की जो मध्याह्न की आलस्यमयी शांति में किसी वृक्ष की छाया में बैठे हुए चरवाहे के मुँह से निकलती है।' नादिर लैला के प्रेम में पागल हो गया। लैला ने उसकी उपेक्षा की—'लेकिन यहाँ शाहजादों का क्या काम? उनके लिए महल हैं, महफिलें हैं और शराब के दौर हैं, मैं उनके लिए जीती हूँ जिसके दिल में दर्द है, उसके लिए नहीं जिसके दिल में शौक है।' परन्तु जब नादिर महल छोड़ कर लैला के साथ फकीर बन जाता है, तब लैला उसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। अंत में अपने हृदय से विवश होकर उसी की हो जाती है। परन्तु सच्चा प्रेम अपने क्षेत्र में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं चाहता। प्रजाहित क्षेत्र में आता है। परिस्थितियों के अनेक उतार-चढ़ाव के बाद भी यह व्यवधान शेष रह जाता है। अंत में नादिर इस निश्चय पर पहुँचता है कि लैला ही उसके लिए सब कुछ है और वह उसके लिए साम्राज्य को छोड़ देगा, परन्तु लैला तो प्रेम की पुजारिन है। वह पहले ही उसे छोड़ कर चली गई है। यह स्पष्ट है कि कहानी में प्रेम का त्रिकोण नहीं है, केवल कर्तव्याकर्तव्य का द्वन्द्व है, परन्तु जिस मार्मिकता से कहानी कही गई है वह हमें प्रभावित कर देती है।

'रानी सारन्धा' में प्रेमचन्द ने रानी के प्रेम और उत्सर्ग के द्वन्द्व को चित्रित किया। कहानी बुन्देलखंड के राजघराने से संबन्ध

रखती है और कदाचित् प्रेमचंद ने उसको कथा लोक-कहानी के रूप में उन दिनों प्राप्त की होगी जब वह झांसी में थे। परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के भीतर से भी वे एक सुन्दर प्राणवान् कृति उपस्थित कर सके हैं। कहानी का आरंभ और अंत बड़ा कला-पूर्ण है। अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत है। वह लड़ाई से भाग आया। सारन्धा उसकी बहन है। सारन्धा के पूछने पर भाई बतलाता है कि वह नदी तैर कर आया है।

सारन्धा—हथियार क्या हुए?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथ के आदमी?

अनिरुद्ध—सब ने वीर गति पाई।

शीतला अनिरुद्धसिंह की पत्नी थी। उसने दबी जबान से कहा— 'ईश्वर ने ही कुशल किया'—मगर सारन्धा के तेवरों पर बल पड़ गये और मुखमंडल गर्व से सतेज हो गया। बोली—भैय्या, तुमने कुल की मर्यादा खो दी। ऐसा कभी नहीं हुआ था।

शीतला को यह बात बुरी लगी, किन्तु अनिरुद्ध के दिल में यह बात चुभ गई। शीतला ने काली नागिन की तरह कहा—मर्यादा इतनी प्यारी है?

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता तो हृदय में छिपा लेतीं।

सारन्धा—ना, छाती में छुरी चुभा देती।

शीतला ने ऐंठ कर कहा—झोली में छिपाती फिरोगी,—मेरी बात गिरह में बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इसी सारन्धा की शादी ओरछा के राजा चम्पतराय से हुई और भाग्य की प्रताड़ना से वह मुगल बादशाह के आश्रित हो गये। परन्तु क्षत्राणी सारन्धा के तेज ने कुछ ही समय बाद उन्हें चेतावनी दे दी। अंत में अपनी आन के लिए उन्हें अपनी मनसबदारी और ओरछा का राजपाट सब छोड़ना पड़ा। उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अंत में मुगल सिपाहियों से बचने के लिये बुन्देलखंड के जंगलों की शरण लेनी पड़ी। अंत में एक दिन मुगल सैनिकों के बीच में घिर ही गये। बीमार होते हुए भी वे तलवार लेकर झपटे किन्तु गिर पड़े। शत्रु पास थे। उधर वे यह नहीं चाहते थे कि गिरफ्तार होकर दिल्ली के कैदखाने में सड़ें। उन्होंने रानी से कहा—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धा यह समझी कि राजा यह कह रहे हैं कि वह (सारन्धा) आत्महत्या कर ले। राजा ने कहा—मैं तुमसे एक वरदान मांगता हूँ।

रानी—सहर्ष मांगिये।

राजा—यह मेरी अंतिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा करोगी?

रानी—सिर के बल करूँगी।

राजा—देखो तुमने वचन दिया है। इनकार मत करना।

रानी—(काँप कर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती में चुभा दो।

रानी के हृदय में वज्रघात-सा हो गया। बादशाह के सिपाही राजा की तरफ लपके। राजा ने नैराश्यपूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित रूप से खड़ी रही। फिर सारन्धा ने दामिनी की भांति लपक कर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुभा दी। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शांति छाई हुई थी। बादशाही सिपाहियों के सरदार ने आगे बढ़कर कहा—राजा साहब, खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो उसे बसरो-चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कहकर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी, तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की कहानियों में कल्पना के ताने-बाने अधिक नहीं चल सकते, ऐतिहासिक तथ्य लेखक के हाथ बांध देता है, परन्तु फिर भी प्रेमचन्द साधारण लोककथा अथवा इतिहास में कला के अनेक तत्वों का समावेश करते हैं। 'दिल की रानी' में उन्होंने जनता की जाग्रत शक्ति को भी पहचाना है और कहानी प्रेम और सत्ता के द्वन्द्व पर आश्रित है। कामना-तरु में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का पुट अधिक है और वह प्रेमचंद की श्रेष्ठतम कहानियों के समकक्ष रखी जा सकती है।

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, प्रेमचंद अपनी अधिकांश प्रेम-कहानियों में प्रेम के त्रिकोण का चित्रण नहीं कर सके हैं। या तो वह प्रेम की गंभीरता की व्यंजना करके ही रह जाते हैं या प्रेम और देशप्रेम, बलिदान अथवा राजपूती आन का संघर्ष

उपस्थित करते हैं। जहाँ प्रेम का त्रिकोण थोड़ा विकसित भी है जैसे 'मर्यादा की देवी' नामक कहानी में, वहाँ भी वे उसे कुछ अधिक तीव्र नहीं बना पाये हैं। इस क्षेत्र में प्रसाद की कहानियाँ कहीं अधिक मार्मिक बन पड़ी हैं। 'आकाशदीप', 'सालवती', 'नूरी' जैसी कहानियों में प्रेम को लेकर जो अंतर्द्वन्द है, जो कसक है, जो भावविलोड़न है, वह प्रेमचंद की किसी प्रेमकहानी में कदाचित् ही मिले। अधिक से अधिक वे ऐतिहासिक प्रेम-रोमांस ही हमें दे सके हैं। इन्द्रनाथ मदन को लिखे अपने एक पत्र में उन्होंने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि प्रेम उनके जीवन में कोई विशेष उत्तेजना नहीं ला सका। वह उनके लिये जीवनमरण का प्रश्न नहीं बना। फलतः उनकी प्रेम-कहानियों में अनुभूति का पक्ष दृढ़ नहीं है। फिर भी वे प्रेमचंद के अनुरूप ही हैं और ऐतिहासिक तथ्यों को जीती-जागती घटनाओं की मांसलता देने में समर्थ हैं।

प्रेमचंद की कहानियों का दूसरा वर्ग नारी-जीवन से संबंधित है। इन्हें हम 'नारी-जीवन की कहानियां' कह सकते हैं और कुछ कहानियां इस नाम के संग्रह में प्रकाशित भी हुई हैं। इन कहानियों में प्रेमचन्द ने नारी-जीवन के अनेक द्वन्दों और पक्षों को उपस्थित किया है। कुछ कहानियां ऐसी हैं जो पति-पत्नी के चारित्रिक द्वन्द से संबंधित हैं जैसे 'शांति' (अंतिम शांति 'जीवन का शाप', 'स्त्री और पुरुष' और 'दिल की रानी'। कुछ कहानियाँ स्त्री के प्रेम, बलिदान और सेवा को अपना विषय बनाती हैं जैसे ज्योति, प्रेम का हृदय, सती, रहस्य, स्मृति का पुजारी, दो नारियाँ, सेवामार्ग, तथा आहुति और विश्वास। यह प्रेम, सेवा और बलिदान की भावना केवल सुसंस्कृत नारी में ही नहीं मिलती, यह नारी-मात्र का श्रृंगार है। नारी सर्वत्र

नारी है। 'घासवाली' कहानी में प्रेमचंद ने कदाचित् इसी महान सत्य की ओर संकेत किया है। अपनी अनेक कहानियों में प्रेमचंद ने प्राचीन और नवीन नारी के प्रेमसंबंधी-दृष्टिकोण को तुलनात्मक ढंग से उपस्थित किया है। कुछ अन्य कहानियों में उन्होंने नव्य नारी को अपना विषय बनाया है। 'शिकार' कहानी में नारी अपने प्रिय की यथार्थ संगिनी बनकर प्रेम प्राप्त करती है। पाश्चात्य प्रणाली का स्वतंत्र प्रेम हमें 'मिस पद्मा' में मिलेगा और ऊपरी चाल-ढाल और वेष-भूषा पर मोहित होने वाली तितली 'जादू' में। सच तो यह है कि प्रेमचंद नारी-जीवन के किसी अंग को नहीं छोड़ते। बीसियों तरह की नारियाँ उनकी कहानियों में हमारे सामने आती हैं। कहीं-कहीं कुल-मर्यादा और प्रेम की टक्कर है जिसमें कभी कुल-मर्यादा की जीत होती है, कभी प्रेम की। कहीं भारतीय नारी के संयमित प्रेम और पाश्चात्य शिक्षा से अनुप्राणित उन्माद की तुलना है। कभी ऐसी स्त्रियाँ सामने आती हैं जो अपने प्रयत्नों से पुरुष को जीत लेती हैं जैसे 'शिकार', 'स्वर्ग की देवी', 'दो नारियाँ', 'हार और जीत' में। कहीं पुरुष ही अपने सेवाव्रत और उत्साह से स्त्री को जीतता है जैसा 'आहुति' और 'विश्वास' शीर्षक कहानियों में। अनेक कहानियों में ऐसी स्त्रियाँ सामने आती हैं जो अपनी रसिकता से पुरुषों का मन मोह लेती हैं। 'कर्मभूमि' ने मुन्नी के रूप में प्रेमचंद ने ऐसी ही एक गँवारी का चित्रण किया है। 'घासवाली', 'रसिक संपादक', 'दारोगा जी' प्रभृति कहानियों में नारी की यह रस-लोलुपता ही उभरती है।

परंतु प्रेमचंद की कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वह पूर्वी और पश्चिमी आदर्शों में से पूर्वी आदर्शों की ओर अधिक झुकते हैं। वे नव्य नारी को अपनी पूर्ण सहानुभति

नहीं दे सके हैं। उनका स्त्री का आदर्श संपूर्ण रूप से आत्मसमर्पण, अपार सेवाभाव, अगाध स्नेह और अंतिम सीमा तक आत्मबलिदान चाहता है। नारी अपने प्रत्येक पग में नया आलोक, नया विश्वास, नई प्रेरणा बिखेरती हुई चले, तभी वह नारी है। उसके होठों पर वासना के कमल ही क्यों खिलें? वह सभानेत्री बन कर ही क्यों रह जाये? क्यों वह बाहर-भीतर एक तरह समान रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो? 'सती' और 'आधार' जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने बड़ी भावुकता से सतीत्व की महिमा गाई है। यही उनका नारी-जीवन का आदर्श है। उनका कहना है कि नारी अपने प्रेम और बलिदान के कारण ही चिरपावन है। 'वेश्या' कहानी में उन्होंने यह स्पष्ट रूप से बताया है कि प्रेम स्त्री को पवित्र बना देता है। 'दो कब्रें' और 'आगा-पीछा' कहानियाँ भी वेश्या-जीवन से संबंधित हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद 'देवदास' की चंद्रमुखी और 'गबन' की जोहरा के ही नये संस्करण हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

परन्तु नर-नारी का संबंध और प्रेम ही नारी-जीवन को समाप्त नहीं करता। अनेक सामाजिक समस्यायें स्त्री को ही लेकर उठ खड़ी होती हैं। स्त्री के प्रति समाज का शासनदंड सदैव कठोर रहा है। अपने सामाजिक उपन्यासों में, मुख्यतः 'सेवासदन' और 'निर्मला' में प्रेमचंद ने नारीजीवन की सामाजिक बिडंबनाओं को अच्छी परख की है, परन्तु कुछ कहानियों में वे फिर इस ओर मुड़े हैं। 'धिक्कार' और 'बालक' कहानियों में उन्होंने विधवा-विवाह को लिया है और 'नरक का मार्ग' कहानी में वृद्ध-विवाह को। अंतर्जातीय विवाह आधुनिक नारी का एक नई समस्या है और प्रेमचंद ने इसे भी नहीं छोड़ा है। 'कायर' कहानी का

यही विषय है। 'आभूषण' और 'हार' कहानियों में स्त्री का आभूषण-प्रेम ही विषय बन गया है। 'गबन' में भी प्रेमचंद इसी विषय को एक वृहद् कथानक की पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित किया था। वात्सल्य और मातृत्व को लेकर भी कुछ कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं। 'माता का हृदय' इनमें सर्वश्रेष्ठ है। 'ममता' इसी श्रेणी एक अन्य कहानी है।

परन्तु नारीजीवन में भारतीय जीवन की सारी चित्रपटी आ जाती है और नाम गिना देने भर से प्रेमचंद की कहानियों की विविधता और उनके वैभव का किंचित भी ज्ञान नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, हम 'शाँति' कहानी को ही ले रहे हैं जिसमें पति-पत्नी के चारित्रिक असंतुलन को लेखक ने अपना विषय बनाया है। अठ्ठारह पृष्ठों की इस छोटी सी कहानी में लेखक ने बहुत बड़ा चारित्रिक घात-प्रतिघात भर दिया है। पत्नी पुराने चाल की है, रामायण को वह किसी देवता का रचा समझती है, सास-ससुर से थरथर काँपती है। पतिदेव उच्चशिक्षा प्राप्त वकील हैं, उन्हें पत्नी के प्रत्येक काम में फूहड़पन दिखलाई देता है। वह उसे 'आस्कर वाइल्ड' का स्वाद चखाना चाहते हैं। अंत में एक दिन पतिदेव उसके सम्मुख पश्चिमी नारियों की शिक्षा, संस्कृति और स्वतंत्रता के सम्बन्ध में एक छोटा-मोटा व्याख्यान दे डालते हैं और उसे बताते हैं कि वह उनके गले में एक जंजीर की तरह पड़ी है। उस दिन से पत्नी उन्हीं के कहे अनुसार चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेती है; अपने देवता को किस भाँति अप्रसन्न करती? वह पढ़ना शुरू करती है, सुसंस्कृत बनना चाहती है। परन्तु धीरे २ कुटुम्ब में अशांति का जन्म होता है। माँ-बहू में पटना बंद हो जाता है। बहू को अब धर्म-कर्म ढोंग लगता है।

कुछ दिन बाद दम्पति इलाहाबाद चले आते हैं। यहाँ पत्नी को नए समाज के संस्कार ग्रहण करने की सारी सुविधाएँ मिलती हैं। वह एक दम नई नारी बन जाती है। क्लब-जीवन शुरू होता है। अंत में एक दिन पति बीमार पड़ जाते हैं और पत्नी को क्लब जीवन में छुटकारा नहीं मिलता। तब कहीं उन्हें पश्चिमी सभ्यता का छल जान पड़ता है। वह कहते हैं—'मैं अब समझ रहा हूँ कि मैं जिस स्वच्छ, लहराते हुए निर्मल जल की ओर दौड़ा जा रहा था, " मरुभूमि है। मैं इस प्रकार के जीवन के बाहरी रूप पर लट्टू हो रहा था; परन्तु अब मुझे उसकी आंतरिक-अवस्थाओं का बोध हो रहा है। इन चार वर्षों में मैंने इस उपवन में खूब भ्रमण किया और उसे आदि से अंत तक कंटकमय पाया। यहाँ न तो हृदय की शांति है, न आत्मिक आनंद। यह एक उन्नत, अशांतिमय, स्वार्थ पूर्ण विलासयुक्त जीवन है। यहाँ न नीति है, न धर्म, न सहानुभूति, न सहृदयता।' अंत में बड़ी कठिनता से यह दम्पति इस परिस्थिति से उबर पाते हैं। वे घर लौट जाते हैं और उनके गार्हस्थ्य जीवन में शांति का प्रवेश होता है। इस प्रकार प्रेमचंद अपनी कहानियों को अनेक आकर्षक उतार-चढ़ाव दे देते हैं और वह जीवन का एक संपूर्ण चित्र बन जाती हैं।

एक तीसरा वर्ग घर और परिवार से संबंधित कहानियों का है। ये कहानियाँ हैं गृहदाह, महातीर्थ, शंखनाद, बूढ़ी काकी, चोरी, तेंतर, नैराश्य, बेटोंवाली विधवा, घरजमाई, दो भाई, बैर का अंत, खुचड़, आभूषण, ब्रह्म का स्वांग, स्वामिनी, माता का हृदय। वैसे और भी अनेक कहानियों में गार्हस्थ्य जीवन की पृष्ठभूमि मिलती है परन्तु ये कहानियाँ मुख्यतः परिवार-निष्ठ हैं। इनमें

कुछ तो काफी बड़ी हैं, जैसे 'गृहदाह' और कुछ स्केच-मात्र हैं जैसे 'बूढ़ी काकी'। इन कहानियों में हमें प्रेमचंद की अपनी अनुभूति का भी परिचय मिलता है क्योंकि इनमें उनको आप-बीती बहुत कुछ गुँथी हुई है। उदाहरणार्थ, 'गृहदाह' में ही उन्होंने लिखा है—'मातृहीन बालक संसार का सबसे करुणाजनक प्राणी है। दीन-से-दीन प्राणियों को भी ईश्वर का आधार होता है, जो उनके हृदय को सँभालता रहता है। मातृहीन बालक इस आधार से भी बंचित होता है। माता ही उनके जीवन का एक मात्र आधार होती है। माता के बिना वह पंखहीन पत्ती है।' प्रेमचंद बहुत छोटी आयु में मातृहीन बन गये थे और उनका प्रारंभिक जीवन विमाता की कटु छाया में बीता। मातृहीन बालकों और विमाता के चित्रों में प्रेमचंद की अपनी बचपन की अनुभूति ही उमड़ पड़ी है। इस कहानी में भी विमाता ही पारिवारिक विघटन के लिए उत्तरदायी है। 'शंखनाद' कहानी में गाँव के खाते-पीते मध्य-वित्त का अच्छा चित्र खींचा गया है। जैसे नगर में, वैसे गाँव में भी संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। अपनी अनेक कहानियों और 'प्रेमाश्रम' जैसे वृहद उपन्यास में प्रेमचंद ने संयुक्त परिवार के बिगड़ने की कथा लिखी है। 'बड़े घर की बेटी' इस विषय की एक अन्य कहानी है। सभी जगह प्रेमचंद का आग्रह संयुक्त परिवार की रक्षा की ओर है यद्यपि उनका चित्रण कुछ और कह रहा है। आधुनिक वित्त-प्रधान जीवन में परिवारों का बना रहना ही आश्चर्य की बात होती। यह स्पष्ट है कि जहाँ अपने संस्कारों के कारण प्रेमचंद थोड़े रूढ़िवादी भी हैं वहाँ भी उनकी कला प्रगतिवादी है—इसका कारण यह कि वह यथार्थ जीवन पर आश्रित है और जीवन में स्वयं प्रगतिशीलता के तत्व निहित हैं। 'बूढ़ी काकी' प्रेमचंद की एक प्रशंसित कहानी है जिसमें एक

अतिवृद्धा स्त्री का कारुण्य चित्र है। इसे कहानी से अधिक स्केच कहना ठीक होगा। वृद्ध हो जाने पर केवल एक ही इन्द्रिय मनुष्य को चलाती है और वह है स्वादेन्द्रिय। बूढ़ी काकी जूठी पत्तलों से बीनर कर मिठाई खाने में संकोच नहीं करती। चित्र अधिकतः मनोवैज्ञानिक है और उसमें किसी प्रकार का प्रचारात्मक पहलू नहीं है। फिर भी हमें पारिवारिक जीवन और उसके हर्ष-विषाद का एक सुन्दर चित्र हमें मिल जाता है। 'चोरी' में कमाऊ मनुष्य की अहमन्यता का चित्रण है। 'तेंतर' में हिंदू समाज का एक और अंधविश्वास विजड़ित है। कहानी का आरंभ ही प्रेमचंद इस प्रकार करते हैं—'आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी, जिसकी चिंता में घर के सभी लोग और विशेषतः प्रसूता पड़ी हुई थी। तीन पुत्रों के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में मर गई, पिता बाहर आँगन में सूख गये, और पिता की वृद्ध माता सौर के द्वार पर सूख गई। अनर्थ, महा-अनर्थ! भगवान ही कुशल करे तो हो। यह पुत्री नहीं, राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में आना था। आना था तो कुछ दिन पहले क्यों न आई। भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।' कहानी में हमें प्रेमचंद की व्यंग-कला का अत्यंत सुथरा रूप मिलता है। यह व्यंग ही प्रेमचंद की कितनी कहानियों का प्राण है।

चौथे वर्ग की कहानियां सामाजिक पृष्ठभूमि को स्वीकार करके आगे बढ़ती हैं। समाज के अनेक कुसंस्कारों के विरुद्ध प्रेमचंद ने एक बहुत सफल मोर्चा खड़ा किया है। मध्यवित्त जीवन की सीमाओं और उसके अंतर्द्वन्दों का चित्रण इन सामाजिक कहानियों में खूब हुआ है। यह प्रेमचंद का प्रकृत क्षेत्र है और 'सेवा-सदन'-

'निर्मला' और 'गबन' में उन्होंने व्यापक रूप से अत्यंत वृहद् चित्रपटी देकर इस क्षेत्र को अपनाया है। 'धिक्कार' और 'बालक' कहानियों में विधवाजीवन की समस्या है, 'ठाकुर का कुँआ', 'दूध का दाम', 'सद्गति' और 'मंदिर' में अछूत-समस्या है, 'वहिष्कार' कहानी में समाज-बहिष्कार का चित्र है और कम से कम तीन कहानियों में पंडों और साधुओं की युग-पुराचीन निरर्थक संस्थाओं पर व्यंग है। ये कहानियाँ हैं मनुष्य का परम धर्म, गुरुमंत्र और बालाजी का भोग। मृतक-भोज निम्न श्रेणी के समाज का अत्यंत बलवान कुसंस्कार है और इसी नाम की एक कहानी में प्रेमचंद के इस कुसंस्कार पर भी जिहाद बोला है। शरद्चंद का 'पल्ली-समाज' और उनके कुछ अन्य छोटे उपन्यास इस कुप्रथा को ही केन्द्र बना कर चलते हैं। सामाजिक रीति-रिवाज और रूढ़िवादिता को विषय बना कर 'सद्गति', 'दो कब्रें' और 'खून सफेद' कहानियाँ लिखी गई हैं। कुछ अन्य अंध-विश्वासों का चित्रण सुभागी, तँतर, भूत और सुहाग की साड़ी कहानियों में मिलता है। हिन्दू समाज में साधारण सी चूक होने पर नारी त्याज्य है। पुरुष-नारी के संबंध की यह निर्बलता सामाजिक कुसंस्कार ही गिनी जायगी। 'निर्वासन', 'कुसुम' और 'दहेज' शीर्षक कहानियों में प्रेमचंद ने इस विषय को भी अपनाया है। 'नरक का मार्ग' और 'भूत' कहानियों में असमान सामाजिक संबंध की विडम्बना का चित्रण है। और भी अनेक वर्ग किये जा सकते हैं। आलोचकों ने प्रेमचद की कहानियों के इतने वर्ग खड़े कर दिये हैं कि प्रत्येक कहानी का अपना अलग वर्ग खड़ा हो जाता है। परन्तु प्रेमचंद की कला संपूर्ण जीवन को लेकर चलती है और उनकी कहानियाँ इतिहास, लोककथाओं, परंपराओं, सामयिक जीवन की विघट-

नाओं और मानव-मन के अंतर्द्वन्द्व के इतने पहलुओं को लेकर चलती हैं कि हम चमत्कृत हो जाते हैं। सामयिक जीवन को तो उन्होंने ऐसा समेटा है कि यह कहना कठिन हो गया है कि उन्होंने किस विषय पर कहानी नहीं लिखी। अनेक कहानियाँ किसी एक वर्ग में नहीं आतीं। वे समाज, परिवार और वैयक्तिक जीवन के अनेक कोणों को छूती हैं। कुछ कहानियों में [illegible] से अधिक अभिप्राय ही नहीं रहते, कथासूत्र भी एक से अधिक रहते हैं यद्यपि कहीं-कहीं इससे कथा के सौष्ठव की हानि भी होती है। फिर भी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें कथा का एक ही सूत्र है और कलासौष्ठव की दृष्टि से इन कहानियों को हम पृथक श्रेणी में रख सकेंगे। ये कहानियाँ हैं ईदगाह, नशा, ठाकुर का कुँआ, पूस की रात, आखिरी होली, रसिक संपादक, मनोवृत्ति, मुफ्त का यश, लाटरी, अभिलाषा, सखी, बोध, चोरी, कफन, लेखक, जुरमाना, बौड़म, आहुति, दफ्तरी, दुस्साहस, रामलीला, पछतावा। मोटेराम शास्त्री संबन्धित कहानियाँ और 'मोटर की छींटें' बाबा जी का भोग' और 'एक आँच की कसर' जैसी रचनाएँ जीवन के खंड-चित्र हमारे सामने उपस्थित करती हैं। एक छोटा-सा व्यंग, सामाजिक जीवन का एक जरा सा असंतुलन, मन का एक अत्यंत क्षुद्र भाव भी प्रेमचंद की लेखनी से स्केच, कहानी, आख्यायिका अथवा कथा बन जाता है। ऐसा है उनकी लेखनी का चमत्कार। ऐसी जादू की लेखनी को वर्गों में बाँट सकना उपहासास्पद है। वैज्ञानिक अध्ययन की सुविधा के लिए ऐसा हो तो ठीक है, परन्तु प्रेमचंद की जीवंत कलाचेष्टा, उनके सप्राण व्यंग, उनके अट्टहास, उनके स्वप्न, उनके विनोद सब मिल कर एक बड़ी सी दुनिया बन जाते हैं जिसमें उतनी ही

विविधता है जितनी विधाता की दुनिया में, परन्तु विधाता की दुनिया से एक नई और अनोखी बात भी उसमें है। विधाता का संसार बहुत कुछ अर्थहीन है, कम से कम उसका अर्थ हमारी समझ में नहीं आता। प्रेमचंद की यह सृष्टि सार्थक है। वह जीवन की खिड़कियों से झांक कर हमें जो दृश्य दिखाते हैं वह स्वतः पूर्ण रहता है, परन्तु जिस कोण से प्रेमचन्द उस दृश्य को उपस्थित करते हैं, वही उस पर उनकी आलोचना भी है। उदाहरण के लिये 'बाबा जी का भोग' शीर्षक एक दो पृष्ठों का स्केच ले लीजिये जो इस प्रकार है :—

रामधन अहीर के द्वार पर एक साधु आकर बोला—बच्चा तेरा कल्याण हो, कुछ साधु पर श्रद्धा कर।

रामधन ने जाकर स्त्री से कहा—साधु द्वार पर आये हैं, उन्हें कुछ दे दो।

स्त्री बरतन मांज रही थी, और इस घोर चिंता में मग्न थी कि आज भोजन क्या बनेगा, घर में अनाज का एक दाना भी न था। चैत का महीना था, किन्तु यहाँ दोपहर ही को अंधकार छा गया था। उपज सारी की सारी खलिहान से उठ गई! आधी महाजन ने ले ली, आधी जमींदार ने प्यादों ने वसूल की, भूसा बेचा तो बैल के व्यापारी से गला छूटा, बस थोड़ी सी गांठ अपने हिस्से में आई। उसी को पीट-पीट कर एक मन भर दाना निकाला था। किसी तरह चैत का महीना पार हुआ। अब आगे क्या होगा, क्या बैल खायेंगे, क्या घर के प्राणी खायेंगे, यह ईश्वर ही जाने। पर द्वार पर साधु आ गया है, उसे निराश कैसे लौटाये, अपने दिल में क्या कहेगा।

स्त्री ने कहा—क्या दे दूँ, कुछ तो रहा नहीं?

रामधन ने कहा—जा, देख तो मटके में, कुछ आटा-वाटा मिल जाय तो ले आ।

स्त्री—मटके झाड़-पोंछ कर तो कल ही चूल्हा जला था। क्या उसमें बरक्कत होगी।

रामधन—तो मुझसे तो यह न कहा जायगा कि बाबा घर में कुछ नहीं है। किसी के घर से मांग ला।

स्त्री—जिससे लिया उसे देने की नौबत नहीं आई, अब और किस मुँह से माँगू ?

रामधन—देवताओं के लिए कुछ अँगौवा निकाला है न, वही ला, दे आऊँ।

स्त्री—देवताओं की पूजा कहाँ से होगी ?

रामधन—देवता माँगने तो नहीं आते ? समाई होगी करना, न समाई हो न करना।

स्त्री—अरे, तो कुछ अंगौवा भी पँसेरी दो पँसेरी है ? बहुत होगा तो आध सेर। इसके बाद क्या फिर कोई साधू न आयेगा ? उसे तो जवाब देना ही पड़ेगा।

रामधन—यह बला तो टलेगी, फिर देखो जायगी।

स्त्री झुँझला कर उठी और एक छोटी सी हाँडी उठा लाई, जिसमें मुश्किल से आधसेर आटा था। यह गेहूं का आटा बड़े यत्न से देवताओं के लिए पड़ा हुआ था। रामधन कुछ देर खड़ा सोचता रहा, तब आटा एक कटोरे में रखकर बाहर आया और साधु की झोली में डाल दिया।

महात्मा ने आटा लेकर कहा—बच्चा, अब तो साधु आज यहीं रमेंगे। कुछ थोड़ी सी दाल दे, तो साधु का भोग लग जाय।

रामधन ने फिर आकर स्त्री से कहा। संयोग से दाल घर में थी। रामधन ने दाल, नमक, उपले जुटा दिये। फिर कुएँ से पानी खींच लाया। साधु ने बड़ी विधि से बाटियाँ बनाईं दाल पकाई, और आलू झोली में से निकाल कर भुरता बनाया। जब सब सामग्री तैयार हो गई, तो रामधन से बोले—बच्चा, भगवान के भोग के लिए कौड़ी-भर घी चाहिए। रसोई पवित्र न होगी, तो भोग कैसे लगेगा?

रामधन—बाबा जी, घी तो घर में न होगा।

साधु—बच्चा, भगवान का दिया तेरे पास बहुत है। ऐसी बात न कह।

रामधन—महाराज, मेरे गाय-भैंस कुछ नहीं है, घी कहाँ से होगा?

साधु—बच्चा, भगवान के भंडार में सब कुछ है, जाकर मालकिन से कहो तो? रामधन ने जाकर स्त्री से कहा—घी मांगते हैं, माँगने को भीख, पर घी बिना कौर नहीं धँसता।

स्त्री—तो इसी दाल में से थोड़ी लेकर बनिये के यहाँ से ला दो। जब सब किया है, तो इतने के लिये उन्हें क्यों नाराज करते हो?

घी आ गया। साधु ने ठाकुर जी की पिंडी निकाली, घंटी बजाई, और भोग लगाने लगे। खूब तन कर खाया, फिर पेट पर हाथ फेरते हुए द्वार पर लेट गये। थाली, बटली, और करछुल रामधन घर में माँजने के लिए उठा ले गया।

उस रात रामधन के घर चूल्हा नहीं जला। खाली दाल पका कर ही पी ली।

रामधन लेटा, तो सोच रहा था---मुझसे तो यही अच्छे !

साधारणतः यह स्केच एक चित्र-मात्र ज्ञात पड़ता है। समाज में ऐसे साधुओं और ऐसे श्रद्धालुओं की कमी नहीं है जो धर्म-निष्ठा के नाम पर गरीब यजमान के चूल्हे की बटलोई तक उतरवा लेते हैं। परन्तु जरा ध्यान देने पर प्रेमचंद का यह चित्र सप्राण व्यंग बन जाता है। भोग लगाने के बहाने साधु जिस प्रकार घी मिलने का आग्रह करता है और घी आने पर पूजा के सारे स्वांग पूरे कर जिस तरह खूब तन कर खाता, फिर पेट पर हाथ फेरते हुए द्वार पर लेट जाता है, जब उस रात रामधन के घर चूल्हा नहीं जलता और दम्पति खाली दाल पका कर ही पीते हैं--यह सब भीतरी चोट करने वाली चीज़ें हैं। अंत के एक वाक्य में प्रेमचंद इस चित्र के भीतर की व्यंगमयी सजावट को स्पष्ट कर देते हैं—'रामधन लेटा, तो सोच रहा था--मुझसे तो यही अच्छे !' यह समाज कितना खोखला है, धर्म के ठेकेदार भगवान के नाम पर सद्गृहस्थों को कैसे ठग रहे हैं, चारों ओर छल और प्रताड़ना का कैसा राज्य है जिसके इंद्रजाल में सदाशयी मनुष्य फँस जाता है, ऐसा कुछ प्रेमचंद कहना चाहते हैं। यहाँ उनका व्यंग कुछ नम्र है, परन्तु कहीं यह उग्र रूप भी धारण कर लेता है जैसा 'कफन' कहानी में जिसमें आर्थिक नीवों पर खड़ा समाज का सारा भवन ढ़हता नजर आता है, जहाँ आदमी अपनी पत्नी के मृतक संस्कार के लिए इकट्ठे किये हुए रुपये शराब-पानी में उड़ा कर भी बेशरमी से अपने इस राक्षसी कृत्य का समर्थन करता है। कहानी का अंत इस प्रकार है—'ज्यों-ज्यों अँधेरा होता जाता था, त्यों त्यों तारे निकलते जाते थे। बाप-बेटे पीते रहे। खाने से छुट्टी

पाकर माधो ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल एक भिखारी को दे दिया। घीसू बोला--ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे, जिसकी कमाई है वह तो मर गई। बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं।

माधो ने आकाश की तरफ देखकर कहा—वह बैकुंठ जायेगी, दादा, वह बैकुंठ की रानी बनेगी। घीसू जैसे हर्ष की लहरों में तैरते हुये, बोला —हाँ, बेटा, बैकुण्ठ में वह जायेगी, नहीं तो क्या वे मोटे-मोटे लोग जायेंगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और पाप को धोने के लिए गंगा नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।

नशा चढ़ रहा था। माधो रोते हुए बोला—मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा, मरी भी कितना दुख झेल कर।

घीसू ने समझाया—क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह मायाजाल से मुक्त हो गई, जंजाल से छूट गई, बड़ी भाग्यवान थी जो इतनी जल्द मायामोह का बंधन तोड़ दिया।

और दोनों वहीं खड़े होकर गाने लगे-ठगिनी क्यों नैना झमकावे, ठगिनी०। सारा शराबखाना इस समय मस्त हो रहा था और ये दोनों शराबी नशे में होते जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी, गिरे भी, मटके भी, भाव भी बताये और अंत में नशे से बेकाबू होकर वहीं पर गिर पड़े।'

इस कहानी में घीसू और माधो के अंतराल में घुस कर प्रेमचंद ने शोषण के जिस पहलू का चित्रण उपस्थित किया, वह समाज के लिए बड़ा भयावह है। प्रेमचंद जब घीसू से कहलाते हैं—कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढकने को चिथड़े

भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिये, तो वह इस समाज के मर्मस्थल पर आखिरी चोट करते हैं। समाज के धन और ऐश्वर्य का सारा छल तब हमारी आँखों के सामने अपने सच्चे रूप में खड़ा हो जाता है। अपनी अनेक कहानियों में प्रेमचंद ने धर्मोपजीवी और परोपकार-जीवी महापुरुषों के छल का भंडा फोड़ किया है। 'कफन' में जब बाप-बेटे आलू छीलते हुए एक दूसरे से अधिक खाने की चेष्टा करते हैं और इस प्रयत्न में उनकी जीभ और तलुए जल जाते हैं, तो हम क्रोध में भर जाते हैं--क्यों ये आदमी इतने निकम्मे हैं ? क्यों यह समाज के ऊपर बोझ की तरह छाये हुये हैं ! परंतु जब प्रेमचंद चुपके से यह बता देते हैं कि समाज में कामचोर ही तो सबसे मजे में हैं और सबके लिए काम इस समाज में कहाँ है तो हमारा क्रोध घीसू और माधो पर से हट जाता है और हम उस नृशंस समाज-पद्धति के विरुद्ध बद्धपरिकर हो जाते हैं जो मनुष्य को निकम्मा और पशु बना डालती है।

यह व्यंग ही प्रेमचंद की कहानी-कला का सबसे मार्मिक अस्त्र है और उन्हें चेखव और गोर्की की श्रेणी में, कदाचित् उनके भी ऊपर प्रतिष्ठित कर देता है। चेखव की कहानियों में कला का यही संयमित, तिक्त और यथार्थवादी रूप हमें मिलता है परंतु उसके पीछे वर्ग-चेतना नहीं है, विद्रोह का उतना बल नहीं है, वह परिस्थितियों के छल पर ही रुक जाते हैं। गोर्की भी तीव्र और कटु है, परंतु वह अपनी तीव्रता और कटुता में आनंद लेने लगते हैं और क्रांति की बात पीछे पड़ जाती है। प्रेमचंद चित्रण के भीतर व्यंग को ऐसे चुभते ढंग से प्रतिष्ठा करते हैं कि हम कहानी को बार-बार पढ़ते हैं और प्रत्येक बार हमारा विद्रोह अधिक दृढ़ होता जाता है। कुछ आलोचक प्रेमचंद की कला की

इस व्यंगप्राणता की तह तक न पहुंच कर उनके साथ अन्याय करते हैं और 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी अर्थपूर्ण और व्यंगप्रधान कहानी को शतरंज के मनोरंजन का चित्रण-मात्र मान कर चुप हो जाते हैं। जिसे प्रेमचंद की अंतर्दृष्टि का जरा भी पता नहीं हो, जो उन्हें साधारण साहित्यिक से ऊपर उठाकर समाज और राष्ट्र की पृष्ठभूमि में रखकर नहीं देख सके, जो उनके मनस्तत्त्व, उनके उद्वेग, उनकी क्रांतिदर्शिता से परिचित नहीं हो, उसके लिए क्या कहा जाये? आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रेमचंद की कला के व्यंग वाले पहलू को खोज निकाले और यह देखें कि वह हमारे रक्त में किस प्रकार उबलता हुआ इस्पात उंढेल देता है। वे जैसे चेतन कलाकार है, वैसे ही चेतन विद्रोही भी हैं। जो महापुरुष ईश्वर-विश्वास को भी चुनौती दे सकता था, जो धर्म, दर्शन और ज्ञान-विज्ञान की सारी जीर्ण मान्यताओं को ललकार सकता था, जो सरकार-परस्तों और देशभक्तों दोनों के छल को एक तुला पर तौलने का साहस कर सकता था, वह अपनी कला-कृतियों में केवल साहित्य और केवल कला से कुछ अधिक ही देगा।

—:०:—

८

## उपसंहार

आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वह हमारे सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार और कहानीकार हैं हमारे युग के साहित्यिकों में सबसे अधिक लोकप्रियता उन्हें ही मिली है और उन्होंने अन्य प्रांतीय भाषाओं के साहित्य और विश्व साहित्य के सामने हिंदी का मस्तक निःसंदेह ऊंचा किया है परंतु यह उनका साहित्यिक महत्व है। उनका महत्व यहीं समाप्त नहीं हो जाता। हमें यह भी स्मरण रखना पड़ेगा कि उनके साहित्य में समसामयिक भारतीय समाज के द्वन्दों और राष्ट्रीय हलचलों का संपूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित होता है। उन्होंने जितने विस्तार से और जिस सहृदयता से सारे सामाजिक जीवन को वाणी दी है, वह सचमुच श्रेय की बात है।

परंतु यदि केवल साहित्य की बात उठाई जाये तब भी प्रेमचंद महान निकलेंगे, उन्हें उपन्यास और कहानी की साहित्यिक आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ज्ञान था और वे इन दोनों क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ कलाकारों और उनकी महत्वपूर्ण रचनाओं से भली भाँति परिचित थे। 'कुछ विचार' में उपन्यासकला और कहानी-कला के संबंध में उन्होंने जो कुछ कहा है वह उनके अध्ययन और अनुभव का निचोड़ हमारे सामने उपस्थित करता है और वहां हमें ऐसे मानदंड मिल जाते हैं जिन्हें आधार मानकर हमें प्रेमचंद के साहित्य और उनकी कला की परीक्षा करनी होगी। साहित्य के संबंध में लिखते हुए उन्होंने कहा है कि वह

सारे जीवन को समेट कर चलता है। उनके शब्द ये हैं:—'साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवारें खड़ी होती हैं, उसकी अट्टारियां, मीनार और गुम्बद बनते हैं, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को जी भी न चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिये अनंत है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिचित है। जीवन परमात्मा को अपने कार्यों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं, लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है। इसके लिये कानून हैं, जिनसे वह इधर-उधर नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रेमचंद साहित्य को जीवन से अनिवार्य रूप से संबंधित कर देते हैं और उसे जनहित का ध्वजावाहक बना देते हैं। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद का दृष्टिकोण हिंदी-उर्दू के सारे पूर्ववर्ती और समकालीन कलाकारों से भिन्न और अधिक व्यापक था। इसी से उनके साहित्य में एकांगीपन नहीं है। वह न ब्राह्म-अब्राह्म की समस्या सुलझाता है, न केवल अवैध प्रेम और नारी के त्याग-तप का गीत गाता है। वह अपने समय के समाज और राष्ट्र के सारे जीवन को अपना कर आगे बढ़ता है।

प्रेमचंद यह भी कहते हैं कि उपन्यासकार को सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें मौलिकता हो परन्तु यह मौलिकता 'कल्पना' से संबंधित है। उपन्यासकार में नव-नव कल्पना का उन्मेष हो। वह घटनाओं और पात्रों को प्रत्यक्ष करके देख सके। यदि उपन्यासकार पर्याप्त रूप से कल्पनाशील नहीं है तो उसके चरित्र हमें प्रभावित नहीं कर सकते। उनमें प्राण-प्रतिष्ठा होना भी संभव नहीं है। प्रेमचंद के सारे साहित्य को देख जाइये, उसमें कहीं भी ऐसा पात्र नहीं मिलेगा जो निष्प्राण और छायामात्र हो।

जैसे विधाता की सृष्टि विभिन्न और प्राणवान है, वैसे प्रेमचंद के नर-नारी परस्पर विभिन्न और प्राणवान हैं। वह हमें जड़ और अस्पष्ट नहीं लगते।

प्रेमचंद यह भी मानते थे कि किसी भी श्रेष्ठ रचना के लिए यह आवश्यक है कि जनसाधारण उसे पूर्णतयः समझ सकें। साहित्य और कला खिलवाड़ नहीं है। उनका लक्ष्य है जनहित। अपनी रचनाओं में उन्होंने जनहित का बराबर ध्यान रखा है। इसी से भाषा की सरलता की ओर उनका आग्रह है। अर्थ गंभीर हो, इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि शैली भी दुर्बोध हो। कथा-कहानी जैसी साहित्यकोटि के लिए दर्शनग्रंथों की भाषा किंचित भी उपादेय नहीं है। उपन्यास यदि प्रवहमान जन-जीवन का चित्र है तो उसे जनता के लिए लिखा जाना चाहिये और कहानी यदि जीवन की छोटी छोटी भंगिमाओं को पकड़ कर चलती है तो उसे सबके लिए सुलभ होना चाहिये। इसीलिए प्रेमचंद ने अपने साहित्य को समाज से अलग नहीं किया। उपन्यास-कार के लिए यह आवश्यक है कि वह घटनाओं की एक शृंखला, उनका एक क्रमविकास, एक करण-कारण-योग कल्पित करे, जिससे अंततः उपन्यास के कथानक की सृष्टि हो, परन्तु साथ ही यह क्रमविकास, यह योग पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी सहायक हो। प्रेमचंद के उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह कथानक के संगठन को उतना महत्व नहीं देते थे। जितना चरित्र-चित्रण को कदाचित् ऐतिहासिक उपन्यासों में कथानक का संगठन में अधिक महत्वपूर्ण है। साम-यिक जीवन का चित्र-कर्ता अपने कथानक को सीमित भी रख सकता है—उसका कथा-संगठन उसके चारित्रिक विकास पर निर्भर है। उसे पात्रों की आत्मा की गहराई में बैठना है।

यदि संगठित कथानक देता हुआ वह यह कर सकता है तो ठीक, नहीं तो आवश्यक नहीं कि वह कथासूत्रों को यंत्रवत् संचालित करे। प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों के कथानक कुछ अधिक संगठित हैं, परन्तु अपने बड़े-बड़े राजनैतिक-सामाजिक उपन्यासों में वह जीवन का सर्वांगपूर्ण चित्र उपस्थित करना चाहते हैं और उनकी दृष्टि पात्रों पर रहती है। फलतः वहाँ थोड़ी विश्रृंखलता मिले तो आश्चर्य की बात नहीं है।

प्रेमचंद से पहले के उपन्यासकार अपने विषय (वस्तु) पर बड़ा बल देते थे। प्रेमचंद के लिए विषय उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना उसका निर्वाह। किसी भी महान कलाकार के लिए वस्तु अंतिम लक्ष्य नहीं है। वस्तु के माध्यम से वह जो हमें देना चाहता है वह कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यह सच है कि कोई विषय अधिक महान होता है, किसी में उतनी संभावनायें नहीं रहतीं, परन्तु बहुत कुछ कलाकार के व्यक्तित्व, उसके ज्ञानभांडार और उसके दृष्टिकोण पर निर्भर है। उदाहरण के लिए हम प्रेमचंद के नायकों को ले सकते हैं। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को नये नायक दिये। अब तक साहित्य में निज उदात्त नायकों की प्रतिष्ठा थी, उसके विपरीत दुर्बलचरित्र ज्ञानशंकर, अमरकांत और बलराज प्रेमचंद के नायक बने। उन्होंने हमें बतलाया कि यह आवश्यक नहीं है कि हमारे नायक उच्चवर्गीय हों। उन्होंने साधारण से साधारण नरनारियों को अपनी रचनाओं में नायकत्व दिया और अपनी प्रतिभा के बल पर साहित्य में मध्यवित्ती और पीड़ित-शोषित नायकों की एक परंपरा ही स्थापित कर दी। उनकी रचनाओं से हमने पहली बार जाना कि इन छोटे आदमियों में भी सुख-दुख, घृणा-प्रेम, ईर्ष्या-द्वेष, आत्मसम्मान और बलिदान की उतनी ही गहरी

भावना रहती है जितनी उच्चवर्गों में। वस्तुतः साहित्य के ये नये नायक परंपरागत नायकों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। वे भावी पीढ़ियों की आशायें हैं। सूरदास और होरी जैसे नायकों का भविष्य उज्ज्वल है, इस विषय में आज जरा भी संदेह नहीं रह गया है।

साहित्य के संबंध में प्रेमचंद की धारणा बड़ी ऊँची थी 'प्रेमचंदः घर में' में उन्होंने एक स्थान पर कहा है—'जब तक यहां के साहित्य में तरक्की न होगी तब तक साहित्य, समाज और राजनीति सब के सब ज्यों के त्यों पड़े रहेंगे।' इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों चीजों की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज तथा राजनीति का संबंध बिलकुल अटल है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि-लाभ तथा सुःख-दुःख होता है वह आदमियों पर ही होता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएँ अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन सब तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है।' साहित्य मनुष्य में सद्वृत्तियाँ जाग्रत करे तो वह सफल साहित्य है। साहित्य मनुष्य को जीवन-संघर्ष के लिये तैयार करे। वह हथियार की तरह काम में आ सके। वह मूलतः प्रेरणात्मक और निर्माणात्मक हो। इस प्रकार प्रेमचंद का झुकाव आदर्शवाद की ओर था, परंतु ऐसा आदर्शवाद उन्हें पसंद नहीं था जो मनुष्य को जीवन के यथार्थ से विमुख कर दे। न ऐसा नंगा यथार्थवाद और प्राकृतवाद ही उन्हें अच्छा लगता था जो पशु-प्रवृत्तियों को प्रश्रय दे और जीवन के दुःखमय और

घृणा-पूर्ण पहलुओं को ही सामने अधिक लाये। उन्होंने अपने लिए एक बीच का मार्ग निकाल लिया था जिसे उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' कहा है। १९३६ ई० की प्रगतिशील साहित्यकारों की सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—'साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है; अगर उसका यह स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता।' यह स्पष्ट है कि वे प्रेमचंद साहित्य की प्रगतिशीलता को किसी वाद विशेष में नहीं बाँधते। साहित्यकार की जो कल्पना उनके मन में है, उसमें रूढ़िवादिता और प्रगतिशीलता को किंचित भी स्थान नहीं है। ऐसा साहित्यकार ही अनेक अतिवादों के बीच में अपना लोक-कल्याण का पक्ष निकाल लेने में समर्थ होता है।

इस प्रकार यह निश्चय है कि प्रेमचंद की कला की सच्ची परख न यथार्थवाद के मापदंड पर हो सकेगी, न आदर्शवाद के। उनकी कला का मूलाधार ही आदर्शवाद और यथार्थ का समन्वय है। प्रेमचंद का विश्वास है कि साहित्य समाज और नीति से अलग नहीं किया जा सकता। जीवन-संघर्ष का समाधान यदि कहीं पूर्ण रूप से मिल सकता है तो वह साहित्य में। साहित्य का संबंध मनुष्य की भावनाओं से है और भावक्षेत्र में मनुष्य-मनुष्य में कोई भी अंतर नहीं है। प्रत्येक महान रचना समाज के अनेक वर्गों के बीच में समझौता कराती है, वह हमारी सहृदयता की वृद्धि करती और हमारी सहानुभूति के क्षेत्र का विस्तार करती है। यह साहित्य का मंगलरूप है। प्रेमचंद इससे पूर्णतयः परिचित थे। इसी से उनके साहित्य में यथार्थ और आदर्श का

विरोध समाप्त हो गया है और मनुष्य की दुर्बलताओं और परिस्थितियों की विडंबनाओं का चित्रण करते हुए भी उन्होंने सेवा, प्रेम, सत्य, बलिदान और आशा के गीत गाये हैं। मनुष्य मनुष्य है। केवल इसी एक बात से वह महान है। वह छोटा है, न बड़ा। जहाँ वह परिस्थितियों से दब गया, वहां छोटा है, परन्तु परिस्थितियों पर विजय-पताका फहरा कर वह निःसंदेह बड़ा है। मानव की सम्भावनाओं और उसकी महानता में प्रेमचन्द का विश्वास अगाध है और यही विश्वास उनके साहित्य को युगांतरकारी बना देता है।

यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने हिंदी उपन्यासकला को बहुत कुछ दिया है। उनकी यह देन छोटी भी नहीं है। प्रेमचन्द का साहित्य (१९०५-३६) समसामयिक सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन का ऐसा दर्पण है जो साहित्य के ऐतिहासिकों और भारतीय संस्कृति के अन्वेषकों के लिये सदैव महत्वपूर्ण रहेगा। कदाचित् किसी भी समकालीन साहित्यकार की कृतियों में बीसवीं शताब्दी के ये तीस-पैंतीस वर्ष इतनी सच्चाई से अंकित नहीं हुए हैं। वस्तुतः १९०५ ई० के लगभग ही हमारी राष्ट्रीयता में सक्रियता आई और बंगभंग के आन्दोलन के साथ हमने अपने राष्ट्रीय जीवन का एकांततः नवीन अध्याय आरंभ किया। अगले तीस वर्ष महान राष्ट्रीय आन्दोलनों और जन-जीवन की भयंकर परीक्षाओं के युग थे। इन वर्षों में अनेक प्रवृत्तियां उलझी हुई हैं। जान पड़ता है, शताब्दियों से जो भारतीय जीवन जड़ता और आत्मप्रताड़ना की नींद में सो रहा था, वह सहसा जाग कर अंगड़ाइयां लेने लगा और अकस्मात यह शत-शत योजन-विशाल देश अनेक स्वरों, अनेक गीतों, कुंठा और विरोध के अनेक शब्दों से मुखर हो उठा। प्रेमचंद के साहित्य की महत्ता

यही है कि उसमें इस जागृति को भुला नहीं दिया गया है। वह अपने युग की सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है।

परन्तु प्रेमचंद के साहित्य की महत्ता यहीं समाप्त नहीं हो जाती। उसमें पहली बार हिंदी-भाषा भाषी प्रदेश के गाँव, नगर, गलियारे, खेत, खलिहान, नदी-नाले, पशु-पत्ती, वन-पर्वत मुखर हो उठे हैं। प्रेमचंद के एक दरजन उपन्यासों और लगभग ३०० कहानियों में लगभग २००० नर-नारी हमारे सामने आते हैं। ऐसा लगता है जैसे सैकड़ों वर्षों की निद्रा के बाद यह महाश्मशान एकदम जाग उठा हो और विचित्र स्वरों से भर गया हो। यह स्वर निराशा और अवसाद के स्वर नहीं वरन् उत्कट आशा, कठोर कर्मठता और गर्वीले उल्लास के स्वर हैं। लगता है जैसे गंगा-जमुना की मिट्टी ही बोलने लगी हो।' ३० से' ३६ तक के हिंदी काव्य को देखिये, वहां निराशा, अवसाद, पीड़ा, रहस्यमय मिलन-वियोग और आत्मघाती आनंद के स्वर मिलेंगे। प्रेमचंद का साहित्य इस युग के काव्य-साहित्य से इतना भिन्न है कि हम उसे प्रेमचंद के अपने आशावादी और कर्मठ व्यक्तित्व का ही प्रतिबिंब मानकर उसको स्पष्ट कर सकेंगे। सद्-प्रवृत्तियों की विजय और मानव-जीवन की मंगलाशा से ओतप्रोत यह साहित्य आधुनिक भारतीय साहित्य में भी निराला है।

प्रेमचंद की देन पर विचार करते हुए उनकी भाषा-शैली को भी ध्यान में रखना होगा। प्रेमचंद की भाषा-शैली पर हम पिछले पृष्ठों में विचार कर चुके हैं। यहाँ हमें यह कहना है कि हम उनकी गद्य-शैली की उस विशेषता से परिचित हों जो उनकी रचनाओं को भाव, रस और व्यंग से पुष्ट करती है। उपन्यास-कहानी

की भाषा का ऐसा सुगठित, व्यंगपूर्ण, मार्मिक, प्राणवान और प्रासादिक रूप हिंदी में पहले था ही नहीं। प्रेमचंद ने उसे हिन्दुस्तानी कहा है और कुछ लोग उसे प्रेमचंदी हिंदी भी कहते हैं। आज हिन्दुस्तानी लांछित है और साहित्यकार संस्कृत-गर्भित हिंदी की ओर मुड़ रहे हैं। परन्तु प्रेमचंद की भाषा में जो प्रवाह है, जो लचक है, जो रस है, वह उसमें कहाँ है? सच तो यह है कि प्रेमचंद हिंदी गद्य के निर्माताओं में प्रमुख स्थान रखते हैं। मुहावरों से जड़ी, हास्य और व्यंग के मार्मिक प्रसंगों से पूर्ण, जीवन और प्रकृति की सारी रंगरेलियों से ओतप्रोत प्रेमचंद की भाषा-शैली साधारणतः काव्यतत्त्व और भावुकता से हीन होने पर भी साहित्यिक शैली के समस्त उपादानों से भूषित है। उनकी वर्णन-कला तो अपूर्व है। टाल्सटाय और गोर्की को छोड़कर कोई भी आधुनिक कलाकार इस क्षेत्र में प्रेमचंद से होड़ नहीं कर सकता।

हिंदी उपन्यास मुख्यतः विदेशी कलाकोटि है। प्राचीन कथा-साहित्य और आधुनिक उपन्यास-कहानी में महान अंतर है। इस अंतर को समझे बिना हम प्रेमचद की देन के महत्व को समझ ही नहीं सकते। प्रेमचंद से पहले के कथा-साहित्य पर मध्ययुगीन काव्यमय रोमांस, सूफी साहित्य एवं पौराणिक चरित्र-काव्य का गहरा प्रभाव था और वह प्राचीन धार्मिक आख्यायिकाओं की परंपरा में मुख्यतः उपदेशात्मक था। उसमें जो कुछ महत्वपूर्ण था वह या तो बंगला कथासाहित्य से ग्रहीत था या उर्दू कथासाहित्य से। उसकी अपनी पूँजी बहुत कम थी और जो थी वह कला की दृष्टि से किंचित भी महत्व-पूर्ण नहीं थी। प्रेमचंद ने उर्दू कथासाहित्य के प्रभाव की छाया में अपनी रचनाएँ आरम्भ कीं, कहानी के

क्षेत्र में वे रवि ठाकुर की कृतियों से भी प्रभावित थे, परन्तु शीघ्र ही वे मूल स्रोत तक पहुंच गये। मध्यवित्ती सुधारवादी उपन्यासों में प्रेमचन्द की प्रेरणा के स्रोत गेल्सवर्दी, डिकेन्स, थेकरे, हैगर्ड, मेरी कार्ली और जेन आस्टिन के उपन्यास हैं। आलोचकों ने 'सेवासदन' पर थेकरे के 'वेनेटी फेयर' (Vanity-Fair) का प्रभाव निरूपित किया है और 'रंगभूमि' पर 'हेनरी एसमान्ड' ( Henry Esmond ) का। 'गबन' पर गेल्सवर्दी के 'जस्टिस' नाटक का प्रभाव स्पष्ट है। प्रेमचन्द ने गेल्सवर्दी के तीन महत्वपूर्ण नाटकों सिल्वर बाक्स ( Silver-box ), जस्टिस Justice) और स्ट्राइफ (Strife) का अनुवाद 'चांदी की डिबिया' 'न्याय' और 'हड़ताल' नाम से किया है। इससे यह प्रगट होता है, कि गेल्सवर्दी के उपन्यासकारों का मध्यवित्त की परिस्थिति की विडंबना-संबंधी दृष्टिकोण उन्हें पसंद था। अंग्रेजी उपन्यास कारों में ह्रासमूलक सामंती सभ्यता और मध्यवित्त का चित्रण मुख्यतः गेल्सवर्दी और डिकेंस में ही मिलता है और यही प्रेमचंद के प्रिय विषय थे। डिकेन्स के 'टाइप' के चित्रण और अतिशयोक्ति पूर्ण ( melodramatic ) पात्रों से भी वे कुछ प्रभावित थे। प्रेमचंद के साहित्य में जिस प्रकार पीड़ित वर्ग के दर्शन होते हैं इसी प्रकार डिकेन्स की कला में पीड़ितों के प्रति अगाध सहानुभूति है। इस प्रकार प्रेमचंद अपने सामाजिक उपन्यासों में अनेक सूत्रों से अंग्रेजी कलाकारों से बंधे हुए हैं। उनके परवर्ती राष्ट्रीय जीवन के उपन्यासों पर रूस के कलाकारों का मुख्यतः तोल्सताय का, प्रभाव है। वे जिस समय काशीविद्यापीठ में पढ़ाते थे उस समय तोल्स्ताय के 'अन्नाकरीना' और 'वार एन्ड पीस' जैसे वृहद् उपन्यास उनके चिर साथी थे। इन उपन्यासों को प्रेमचंद ने कई बार पढ़ा जान पड़ता है और राष्ट्रीय वृहद् जीवन के चित्रण

की कला उन्होंने इन्हीं से सीखी। संभव है उन्होंने गोर्की और शोलोखफ की रचनाओं से भी कुछ प्रेरणा ली हो। कम से कम गोर्की के प्रति उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। वे उसे मानवता का कलाकार मानते थे और अपनी अंतिम रोग-शय्या पर पड़े-पड़े उन्होंने गोर्की की मृत्यु पर अपना भाषण लिखा था। उनकी कहानी-कला कदाचित् रवि ठाकुर के प्रभाव को लेकर चली परन्तु बाद में उन्होंने मोपाँसा, तोल्सताय, गेल्सवर्दी, चेखव और गोर्की से भी काफी सीखा। वह इन्हीं अमर कलाकारों की पंक्ति में स्थान पायेंगे।

ऊपर जो लिखा गया है उससे यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास-कहानी को बंगला-उर्दू के भद्दे अनुकरण से निकाल कर पश्चिमी कलाकारों की विराट पृष्ठभूमि दी और पश्चिमी कथा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बारीकियाँ उसमें भरीं। परंतु यह भी निश्चित है कि पूर्ववर्ती साहित्य और कलाकारों से बहुत कुछ लेते हुए भी प्रेमचंद की कला और उसके विकास का अपना निश्चित इतिहास है और हिंदी के समीक्षक को उसे खोज निकालना है। लगभग एक दर्जन उपन्यासों और २५०-३०० कहानियों को लेकर प्रेमचंद विश्वसाहित्य के रंगमंच पर आये और उन्होंने हिंदी को एक नया गौरव दे दिया। अब तक पश्चिम कबीर, तुलसी, दादू और मीरा को जानता था। इनमें पूर्व का ईश्वर-विश्वास और अध्यात्म था जो उसके संघर्ष-प्राण जीवन को छू लेता था। प्रेमचन्द में उसने भारत के दीन-हीन किसान, उसके नए नगरों के मध्यवित्त और उसकी नई पीढ़ी की समस्याओं से परिचय प्राप्त किया, उसी प्रकार का परिचय जिस प्रकार का परिचय उसे अपने समाज और अपनी पीढ़ी के संबन्ध में डिकेन्स, गेल्सवर्दी, तोल्सताय और चेखव से मिलता था।

हिंदी उपन्यास मुख्यतः मध्यवित्त की चीज़ है। मध्यवित्त की भांति ही वह एक साथ रोमांटिक, यथार्थवादी एवं सुधारवादी है। हिंदी उपन्यास का नैतिक दृष्टिकोण भी प्रारंभतः मध्यवित्ती दृष्टिकोण है। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार—श्री निवास दास ( १८५१–१८८७ ), देवकीनंदन खत्री ( १८६१-१९१३ ) और किशोरी लाल गोस्वामी ( १८६५–१९३२ ) क्रमशः यथार्थवादी, रोमांटिक ( स्वच्छंदतावादी ) और सुधारात्मक सामाजिक प्रवृत्तियों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमचन्द ने यथार्थवादी और सुधारवादी सामाजिक प्रवृत्तियों को ही विकसित किया यद्यपि वे अपने युग की स्वच्छंदवादी प्रवृत्ति से भी प्रभावित हैं विशेषतः 'कायाकल्प' जैसे परलोकवादी उपन्यास और 'मूठ' जैसी अतिलौकिक कहानियों में। परन्तु हिंदी कथा-साहित्य में यथार्थवादी प्रवृति को उभारने वाले और उसे अपने कलम के बल से युग की सबसे महत्वपूर्ण धारा बनाने वाले कलाकार प्रेमचन्द ही हैं। मध्यवित्त का सारा जीवन और उसकी सारी समस्यायें उनके कथासाहित्य में प्रतिफलित हैं। उनके सुधारवादी दृष्टिकोण का पता 'प्रतिज्ञा' (विधवा-विवाह) 'सेवासदन' ( वेश्या ), 'निर्मला' ( दोहाजू, दहेज़, सौत ) और 'गबन' ( मध्यवित्ती बढ़-चढ़ कर दिखाने की प्रवृत्ति और आभूषण-प्रेम इत्यादि ) से चलता है। मध्यवित्त नागरिक जीवन की एक प्रधान समस्या हिन्दू मुसलिम-समस्या को प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' में लिया है। उसकी राष्ट्रीयता, कर्मवाद, त्याग और तपस्या की कहानी उन्होंने 'वरदान', 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में में कही है। कहानियों में से आधी से अधिक इसी वर्ग से संबंधित हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दिनों में नए मध्यवित्त जन्म हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे चतुर्थांश में

उसने एक निश्चित इकाई का रूप ग्रहण कर लिया था। अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त तरुणों की एक नई पीढ़ी उठ खड़ी हुई थी। प्रेमचन्द की अनेक कहानियों में इस नई पीढ़ी के सांस्कृतिक संघर्ष और द्विधात्मक मनःस्थिति का चित्रण मिलता है। दयानंद और गांधी का समन्वय और नेहरू का वैज्ञानिक और समाजवादी दृष्टिकोण प्रेमचन्द के साहित्य में कलात्मक रूप ग्रहण करते दिखलाई देते हैं।

परन्तु मध्यवित्त के कुशल चित्रकार होते हुए भी प्रेमचन्द का हृदय जनता के साथ था। उनके साहित्य में किसान (प्रेमाश्रम और गोदान), मज़दूर (रंगभूमि), अछूत (कर्मभूमि) और अन्य दलित पीड़ित वर्ग (१६३० से १६३६ तक लिखी अनेक कहानियाँ) अपनी सारी दुर्बलताओं और शक्ति के साथ सामने आते हैं। उनकी अनेक कहानियाँ इन्हीं शोषित वर्गों के प्रति हमारी सम्वेदना को जाग्रत करती हैं।

अपने व्यक्तिगत अनुभव भी उनके साहित्य में कम नहीं गुंथे हैं। गरीबी के व्यक्तिगत अनुभव, सम्मिलित परिवार की कठिनाइयां, दोहाजू, विमाता, सौत, विधवा-विवाह, प्रेम और विवाह का द्वैत, पतनोन्मुख कायस्थ-समाज और मध्यवित्तीय स्त्री-पुरुषों के मनोविज्ञान एवं उसकी घरेलू समस्याओं के लिए प्रेमचन्द यदि किसी के ऋणी हैं तो अपने जीवन के। 'प्रेमचन्दः घर में' से उनके साहित्य का मिलान करने से यह बात पुष्ट हो जाती है। जीवन का तिक्त रस उनके भीतर से अमृत बन कर निकला। 'गोर्की' से कम कटु अनुभव उनके नहीं थे। परन्तु गोर्की के साहित्य में जहां ये अनुभव यथार्थ-चित्रण मात्र, मनोरंजक आप-गाथा-मात्र बनकर सामने आते है और अपनी तिक्तता से हमें स्तंभित और क्षुब्ध कर देते हैं, वहां प्रेमचन्द के अनुभव

गरल को अमृत बना देते हैं और उनमें कलात्मक सौन्दर्य और कलागत संयम की प्रतिष्ठा पूरी मात्रा में होने के कारण वह मधुरता से स्निग्ध हो जाते हैं।

परन्तु जो चीज़ प्रेमचन्द के साहित्य को और भी महत्व पूर्ण बनाती है वह है उसका भारतीय दृष्टिकोण और उसकी लोकमंगल-भावना एवं उसका आदर्शवाद। संपूर्ण साहित्य में उनका पक्ष नैतिक पक्ष है और वह दैवी संपदाओं की जीत की ही घोषणा करते हैं। उनके पात्रों ने अदम्य नैतिक साहस का परिचय दिया है। सूरे, विनय, अमरकांत और होरी अपने-अपने आदर्शों पर कट मरे हैं। 'रंगभूमि और 'गोदान' के पृष्ठों में प्रेमचन्द ने जिस सतर्कता, जिस साहस और जिस नैतिक बल से सूरदास और होरी की लड़ाइयाँ लड़ी हैं, वह अपूर्व है। आधुनिक साहित्य में उसका कहीं जोड़ नहीं इन लड़ाइयों में प्रेमचन्द ने अपने कर्मठ और साहसी जीवन को ही अनेक रूप देकर युद्ध-क्षेत्र में उतारा है। बीस हजार पृष्ठों में साहित्य के क्षेत्र में सैकड़ों नर-नारियों और राष्ट्रीय, पारिवारिक और सामाजिक जीवन की शतशः परिस्थितियों के साथ उन्होंने जो कला और संवेदना की लड़ाई लड़ी, वह बाहर राष्ट्रीय जीवन और पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की वास्तविक लड़ाई से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है। फिर यह लड़ाई एक ऐसे मनुष्य ने लड़ी है जिसका एक मात्र अस्त्र है मानव के दुःख और उत्पीड़न के प्रति सम्वेदना और मनुष्य ही जिसकी एक मात्र आशा है। साधारण अर्थों में जिसे आस्तिक कहते हैं, प्रेमचंद वह नहीं थे। उन्होंने एक बार जैनेन्द्र के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था—"जैनेन्द्र, मैं कह चुका हूं मैं परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। कैसे विश्वास करूँ जब देखता हूं, बच्चा बिलख रहा है। रोगी तड़प रहा है। यहाँ भूख है, क्लेश है, ताप है। वह ताप इस दुनिया

में कम नहीं है। तब इस दुनिया में मुझे ईश्वर का साम्राज्य नहीं दीखे, तो यह मेरा कसूर है! मुश्किल तो यह है कि ईश्वर को मानकर उसे दयालु मानना होगा। मुझे वह दयालुता नहीं दीखती। तब उस दयासागर में विश्वास कैसे हो! जैनेन्द्र, तुम विश्वास करते हो!' परंतु इसे नास्तिकता भी कौन कह सकता है और यदि यह नास्तिकता है तो सचमुच हमारी आस्तिकता से कहीं अधिक मूल्यवान, मानवता के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अपार मानवता और अगाध आत्मविश्वास ही प्रेमचंद के साहित्य का संबल हैं। इन्हें ही लेकर वह मानव के कल्याण पथ पर अग्रसर हुए हैं। उनके साहित्य में एक प्रकार का काठिन्य है। रवि बाबू के साहित्य की जैसी गंभीरता और शरतचंद के साहित्य की गलिदाश्रुता उसमें नहीं है। परन्तु प्रेमचंद के साहित्य में जो संकल्प है, जो भावना का काठिन्य है जो संयम और कल्याण-दृष्टि है, वही आज इस निर्माणशील स्वतंत्र नवराष्ट्र का बल है। दार्शनिकता और कारुण्य में इस देश का संचित धन है, तो यह काठिन्य हमारी नई पूंजी है। विधायकता के लिए तीनों ही चाहिये! कदाचित् इसी बात को ध्यान में रख कर प्रेमचंद ने जैनेन्द्र से कहा था—'जैनेन्द्र, रवीन्द्र और शरत दोनों महान हैं। पर हिंदी के लिए क्या वही रास्ता है, शायद नहीं। हिंदी राष्ट्र-भाषा है। मेरे लिए तो वह राह नहीं ही है।' सचमुच हिंदी के लिए यही संकल्प और काठिन्य की राह अधिक उपयुक्त है। इसमें ही देश के निर्माण के तत्त्व अंतर्हित हैं। कोरी भावुकता और झूठी दार्शनिकता और मनोवैज्ञानिक अतिवाद से मुक्त प्रेमचंद की कर्म-कठोर साहसिक वाणी अब काश्मीर से कन्याकुमारी और सिन्धु से लोहित तक गूँजने लगी है। यही नए भारत राष्ट्र का कल्याणमन्त्र है। इसी परंपरा को हमें प्राण देकर भी आगे बढ़ाना है।

---